U.P. Series

हिन्दी

प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न-पत्र

पाठ्यपुस्तक का सम्पूर्ण हल

11

हिंदी–11

गद्य–गरिमा

भूमिका

अभ्यास प्रश्न

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न–

1. मेरठ और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली का साहित्यिक रूप क्या कहलाता है?

उ०– मेरठ और दिल्ली के आस–पास बोली जाने वाली खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को 'हिन्दी' कहते हैं।

2. हिन्दी की कितनी उपभाषाएँ हैं?

उ०– हिन्दी की उपभाषाएँ ब्रजभाषा, खड़ीबोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी एवं पहाड़ी हैं।

3. पूर्ववर्ती गद्य के हिन्दी साहित्य को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है?

उ०– पूववर्ती गद्य के हिन्दी साहित्य को मुख्यत: चार वर्गों में बाँटा जा सकता है– (1) राजस्थानी गद्य, (2) मैथिली गद्य, (3) ब्रजभाषा का गद्य और (4) खड़ीबोली का प्रारम्भिक गद्य।

4. हिन्दी की आठ बोलियों के नाम बताइए।

उ०– हिन्दी की आठ बोलियाँ हैं– ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, बघेली, अवधी एवं छत्तीसगढ़ी।

5. गद्य एवं पद्य में मुख्य अन्तर क्या हैं?

उ०– गद्य मुख्यत: छन्दमुक्त वाक्यों में की गई रचना होती है, जबकि पद्य लयबद्ध या छन्दोबद्ध रचना होती है। यति, गति, लय, पद्य लेखक के सहायक तत्व होते हैं, जबकि गद्य लेखक के लिए विराम–चिह्न सहायक तत्व सिद्ध होते हैं।

6. ब्रजभाषा के गद्य की दो रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– ब्रजभाषा गद्य की दो रचनाएँ श्रृंगार–रस–मण्डन तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता हैं।

7. ब्रजभाषा के सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ का नाम बताइए।

उ०– ब्रजभाषा का सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' माना जाता है।

8. मैथिली गद्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ कौन-सा है?

उ०– मैथिली गद्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ज्योतिरीश्वरकृत 'वर्ण–रत्नाकर' है।

9. ब्रजभाषा के गद्य साहित्य को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है?

उ०– ब्रजभाषा के गद्य साहित्य को मुख्यत: तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– (1) मौलिक ग्रन्थ, (2) टीका–साहित्य और (3) अनूदित ग्रन्थ।

10. राजस्थानी गद्य की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– राजस्थानी गद्य की प्रमुख रचनाएँ आराधना, अतिचार एवं बाल–शिक्षा आदि हैं।

11. हिन्दी की प्रथम पत्रिका कौन-सी है? यह कब व कहाँ से प्रकाशित हुई?

उ०– हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'उदन्त–मार्तण्ड' हैं। यह सन् 1826 ई० में कानपुर से प्रकाशित हुई।

12. 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'भाषा योगवाशिष्ठ' के लेखकों का नाम बताइए।

उ०– 'सत्यार्थ प्रकाश' के लेखक स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा 'भाषा योगवाशिष्ठ' के लेखक रामप्रसाद निरंजनी हैं।

13. मुंशी सदासुखलाल की भाषा की विशेषताएँ बताइए।

उ०– मुंशी सदासुखलाल की भाषा परिमार्जित तथा फारसी शैली से प्रभावित है।

14. भारतेन्दु युग से पूर्व किन दो राजाओं ने हिन्दी गद्य के निर्माण में योगदान दिया?

उ०– भारतेन्दु युग से पूर्व राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी गद्य के निर्माण में योगदान दिया।

15. 'विलफोर्स एक्ट' कब पास हुआ?

उ०– सन् 1813 ई० में 'विलफोर्स एक्ट' पास हुआ।

16. खड़ी बोली के गद्य की सबसे पहली रचना कौन-सी है?

उ०– खड़ीबोली के गद्य की सबसे पहली रचना जटमल कृत 'गोरा बादल की कथा' है।

17. कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कॉलेज के उन दो हिन्दी-शिक्षकों के नाम लिखिए, जिन्हें खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक उन्नायक माना जाता है।

उ०– कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कॉलेज के दो हिन्दी-शिक्षकों लल्लूलाल तथा सदल मिश्र को खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक उन्नायक माना जाता है।

18. इंशा अल्ला खाँ, रामप्रसाद निरंजनी एवं लल्लूलाल की प्रसिद्ध रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– इंशा अल्ला खाँ — रानी केतकी की कहानी
रामप्रसाद निरंजनी — भाषा योगवाशिष्ठ
लल्लूलाल — प्रेमसागर

19. सदल मिश्र व इंशा अल्ला खाँ की भाषा-शैली में अन्तर बताइए।

उ०– इंशा अल्ला खाँ की रचनाएँ शुद्ध खड़ी बोली में लिखी गई है, फिर भी कहीं-कहीं फारसी शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी भाषा मुहावरेदार तथा हास्य से परिपूर्ण है।
सदल मिश्र जी की भाषा अधिक स्पष्ट, व्यवहारोपयोगी तथा सुधरी हुई है।

20. खड़ी बोली गद्य के प्रसार में ईसाई मिशनरियों का क्या योगदान रहा?

उ०– ईसाई मिशनरियों ने हिन्दी गद्य के विकास में अधिक योगदान दिया, इन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए 'बाईबिल' एवं अन्य ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करवाया।

21. प्रगतिवादी युग के प्रथम वर्ग के साहित्यकारों के नाम बताइए।

उ०– प्रगतिवादी युग के प्रथम वर्ग के साहित्यकार— दिनकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, वासुदेवशरण अग्रवाल आदि हैं।

22. शुक्ल युग की प्रमुख पत्रिकाओं के नाम बताइए।

उ०– शुक्ल युग की प्रमुख पत्रिकाएँ साहित्य-सन्देश, कर्मवीर, सरोज, हंस, आदर्श/मौजी आदि हैं।

23. शुक्ल युग की कृतियों में प्रयुक्त शैली कौन-सी है?

उ०– इस युग की कृतियों में मुख्य रूप से गवेषणात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, विवेचनात्मक व विवरणात्मक शैली प्रयोग की गई।

24. शुक्ल युग में कौन-सी विधाएँ विकसित हुईं?

उ०– शुक्ल युग को कहानी, निबन्ध, उपन्यास, आलोचना, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्म-कथा, जीवनी, पत्र साहित्य, यात्रा-वृत्त व डायरी आदि गद्य विधाएँ विकसित हुई।

25. शुक्ल युग को अन्य किन नामों से जाना जाता है?

उ०– शुक्ल युग को छायावादी युग, प्रसाद युग, प्रेमचन्द युग आदि नामों से भी जाना जाता है।

26. शुक्ल युग के प्रमुख गद्यकारों के नाम लिखिए।

उ०– शुक्ल युग के प्रमुख गद्यकार हैं— पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ० रघुबीर सिंह, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि।

27. हिन्दी गद्य की उर्दू तथा संस्कृतप्रधान शैलियों के पक्षधर दो राजाओं के नाम लिखिए।

उ०– राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' हिन्दी गद्य के उर्दू तथा राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के संस्कृत शैली के पक्षधर थे।

28. भारतेन्दु के सहयोगी किन्हीं दो लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– प्रतापनारायण मिश्र तथा पं० बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु के सहयोगी लेखक थे।

29. भारतेन्दु युग में प्रकाशित होने वाली हिन्दी की एक प्रमुख पत्रिका व उसके सम्पादक का नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु युग में प्रकाशित होने वाली हिन्दी की प्रमुख पत्रिका 'कवि-वचन सुधा' है। इसके सम्पादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी थे।

30. हिन्दी खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान लिखिए।

उ०– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने पहली बार अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए साधारण बोलचाल के शब्दों को हिन्दी में स्थान दिया। भारतेन्दु युग का गद्य अत्यन्त सजीव एवं सशक्त है। इस युग के साहित्यकारों ने काव्य के लिए 'बज्रभाषा' व गद्य के लिए 'खड़ी बोली' को अपनाया। वर्तमान हिन्दी गद्य को भारतेन्दु जी की देन मानते हुए उन्हें 'हिन्दी गद्य का जनक' संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

31. द्विवेदी युग के प्रमुख गद्य-लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदी युग के प्रमुख लेखक हैं— महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, पूर्णसिंह, सम्पूर्णानन्द, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल आदि।

32. द्विवेदी युग का समय बताइए और उस व्यक्ति का पूरा नाम बताइए, जिसके कारण इसे द्विवेदी युग कहा जाता है।

उ०– द्विवेदी युग की समय-सीमा सन् 1900 ई० से सन् 1922 ई० तक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस युग को द्विवेदी युग कहा जाता है।

33. भारतेन्दु युग की गद्य-भाषा (हिन्दी) का द्विवेदी युग में क्या सुधार एवं विकास हुआ?

उ०– भारतेन्दु युग के हिन्दी गद्य में परिष्कार और परिमार्जन की आवश्यकता थी। द्विवेदी युग में भाषा को शुद्ध, सुसंस्कृत व परिमार्जित बनाकर व्यवस्थित किया गया।

34. भारतेन्दु युग के निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के निबन्धकार हैं।

35. विषय और शैली की दृष्टि से निबन्ध के प्रमुख कितने भेद हैं? उनके नाम लिखिए।

उ०– विषय और शैली की दृष्टि से निबन्ध के निम्नलिखित प्रमुख चार भेद हैं–

(1) विवरणात्मक निबन्ध, (2) वर्णनात्मक निबन्ध, (3) विचारात्मक निबन्ध, (4) भावात्मक निबन्ध।

36. हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाओं के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाएँ– निबन्ध, कहानी, नाटक, उपन्यास, आलोचना, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, डायरी, यात्रावृत, भेंट-वार्ता, पत्र-साहित्य तथा गद्य काव्य आदि हैं।

37. प्रगतिवादी युग की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उ०– मार्क्सवादी प्रभाव, भाषा की सशक्तता, नवीन भाषा-शैलियों का विकास तथा यथार्थता आदि प्रगतिवादी की विशेषताएँ हैं।

38. प्रगतिवादी युग की प्रमुख पत्रिकाओं के नाम लिखिए।

उ०– प्रगतिवादी युग की प्रमुख पत्रिकाएँ सारिका, गंगा, कादम्बिनी, धर्मयुग आदि हैं।

39. आधुनिक युग की समय-सीमा बताइए।

उ०– आधुनिक युग की समय-सीमा सन् 1947 ई० से वर्तमान समय तक है।

40. आधुनिक युग के किन्हीं तीन लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– आधुनिक युग के तीन लेखक लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती हैं।

41. हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास एवं उसके लेखक का नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' है। इसके लेखक लाला श्रीनिवासदास हैं।

42. प्रेमचन्द जी की पहली कहानी का नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्द की पहली कहानी 'स्रोत' है।

43. जयशंकर प्रसाद की प्रमुख कहानियों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद की प्रमुख कहानियाँ– आकाशदीप, ममता, पुरस्कार, मधुआ, चित्र-मन्दिर, गुण्डा आदि हैं।

44. कहानी की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

उ०– लघु कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भाव अथवा संवेदना का प्रस्तुतीकरण तथा निश्चित उद्देश्य-कहानी की मुख्य विशेषताएँ हैं।

45. कहानी के कौन-कौन से तत्व होते हैं?

उ०– कहानी के निम्नलिखित तत्व होते हैं– (1) शीर्षक, (2) पात्र-एवं चरित्र-चित्रण, (3) कथानक या कथावस्तु, (4) संवाद या कथोपकथन, (5) देशकाल या वातावरण, (6) भाषा-शैली तथा (7) उद्देश्य।

46. हिन्दी की पहली मौलिक कहानी का नाम लिखिए।

उ०– किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जाता है।

47. महादेवी वर्मा तथा वासुदेवशरण अग्रवाल किस युग के निबन्धकार है?

उ०– महादेवी वर्मा तथा वासुदेवशरण अग्रवाल शुक्लोत्तर युग के निबन्धकार हैं।

48. शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकार– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त, बड़थ्वाल आदि है।

49. भारतेन्दु जी के दो निबन्धों के नाम लिखिए।

उ०– मदालसा तथा सुलोचना भारतेन्दु जी के दो निबन्ध-संग्रह हैं।

48. देवकीनन्दन खत्री के दो उपन्यासों के नाम बताइए।

उ०– चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ– देवकीनन्दन खत्री के दो उपन्यास हैं।

49. जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद के दो उपन्यास– कंकाल और तितली हैं।

50. द्विवेदीयुगीन किन्ही दो निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदीयुगीन दो निबन्धकार हैं– महावीर प्रसाद द्विवेदी व पूर्णसिंह।

51. हिन्दी एकांकी का जनक किसे माना जाता है?

उ०– डॉ० रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिन्दी एकांकी का जनक माना जाता है।

52. 'रक्षाबंधन' तथा 'सिंदूर की होली' किस विधा की रचनाएँ हैं? इनके लेखकों का नाम भी लिखिए।

उ०– 'रक्षाबन्धन' तथा 'सिंदूर की होली' नाटक विधा की रचनाएँ हैं। इनके लेखक हरिशंकर प्रेमी तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र हैं।

53. जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटकों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक– चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु, करुणालय आदि हैं।

54. हिन्दी के प्रमुख नाटककारों के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी के प्रमुख नाटककार– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, हरिशंकर प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भीष्म साहनी आदि हैं।

55. नाटक को 'रूपक' क्यों कहा जाता है?

उ०– नाटक में पात्रों और घटनाओं को अन्य पात्रों व घटनाओं पर आरोपित किया जाता है, इसलिए इसे 'रूपक' कहा जाता है।

56. प्रेमचन्दोत्तर युग के किन्हीं दो उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्दोत्तर युग के दो प्रमुख उपन्यासकार– जैनेन्द्र तथा इलाचन्द्र जोशी हैं।

57. 'परख' तथा 'जहाज का पंछी' उपन्यासों के लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– 'परख' उपन्यास के लेखक– जैनेन्द्र तथा 'जहाज का पंछी' उपन्यास के लेखक–इलाचन्द्र जोशी जी हैं।

60. प्रेमचन्द के किन्हीं दो उपन्यासों के नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्द जी के दो उपन्यास– गबन और गोदान हैं।

61. किन्हीं दो संस्मरण लेखकों व उनकी एक-एक कृति का नाम बताइए।

उ०– महादेवी वर्मा तथा भगवतीचरण वर्मा दो प्रमुख संस्मरण लेखक है। इनकी रचनाएँ– 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'वे सात और हम' है।

62. रेखाचित्र व संस्मरण में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उ०– रेखाचित्र में शब्दों की कलात्मक रेखाओं के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना के बाह्य तथा आंतरिक स्वरूप का शब्द-चित्र इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि पाठक के हृदय में उसका सजीव तथा यथार्थ चित्र अंकित हो जाए। संस्मरण में लेखक के द्वारा अपनी स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा विषय पर लेख लिखा जाता है।

63. जीवनी किसे कहते है?

उ०– किसी महान् व्यक्ति के जीवन की जन्म से मृत्यु-पर्यन्त सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को जब कोई लेखक प्रस्तुत करता है, तब वह विधा जीवनी कहलाती है।

64. जीवनी लिखने वाले किसी एक लेखक तथा उसकी रचना का नाम लिखिए।

उ०– जीवनी लिखने वाले लेखक बनारसी दास चतुर्वेदी हैं। इनकी रचना का नाम 'पण्डित सत्यनारायण की जीवनी' है।

65. रामविलास शर्मा किस रूप में प्रसिद्ध हैं?

उ०– रामविलास शर्मा जीवनी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

66. प्रसिद्ध जीवनी-लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– प्रसिद्ध जीवनी लेखक हैं– गुलाबराय, रामनाथ सुमन, डॉ० रामविलास शर्मा, अमृतराय आदि।

67. दो डायरी विधा लेखकों के नाम बताइए।

उ०– श्रीराम शर्मा तथा धीरेन्द्र वर्मा दो प्रमुख डायरी विधा लेखक हैं।

68. गद्य-काव्य किसे कहते हैं?

उ०– गद्यात्मक भाषा के माध्यम से किसी भावपूर्ण विषय पर की गई काव्यात्मक अभिव्यक्ति गद्य-काव्य कहलाती है।

69. यात्रावृत्त किसे कहते हैं।

उ०– लेखक अपने द्वारा की गई किसी यात्रा के अनुभव का वर्णन प्रस्तुत करता है, वह यात्रावृत्त कहा जाता है।

70. दो यात्रावृत्तान्त लेखकों व उनकी एक-एक कृति का नाम लिखिए।

उ०– दो यात्रावृत्तान्त लेखक राहुल सांस्कृत्यायन तथा मोहन राकेश हैं। इनकी रचना क्रमश: 'घुमक्कड़ शास्त्र' तथा 'आखरी चट्टान' है।

71. 'ठेले पर हिमालय' किस विधा की रचना है?

उ०– 'ठेले पर हिमालय' यात्रावृत्त विधा की रचना है।

72. भेंटवार्ता अथवा साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं?

उ०– किसी से भेंट करके उसका परिचय जानने का प्रयास 'भेंटवार्ता' के अन्तर्गत आता है।

73. हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक समाचार-पत्र का नाम बताइए।

उ०– हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक समाचार-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' है।

74. रिपोर्ताज किसे कहते हैं?

उ०– रिपोर्ताज में किसी घटना का वर्णन इस तरह किया जाता है कि पाठक उससे प्रभावित हो जाता है। रिपोर्ताज का हाल इस तरह से लिखा जाता है कि जैसे वह आँखों देखा हो। इसमें महत्वपूर्ण घटनाओं तथा पाठकों की विशिष्टताओं का निजी और सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा विवेचन होता है।

75. हिन्दी के दो रिपोर्ताज लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– विष्णु प्रभाकर तथा प्रभाकर माचवे दो प्रमुख रिपोर्ताज लेखक हैं।

76. हिन्दी के प्रमुख एकांकीकारों के नाम बताइए।

उ०– हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ० रामकुमार वर्मा, पं० उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास, जगदीशचन्द्र माथुर, विनोद रस्तोगी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि हैं।

77. हिन्दी की प्रथम एकांकी का नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित 'एक घूँट' को हिन्दी की प्रथम एकांकी माना जाता है।

78. डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रथम एकांकी नाटकों के संग्रह का क्या नाम है? यह कब प्रकाशित हुआ?

उ०– डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रथम एकांकी नाटकों के संग्रह का नाम 'पृथ्वीराज की आँखें' है, यह सन् 1936 ई० में प्रकाशित हुआ।

79. आलोचना किसे कहते हैं?

उ०– किसी वस्तु का सूक्ष्म अध्ययन करना; जिससे उसके गुण-दोष प्रकट हो जाएँ, को आलोचना कहते हैं।

80. हिन्दी में आधुनिक पद्धति की आलोचना का प्रारम्भ कब से माना जाता है?

उ०– हिन्दी में आधुनिक पद्धति की आलोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु युग में लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नामक नाटक की आलोचना से माना जाता है।

81. छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध आलोचना लेखक का नाम बताइए।

उ०– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध आलोचना लेखक हैं।

82. चार आलोचक लेखकों के नाम बताइए।

उ०– चार आलोचक लेखक हैं– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी।

83. द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना लेखक हैं– बाबू श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

84. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की एक रचना का नाम लिखिए।

उ०– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की रचना 'मेरी आत्मकथा' है।

85. हिन्दी के किन्हीं दो रेखाचित्रकारों के नाम लिखिए।

उ०– महादेवी वर्मा तथा अमृतराय हिन्दी के दो प्रमुख रेखाचित्रकार हैं।

86. गद्य-काव्य विधा के दो लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– गद्य-काव्य विधा के दो प्रमुख लेखक– माखनलाल चतुर्वेदी तथा वियोगी हरि जी हैं।

87. भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटकों के नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटक हैं– वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अँधेर नगरी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी आदि।

88. 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक का नाम लिखिए।

उ०– 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे।

89. 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक का नाम बताइए।

उ०– 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक धर्मवीर भारती जी हैं।

90. 'कर्मवीर' किस युग की पत्रिका है तथा यह कहाँ से प्रकाशित होती थी?

उ०– 'कर्मवीर' शुक्ल युग की पत्रिका है, यह जबलपुर से प्रकाशित होती थी।

91. 'हंस' पत्रिका के सम्पादक का नाम बताइए।

उ०– 'हंस' पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द जी थे।

1 भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
(भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—30 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– लेखक परिचय– हिन्दी साहित्य के प्रवर्त्तक व प्रसिद्ध कवि होने के साथ ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कुशल पत्रकार, नाटककार, आलोचक, निबन्धकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। सेठ अमीचन्द के वंश में उत्पन्न हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, सन् 1850 ई० में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र गिरिधरदास था। जब ये पाँच वर्ष की अवस्था में ही थे, माता की छत्रछाया से वंचित हो गए। सात वर्ष की अवस्था में एक दोहा लिखकर इन्होनें अपने पिता को सुनाया, जिससे प्रसन्न होकर पिता ने इन्हें महान कवि होने का आशीर्वाद दिया। दस वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता सदैव के लिए इस संसार से विदा हो गए। इन्होंने घर पर ही रहकर मराठी, बंगला, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद इन्होंने क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश लिया किन्तु काव्य-रचना में रुचि के कारण इनका मन अध्ययन में नहीं लगा। इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। 13 वर्ष की अवस्था में मन्नो देवी से इनका विवाह हुआ। भारतेन्दु जी युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। सन् 1868 ई० से 1900 ई० तक की अवधि में साहित्य क्षेत्र में इनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस अवधि को 'भारतेन्दु युग' कहा गया। भारतेन्दु जी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों व विसंगतियों पर व्यंग्य बाणों का प्रहार किया। कविता व नाटक के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। अत्यधिक उदार व दानशील होने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई और ये ऋणग्रस्त हो गए। हर सम्भव प्रयास के बाद भी ये ऋण-मुक्त नहीं हो पाए। साथ ही इन्हें 'क्षय रोग' ने घेर लिया, जिसके चलते हिन्दी साहित्य की यह दीप्ति 6 जनवरी, सन् 1885 ई० को सदैव के लिए बुझ गई।

हिन्दी-साहित्य जगत में भारतेन्दु जी का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना थी। ये ऐसे युग में भारतीय साहित्य गगन के इन्दु बनकर उदित हुए, जब प्राय: सभी क्षेत्रों में युगान्तकारी परिवर्तन हो रहे थे। हिन्दी-गद्य के तो ये जन्मदाता समझे जाते हैं। भारतेन्दु जी के पूर्व विभिन्न गद्य-रचनाकार गद्य के विभिन्न रूपों को अपनाए हुए थे। उस समय हिन्दी-गद्य की भाषा के दो प्रमुख रूप थे— एक में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों की अधिकता थी तथा दूसरे में उर्दू-फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था। भाषा का कोई राष्ट्रीय स्वरूप नहीं था। भारतेन्दु जी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। उस समय गद्य-साहित्य विकसित अवस्था में था; अत: भारतेन्दु जी ने बाँग्ला के नाटक 'विद्या सुन्दर' का हिन्दी में अनुवाद किया और उसमें सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करके भाषा के नवीन रूप का बीजारोपण किया। सन् 1868 ई० में इन्होंने 'कवि-वचन-सुधा' और सन् 1873 ई० में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का सम्पादन आरम्भ किया। हिन्दी-गद्य का परिष्कृत रूप सर्वप्रथम इसी पत्रिका में दृष्टिगोचर हुआ। तत्कालीन साहित्यकारों ने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सन् 1880 ई० में इन्हें 'भारतेन्दु' उपाधि से विभूषित किया।

कृतियाँ– भारतेन्दु जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

नाटक– भारतेन्दु जी ने मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है, जो इस प्रकार हैं—

(क) मौलिक– सत्य हरिश्चन्द्र, नीलदेवी, श्रीचन्द्रावली, भारत-दुर्दशा, अँधेरनगरी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, सती-प्रताप, प्रेमजोगिनी।

(ख) अनूदित– मुद्राराक्षस, रत्नावली, भारत-जननी, विद्या सुन्दर, पाखण्ड-विडम्बनम्, दुर्लभबन्धु, कर्पूरमंजरी, धनंजय विजय।

उपन्यास– पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा।

पत्र-पत्रिकाएँ (सम्पादन)– हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र मैगजीन (हरिश्चन्द्र मैगजीन का नाम आठ अंकों के बाद हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका हो गया था।), कवि-वचन-सुधा।

इतिहास व पुरातत्त्व सम्बन्धी– रामायण का समय, महाराष्ट्र देश का इतिहास, कश्मीर-कुसुम, बूँदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, चरितावली।

निबन्ध संग्रह– सुलोचना, परिहास-वंचक, मदालसा, लीलावती, दिल्ली दरबार दर्पण।

काव्य कृतियाँ– वैजयन्ती, प्रेम-सरोवर, दान-लीला, कृष्ण-चरित्र, प्रेम-मालिका, प्रेम-तरंग, प्रेमाश्रु-वर्षण, सतसई शृंगार, प्रेम-प्रलय, प्रेम-फुलवारी, भारत-वीणा, प्रेम-माधुरी।

यात्रा-वृत्तान्त– सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा।

जीवनियाँ– सूरदास, जयदेव, महात्मा मुहम्मद।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाषा-शैली का वर्णन कीजिए।

उ०– भाषा-शैली– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी-भाषा को स्थायित्व प्रदान किया। इसे जनसामान्य की भाषा बनाने के लिए इन्होंने इसमें प्रचलित तद्भव एवं लोकभाषा के शब्दों का यथासम्भव प्रयोग किया और उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों को भी इसमें स्थान दिया। लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करके इन्होंने भाषा के प्रति जनसामान्य में आकर्षण उत्पन्न कर दिया। इन्होंने मुख्य रूप से यह ध्यान रखा कि यह भाषा सबकी समझ में आए और इस भाषा में प्रत्येक प्रकार के विचारों को सुस्पष्ट एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जा सके। इस प्रकार भारतेन्दु जी के प्रयासों से हिन्दी भाषा सरल, सुबोध एवं लोकप्रिय होती चली गई। भारतेन्दु जी की गद्य शैली व्यवस्थित और सजीव है। अपने वर्णप्रधान निबन्धों एवं इतिहास ग्रन्थों में भारतेन्दु जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'दिल्ली दरबार दर्पण' की शैली वर्णनात्मक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने यात्रा संस्मरणों में विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। यह शैली कवित्वपूर्ण आभा से मण्डित है। सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि इसी शैली के उदाहरण हैं। वैष्णवता और भारतवर्ष, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है? आदि निबन्धों में भारतेन्दु जी की विचारात्मक शैली का परिचय मिलता है। भारतेन्दु जी द्वारा रचित जीवनी साहित्य व कई नाटकों में भावात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। भारत-दुर्दशा, सूरदास की जीवनी, जयदेव की जीवनी आदि भावात्मक शैली में लिखी गई रचनाएँ हैं। कहीं-कहीं इनके निबन्धों, नाटकों आदि में हास्य-व्यंगयात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं। 'अँधेरनगरी' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसी इनकी हास्य-व्यंग्यात्मक शैली की रचनाएँ हैं।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न—

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) आज बड़े ..... समय खौवैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा लिखित 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' नामक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग– इस गद्यांश में लेखक ने भारतीयों की उन्नति में प्रमुख बाधा, आलस्य की ओर संकेत करते हुए यह प्रेरणा दी है कि मूल रूप से समर्थ भारतीय यदि नेतृत्व के गुण तथा परिश्रम को अपना लें तो वे विश्व के किसी भी देश से पिछड़े नहीं रहेंगे।

व्याख्या– इस गद्यांश में लेखक ने बलिया के ददरी मेले में अपार जनसमूह को उत्साह के साथ देखकर उनको होने वाले हर्ष तथा भारतवासियों की स्थिति के बारे में विचार व्यक्त किए हैं। भारतेन्दु जी कहते हैं कि यह भारत का महान् दुर्भाग्य है कि यहाँ के निवासी (भारतीय) अत्यन्त आलसी हैं। इस आलसी स्वभाव के कारण ही हम उन्नति नहीं कर पा रहे हैं। यही हमारे पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है। वास्तव में भारतीयों को रेलगाड़ी के डिब्बों की संज्ञा दी जा सकती है। जिस प्रकार रेलगाड़ी में अच्छे-से-अच्छे और मूल्यवान डिब्बे लगे रहने पर भी वे इंजन के अभाव में एक ही स्थान पर खड़े रहते हैं, उनमें गति उत्पन्न नहीं होती; उसी प्रकार भारतवासी विद्वान् भी हैं और शक्तिशाली भी, परन्तु उन्हें सही नेतृत्व नहीं मिलता है। यदि उन्हें सही नेतृत्व मिल जाए तो वे बड़े-से-बड़ा कार्य कर सकते हैं। भारतीयों को इस बात की आवश्यकता है कि कोई उन्हें उनके बल और पौरुष का स्मरण कराए और उनसे कहे कि कर्त्तव्य-मार्ग पर आगे बढ़ों, मौन साधे क्यों खड़े हुए हो? इसके बाद उन्हें अपने बल और शक्ति का स्मरण उसी प्रकार हो आएगा, जिस प्रकार जाम्बवान् द्वारा याद दिलाए जाने पर हनुमान जी को अपने बल और शक्ति का स्मरण हो आया था। समस्या तो सही नेतृत्व की है। इसलिए भारतीयों को ऐसे नेता की आवश्यकता है, जो उनके बल और पौरुष का स्मरण कराकर उन्हें कर्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर करें। आज भारत में राजा, नवाब, रईस तथा अफसर लोग अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह भली प्रकार से नहीं कर रहे हैं। राजा-महाराजा को तो पूजा-पाठ, भोजन तथा भोग-विलास से समय ही नहीं मिलता जो वे अपने कर्तव्यों का पालन करें। सरकारी अफसरों को तो अनेकों सरकारी कार्य होते हैं, वे अपना समय थियेटरों आदि में व्यतीत करते हैं, तथा जो समय बचता है, उसमें वे सोचते है कि हम गन्दे लोगों के साथ अपना अनमोल स्वयं क्यों नष्ट करें।

साहित्यिक सौन्दर्य- (1) लेखक ने –'श्रीरामचरितमानस' की पंक्ति का '**का चुप साधि रहा बलवाना**' का बड़ा ही सटीक प्रयोग किया है। **(2)** भारतवासियों की उपमा रेलगाड़ी के डिब्बों से देकर उनकी स्थिति की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है। **(3)** इन पंक्तियों में सरल एवं सुबोध भाषा का प्रयोग कर देश-प्रेम की भावना से परिपूर्ण अभिव्यक्ति की गई है। **(4) भाषा–** अन्य भाषाओं के शब्दों से युक्त, सरल, प्रवाहपूर्ण एवं मुहावरेदार। **(5) शैली–** उद्धरण। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) शब्द–** शक्ति, अभिधा।

(ख) हम नहीं ..... घुड़दौड़ हो रही है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भारतेन्दु जी ने लिखा है कि भारतवासी आलसी हो गए हैं। इस कारण भारत प्रगति की दौड़ में पिछड़ता जा रहा है। भारतवासियों ने अपने सुखमय और स्वर्णिम अतीत को भुला दिया है।

व्याख्या– भारतेन्दु जी कहते हैं कि मैं तो इस बात पर आश्चर्यचकित हूँ कि भारतवासियों को अपनी वर्तमान दुर्दशा पर लज्जा क्यों नहीं आती। प्राचीनकाल में जब भारतीयों के पास विकास के पर्याप्त साधन नहीं थे, उन्होंने अपने ज्ञान और बुद्धि के बल पर अपने जीवन को सुखमय और उन्नत बनाने का प्रयास किया था। साधनहीनता की स्थिति में भी उन्होंने नक्षत्र–विज्ञान की खोज की तथा समय की गति के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। आज विदेशों में मूल्यवान दूरवीक्षण यन्त्र बनाए गए हैं और उनके सहयोग से नक्षत्र–समूहों की गति परखी जा रही है, किन्तु भारतीयों द्वारा बनाए गए प्राचीन सिद्धान्तों में आज भी कोई परिवर्तन नहीं आया है। इसका कारण यह है कि हमारे पूर्वजों के जीवन में अकर्मण्यता नहीं थी। आज जबकि हम अंग्रेजी विद्या पढ़ रहे हैं, ज्ञान–विज्ञान पर आधारित अनेक प्रकार की पुस्तकों की रचना की जा चुकी है तथा विविध प्रकार के उपयोगी यन्त्र भी निर्मित किए गए है; ऐसी स्थिति में हम अनुपयोगी गाड़ी के समान तुच्छ हो गए हैं और हर क्षेत्र में विदेशियों पर आश्रित हैं। जबकि यह समय अग्रसर होने का है। आज के वैज्ञानिक युग में जब उन्नति की दिशा में बढ़ना आसान है। ऐसा लगता है कि जैसे उन्नति की दौड़ हो रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियाँ अतीत के गौरव का भावात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करती हैं। **(2)** लेखक ने भारतीयों के आत्मगौरव को जाग्रत करने के लिए प्रभावशाली व्यंग्य का प्रयोग किया है। **(3)** भारतीयों को कूड़ा फेंकनेवाली गाड़ी की उपमा देते हुए उनके राष्ट्रीय गौरव को जगाने का प्रयास किया गया है। **(4) भाषा–** सरल एवं प्रवाहपूर्ण। **(5) शैली–** भावात्मक एवं लाक्षणिक। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) शब्द–** शक्ति लक्षण।

(ग) अमेरिकन-अंगरेज ..... कहना चाहिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में भारतेन्दु जी ने भारतवासियों को सुझाव दिया है कि जब छोटे–छोटे देश भी अपने विकास में संलग्न हैं तब भारतवर्ष को भी अपनी उन्नति का पूरा प्रयास करना चाहिए।

व्याख्या– भारतेन्दु जी का कहना है कि इस वैज्ञानिक युग में; जबकि उन्नति की दिशा में बढ़ना बहुत आसान है; अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि प्रत्येक देश के नागरिक अपनी–अपनी उन्नति के लिए प्रयासरत हैं। सभी का यह प्रयास है कि उन्नति के शिखर पर पहले वहीं पहुँच जाए। यहाँ तक कि जापानी भी, जो कि अधिक शक्तिशाली नहीं होते, वे भी अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। ऐसी स्थिति में भी हमारे भारतवासी अपने ही स्थान पर खड़े–खड़े केवल पैरों से मिट्टी ही खोद रहे हैं। वे इन लघुकाय जापानियों को प्रगति–पथ पर बढ़ते देखकर भी लज्जित नहीं होते। भारतवासियों को यह समझना चाहिए कि ऐसे क्षणों में यदि वे एक बार पिछड़ जाएँगे तो फिर आगे नहीं बढ़ सकते। लेखक का मत है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में उन्नति के साधन इतनी सरलता से उपलब्ध हैं, जैसे वे अनायास प्राप्त वर्षा का जल हों। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो लूट का माल बिखरा पड़ा हो और हमने आँखों पर पट्टी बाँध रखी हो अथवा वर्षा हो रही हो और हमने सिर पर छाता लगा रखा हो। तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष के लोग आलस्य अथवा अज्ञानवश उन्नति के सुलभ साधनों का न तो उपयोग ही कर पा रहे हैं और न ही उन्हें उपलब्ध करा पा रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत अवतरण में भारतेन्दु जी ने कलात्मक ढंग से भारतवासियों को उनके पिछड़ेपन के लिए फटकार लगायी है। **(2) भाषा–** सरल और सुबोध। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह उत्पन्न हुआ है। **(3) शैली–** प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक।

(घ) बहुत लोग ..... व्यर्थ न जाए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने विदेशियों की तुलना में भारतवासियों के निठल्ले बैठे रहने की आदत को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि यदि भारतवासियों से कार्य करने के लिए कहा जाए तो वे कहते हैं कि हमको पेट के धन्धे के मारे छुट्टी नहीं रहती है, हम उन्नति क्या करें। तुम्हारा पेट भरा है, तुमको दूर की सूझती है। लेकिन भारतवासियों को यह जानना चाहिए कि विश्व के किसी भी देश में सभी के पेट भरे हुए नहीं होते। पेट उन्हीं के भरे होते हैं, जो कर्म करते हैं। विदेशी लोग अपने खेतों को पैदावार के लिए जोतते और बोते समय भी यह सोचते रहते हैं कि वे ऐसा क्या नया करें, जिससे इसी खेत में पिछली फसल की तुलना में दुगुनी फसल उत्पन्न हो। इसी सन्दर्भ में लेखक विदेशी कोचवानों का भी उद्धरण देते हुए कहता है कि विदेशों में गाड़ी के कोचवान भी खाली समय में अखबार पढ़ते हैं अर्थात् अपने समय का सार्थक उपयोग करते हैं, जबकि भारतवासी अपने खाली समय को आलस्य, अकर्मण्यता और बेवजह की बकवास में बिता देते हैं। विदेशी लोग अपने खाली समय में भी ऐसी बात करते हैं जो उनके देश से सम्बन्धित होती है। वे अपने क्षणमात्र समय को भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहते।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने भारतीयों में आलस्य के आधिक्य को उनकी उन्नति के मार्ग में बाधक माना है। **(2) भाषा–** सरल, स्वाभाविक एवं व्यावहारिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** तुलनात्मक एवं उद्धरणात्मक।

(ङ) जो लोग अपने ..... खोदकर फेंक दो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने देश-प्रेम की भावना से ओत प्रोत भारतीयों को देश के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए बलिदान और त्याग की प्रेरणा दी है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार मनुष्य जिस देश या समाज में जन्म लेता है, यदि उसकी उन्नति में समुचित सहयोग नहीं देता तो उसका जन्म व्यर्थ है। देश-प्रेम की भावना ही मनुष्य को बलिदान और त्याग की प्रेरणा देती है। मनुष्य जिस भूमि पर जन्म लेता है और अपना विकास करता है, उसके प्रति प्रेम की भावना का उसके जीवन में सर्वोच्च स्थान होता है। जिन मनुष्यों में राष्ट्र के प्रति विशेष अनुराग होता है, उन्हें अपना सब कुछ बलिदान करते हुए राष्ट्र के विकास में आने वाली बाधाओं को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। अपनी कमियों को दूर करते हुए राष्ट्रविरोधी षड्यन्त्रकारियों को परास्त कर दें। जो बातें देश की उन्नति में अवरोध बने उन्हें समूल नष्ट करते हुए देश को विकास के मार्ग पर अग्रसर करें।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने भारत की उन्नति के लिए देशवासियों को बलिदान और त्याग की प्रेरणा दी है। **(2)** देश के विकास में आने वाली बाधाओं को जड़ से उखाड़ने का सुझाव दिया है। **(3) भाषा–** सरल एवं प्रवाहपूर्ण। **(4) शैली–** भावात्मक।

(च) सब उन्नतियों ..... म्युनिसिपालिटी हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने सभी प्रकार की उन्नतियों के मूल में धर्म है तथा मानव जीवन में त्योहारों के महत्व को इस तथ्य द्वारा प्रकट किया है।

व्याख्या– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि यदि हमें अपने देश में किसी भी प्रकार की उन्नति करनी है तो हमारे सभी कार्य धर्म के अनुसार होने आवश्यक हैं। अतएव सबसे पहले हमें धर्म की उन्नति ही करनी होगी। यहाँ लेखक का धर्म से आशय उस आचरण से है, जो समाज अथवा राष्ट्र के कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाए। प्रत्येक क्षेत्र में जब उसी कल्याणकारी भावना को ध्यान में रखकर कार्य किया जाएगा, तब ही सभी की समान रूप से उन्नति होगी। भारतेन्दु जी ने अंग्रेजों की नीति का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि अंग्रेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली हैं इस कारण वे लगातार उन्नति करते जा रहे हैं। हमारे यहाँ धर्म की आड़ में विविध प्रकार की नीति, समाज-गठन आदि भरे हुए हैं। ये उन्नति का मार्ग प्रशस्त नहीं करते। इसलिए धर्म की उन्नति से सभी प्रकार की उन्नति संभव है। लेखक कहते हैं कि यहाँ एक दो मिसालों के बारे में सुनो। लेखक बलिया के मेले का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यह स्थान इसलिए बनाया गया है कि जिससे दूर गाँवों से आए हुए लोग जो कभी आपस में नहीं मिलते थे, एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे के सुख-दु:खों को जान सकें तथा गृहस्थी के काम में आने वाली जो चीजें इस मेले में मिलती है, उन चीजों को खरीद सकें। भारतेन्दु जी कहते हैं कि एकादशी का व्रत क्यों रखा जाता है, जिससे महीने में एक-दो व्रत करने से शरीर शुद्ध हो जाएँ। जब हम गंगाजी में नहाते है, तो पहले पानी सिर पर डालकर पैरों तक इसलिए डालते हैं, जिससे पैरों की गरमी सिर पर चढ़कर विकार उत्पन्न न कर पाएँ। दीवाली त्योहार के बहाने वर्ष में एक बार घर की सफाई हो जाती है तथा होली इस कारण मनाई जाती है जिससे इसकी अग्नि से वसंत ऋतु की बिगड़ी हुई हवा स्वच्छ हो जाएँ। लेखक कहते हैं कि ये त्योहार तुम्हारी नगरपालिका का कार्य करते हैं जो वातावरण, तथा शरीर को शुद्ध करते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने सभी प्रकार की उन्नतियों के मूल में धर्म को निहित माना है। **(2)** अंग्रेजों की उन्नति के कारण के पीछे धर्म और राजनीति का परस्पर मिलना है। **(3) भाषा–** सरल एवं प्रवाहपूर्ण। **(4) शैली–** भावात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा लिखित 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में आत्मविश्वास और दृढ़ इच्छाशक्ति खो चुके भारतीयों की तुलना रेलगाड़ी से की गई है।

व्याख्या– इस सारगर्भित सूक्तिपरक वाक्य में भारतेन्दु जी ने भारतीयों को रेलगाड़ी की संज्ञा दी है; क्योंकि जैसे रेलगाड़ी बिना इंजन के नहीं चलती, वैसे ही भारतीयों को भी प्रत्येक कार्य को पूरा करने के लिए एक कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है। वे स्वयं कुछ नहीं कर सकते। उन्हें कोई जगाने वाला, उत्साहित करने वाला या मार्ग दिखाने वाला तो मिलना ही चाहिए। भारतीयों को अपना काम स्वयं करने के लिए आत्मविश्वास और दृढ़ इच्छाशक्ति पैदा करनी ही होगी; क्योंकि काम करने की प्रेरणा हृदय की गहराइयों से ही उत्पन्न होती है।

(ख) हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में भारतेन्दु जी ने अकर्मण्यता के कारण भारतवासियों की होने वाली अवनति पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– भारतेन्दु जी कहते हैं कि बहुत पहले हमारे पूर्वजों ने बिना किसी साधन के ग्रह-नक्षत्रों के बारे में जो सूक्ष्म-अध्ययन

किए थे और निष्कर्ष निकाले थे वे ही निष्कर्ष अब विदेशों में अनेक यन्त्रों की स्थापना के बाद निकाले जा सके हैं। आज जो ज्ञान-विज्ञान पर आधारित अनेक पुस्तकें और विविध यन्त्र भी सुलभ हैं, फिर भी हम कूड़ा-करकट फेंकने की गाड़ी के समान ही प्रतीत हो रहे हैं। भारतेन्दु जी के कहने का आशय यह है कि भारतवासी व्यर्थ के सामानों को इकट्ठा करने और ढोने वाले वाहन के समान हैं, जो मौलिक रूप से कुछ भी नहीं कर रहे हैं। प्रस्तुत सूक्ति के माध्यम से लेखक ने भारतवासियों को कर्मशील बनने की प्रेरणा दी है।

(ग) जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– जापानवासियों को टट्टू की भाँति परिश्रमी बताते हुए इस सूक्ति-वाक्य से भारतीयों में आत्मगौरव को जगाने का प्रयास किया गया है।

व्याख्या– उन्नति की दौड़ में सभी देशों के नागरिक घोड़ों की भाँति तीव्रगति से दौड़ रहे हैं। जापान के निवासी शारीरिक शक्ति में अन्य देशवासियों की अपेक्षा कमजोर समझे जाते हैं, इसीलिए लेखक यहाँ जापानियों को टट्टू की संज्ञा दे रहा है। टट्टूओं की तरह दुर्बल होते हुए भी जापानी विकास के लिए निरन्तर प्रयास कर रहे है और अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुरूप आगे-ही- आगे बढ़ते जा रहे हैं। जापानी आलस्य में विश्वास नहीं करते, वे अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्ण रूप से सजग हैं तथा अपनी शारीरिक दुर्बलता को उन्नति के मार्ग में बाधा नहीं बनने देते। उन्हें देखकर भारतवासियों को अपने आलस्य और निकम्मेपन पर लज्जा आनी चाहिए। आशय यह है कि भारतीयों को जापानियों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

(घ) इंग्लैण्ड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति के काँटों को साफ किया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति के अंतर्गत प्रारंभ में इंग्लैंण्ड की निर्धनतापूर्ण स्थिति एवं उसको दूर करने हेतु वहाँ के निवासियों के कर्मठतापूर्ण प्रयासों को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या– भारतवासियों को प्रेरित करते हुए भारतेन्दु जी ने कहा है कि भारत की भाँति पहले इंग्लैण्ड जैसा विकसित देश भी निर्धन था, लेकिन उसने निर्धनता के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया। वहाँ के निवासियों ने कभी अपने आप को भाग्य के भरोसे पर नहीं छोड़ा, वरन् चुनौतियों का डटकर सामना किया। उसने अकर्मण्यता के स्थान पर कर्मशीलता को अपना लक्ष्य बनाया। उसने एक ओर अपनी भूख एवं निर्धनता को मिटाने का प्रयास किया तो दूसरी ओर अपनी उन्नति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को समाप्त करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड एक धनी, साधन संपन्न तथा उन्नत देश बना। इसी प्रकार निर्धनता का बहाना लेकर अकर्मण्य बने रहने के स्थान पर भारत को भी अपनी कर्मठता का परिचय देना चाहिए। इंग्लैण्ड का उदाहरण उसके सामने है। भारत को उससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

(ङ) सब उन्नतियों का मूल धर्म है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में धर्म के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक का कहना है कि सर्वप्रथम हमें धर्म की उन्नति करनी चाहिए; क्योंकि धर्म की उन्नति होने पर सभी प्रकार की उन्नति स्वत: होने लगती है। इसीलिए कहा गया है कि 'धर्मो रक्षति रक्षित:' अर्थात् जिस धर्म की हम रक्षा करते हैं, वही धर्म हमारी रक्षा करता है। किसी भी देश की उन्नति तभी संभव है जब उस देश के रहने वालों में धर्म के अनुसार आचरण करने की प्रवृत्ति का विकास हो। धर्म का अर्थ उस आचरण से है जो समाज अथवा राष्ट्र के कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाए।

(च) परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति के द्वारा भारतवासियों को विदेशी वस्तुओं एवं विदेशी भाषा को त्यागकर; स्वदेशी वस्तुओं तथा स्वदेशी भाषा को अपनाने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्या– भारतवासियों की निष्क्रियता और दूसरों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति पर दु:ख प्रकट करते हुए भारतेन्दु जी ने उन्हें कर्म करने तथा अपनी भाषा के माध्यम से उन्नति करने की प्रेरणा दी है; क्योंकि अपनी भाषा के अभाव में हम एक-दूसरे की भावनाओं को नहीं समझ सकते और न ही अपने विचारों का आदान-प्रदान सरलता से कर सकते है; अत: ऐसी परिस्थितियों में विकास असंभव प्रतीत होता है। भारतेन्दु जी ने कहा है कि हमें विदेशी वस्तुओं के प्रति अपना मोह त्यागना होगा और अपने देश में ही अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का निर्माण करना होगा। उन्नति के लिए अपनी भाषा का विकास भी परम आवश्यक है; क्योंकि ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषा में ही सरलता से सीखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वदेशी भाषा एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से अपने देश के प्रति सम्मान एवं गौरव की भावना का विकास तो होता है, साथ ही आत्मनिर्भरता भी आती है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न—

1. 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' पाठ का सारांश लिखिए।

उ०– प्रस्तुत निबन्ध भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के द्वारा दिसम्बर 1884 में बलिया के ददरी मेले के अवसर पर आर्य देशोपकारणी सभा में भाषण देने के लिए लिखा गया है। लेखक कहते हैं कि आज का दिन बड़ी खुशी का है, जब मैं इतने अपार जनसमूह को उत्साह के साथ एक स्थान पर एकत्र देखता हूँ। भारतेन्दु जी कहते हैं कि यह देश का बड़ा दुर्भाग्य है कि भारतवासियों में विविध गुणों तथा योग्यता होने के बाद भी, सही नेतृत्व के अभाव में वे उन्नति नहीं कर सके हैं। हमारे देश के लोगों को रेलगाड़ी की संज्ञा दी जा सकती है, जिस प्रकार रेलगाड़ी में ऊँचे किराए तथा सामान्य किराए के डिब्बे लगे रहते हैं परन्तु इंजन के अभाव में वे स्थिर खड़े रहते हैं, उसी प्रकार भारत के लोग उच्च व मध्यम श्रेणी के विद्वान, वीर एवं शक्ति सम्पन्न लोग है,परन्तु नेतृत्वहीनता के कारण वे अपनी उन्नति नहीं कर पाते। यदि कोई मार्गदर्शक भारतीयों को बल, पौरुष और ज्ञान का स्मरण दिला सके, तो वे कठिन-से-कठिन तथा बड़ा-से-बड़ा कार्य आसानी से कर सकते हैं। जिस प्रकार जाम्बवान् ने हनुमान जी को उनका बल याद दिलाया था। हिन्दुस्तानी राजा, महाराजा तथा हाकिमों को तो अपने भोग विलास से समय ही नहीं मिलता। सरकारी अफसरों को तो हजारों काम होते है जो समय बचता है उसमें वे सोचते है कि गन्दे व्यक्तियों से मिलकर व्यर्थ समय क्यों नष्ट किया जाए। आर्य जब भारत आए थे तब भी भारत की उन्नति का दायित्व राजा तथा ब्राह्मणों का था। परन्तु भारत का दुर्भाग्य इन्हीं लोगों को निकम्मेपन ने घेर रखा है। लेखक कहते हैं कि आज संपूर्ण भारतीय समाज को निकम्मेपन ने घेर रखा है और इनको अपनी इस पिछड़ी दशा पर लज्जा का अनुभव भी नहीं होता। इन्हीं के पूर्वजों ने मिट्टी की झोपड़ियों ने बैठकर पेड़-पौधों के नीचे अध्ययन कर बिना साधनों तथा यन्त्रों के केवल बाँस की नलिकाओं के द्वारा नक्षत्र-मण्डल एवं सौर-परिवार का इतना सूक्ष्म अध्ययन किया कि विदेशों में लाखों रूपए की लागत से बनने वाली दूरबीनों की मदद से किया गया अध्ययन और हमारे पूर्वजों द्वारा किया गया अध्ययन समान रूप से सत्य प्रतीत होते हैं। हमारी अकर्मण्यता हमें पीछे धकेल रही है। आज वैज्ञानिक युग में उन्नति की दिशा में बढ़ना आसान है। अमेरिका, इंग्लैण्ड फ्रांस आदि प्रत्येक देश के नागरिक अपनी-अपनी उन्नति के लिए प्रयास कर रहे हैं। सभी उन्नति के शिखर पर पहले पहुँचना चाहते हैं। यहाँ तक कि जापानी लोग भी अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में हम भारतवासी अपने स्थान पर खड़े होकर पैरों से मिट्टी खोद रहे हैं। यह उन्नति का समय है इसमें जो पीछे रह जाएगा वह कोटि उपाय करने पर भी आगे नहीं बढ़ सकेगा। ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे लूट का माल बिखरा पड़ा है और हमने आँखों पर पट्टी बाँध ली हो अथवा वर्षा हो रही है और हम छाता लगाने के कारण वर्षा का आनन्द नहीं ले पा रहे हैं।

लेखक ने भागवत् के श्लोक का उदाहरण देते हुए कहा है कि भगवान कहते हैं कि मनुष्य जन्म बड़ा कठिनता से प्राप्त होता है, उसके मिलने पर गुरु की कृपा और मेरी अनुकूलता पाकर भी जो मनुष्य इस संसार सागर के पार न जाय उसको आत्महत्यारा कहना चाहिए। ऐसी ही स्थिति इस समय हिन्दुस्तान की है।

लेखक कहता है कि यदि भरतवासियों से कार्य करने के लिए कहा जाए तो वे कहते हैं कि हमें तो पेट के धंधे के कारण छुट्टी ही नहीं मिलती, हम क्या उन्नति करें। तुम्हारा पेट भरा हुआ है इसलिए तुमको दूर की सूझती है। लेकिन भारतवासियों को जानना चाहिए कि इंग्लैंण्ड का पेट भी कभी यों ही खाली था, उसने एक हाथ से अपने पेट को भरा, तथा दूसरे हाथ से अपने उन्नति के काँटे साफ किए। विदेशी लोग अपने खेतों को जोतते तथा बीते समय भी यह सोचते है कि वे क्या नया करें, जिससे पैदावार दुगुनी हो जाए। वहाँ के गाड़ी के कोचवान भी खाली समय में अखबार पढ़कर समय का सदुपयोग करते हैं जबकि भारत अपने खाली समय को आलस्य, अकर्मण्यता और बेवजह की बकवास में बिता देते हैं। विदेशी लोग अपने क्षणमात्र समय को भी बर्बाद नहीं करना चाहते। इसके विपरीत भारत में निकम्मेपन को अमीर समझा जाता है।

आज भारत में चारों तरफ देखने पर काम न करने वाले दिखाई पड़ते हैं। जिनका कोई रोजगार नहीं है। काम नहीं है तो खर्च करने के लिए पैसे भी नहीं है। ऐसे लोगों की पंक्ति लंबी है जिनके पास काम है, मगर वे करना नहीं चाहते। किसी ने ठीक ही कहा है कि दरिद्र व्यक्ति की दशा बिलकुल वैसी ही है जैसी लज्जाहीन बहू, जो कपड़े फटे होने के कारण अपने अंगों को उनसे छुपाने का प्रयास करती है। ऐसी दशा ही हिन्दुस्तानियों की भी है। जनगणना के अनुसार यहाँ जनसंख्यवा बढ़ रही है तथा रूपया कम हो रहा है। अब बिना रूपया बढ़ाए काम नहीं चलेगा। तुम इसके लिए किसी चमत्कार की आशा छोड़कर स्वयं ही तैयार हो जाओ, कब तक स्वयं को जंगली, हूस, मूर्ख, बोदे जैसे उपनामों से पुकरावाओगे। तुम इस उन्नति की दौड़ में दौड़ों, अगर अबकी बार पीछे रह गए तो रसातल में ही पहुँच जाओगे।

अगर तुम लोग अब भी स्वयं को न सुधारों तो तुम ही रहो। तुम ऐसा सुधार करो जिससे सब तरफ उन्नति हो। जो बातें तुम्हारे मार्ग में बाधा बने उनको छोड़ दो। चाहे तुम्हें इसके लिए लोग कुछ भी कहे। जो लोग देश का हित चाहते हैं उन्हें अपने सभी प्रकार के सुख, धन और सम्मान का बलिदान करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। देश की उन्नति के लिए सबसे पहले उन बाधाओं एवं बुराईयों का पता लगाना होगा, जिनके कारण हमारा विकास अवरूद्ध हो गया है। देश की उन्नति में बाधा पहुँचाने वाले इन सभी तत्वों को नष्ट करना होगा, तभी देश की उन्नति संभव है।

यदि हमें अपने देश में किसी भी प्रकार की उन्नति करनी है तो हमारे सभी कार्य धर्म के अनुसार होने आवश्यक है। इसलिए हमें

सबसे पहले धर्म की उन्नति करनी चाहिए। भारतेन्दु जी ने अंग्रेजों की नीति का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि अंग्रेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली है। इस कारण वे लगातार उन्नति करते जा रहे हैं। हमारे यहाँ धर्म की आड़ में विविध प्रकार की नीति, समाज-गठन आदि भरे हुए हैं। ये उन्नति का मार्ग प्रशस्त नहीं करते। इसलिए धर्म की उन्नति से सभी प्रकार की उन्नति संभव है। लेखक ने त्योहारों को म्युनिसिपालिटी बताया है जिनके द्वारा घर, शरीर तथा वातावरण शुद्ध हो जाते हैं। उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया है कि होली की अग्नि से वसंत की बिगड़ी हवा स्वच्छ हो जाती है, दीवाली के बहाने घर की सफाई हो जाती है तथा एकादशी का व्रत करने से शरीर शुद्ध हो जाता है।

भारतेन्दु जी कहते हैं कि हमारे देश में प्रचलित त्योहार, व्रत, नियम, आदि समाज-धर्म है। परन्तु बदलती हुई परिस्थितियाँ और समय के अनुसार इनमें भी परिवर्तन की आवश्यकता है। हमारे पूर्वजों ने जो नियम बनाए थे, उनका आशय न समझ उन्हीं की उत्तराधिकारी पीढ़ी ने अपनी सुविधा और स्वार्थपूर्ति के लिए मनमाने नियम और धर्म बना लिए हैं। ऐसे सभी नियमों और धर्मों के पुनर्निरीक्षण की आवश्यकता है, जिससे सच्चाई की पहचान की जा सके। ऋषि-मुनियों ने नियमों और धर्मों को क्यों बनाया है इसकी हमें वैज्ञानिक खोज करनी चाहिए और उनमें से जो बातें हमारे समाज और देश के लिए उपयोगी हो उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए। जिनको छोड़ने की आवश्यकता है उन्हें छोड़ देना चाहिए। सभी जातियों के लोग ऊँच-नीच छोड़कर भाईचारे से रहे।

भारतेन्दु जी कहते हैं कि हम अपने उपभोग की सामान्य वस्तु भी स्वयं निर्मित करने का प्रयास नहीं करते। हमें अमेरिका में बनी धोती पहनते हैं, अंगा इंग्लैंड का तथा कंघी फ्रांस की प्रयोग करते हैं। छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए आत्मनिर्भर होने के लिए हमें अपने आत्मविश्वास को बढ़ाना होगा। भारतेन्दु जी भारतीयों में स्वदेशी की भावना को बल देते हुए कहते हैं कि एक बार इज्जत का ख्याल न रखने वाले एक महाशय एक महफिल में किसी के कपड़े पहनकर चले गए तथा उनके कपड़ों को पहचान लिया। इस पर भारतेन्दु जी ने दु:ख जताते हुए कहा है कि आज भारतीय इतने अकर्मण्य और परालंबी हो गए हैं कि हम दैनिक उपयोग की वस्तु का भी निर्माण नहीं कर सकते। अपने देश को स्वावलंबी राष्ट्र बनाने के लिए स्वदेशी वस्तुओं और अपनी भाषा का प्रयोग करना होगा। विदेशी भाषा और वस्तुओं पर अपनी निर्भरता को समाप्त करना होगा। तभी भारतवर्ष की उन्नति संभव है।

2. भारतेन्दु के अनुसार देश किस प्रकार उन्नति कर सकता है?

उ०– भारतेन्दु जी के अनुसार अपने दैनिक उपभोग की वस्तुओं का निर्माण स्वयं करके, अपने लड़कों को शिक्षा, रोजगार, कारीगरी सिखाकर देश की संपदा को देश में रखकर, जो विभिन्न मार्गों के द्वारा विदेशों को जाती है, से देश की उन्नति संभव है। अपने धर्म की उन्नति करके सब प्रकार की उन्नति हो सकती है। विदेशी वस्तु तथा विदेशी वस्तु का निषेध करके तथा राष्ट्र करके तथा राष्ट्र को स्वावलंबी बनाकर हमारी उन्नति निश्चित है।

3. भारतेन्दु ने इंग्लैण्ड की उन्नति का क्या कारण बताया?

उ०– लेखक कहते हैं कि इंग्लैण्ड भी कभी खाली पेट अर्थात् उन्नत नहीं था। उसने अपने प्रयासों से अपना पेट भी भरा तथा अपने उन्नति के काँटों को भी दूर किया। वहाँ के लोग अपने खेतों को पैदावार के लिए जोतते और बीते समय भी यही सोचते रहते हैं कि वे ऐसा क्या नया करें, जिससे इसी खेत में पिछली फसल की तुलना में दुगुनी फसल उत्पन्न हो। वहाँ के कोचवान भी खाली समय में अखबार पढ़ते है तथा अपने समय का सार्थक उपयोग करते हैं। वहाँ लोग खाली समय में ऐसी बात करते हैं जो उनके देश से सम्बन्धित होती है। वे अपने क्षणमात्र समय को भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहते। यही उनकी उन्नति का कारण है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

2 महाकवि माघ का प्रभात वर्णन

(आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–35 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जीवन-परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनका स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– महान साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में सन् 1864

ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० रामसहाय दुबे था। ये कान्याकुब्ज ब्राह्मण थे। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण इनका शिक्षा का क्रम टूट गया; अत: इन्होंने घर पर ही स्वाध्याय द्वारा मराठी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बँगला व गुजराती आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। आरम्भ में इन्होंने रेलवे विभाग में नौकरी की। लेकिन कुछ समय बाद सन् 1903 ई० में नौकरी छोड़कर, 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का कार्यभार सँभाल लिया। द्विवेदी जी से पहले साहित्यकार यथासम्भव साहित्य–सृजन करते रहे, उन्हें उचित दिशा–निर्देश प्राप्त नहीं हो पाता था। माँ सरस्वती के वरद् पुत्र महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा से हिन्दी साहित्य–जगत् को आलोकित किया। इन्होंने हिन्दी भाषा के परिमार्जन के लिए स्तुत्य प्रयास किए। भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी भाषा का व्याकरण पुष्ट व सशक्त बनाने के लिए, उसके शब्द–भण्डार की श्रीवृद्धि के लिए द्विवेदी जी के अथक परिश्रम के लिए सन् 1931 ई० में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने इन्हें 'आचार्य' की उपाधि प्रदान की तथा 'हिन्दी साहित्य–सम्मेलन' द्वारा इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया गया। सन् 1938 ई० में सरस्वती का यह महान सुपुत्र चिरनिद्रा में लीन हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी–साहित्य के युगप्रवर्त्तक साहित्यकारों में से एक थे। उन्हें शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का वास्तविक प्रणेता माना जाता है। उनकी विलक्षण प्रतिभा ने सन् 1900 ई० से 1922 ई० तक हिन्दी–साहित्य के व्योम को प्रकाशित रखा, जिसकी ज्योति आज भी हिन्दी–साहित्य का मार्गदर्शन कर रही है। इसी कारण 1900 ई० से 1922 ई० तक के समय को हिन्दी–साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। हिन्दी–साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

2. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कृतियों का वर्णन कीजिए।

उ०– कृतियाँ– द्विवेदी जी की रचना–सम्पदा विशाल है। इन्होंने 50 से भी अधिक ग्रन्थों तथा सैकड़ों निबन्धों की रचना की। इनकी प्रमुख कृतियॉ इस प्रकार हैं–

मौलिक कृतियाँ– नाट्यशास्त्र, हिन्दी नवरत्न, रसज्ञ–रंजन, साहित्य–सीकर, विचार–विमर्श, वाग्विलास, साहित्य–सन्दर्भ, कालिदास और उनकी कविता, कालिदास की निरंकुशता, कौटिल्य कुठार, वनिता विलास, नैषध चरित चर्चा, वैज्ञानिक कोष, साहित्यालय, विज्ञान–वार्ता आदि।

अनूदित कृतियाँ– मेघदूत, बेकन–विचारमाला, शिक्षा, स्वाधीनता, विचार–रत्नावली, कुमारसम्भव, गंगालहरी, विनय–विनोद, रघुवंश, किरातार्जुनीय, हिन्दी महाभारत, वेणी संहार, अमृत लहरी, भामिनी–विलास, कवि तथा आख्यायिका सप्तक, प्राचीन पण्डित आदि।

विविध– जल–चिकित्सा, सम्पत्तिशास्त्र, वक्तृत्व–कला आदि।

सम्पादन– 'सरस्वती' मासिक पत्रिका।

अन्य विशिष्ट रचनाएँ– अद्‌भुत आलाप, संकलन, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, अतीत–स्मृति आदि।

काव्य-संग्रह– काव्य–मंजूषा, सुमन, कवित कलाप।

3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– द्विवेदी जी हिन्दी भाषा के सच्चे आचार्य थे। ये संस्कृत भाषा के भी पण्डित थे। अपनी आरम्भिक रचनाओं में इन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया, वह निरन्तर समृद्ध व व्याकरण–सम्मत होती चली गई। हिन्दी–संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने अन्य भाषाओं के भी प्रचलित शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। द्विवेदी जी की भाषा विविधरूपिणी है। कहीं उनकी भाषा बोलचाल के बिलकुल निकट है तो कहीं शुद्ध साहित्यिक और क्लिष्ट संस्कृतमयी। द्विवेदी जी ने भाषा को प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से संस्कृत की सूक्तियों का प्रयोग तो किया ही है, साथ ही लोकोक्तियों व मुहावरों से भी अपनी भाषा का श्रृंगार किया है। वे विषय के अनुसार भाषा का प्रयोग करने में सिद्धहस्त थे। इनके आलोचनात्मक निबन्धों की भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ है। समसामायिक आलोचनाओं में मिश्रित भाषा तथा गम्भीर व विवेचनात्मक निबन्धों में शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग द्विवेदी जी ने किया है। इनके भावात्मक निबन्धों की भाषा काव्यात्मक एवं आलंकारिक है।

इन्होंने भावात्मक शैली में अनेक निबन्ध लिखे हैं, जिनमें अनुप्रास की छटा व कोमलकान्त पदावली का प्रयोग दृष्टिपथ में आता है। द्विवेदी जी की विचारात्मक शैली में तत्समप्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है। इस शैली में मुहावरों व हास्य–व्यंग्यों का प्रयोग कम हुआ है। इनके साहित्यिक निबन्धों में गवेषणात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इस शैली के निबन्धों में अपेक्षाकृत अधिक गाम्भीर्य है और उर्दु के शब्दों का अभाव है। अपने निबन्धों के बीच–बीच में द्विवेदी जी ने बड़ी संख्या में वर्णनात्मक शैली में निबन्ध लिखे हैं। आत्मकथात्मक एवं कथात्मक निबन्ध भी इसी शैली में लिखे गए हैं; यथा– एक हिसाबी कुत्ता, दण्डदेव का आत्मनिवेदन, हंस–सन्देश आदि। सामाजिक कुरीतियों पर चोट करने के लिए द्विवेदी जी ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) पूर्व-दिशारूपिणी ..... लाल भी हैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' द्वारा लिखित 'महाकवि माघ का

प्रभात वर्णन' नामक निबंध से उद्धृत है।

प्रसंग– इस गद्यावतरण में आचार्य द्विवेदी जी ने प्रकृति का मानवीकरण करते हुए प्रभातकाल का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कठिन विषय को बोधगम्य शैली में प्रस्तुत करने वाले द्विवेदी जी ने जीवन के दो विपरीत पक्षों को, सूर्योदय तथा चन्द्रमा के अस्त होने की घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– द्विवेदी जी कहते हैं कि प्रात:काल में पूर्व दिशारूपी नायिका प्रभात की लालिमा से रँग जाती है, तब ऐसा लगता है कि वह अनुरागवती है। अनुराग के प्रतीक लाल रंग (प्रभात की लाली) से उसके मुख पर नया तेज दिखाई देता है। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि वह हँस रही है। पूर्व दिशा की भाँति ही लेखक ने पश्चिम दिशा को भी एक नायिका के रूप में चित्रित किया है तथा पूर्व दिशारूपी स्त्री के मन की प्रतिक्रिया दर्शायी है कि उसके मन में नारी-सुलभ ईर्ष्या जाग गयी है। चन्द्रमा के तेज के कम होने और उसके पतित होने पर उसके मुख पर जो मुसकान आयी है, उसमें उसके मन की ईर्ष्या ही प्रकट हुई है। चन्द्रमा की इस दीन-हीन स्थिति के विषय में पूर्व दिशारूपी नायिका सोच रही है कि यह चन्द्रमा जब तक मेरे साथ था, तब तक उदित भी हो रहा था और उसका प्रकाश भी खूब फैल रहा था। उसे उन्नति के साथ-साथ सुयश भी प्राप्त था, किन्तु रसिकता और चरित्रहीनता ने उसके विवेक को इतना कुण्ठित कर दिया है कि वह अपनी मर्यादा भूलकर पश्चिम दिशारूपी दूसरी नायिका से प्रेम करने लगा है। मुझे त्यागकर दूसरी स्त्री के पास जाते ही वह कान्तिहीन हो गया है। चन्द्रमा को उसके किए का फल प्राप्त हो गया है, यह सोचकर पूर्व दिशारूपी स्त्री मुसकरा रही है, किन्तु चन्द्रमा को पूर्व दिशा की इस व्यंग्यपूर्ण हँसी की कोई परवाह नहीं है। वह पश्चिम दिशारूपी स्त्री की रसिकता में ही निमग्न है। चन्द्रमा के अस्त होते समय उसका बिंब लाल रंग का हो गया है, परन्तु उसकी किरणें अभी भी कमल की नाल के टुकड़ों की भाँति सफेद है। जो बिंब की ललाईपन के कारण कुछ-कुछ लाल सी प्रतीत होकर मंत्रमुग्ध कर रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– प्रवाहपूर्ण एवं अलंकृत साहित्यिक हिन्दी। **(2) शैली–** चित्रात्मक एवं अलंकृत। **(3) अलंकार–** मानवीकरण। **(4)** पूर्व दिशा में नारी-सुलभ ईर्ष्या भाव तथा चन्द्रमा में रसिकता का गुण व्यंजित है। **(5)** प्रभातकालीन सौन्दर्य का स्वाभाविक अंकन हुआ है। **(6)** मनुष्यमात्र को प्रकृति से बहुत कुछ सीखने की प्रेरणा दी गई है।

(ख) जब कमल ..... प्राप्त हो रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने प्रात:काल के समय के विरोधाभासपूर्ण दृश्य का वर्णन किया है।

व्याख्या– प्रात:काल में सूर्य के उदित होने पर संसार में विरोधाभासपूर्ण दृश्य दिखाई देता है। दैव अर्थात् भाग्य की चेष्टाएँ किसी के लिए सुखकर हैं तो किसी के लिए दु:खदायी भी। इसी विरोधाभास को लक्षित करते हुए लेखक कहता है कि जब सूर्य उदित होता है तो सरोवरों में कमल खिलते हैं, जो सरोवरों की सुन्दरता को बढ़ाते हैं, लेकिन दूसरी तरफ कुमुद की शोभा को उदित सूर्य हर लेता है। जब कुमुद शोभित होते हैं अर्थात् जब सूर्य अस्ताचल की ओर जाता है अर्थात् अस्त होता है तब कुमुदों की शोभा लौट आती है और कमल शोभाहीन हो जाते हैं। सूर्य के उदित होने अथवा चन्द्रमा के अस्त होने पर, चन्द्रमा के उदित होने अथवा सूर्य के अस्त होने पर कमल और कुमुद की दशा समान नहीं रहती। एक को सुख की अनुभूति होती है तो दूसरे को दु:ख की। लेकिन प्रात:काल के समय, कमल और कुमद समान दशा में रहते हैं। सूर्य उदित होने पर कुमुद बंद होने को होता है लेकिन पूर्ण रूप से बंद नहीं होता है। कमल खिलने को है परन्तु अधखिला है। प्रात:काल में एक की शोभा आधी रह जाती है और दूसरे को आधी प्राप्त होती है। भ्रमर प्रसन्नतापूर्वक दोनों पर ही मँडरा रहे हैं। मानो खुशी में दोनों को प्रसन्न करने के लिए ही उनके गीत गा रहे हैं। इसी कारण इस समय कुकुद और कमल दोनों ही समान हैं। तात्पर्य यह है कि प्रकृति की कोई भी चेष्टा सभी के लिए समान रूप से सुखकारक अथवा दु:खदायी नहीं होती।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रकृति की एक ही चेष्टा से किसी को सुख मिलता है तो किसी को दु:ख। **(2)** लेखक ने सन्देश दिया है कि यह जगत् सुख-दु:ख का समन्वित रूप है। **(3) भाषा–** शुद्ध परिमार्जित साहित्यिक हिन्दी। **(4) शैली–** भावात्मक।

(ग) अंधकार के ..... आँखें जानिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस अवतरण में लेखक ने महाकवि माघ द्वारा वर्णित प्रातःकालीन छटा का मनोहारी वर्णन किया है। यहाँ चन्द्रमा के अस्त होने एवं सूर्योदय से पूर्व के दृश्य का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– अंधकार का विनाश करने वाले सूर्यदेव के उदित होने से पूर्व ही आकाश में सर्वत्र लालिमा छा गई है और अंधकार भयभीत होकर भागने लगा है। सूर्योदय से पूर्व ही उनका सारथि अरुण उपस्थित हो गया है और उसी ने जगत् के सम्पूर्ण अंधकार को समाप्त कर दिया है। अपनी बात की व्याख्या करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि शक्तिशाली, तेजस्वी और वीर पुरुषों के सेवक भी पराक्रमी, शक्तिशाली और वीर होते हैं। अनेक बार सूर्य के सारथि अरुण के समान; वे अपने स्वामियों को कष्ट न देकर उनके बहुत-से काम स्वयं ही कर देते हैं तथा उनके विरोधियों को भी वे स्वयं ही समाप्त कर डालते हैं। इसी

प्रकार सूर्य के आगमन से पूर्व ही उसके सारथि अरुण ने भी सम्पूर्ण अंधकार को पराजित कर दिया है। अंधकार के पराजित होते ही असहाय रात्रि पर मानो विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा। ऐसी स्थिति में वह एक पल के लिए भी ठहर न सकी और असहाय होकर पलायन करने लगी। अब केवल प्रात:कालीन संध्या रह गई। जब सूर्य उदित होता है तथा रात का अन्त होता है। जब लाल कमल खिलते हैं, इन कमलों को ही आप छोटी आयु वाली पुत्री के हाथ-पैर समझ लीजिए तथा नील कमलों को इसके काजल लगे नयम समझ लीजिए, जो इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) यहाँ कवि ने महान् विभूतियों और उनके सेवकों की शक्ति का सजीव और काव्यात्मक चित्रण किया है। **(2)** लेखक ने प्रकृति का मानवीकरण करके प्रातःकाल की शोभा में चार चाँद लगा दिए हैं। **(3)** प्रकाश से डरकर रात्रि के भागने का चित्रण, लेखक की अनोखी कल्पना है। **(4) भाषा–** संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक खड़ीबोली। **(5) शैली–** आलंकारिक एवं भावात्मक।

(घ) अंधकार गया ..... खींच रही हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में सहृदय साहित्यकार एवं अद्‌भुत कल्पना के धनी लेखक ने प्रात:काल की सुनहरी धूप को प्रचण्ड बड़वाग्नि के रूप में चित्रित करके, उसका मोहक एवं आलंकारिक वर्णन किया है।

व्याख्या– माघ कवि द्वारा वर्णित प्रभातकाल के सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि अरुणोदय होते ही अंधकार समूल नष्ट हो गया। अंधकार के न रहने पर रात्रि भी मैदान छोड़कर भाग गई। रात और दिन के बीच की प्रात:कालीन संध्या भी चली गई। ये सभी अंधकार के पक्षधर थे। सूर्य के स्वामिभक्त सेवक अरुण ने जब इन सबको मार भगाया तब भगवान् दिनकर ने अपने उदित होने की तैयारी की। हाथों में वज्र धारण करने वाले देवराज इन्द्र की पूर्व दिशा में, सूर्य के तेज के रूप में सुनहरी किरणें बिखर गई। सूर्य के उदित होने से सम्पूर्ण वातावरण मनमोहक हो गया और समस्त दृश्य अद्‌भुत दिखाई देने लगा। उन लाल-पीली किरणों को देखकर ऐसा लगता था, मानो समुद्र के अन्दर रहने वाली बड़वाग्नि ने सारे समुद्र को जला दिया है और अब वह तीनों लोकों को जलाने के उद्देश्य से समुद्र के ऊपर उठ आई है। तात्पर्य यह है कि सूर्य के उदित होने से पहले, पूर्व दिशा का क्षितिज गहरे लाल रंग से अनुरंजित हो गया है।

प्रभातकालीन सौन्दर्य की व्याख्या को और अधिक विस्तार देते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि अब धीरे-धीरे सूर्य का बिंब क्षितिज पर दिखाई देने लगा है। सूर्य का वह बिंब नीले स्वच्छ आकाश में ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह कोई बहुत बड़ा घड़ा हो, जिसे दिशारूपी वधुएँ पूरे प्रयास से आकाशरूपी सागर के अन्दर से खींच रही हों।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) युद्ध में विजय के क्षणों का उल्लास व्यंजित है। **(2)** सूर्योदय से पूर्व लालिमा से रँगी पूर्व दिशा की शोभा का मनोहारी वर्णन कर लेखक ने अपनी अपूर्व कल्पना-शक्ति का परिचय प्रस्तुत किया है। **(3) भाषा–** अलंकृत एवं परिष्कृत है, किन्तु 'अजीब' और 'इरादा' जैसे उर्दू शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। **(3) शैली–** आलंकारिक, काव्यात्मक एवं भावात्मक। **(4) अलंकार–** रूपक और उत्प्रेक्षा। **(5) शब्द शक्ति–** लक्षणा।

(ङ) दिगंगनाओं के द्वारा ..... हो सकता है?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में प्रात:काल उदित होते सूर्य की ललिमा का वर्णन करते हुए लेखक ने सूर्य के इतना लाल होने की अद्‌भुत कल्पना की है।

व्याख्या– सूर्योदय की कल्पना करता हुआ लेखक कहता है कि लगता है, दिशारूपी वधुओं ने मिलकर किसी तरह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उसे समुद्र की अपार जलराशि से खींचकर बाहर निकाला है। कल सायंकाल वह समुद्र में डूब गया था; अत: दिशारूपी वधुओं ने उसकी रक्षा करने के लिए उसे जल से निकालकर बचाने का निश्चय किया और वे सभी मिलकर उसे समुद्र से बाहर निकालने के लिए प्रयत्नशील हो गई। सारी रात्रि के निरंतर और कठिन प्रयासों से उसे खींचकर बाहर निकाला है। समुद्र से बाहर निकालते समय सूर्य का बिंब अत्यधिक चमकीला और लाल दिखाई दे रहा है। क्या कभी किसी ने उसके इस रंग-रूप के विषय में जानने का प्रयास किया है कि वह ऐसा क्यों? इस सन्दर्भ में लेखक अपने विचार व्यक्त करता हुआ कहता है कि मुझे तो ऐसा लगता है कि जब सारी रात यह सूर्य समुद्र के जल में डूबा रहा तो समुद्र की अग्नि ने इसे अपना ताप देकर खूब दहकाया, जिस कारण यह तपकर इतना लाल हो गया, मानो खैर की जलती हुई लकड़ी का कोयला (अंगार) दहक रहा हो। मुझे इसके अलावा सूर्य के इतना लाल चमकीला होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) बाडवाग्नि ने सूर्य को दहकाकर लाल और चमकीला बना दिया है। **(2)** सम्पूर्ण अवतरण में उपमा और रूपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। **(3) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक एवं आलंकारिक। **(4) शैली–** काव्यात्मक, वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक।

(च) उदयाचल के शिखर ..... आकाश में आ गया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में बाल सूर्य के उदित होने, कमलिनियों के खिलने, पक्षियों के चहचहाने एवं सूर्य के आकाश में पहुँचने का मनोहारी और कलात्मक वर्णन हुआ है।

व्याख्या– आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि उदयाचल की चोटी पर सूर्य अभी-अभी उदित हुआ है तथा उदयाचलरूपी आँगन में बहुत धीरे-धीरे ऊपर आकाश की ओर जा रहा है। उसे देखकर ऐसा आभास होता है कि मानो कोई छोटा बालक घुटनों और हाथों के सहारे घर के आँगन में खेलता हुआ चल रहा है। बाल सूर्य की क्रीड़ा को देखकर कमलिनीरूपी स्त्रियाँ विकसित हो गई। जैसे छोटे बालक को आँगन में खेलते देखकर स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से प्रसन्न हो जाती हैं; वैसे ही प्रात:काल में सूर्य का दर्शन कर कमलिनियाँ खिलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हैं। यह सब देखकर आकाश का हृदय उसी तरह वात्सल्य से भर आया, जिस प्रकार बाल-क्रीड़ा देखकर माँ का हृदय भर आता है। भोर होते ही पक्षियों का कलरव सुनकर ऐसा लगता है, जैसे कोई माँ अपने शिशु को अपने पास बुला रही हो। यहाँ आकाश माता के रूप में, सूर्य शिशु के रूप में तथा पक्षियों का कलरव माँ की पुकार के रूप में व्यंजित है। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अन्तरिक्षरूपी माता पक्षियों के चहचहाने के बहाने मानो अपने सूर्यरूपी शिशु को 'आ बेटा आ' कहती हुई हाथ फैलाकर गोद में उठाना चाहती हो। अन्तरिक्ष-माता को प्यार से बुलाते देखकर बाल सूर्य भी मानो अपने किरणरूपी कोमल हाथ फैलाकर, आकाशरूपी माता की गोद में कूदकर जा पहुँचा अर्थात् सूर्य कुछ ही समय में आकाश के मध्य में जा पहुँचा।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने सूर्य के उदित होने के दृश्य को घुटनों के बल चलने वाले शिशु के रूपक द्वारा प्रकट किया है। **(2)** यहाँ पक्षियों के कूजने को माता की प्रेम-भरी पुकार कहकर सजीवता प्रदान की गई है। (3) यहाँ पर बाल सूर्य, कमलिनी, आकाश और पक्षियों का मानवीकरण किया गया है। **(4) भाषा–** प्रवाहमयी साहित्यिक खड़ी बोली। **(5) शैली–** आलंकारिक, चित्रात्मक और काव्यात्मक। **(6) अलंकार–** मानवीकरण, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपहुति आदि।

(छ) आकाश में सूर्य के ..... लाल हो गया हो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में प्रात:कालीन सूर्य की लाल किरणों के नदियों के जल में प्रतिबिंबित होने के परिणामस्वरूप नदियों के लाल हुए जल की शोभा का आलंकारिक वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या– उदयांचल पर उदित होने के पश्चात् सूर्य जैसे ही आकाश में थोड़ा ऊपर उठा तो उसकी लाल-लाल किरणें नदियों के जल पर पड़ने लगी। इसके परिणामस्वरूप नदियों ने एक अलग ही अद्‌भुत रूप धारण कर लिया। नदियों के दोनों तटों के मध्य बहती जलधारा सूर्य की लाल-किरणों के प्रभाव से मदिरा की धारा के रूप में परिवर्तित हो गई। अर्थात् नदियों का जल पक्की मदिरा के रंग के समान लालिमायुक्त हो गया अभी कुछ समय पहले तक जबकि सूर्य उगा नहीं था, सभी दिशाओं में अन्धकार इस प्रकार छाया हुआ था, मानो अन्धकार की घटा के रूप मे हाथियों का दल अड़ा खड़ा है। सूर्य ने उदय होते ही मानो अपनी किरणोंरूपी बाणों से उन हाथियों के समूह को मार डाला हो। बाण लगने के परिणामस्वरूप हाथियों के घावों से निकला हुआ रक्त इन नदियों के जल में आकर मिल रहा हो और उसे लाल बना रहा हो।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) सूर्य की किरणों के संपर्क के परिणामस्वरूप नदियों के जल के लाल रंग का मनोहारी चित्रण हुआ है। **(2)** विलक्षण रूप धारण करने में नदियों का मानवीकरण किया गया है। **(3)** नदियों के जल में हाथियों के रक्त के मिलने की कल्पना करके कवि ने वर्णन में स्वाभाविकता और तार्किकता का समावेश कर दिया है। **(4) भाषा–** आलंकारिक एवं साहित्यिक होने के साथ-साथ अत्यन्त सरल है। **(5) शैली–** चित्रात्मक। **(6) अलंकार–** रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षा।

(ज) सूर्योदय होते ही ..... कर डालते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस अवतरण में सूर्य की तेजस्विता के माध्यम से प्रतापी पुरुषों के गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– सूर्य के उदय होते ही अंधकार डरकर भाग खड़ा होता है। वह अपने प्रबल शत्रु सूर्य से बचने के लिए पर्वतों की गुफाओं, घरों के कोनों और कोठरियों के भीतर जाकर छिप जाता है, किन्तु सूर्य उसे वहाँ भी चैन से नहीं रहने देता। यद्यपि सूर्य अंधकार से करोड़ों मील दूर आकाश में स्थित होता है, तथापि प्रबल तेज से युक्त उसकी किरणें अंधकार को उन गुफाओं, घरों और कोठरियों के भीतर से बाहर निकालकर उसका नामो-निशान मिटा देने को तत्पर रहती हैं। ऐसा हो भी क्यों न; क्योंकि तेजस्वी महापुरुषों के शत्रु उनसे चाहे कितनी ही दूरी पर स्थित क्यों न हों, वे तेजस्वियों की लम्बी बाँहों की पकड़ से नहीं बच सकते। तात्पर्य यह है कि सूर्य का शत्रु अंधकार चाहे घर के अंदर छिपे, अथवा कन्दराओं में, पर सूर्य उसे अपनी किरणरूपी लंबी बाँहों से वहीं नष्ट कर देने में समर्थ होता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने इस शाश्वत सत्य को उजागर किया है कि तेजस्वियों की लंबी बाँहों की पकड़ से बच पाना, उनके शत्रुओं के लिए भी संभव नहीं होता। **(2) भाषा–** संस्कृतनिष्ठ, शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** कवित्वपूर्ण सूक्ति शैली।

(झ) सूर्य और चन्द्रमा, ... काना हो गया है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने महाकवि माघ के प्रभात वर्णन की सुन्दर व्याख्या करते हुए सूर्योदय के समय का अनुपम चित्रण किया है। इस समय चन्द्रमा धूमिल और निस्तेज होकर पश्चिम में अस्त हो रहा है और सूर्य सहस्रों किरणों के साथ अपनी आभा बिखेर रहा है।

व्याख्या– प्रात:कालीन सौन्दर्य का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि प्रात:काल जब सूर्य अपनी सहस्रों किरणों की चमक बिखेरते हुए आसमान में ऊपर उठता है, तभी चन्द्रमा निस्तेज एवं किरणहीन होकर पश्चिम के आकाश में धूमिल हो चुका होता है; क्योंकि शक्तिशाली, तेजस्वी और वीर पुरुष के समक्ष सामान्य व्यक्ति प्रभावहीन हो जाता है। लेखक प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा मानो आकाश की दो आँखें हैं। उसकी सूर्यरूपी एक आँख तेजयुक्त तथा चन्द्ररूपी दूसरी आँख निस्तेज हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाश में कानेपन का विकास उत्पन्न हो गया है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण करते हुए लेखक द्वारा सूर्य और चन्द्रमा को आकाश की दो आँखों के रूप में वर्णित किया गया है। यह वर्णन उनकी विलक्षण कल्पना-शक्ति का परिचायक है। **(2) भाषा–** परिमार्जित, आलंकारिक एवं साहित्यिक। **(3) शैली–** भावात्मक।

(ञ) कुमदिनियों ..... को रुलाता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इन पंक्तियों में सूर्योदय के समय प्रकृति की विरोधाभासपूर्ण स्थिति का चित्रण किया गया है। लेखक ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सूर्य के उदित होते ही संसार के अधिकांश प्राणियों के हृदय में नवजीवन का संचार हो जाता है, परन्तु वहीं दूसरी ओर चन्द्रमा का अस्त होना और सूर्य का उदित होना; कुमुदिनी और उल्लुओं के लिए दु:खदायी सिद्ध होता है।

व्याख्या– प्रात:काल सूर्य के उदित होते ही अनेक विरोधाभासपूर्ण दृश्यगोचर होते हैं। चन्द्रमा के अस्त होने और सूर्य के उदित होने का कुमुदिनियों और उल्लुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि कुमुदिनी का पुष्प रात्रि में ही खिलता है। चन्द्रमा के अस्त होते ही वह कान्तिहीन होकर मुरझा जाता है। इसी प्रकार उल्लू भी रात्रि के समय चन्द्रमा का प्रकाश में ही देखने में समर्थ होते हैं, सूर्य का आगमन होते ही उन्हें दिखाई देना बन्द हो जाता है और वे असहाय होकर चुपचाप अंधकारयुक्त निर्जन स्थान पर जाकर बैठ जाते हैं। इस प्रकार सूर्योदय का समय कुमुदिनी और उल्लुओं के लिए कष्टदायी सिद्ध होता है। इसके विपरीत सरोवर में खिलने वाले कमल-समूह और चकवा-चकवी सूर्य के उदित होते ही हर्ष-विभोर हो जाते हैं। सूर्य का दर्शन करते ही कमल के पुष्प पूर्ण शोभायमान् होकर खिल उठते हैं। इसी प्रकार रात्रि होते ही चकवा-चकवी एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और वियोग से व्याकुल होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रात:काल होते ही उनका पुन: मिलन हो जाता है। इस प्रकार सूर्य का आगमन कुमुदिनी और उल्लुओं के लिए दु:खदायी सिद्ध होता है तो कमल के पुष्पों और चकवा-चकवी के लिए सुखदायी। इसी प्रकार एक उदय होता है तो दूसरा अस्त, अर्थात् सूर्य उदित होता है, जबकि चन्द्रमा अस्त हो जाता है। लेखक कहता है कि क्रूर विधाता की इन विरोधाभासपूर्ण चेष्टाओं के प्रभाव को शब्दिक रूप में व्यक्त कर पाने का साहस नहीं हो पाता। उसकी लीला अत्यन्त विचित्र है। वह एक ही समय में किसी को हर्ष-विभोर करता है तो किसी को शोकमग्न करके रोने के लिए विवश कर देता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने प्रकृति के विरोधासपूर्ण दृश्यों का प्रभावपूर्ण चित्रण करते हए स्पष्ट किया है कि प्रकृति के एक ही क्रियाकलाप से किसी को सुख प्राप्त होता है तो किसी को दु:ख। **(2) भाषा–** परिष्कृत, आलंकारिक, प्रतीकात्मक एवं प्रवाहमयी। **(3) शैली–** भावात्मक, काव्यात्मक एवं चित्रात्मक।

(ट) महामहिम ..... मौज कर रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– सूर्य के उदय होते ही उसे शत्रु अर्थात अंधकार, तारागण और चन्द्रमा आदि दिखाई नहीं दे रहे हैं। कुमुदिनियों का समूह भी कान्तिहीन हो गया है तथा अब सूर्य अपने पूर्ण तेज के साथ आकाशमण्डल में चमक रहा है।

व्याख्या– सूर्य की भगवान् विष्णु से तुलना करते हुए लेखक ने कहा है कि सृष्टि के अन्त में प्रलय होती है। भगवान विष्णु अचानक ही यह प्रलय कर देते हैं। प्रलय के कारण सारी सृष्टि नष्ट हो जाती है। चारों ओर जल-ही-जल दिखाई देता है। प्रलयकाल में सृष्टि का कोई भी प्राणी जीवित नहीं रहता; केवल आकाश और जल शेष रह जाते हैं। ऐसे प्रजलय काल में भगवान विष्णु अकेले ही अपनी प्रिया लक्ष्मी के साथ क्षीरसागर में जाकर विश्राम करते हैं। ठीक उसी प्रकार भगवान भास्कर (सूर्य) भी क्षणभर में रात्रि और उसके सहायकों अंधकार, तारागण, चन्द्रमा आदि का संहार करके अपने पत्नी शोभा के साथ आकाशरूपी क्षीरसागर में विश्राम करते हुए प्रतीत हो रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** यहाँ सूर्य को भगवान् विष्णु, सूर्य की आभा को लक्ष्मी और आकाश को क्षीरसागर के समान बताया गया है। **(2)** लेखक ने सम्पूर्ण दृश्य का पूरा बिंब ही हमारे समक्ष उपस्थित कर दिया है। **(3) भाषा–** संस्कृतनिष्ठ, आलंकारिक और परिमार्जित खड़ी बाली। **(4) शैली–** भावात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) जो प्रतापी पुरुष अपने तेज से शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं, उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' द्वारा लिखित 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' नामक निबंध में अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सूर्योदय से पूर्व का चित्रण करते हुए सूर्य की तुलना वीरों से की गई है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि तेजस्वी पुरुषों के सेवक भी प्रतापी और तेजस्वी होते हैं।

व्याख्या– द्विवेदी जी कल्पना करते हैं कि सूर्यदेव के उदित होने से पूर्व उनका सारथि अरुण उपस्थित हो गया है और उसने जगत् के सम्पूर्ण अंधकार को समाप्त कर दिया है। अपनी बात का समर्थन करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि शक्तिशाली, तेजस्वी और वीर पुरुषों में उनका प्रभाव देखने को मिलता है। अनेक बार वे अपने स्वामियों को कष्ट न देकर, उनके बहुत-से काम स्वयं ही कर देते हैं। उनके विरोधियों को भी वे स्वयं ही समाप्त कर डालते हैं। इसी प्रकार सूर्य के आगमन से पूर्व उनके सारथि (सेवक) अरुण ने सम्पूर्ण अंधकार को पराजित कर दिया है।

(ख) सूर्यदेव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ के लायक है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में भगवान् सूर्य की उदार हृदयता और न्यायप्रियता की प्रशंसा की गई है।

व्याख्या– महावीर प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि सूर्य भगवान् अत्यधिक उदार हृदय वाले और न्यायप्रिय हैं। इसके लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए। उनके मन में पक्षपात की भावना जरा भी नहीं है। यदि वे किसी धनिक के विशाल आवास पर अपनी किरणें बिखेरते हैं तो अपनी वैसी ही किरणें वे किसी धनहीन के झोंपड़े पर भी फैलाते हैं। उनकी इस क्रिया में तनिक भी कमी-वेशी नहीं होती। वे सभी का हित-साधन करते हैं और अपने आचरण से सभी को समान रूप से लाभान्वित करते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ''परोपकाराय सतां विभूतय:''।

(ग) उदारशील सज्जन अपने चारूचरितों से अपने ही उदय देश को नहीं, अन्य देशों को भी आप्यायित करते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति-वाक्य में सज्जनों की उदारता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– इस सारगर्भित एवं प्रेरणाप्रद सूक्ति-वाक्य में विद्वान् लेखक ने कहा है कि सज्जनों के चरित्र में सूर्यदेव जैसी उदारता होती है। उनमें पक्षपात की तो गन्ध तक नहीं होती। जिस प्रकार सूर्य केवल अपने उद्भव-स्थान उदयाचल के पर्वत-शिखरों को ही अपनी किरणों से शोभित नहीं करता, अपितु समस्त पर्वत-शिखरों की शोभा बढ़ाता है; उसी प्रकार उदार हृदय वाले सज्जन अपने अच्छे आचरण से केवल अपने ही देश को नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित करते हैं।

(घ) तेजस्वियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि एक निश्चित स्थान में रहकर भी वे अपने प्रताप की धाक से दूर-स्थित शत्रुओं का भी सर्वनाश कर डालते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सूर्य के प्रकाश की तुलना तेजस्वियों के तेज से की गई है।

व्याख्या– लेखक का मत है कि सूर्य आकाश में उदित होकर आकाश के अंधकार को ही नष्ट नहीं करता, वरन् दूर-स्थित घरों के कोनों और कोठरियों के अंधकार को भी नष्ट कर देता है। इसी प्रकार तेजस्वी व्यक्ति भी अपने तेज एवं प्रताप से अपने आस-पास की बुराइयों को ही नष्ट नहीं करते, वरन् दूर-दूर तक की बुराइयों को नष्ट करने में सफल होते हैं।

(ङ) दुष्ट दैव की चेष्टाओं का परिपाक कहते नहीं बनता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में व्यक्ति के भाग्य की विचित्र गति पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– प्रकृति की एक ही क्रिया किसी के लिए वरदान बनती है तो किसी के लिए अभिशाप। इन परस्पर विरोधी परिणामों की प्राप्ति को ही लोग भाग्य की संज्ञा प्रदान करते हैं। सूर्योदय होने पर कुमुदिनियाँ शोभाहीन हो गई हैं तो कमलों का समूह विकसित हो गया है। उल्लुओं के लिए सूर्योदय दु:ख का सन्देश लाया है तो चक्रवाकों के लिए वह अत्यधिक आनन्द लेकर उपस्थित हुआ है। यह कुमुदिनी और उल्लू का दुर्भाग्य है कि सूर्योदय उनके लिए दु:ख का कारण बनकर उपस्थित हुआ है।

इसके विपरीत कमलों और चक्रवाकों का यह अपना सौभाग्य है कि सूर्योदय उनके लिए नवीनता, उत्साह और आनन्द के रूप में उपस्थित हुआ है भाग्य की गति भी निराली है, इसको समझना मानवीय बुद्धि से परे की बात है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न—

1. 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' पाठ का सारांश लिखिए।

उ०– प्रस्तुत निबन्ध में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने महाकवि माघ के प्रभात-वर्णन का कलात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है। लेखक कहते हैं सूर्य उदय होने में थोड़ा समय रह गया है। सप्तर्षि नाम के तारे आकाश में लंबे लेटे हुए है। यह तारामण्डल सात ऋषियों के नाम पर बनाया गया है। जिनका पीछे का भाग नीचे को है और आगे का ऊपर को। इनके नीचे छोटा सा ध्रुवतारा भी चमक रहा है। सप्तर्षि तारामण्डल का आकार बैलगाड़ी के जुवाँ की भांति ऊपर उठा हुआ है। इस दृश्य को देखकर लेखक को श्रीकृष्ण के बचपन की घटना याद आ गई, जिसमें शकटासुर नामक दानव बालक श्रीकृष्ण का वध करने के लिए गाड़ी का रूप बनाकर आया था। श्रीकृष्ण ने अपने लात के प्रहार से उसे धराशाही कर दिया जिससे उसका आगे का भाग ऊपर को उठ गया और पीछे का भाग खड़ा रह गया और श्रीकृष्ण उसके नीचे आ गए थे। ऐसी ही स्थिति इस समय सप्तर्षि तारामण्डल की है।

प्रात:काल में पूर्व दिशारूपी नायिका प्रभात की लालिमा में रँगी हुई इस प्रकार हँसती प्रतीत होती है कि मानो उसके मन में चन्द्रमा के पश्चिम दिशारूपी नायिका के पास जाते हुए देखकर नारी सुलभ ईर्ष्या उत्पन्न हुई हो। वह सोचती है जब यह मेरे साथ था, तब तक उदित हो रहा था और उसका प्रकाश भी खूब फैल रहा था, परन्तु पश्चिम दिशारूपी नायिका के पास जाते ही कान्तिहीन हो गया है। उसे उसके किए का फल मिल गया, यही सोचकर वह मुस्करा रही है। परन्तु चन्द्रमा को उसकी कोई परवाह नहीं है। वह पश्चिम दिशारूपी स्त्री की रसिकता में निमग्न है। चन्द्रमा के अस्त होने पर उसका रंग लाल हो गया है तथा उसकी किरणें सफेद है जो कमल बाल के कटे टुकड़ों के समान है। तथा उसका ध्यान दिग्वधू के उपहास की ओर नहीं है।

लेखक कहते है कि प्रात:काल में सूर्य के उदित होने पर संसार में विरोधाभासपूर्ण दृश्य दिखाई देता है। सूर्योदय होने पर कमल खिल जाते है और कुमुदिनी मुरझा जाती है। जब कमल खिलते हैं कुमुदिनियाँ नहीं और जब कुमुदिनियाँ खिलती हैं तो कमल नहीं। परन्तु प्रात:काल होने पर कमल तथा कुमुदिनी की स्थिति एक समान होती है। कुमुद पूरी तरह से बंद नहीं हुए है और कमल पूरी तरह से नहीं खिले हैं और भँवरे दोनों पर मँडरा रहे हैं।

सांयकाल को जब चन्द्रमा निकलता है वह सुन्दरता युक्त होता है, क्रमश: उसकी सुन्दरता में वृद्धि होती रहती है। लेखक ने चन्द्रमा को प्रेमी कहा है वह सोचता है क्यों न कुमुदनियों के साथ परिहास किया जाए। इस हास-परिहास में ही रात व्यतीत हो गई। चन्द्रमा थक कर चूर होकर दूसरी दिग्वधू (पश्चिम) की गोद में चला गया।

द्विवेदी जी कहते हैं भगवान् सूर्य अंधकार के प्रबल शत्रु है। उनके प्रताप से डरकर अंधकार भाग जाता है परन्तु वह तो उनके उदित होने से पहले ही भाग गया। अंधकार के भागने का कारण भगवान सूर्य के सारथी अरुण का आगमन था। अरुण सूर्यदेव के रथ के आगे चलने वाला स्वामिभक्त एवं पराक्रमी सेवक है। वह अपने स्वामी को कष्ट न देकर स्वयं ही शत्रुओं का नाश कर देता है। अरुण द्वारा अंधकार का नाश कर देने पर बेचारी रात पर आफत आ गई और वह भाग खड़ी हुई और सवेरा हो गया। इस प्रात:कालीन अल्पव्यस्क सुंदरी के हाथ-पैर लाल कमलों के समान है। नील कमल फूलों के समान उसके नेत्र है। पक्षियों की ध्वनि ही उसकी बोली है। वह भी रात के पीछे-पीछे चली गई।

द्विवेदी जी कहते हैं अरुणोदय होते ही अंधकार नष्ट हो गया। सब विपक्षियों का अंत हो गया। अरुण द्वारा सब विपक्षियों को पस्त देखकर भगवान सूर्य ने निकलने की तैयारी की। हाथों में वज्र धारण करने वाले इन्द्र की पूर्व दिशा में, सुनहरी किरणें बिखर गई। जिससे संपूर्ण दृश्य अद्‌भुत हो गया, मानो समुद्र में रहने वाली बड़वाग्नि ने सारे समुद्र को जला दिया है और वह तीनों लोकों को जलाने के लिए ऊपर आई है। धीरे-धीरे सूर्य का बिंब क्षितिज पर दिखाई देने लगा। नीले आकाश में सूर्य का बिंब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह कोई बड़ा घड़ा है, जिसे दिशारूपी वस्तुएँ पूरे प्रयास से आकाशरूपी सागर से खींच रही है। सूर्य की किरणें इस घड़े को खींचने वाली रस्सियाँ हैं। वधुएँ एक साथ घड़े को ऊपर उठाकर लेने के लिए ऊँची आवाज में शोर कर रही है कि सब मिलकर जोर लगाओ तो यह शीघ्र ही बाहर निकल आएगा। जब दिशारूपी स्त्रियों के द्वारा सूर्यदेव को अगाध जलराशि से खींचकर बाहर निकाल लिया गया तो सूर्य का बिंब चमकता हुआ और रक्त वर्ण का दिखाई पड़ा। अब लेखक विचार करता है कि जल में डूबे रहने पर भी यह लाल रंग का क्यों हैं? लेखक स्वयं कहते हैं कि सारी रात समुद्र के जल में पड़ा रहा तो उसकी बड़वाग्नि अर्थात् जल के अंदर निहित अग्नि ने इसको तपाकर लाल कर दिया।

द्विवेदी जी कहते हैं कि सूर्यदेव अत्यन्त उदार हृदय वाले तथा न्यायप्रिय हैं। उनमें तनिक भी भेदभाव की भावना नहीं है। वे सबको समान दृष्टि से देखते हैं और अपनी किरणों से सभी पर्वतों और दिशाओं की शोभा वृद्धि कर देते हैं। वे सबका हित साधन करते हैं और अपने आचरण से केवल अपनी ही जन्मभूमि को नहीं, अपितु दूसरे देशों को भी लाभ पहुँचाते हैं।

द्विवेदी जी कहते हैं कि उदयाचल रूपी आँगन में सूर्य ऐसा लग रहा है मानो कोई छोटा बालक घुटनों और हाथों के सहारे आँगन

में खेल रहा है। उसे खेलता देख कमलिनियाँ खिलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है। वे वात्सल्यभाव से उसे देख रही है। भोर होते ही पक्षियों का कलरव सुनकर ऐसा लगता है जैसे माँ अपने शिशु को पास बुला रही हो और अन्तरिक्ष माता को बुलाता देख सूर्य भी कूदकर उसकी गोद में जा पहुँचा हो। द्विवेदी जी कहते है सूर्योदय होते ही नदियों ने अनोखा रूप धारण कर लिया। जब नदियों के दोनों किनारों पर बहते हुए जल पर प्रात:काल की धूप पड़ी, तो उस जल का रंग पकी हुई सुरा (मदिरा) के समान हो गया। ऐसा लगता है जैसे इन किरणों ने हाथियों के समूह को मार गिराया हो और उन हाथियों का रक्त बहकर नदियों में आ गया हो। तारों का समुदाय बहुत सभ्य मालूम पड़ता है परन्तु सूर्य द्वारा अंधकार का नाश करने के लिए उसे तारों को भी तेजहीन करना पड़ता है, क्योंकि इनकी श्रीवृद्धि अंधकार में ही संभव है। सूर्य के उदय होने पर अंधकार डर कर भाग गया। अपने शत्रु से बचने के लिए यह गुफाओं तथा कोठरियों आदि में छिपकर बैठ गया। परन्तु सूर्य ने उसे वहाँ न रहने दिया। उसने उसे वहाँ से निकालकर उसका नाश कर दिया।

द्विवेदी जी कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही आकाश की आँखें है। परन्तु सूर्य बहुत तेजवान तथा चमकीला दिखता है तथा चन्द्रमा कान्तिहीन होने के कारण धूमिल दिखता है। इससे आकाश के काना होने का आभास होता है। लेखक कहते हैं कि दैव की चेष्टाएँ किसी के लिए सुखकर हैं तो किसी के लिए दु:खदायी। प्रकृति की एक चेष्टा जहाँ कुमुदिनियों की शोभा हर लेती है, वही सरोवरों की शोभा संपन्न कर देती है। सवेरा होने पर उल्लू दु:खी होता है तथा चकवा-चकवी प्रसन्न। सूर्योदय का समय भाग्यशालियों को आनन्दित करता है, पर जो दुर्भाग्य के मारे हैं, उन्हें वह दु:खी करता है।

ये सूर्यदेव मानो दिशारूपी सुन्दरियों के पति है जो पिछली रात को विदेश चला गया था। चन्द्रमा मौका पाकर उसके स्थान पर आ विराजा। परन्तु अपनी यात्रा समाप्त करके सूर्य के वापस आने पर चन्द्रमा के होश उड़ गए और वह अपने किरणरूपी वस्त्रों को छोड़कर पश्चिमी दिशारूपी खिड़की से बाहर निकल गया। लेखक कल्पना करता है कि कल्पान्त में भगवान विष्णु भी जब तीनों लोकों को नष्ट कर अपनी प्रेममयी पत्नी लक्ष्मी के साथ क्षीरसागर में अकेले ही शोभित होते हैं, उसी तरह सूर्यदेव भी पलभर में रात्रि और उसके सहायकों को नष्ट कर क्षीरसागर के समान स्वच्छ आकाश में अपनी आभा के साथ आनन्दमय समय बिताते हैं।

2. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने पाठ में सप्तर्षि तारामण्डल का क्या वर्णन किया है?

उ०– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने पाठ में सप्तर्षि तारामण्डल के बारे में कहा है कि आकाश में उनकी स्थिति बैलगाड़ी के समान हैं। जिसका आगे वाला भाग बैलगाड़ी के जुवाँ की तरह ऊपर उठा हुआ है तथा पीछे वाला भाग नीचे को झुका हुआ है तथा उनके पीछे वाले भाग में ध्रुवतारा चमक रहा है।

3. सूर्य के उदय होने से पहले उनके सारथि अरुण ने क्या किया?

उ०– सूर्य के उदय होने से पहले उनके स्वामिभक्त तथा पराक्रमी सारथि अरुण ने पहले पहुँचकर अंधकार को भगा दिया। उसने अपने स्वामी को बिना कष्ट दिए उनके समस्त शत्रुओं का नाश कर दिया।

4. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सूर्योदय का वर्णन किन-किन रूपों में किया है?

उ०– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सूर्योदय को एक राजा की तरह प्रस्तुत किया है। जिसका सारथि अरुण उसके शत्रुओं का नाश कर देता है। लेखक ने सूर्य को समुद्र की अग्नि के अंदर तपे हुए प्रस्तुत किया है जो तपकर लाल हो गया है। लेखक ने सूर्य को एक बड़े घड़े के रूप में प्रदर्शित किया है जिसे दिशारूपी वधुएँ अपनी तरफ खींच रही हैं। लेखक ने सूर्य को पक्षपात रहित बताया है जो सबको समान दृष्टि से देखते हैं। लेखक ने सूर्योदय के समय सूर्य को एक छोटे बालक के रूप में प्रस्तुत किया है जो घुटनों तथा हाथों की सहायता से आकाशरूपी आँगन में क्रीड़ा कर रहा है और जिसे अन्तरिक्ष रूपी माता पुकार रही है।

5. लेखक ने सूर्य की किन विशेषताओं का वर्णन किया है?

उ०– लेखक ने सूर्य को अंधकार का शत्रु बताया है जो बहुत पराक्रमी और प्रतापी है। सूर्य पक्षपात रहित व न्यायप्रिय है जो सभी पर समान रूप से कृपा दृष्टि रखता है। सूर्य समुद्र की अग्नि में तपकर लाल हो गया है। सूर्य सभी को जीवन प्रदान करता है। इसका आगमन सूर्य कुछ के लिए सुखदायी तथा कुछ के लिए दु:खदायी होता है। सूर्य करोड़ों मील दूर आकाश में होकर भी कहीं भी छुपे बैठे अंधकार को नाश कर देता है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

3 भारतीय साहित्य की विशेषताएँ
(डॉ० श्यामसुन्दर दास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—41 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. डॉ० श्यामसुन्दर दास का जीवन-परिचय देते हुए इनकी भाषा-शैली का वर्णन कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० श्यामसुन्दर दास का जन्म एक खत्री परिवार में सन् 1875 ई० में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला देवीदास खन्ना तथा माता का नाम देवकी था। सन् 1897 ई० में इन्होंने स्नातक की उपाधि 'क्वीन्स कॉलेज' काशी से प्राप्त की। इन्होंने कुछ समय चालीस रुपए मासिक वेतन पर 'चन्द्रप्रभा' प्रेस में नौकरी की। इसके बाद वाराणसी के हिन्दू स्कूल में अध्यापन कार्य किया। विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकों का सृजन सर्वप्रथम डॉ० श्यामसुन्दर दास जी ने ही किया। सन् 1912 ई० में इन्होंने लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के पद को सुशोभित किया व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रथम अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। कुछ साहित्य-प्रेमी व मित्रों के सहयोग से सन् 1893 ई० में इन्होंने काशी में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। इनकी महत्वपूर्ण साहित्य-सेवा को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1927 ई० में इन्हें अंग्रेजी सरकार ने 'राय बहादुर' की उपाधि प्रदान की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें 'डी. लिट्' तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन 'प्रयाग' द्वारा सन् 1938 ई० में 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया गया। डॉ० श्यामसुन्दर दास जी आजीवन साहित्य साधना में संलग्न रहे। इसी सेवा में सदैव तत्पर रहते हुए अन्ततः यह महान् साहित्यकार सन् 1945 ई० में चिरनिद्रा में लीन होकर इस असार संसार से सदा-सदा के लिए विदा हो गया।

भाषा-शैली– बाबू श्यामसुन्दर दास ने अपनी भाषा का गठन विषयों के अनुकूल किया है। विषय के अनुकूल कहीं इन्होंने शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है तो कहीं सरल एवं व्यावहारिक भाषा का। साहित्यिक ग्रन्थों में इन्होंने शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता है। इनके स्फुट निबन्धों में सरल तथा व्यावहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। इन्होंने फारसी तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं किया है। प्रचलित विदेशी शब्दों को हिन्दी जैसा ही बनाकर प्रस्तुत किया गया है। बाबू जी ने पहली बार हिन्दी को इस योग्य बनाया कि बिना किसी विदेशी भाषा की सहायता के अपनी भाव-अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हो सके।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। बाबू जी ने अपने विचारात्मक निबन्धों में विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने आलोचनात्मक विषयों की समीक्षा समीक्षात्मक शैली में की है। इसमें विचारों के स्पष्टीकरण के कारण कहीं-कहीं तर्क और गाम्भीर्य की अधिकता है। बाबू जी ने वैचारिक गम्भीरता से युक्त निबन्धों में गवेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। इसमें विशुद्ध तत्समप्रधान भाषा का प्रयोग किया गया है। बाबू जी गम्भीरता के साथ-साथ भावात्मक शैली का प्रयोग करने में भी सफल रहे हैं। इन्होंने 'मेरी आत्मकहानी' तथा अन्य जीवनीपरक निबन्धों में विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में वाक्य छोटे हैं तथा भाषा प्रवाहपूर्ण है।

2. डॉ० श्यासुन्दर दास की कृतियों पर प्रकाश डालिए तथा हिन्दी साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– कृतियाँ– बाबू श्यामसुन्दर दास आजीवन साहित्य-सेवा में लगे रहे। इनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं—

निबन्ध– 'गद्य-कुसुमावली'। इसके अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में इनके लेख भी प्रकाशित हुए।

आलोचना ग्रन्थ– साहित्यालोचन, गोस्वामी तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रूपक-रहस्य।

भाषा-विज्ञान– भाषा-विज्ञान, हिन्दी भाषा का विकास, हिन्दी भाषा और साहित्य।

सम्पादन– हिन्दी-शब्द-सागर, वैज्ञानिक कोश, हिन्दी-कोविद रत्नमाला, मनोरंजन पुस्तकमाला, पृथ्वीराज रासो, नासिकेतोपाख्यान, छत्र-प्रकाश, वनिता-विनोद, इन्द्रावती, हम्मीर रासो, शाकुन्तल-नाटक, श्रीरामचरितमानस, दीनदयाल गिरि की ग्रन्थावली, मेघदूत, परमाल रासो। इन्होंने 'सरस्वती' तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी सम्पादन किया।

अन्य विशिष्ट रचनाएँ– इनके अतिरिक्त भाषा-रहस्य, मेरी आत्मकहानी, हिन्दी-साहित्य-निर्माता, साहित्यिक लेख आदि इनकी अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

हिन्दी साहित्य में स्थान– बाबू श्यामसुन्दर दास ने निरन्तर साहित्य-साधना करते हुए हिन्दी-साहित्य के भण्डार में अभूतपूर्व वृद्धि की।

भाषा को परिष्कृत रूप प्रदान करने की दृष्टि से भी इन्होंने अविस्मरणीय योगदान किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने युग के गद्य लेखकों में बाबू श्यामसुन्दर दास एक प्रकाश-स्तम्भ के समान थे। हिन्दी साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) समस्त भारतीय ..... की ओर रही है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'डॉ० श्यामसुन्दर दास' द्वारा 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' नामक निबन्ध से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में विद्वान् लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि धर्म, समाज, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भारत की प्रवृत्ति समन्वय की रही है।

व्याख्या– अपने सारगर्भित विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए श्यामसुन्दर दास जी कहते हैं कि भारतीय साहित्य का विश्व-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। उसमें अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उसे विश्व-साहित्य में प्रमुखता प्रदान करती हैं और उसकी अलग पहचान बनाती हैं। इन विशेषताओं में 'समन्वय की भावना' भारतीय साहित्य की पहली और महान् विशेषता है। यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के स्वतंत्र और पृथक अस्तित्व की वास्तविकता को भी सिद्ध करती है। अपनी इसी समव्यय-भावना के कारण ही हमारा भारतीय साहित्य विश्व के अन्य साहित्यों से भिन्न, किन्तु सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित दिखाई देता है। चाहे धर्म का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, चाहे साहित्य का क्षेत्र हो या अन्य कलाओं का, परन्तु समन्वय अथवा सामंजस्य की यह भावना सर्वत्र दिखाई देगी। यदि हम भारत के धार्मिक क्षेत्र का अवलोकन करें तो पाएँगे कि इस क्षेत्र में ज्ञान, भक्ति और कर्म में समन्वय है। यहाँ की सामाजिक संरचना पर दृष्टिपात करें तो यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण मिलते हैं। ये चारों एक-दूसरे पर निर्भर हैं तथा एक के बिना दूसरा पंगु है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में गहरा तालमेल दिखाई देता है। प्रत्येक आश्रम किसी-न-किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी-न-किसी रूप में दूसरे से जुड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार भारतीय साहित्य तथा कलाओं का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनमें सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद और इसी प्रकार के विरोधी भावों को जब एक साथ सँजोकर प्रस्तुत किया जाता है, तभी उस समन्वित स्वरूप से असीम आनन्द की प्राप्ति होती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भारतीय जीवन की समन्वयात्मक प्रवृत्ति का सुन्दर अंकन हुआ है। **(2)** यहाँ विद्वान लेखक की बहुज्ञता एवं अध्ययनशीतला की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। **(3) भाषा–** शुद्ध परिमार्जित साहित्यिक खड़ी बोली। **(4) शैली–** संयत, प्रवाहपूर्ण एवं विवेचनात्मक।

(ख) साहित्यिक समन्वय से ..... में ही किया गया है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में भारतीय साहित्य में समन्वय की भावना पर गंभीरता से विचार हुआ है।

व्याख्या– अपने गंभीर विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए विद्वान् लेखक का कहना है कि समन्वय की भावना भारतीय साहित्य की पहली विशेषता है। हमारे साहित्य की किसी भी विधा में सुख-दु:ख में समन्वय दिखाया जाता है। इसी प्रकार उन्नति और अवनति में तथा हर्ष और विषाद जैसे विरोधी भावों में भी समन्वय दिखाकर एक अलौकिक आनंद में इन सबका अंत हो जाता है। यह आनन्द सबको अपने में विलीन कर देता है। यही साहित्यिक समन्वय है। हमारे नाटकों में, कहानियों में और साहित्य की किसी भी विधा में सर्वत्र यही समन्वय पाया जाता है। हमारे नाटकों में सुख और दु:ख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाए जाते हैं, पर सबका अंत आनन्द में ही किया जाता है; क्योंकि हमारा ध्येय जीवन का आदर्श रूप उपस्थित कर उसे उन्नत बनाना रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) समन्वय की भावना को भारतीय साहित्य की पहली विशेषता बताया गया है। **(2) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक हिन्दी। **(3) शैली–** गंभीर विषय को बोधगम्य विचारात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। **(4) वाक्य–** विन्यास सुगठित एवं शब्द-चयन उपयुक्त है।

(ग) इसका प्रधान ..... अनुकरणमात्र है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ पर भारतीय साहित्य की समन्वयकारी विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने बताया है कि अधिकांश भारतीय नाटक सुखान्त क्यों हैं।

व्याख्या– भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए विद्वान् लेखक ने स्पष्ट किया है कि उसमें जीवन के आदर्श स्वरूप को उपस्थित करके जीवन को उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने की चेष्टा की जाती है। इसी कारण प्रत्येक भारतीय अपने-अपने क्षेत्र में जीवन के आदर्श प्रतिमान को प्रस्तुत करता है। उसके पीछे उसका उद्देश्य यह होता है कि वह जिस प्रतिमान

की स्थापना कर रहा है, लोग उससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन की उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ले जाने में सफल होंगे। इस कारण हमारे प्रयासों में भविष्य की सम्भावित उन्नति की चिंता निहित होती है। इसी चिन्ता के कारण हमारे साहित्य में पाश्चात्य शैली के दु:खान्त नाटकों का अभाव पाया जाता है; क्योंकि दु:ख व्यक्ति को अवसादग्रस्त कर देता है और अवसादग्रस्त मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। हमारे नाटकों की विशेषता यह होती है कि उनमें दु:ख का भी आनन्द से समन्वय करके उसके अवसादी प्रभाव को समाप्त कर दिया जाता है। अपवादस्वरूप कुछ नाटककारों ने दो-चार दु:खान्त नाटकों का प्रणयन अवश्य किया है, परन्तु वास्तव में ये नाटक और नाटककार हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करते, वरन् ये भारतीय संस्कृति के आदर्श से कोसों दूर होते हैं और इन्हें पाश्चात्य आदर्श का अनुकरण-मात्र कहा जा सकता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** यहाँ भारतीय संस्कृति के आनन्दात्मक स्वरूप को परिपुष्ट करने के लिए सुखान्त भारतीय नाट्य साहित्य को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। **(2)** भारतीय साहित्य और संस्कृति के दु:ख-सुख समन्वयात्मक स्वरूप का उद्घाटन किया गया है। **(3) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(4) शैली–** गंभीर और विचारात्मक।

(घ) हमारे दर्शन-शास्त्र ..... परम उद्देश्य है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने भारतीय साहित्य और भारतीय कलाओं में सामान्य रूप से समन्वय की भावना के रहस्य का खोज खोज भारतीय दर्शन से की है और उसके मूल स्वर को पहचानने का प्रयास किया है।

व्याख्या– भारतीय साहित्य और कलाओं में आदर्श समन्वय की भावना को देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा होती है। लेखक ने इसका समाधान भारतीय दर्शन के आधार पर किया है। भारत में प्रमुख रूप से छ: दर्शन माने जाते हैं। सभी में समन्वय की भावना व्याप्त है। सभी दर्शनों में आत्मा और परमात्मा में स्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं माना गया है। दोनों को सत्, चित् और आनन्दमय बताया गया है। आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है। जीव माया के कारण ही अपने सत्, चित् और आनन्दस्वरूप को भुला हुआ है। वह अपने को संसार के बन्धनों में बँधा अनुभव करता है। आत्मा के प्रति इस अज्ञान का कारण माया ही है। जीवात्मा यदि माया से मुक्त हो जाए, तो वह अपने स्वरूप को पहचान सकता है। जब तक माया से उत्पन्न अज्ञान बना रहेगा, तब तक जीवात्मा को अपने सच्चे स्वरूप की अनुभूति नहीं होगी। जब माया से उत्पन्न अज्ञान दूर हो जाता है, तब जीवात्मा अपने स्वरूप को पहचानकर आनन्दमय परमात्मा में लीन हो जाता है। इससे उसके दु:खों का अन्त हो जाता है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जीवात्मा द्वारा अपने स्वरूप को पहचानकर आनन्दमय परमात्मा में लीन हो जाना ही मानव-जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** आत्मा और परमात्मा का एक सच्चिदानंद स्वरूप में विलीन होना ही भारतीय दर्शन का समन्वय सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के अनुसार भारतीय साहित्य और कलाओं का उद्देश्य विभिन्न विपरीत भावों और मतों का समन्वय स्थापित कर आनन्द की सृष्टि करना है। **(2)** भारतीय दर्शन के माध्यम से भारतीय साहित्य और कलाओं में समन्वय की भावना की पुष्टि हो जाती है। **(3)** भारतीय दर्शन के छ: रूप इस प्रकार हैं– न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, वेदान्त और मीमांसा। **(4) भाषा–** प्रवाहपूर्ण एवं परमार्जित खड़ी बोली। **(5) शैली–** गवेषणात्मक एवं विवेचनात्मक।

(ङ) भारतीय साहित्य ..... हम यही बात पाते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने यह बताया है कि धर्म में धारण करने की शक्ति होती है और धर्म ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है।

व्याख्या– लेखक का मत है कि भारतीय दर्शन में धर्म की इतनी व्यापक व्याख्या की गई है कि उससे जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के औचित्य-अनौचित्य पर हमारे धर्म में बड़ी बेबाक टिप्पणी की गई है। हमारे दर्शन के अनुसार धर्म हमको धारण किए रहता है। धर्म वह है, जो धारण करने योग्य है, इसीलिए हम धर्म को धारण किए हुए हैं। अपने आदर्श प्रतिमानों के कारण ही हमारे सामान्य सामाजिक आचारों-विचारों और राजनीति पर धार्मिक नियन्त्रण की आवश्यकता पर प्रत्येक देशकाल में बल दिया जाता रहा है। धर्म केवल हमारे आध्यात्मिक जीवन पर ही प्रभाव नहीं छोड़ता वरन् सामान्य आचार-व्यवहार के अलावा वह हमारे साहित्य को भी अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। हमारे वेदों, पुराणों तथा दूसरे धर्मग्रन्थों में जो कुछ लिखा गया है, उसका प्रभाव सारे समाज के आचार-व्यवहार पर पड़ा है। एक ही ईश्वर की अवधारणा, ब्रह्म विषयक सोच, अवतारों में आस्था या अनेक देवी-देवताओं के प्रति मान्यता दृष्टिकोण धर्म-भावना का ही प्रभाव है। धार्मिक भावों की अधिकता ने एक ओर हमारे साहित्य में पवित्र भावनाएँ भरकर जीवन के विषय में गहराई से सोचना सिखाया तो दूसरी ओर इसी कारण से लौकिक भावों की कमी दिखाई देने लगी। यही कारण है कि वैदिक काल में रचित सामवेद की मधुर ऋचाओं से लेकर सूरदास अथवा मीराबाई के पदों तक में लौकिक भावों की न्यूनता और अलौकिक भावों की ही अधिकता है। यह सब धार्मिक भावों की अधिकता का ही परिणाम है; अर्थात् धार्मिक प्रभाव के कारण हमारा साहित्य आदर्शात्मक अधिक और व्यवहारिक कम है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक अपने धर्म की मात्र प्रशंसा ही नहीं करता वरन् ईमानदारी से उसकी त्रुटियाँ भी लक्षित करता है। **(2)** धर्म ने हमारे साहित्य, राजनीति, सामाजिक जीवन एवं व्यक्तिगत चरित्र के साथ-साथ चिंतन को भी प्रभावित किया है। **(3) भाषा–** परिमार्जित खड़ी बोली। **(3) शैली–** विवेचनात्मक।

(च) राधाकृष्णन को ..... परिणत हो गया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने बताया है कि धार्मिक भावों के दुरुपयोग के कारण हमारे भारतीय साहित्य में अनर्थ भी हुआ है।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि धर्म से प्रेरणा लेकर भक्तिकाल का जो साहित्य रचा गया, वह निश्चित ही हमारे गौरव की वस्तु है; परन्तु रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों ने धर्म के नाम पर राधा-रानी और गिरिधर लाल को आधार बनाकर जो कविताएँ रचीं, उनमें वासना का कलुष स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे वासनाजन्य उद्‌गार समाज का भला तो नहीं कर सकते, पर उसे बिगाड़ते अवश्य हैं। अब कुछ ऊँचे विचारों वाले ऐसे भी आलोचक हैं, जो बुराई में भी भलाई खोज ही लेते हैं और इसी आधार पर गन्दी और कलुषित श्रृंगारी कविता में भी उच्च आदर्श के दर्शन कर लेते हैं। पर सच्चाई से किसी भी स्थिति में मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। यद्यपि कुछ श्रृंगारिक कविताओं में पवित्र भावना एवं शुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति भी हुई है, तथापि ऐसी कविताएँ बहुत कम हैं। इससे यह सत्य उद्‌घाटित होता है कि भक्तिकाल के साहित्य में पवित्र भक्ति का जो ऊँचा आदर्श था, वह आगे चलकर रीतिकाल में शारीरिक वासनाजन्य प्रेम के रूप में बदलकर कलंकित हो गया। भारतीय साहित्य पर धार्मिक भावों की अधिकता का ही यह दुष्प्रभाव है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) धार्मिक भावों की अतिशयता ने श्रृंगरी कवियों की भावना को प्रदूषित किया है जिससे भक्ति का पवित्र आदर्श उनके लिए बहानामात्र बनकर रह गया, तभी तो उन्होंने कहा कि-

आगे न सुकवि रीझि हैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमिन को बहानो है।

(2) भाषा– परिमार्जित साहित्यिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** प्रौढ, प्रवाहपूर्ण तथा विवेचनात्मक।

(छ) यों तो प्रकृति की ..... का सौभाग्य प्राप्त है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में भारतीय साहित्य की भौगोलिक विशेषताओं तथा भारतीय साहित्य पर भारत की प्राकृतिक सुषमा के प्रभाव का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– भारत की प्राकृतिक रमणीयता के प्रति भारतीय कवियों का प्राचीनकाल से ही विशेष अनुराग रहा है। यद्यपि प्रकृति की प्रत्येक देन मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है, परन्तु फिर भी प्रकृति के सुन्दरतम रूपों में मानव का मन अधिक रमता है। इस दृष्टि से अरब एवं भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य और दोनों देशों के कवियों की सौन्दर्यनुभूति में पर्याप्त अन्तर है। अरब देश में सौन्दर्य के नाम पर केवल रेगिस्तान, रेगिस्तान में प्रवाहित होते हुए कुछ साधारण से झरने अथवा ताड़ के कुछ लंबे-लंबे वृक्ष एवं ऊँटों की चाल ही देखने को मिलती हैं यही कारण है कि अरब के कवियों की कल्पना मात्र इतने से सौन्दर्य तक सीमित रह जाती है। इसके विपरीत भारत में प्रकृति के विविध मनोहारी रूपों में अपूर्व सौन्दर्य के दर्शन होते है; उदाहरणार्थ- हिमालय की बर्फ से आच्छान्दित पर्वतश्रेणियाँ, सन्ध्या के समय उन पर्वतश्रेणियों पर पड़ने वाली सूर्य की सुनहली किरणों से उत्पन्न अद्‌भुत शोभा, सघन आम के बागों की छाया में कल-कल निनाद करते हुए बहने वाली छोटी-छोटी नदियाँ, इन्हीं के निकट लताओं के पल्लवित एवं पुष्पित होने से उत्पन्न वसंत की अनुपम छटा तथा भारत के वनों में विचरण करने वाले विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल आदि। भारत में इस प्रकार के अनेक रमणीय प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं, जिनके समक्ष अरब के सीमित प्राकृतिक सौन्दर्य में केवल नीरसता, शुष्कता और भद्देपन की ही अनुभूति होती है। इसके विपरीत भारतीय कवियों को प्रकृति की सुन्दरता का रसास्वादन करने तथा उसकी गोद में रहने का सौभाग्य प्राप्त है क्योंकि भारत में प्राकृतिक सुन्दरता भरी पड़ी है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भारत में प्रकृति की विविधता एवं उसके विभिन्न अनुपम रूपों की अनुभूति कराई गई है। **(2)** रूप एवं विविधता की दृष्टि से भारत एवं अरब की प्रकृति का यथार्थ चित्रण किया गया है। **(3) भाषा–** परिमार्जित, प्रवाहयुक्त एवं साहित्यिक। **(4) शैली–** विवेचनात्मक।

(ज) भारतीय कवि ..... उच्च कोटि का होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने स्पष्ट किया है कि हमारे सारे देश में प्रकृति की अनन्त सुषमा बिखरी पड़ी है। इसीलिए भारतीय साहित्य में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है।

व्याख्या– भारतीय कवियों का यह सौभाग्य है कि उन्होंने प्रकृति की सुन्दर क्रीड़ास्थली भारतभूमि में जन्म लिया है और उन्हें प्रकृति की सुन्दर गोद में खेलने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। वे भारत की शस्य-श्यामला भूमि में, यहाँ के हरे-भरे उपवनों में विचरण करते रहे हैं और उन्होंने यहाँ की मनोहर सरिताओं, झीलों और सागर-तटों के मनोमुग्धकारी रूप का साक्षात्कार किया है। अपने इसी अनुभव के कारण वे अपने साहित्य में प्रकृति के विभिन्न दृश्यों का सजीव, उत्कृष्ट और हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत कर सके हैं। भारतीय कवियों ने उपमा-उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के लिए सुन्दर-सुन्दर उपमान भी प्रकृति से ही ग्रहण किए हैं। ऐसा सुन्दर वर्णन और ऐसी अलंकार योजना उन उद्देशों के साहित्य में संभव नहीं है, वहाँ की प्रकृति इतनी सुन्दर नहीं हैं। रूखी-सूखी जलवायु वाले प्राकृतिक सौन्दर्य से विहीन देशों के कवि ऐसे सौन्दर्य का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर पाते है; अत: उनके साहित्य में ऐसा मनोरम प्रकृति-चित्रण भी नहीं मिल पाता है। भारत की समृद्ध प्रकृति के कारण ही यहाँ के कवियों का प्रकृति वर्णन और प्राकृतिक सौन्दर्य का ज्ञान उच्च स्तर का है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने भारतीय साहित्य के मनोरम प्राकृतिक वर्णन का कारण भारत की शस्त्र-श्यामला भूमि की निसर्ग-सिद्ध सुषमा को माना है। **(2) भाषा–** चिन्तनप्रधान साहित्यिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** विवेचनात्मक।

(झ) प्रकृति के रम्य ..... भावमग्न होते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने स्पष्ट किया है कि भारतीय कवियों के लिए प्रकृति का रमणीय रूप रहस्यमयी भावनाओं के संचार का स्रोत रहा है।

व्याख्या– भारत की प्रकृति में अनन्त सौन्दर्य विद्यमान है। भारतीय कवि प्रकृति के इस सौन्दर्य में तन्मय होकर एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हैं और आनन्द के इसी अनुभव को अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। भारतीय कवियों ने प्रकृति के इस सौन्दर्य का उपयोग अपनी रहस्यवादी भावनाओं को प्रकट करने में भी किया है।

संपूर्ण पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, तारे, ग्रह, उपग्रह, सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, आकाश, अग्नि आदि प्रकृति की नाना वस्तुएँ मनुष्य मात्र के लिए रहस्यमयी बनी हुई हैं। इनके रहस्य को जान पाना बड़ा कठिन है। प्रकृति के क्रिया-कलाप किससे संचालित होते हैं? इसको जानने के लिए वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने जिन तत्वों की खोज की है, वे बुद्धि और ज्ञान से संबंधित होने के कारण नीरस हैं।

काव्य सरस होता है, उसमें नीरस वर्णन करने से काम नहीं चलता है। इसीलिए हमारे कविगण नीरसता से दूर रहे हैं। उन्होंने बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर प्रकृति ने नाना रूपों के पीछे एक अव्यक्त, किन्तु सजीव सत्ता की कल्पना कर ली है। रहस्यवादी कवि उस अव्यक्त सत्ता को देखते हैं और उसके चिन्तन में खो जाते हैं। इसे प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद कहा जाता है। प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप हमारे मान में विविध भाव जगाते हैं, परंतु रहस्यवादी कवि का संबंध केवल प्रकृति के मधुर स्वरूप से ही होता है। यह भारतीय साहित्य की देशगत विशेषता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रकृति में इस संसार को संचालित करने वाली असीम सत्ता के दर्शन करना ही हिन्दी-साहित्य में 'रहस्यवाद' कहलाता है। **(2)** प्रकृति के रमणीय रूपों में तल्लीनता के कारण ही हमारे भारतीय साहित्य में प्राकृतिक रहस्यवाद का जन्म हुआ। **(3) भाषा–** गंभीर, परिमार्जित, शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(4) शैली–** गंभीर और विवेचनात्मक। **(5) भावसाम्य–** ऐसा ही भाव महादेवी वर्मा की निम्नलिखित पंक्तियों में भी झलकता है—

कनक से दिन मोती-सी रात, सुनहली साँझ गुलाबी प्रात।
मिटाता रँगता बारम्बार, कौन जग का यह चित्राधार?

(ज) अंग्रेजी में इस ..... कमी पाई जाती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने भारतीय साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिए अंग्रेजी साहित्य से उसकी तुलना की है।

व्याख्या– श्यामसुन्दर दास जी ने भारतीय साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए भारतीय कवियों की शैलियों पर विचार किया है। भारतीय कवि प्रथम पुरुष एवं अन्य पुरुष में काव्य-रचनाएँ करते हैं, किन्तु इससे उनकी कविता के आदर्शों में भिन्नता नहीं आती ओर न ही इस आधार पर कविता का वर्गीकरण किया गया है, जबकि अंग्रेजी कविता में इस प्रकार की विभिन्नता के आधार पर व्यक्तिगत तथा अव्यक्तिगत भेद किए गए हैं; किन्तु ये विभेद कविता के नहीं, उसकी शैली के हैं। दोनों ही प्रकार की कविताएँ कवि के आदर्शों को व्यक्त करती हैं। एक में यह अभिव्यक्ति आत्मकथन के रूप में होती है तो दूसरी में वर्णनात्मक रूप में। भारतीय कवियों में वर्णनात्मक शैली की ही प्रचुरता है, दूसरी शैली की कविताओं का प्राय: अभाव ही है। लेखक की दृष्टि में यह भारतीय कविता का दुर्बल पक्ष हैं। इससे कविता की 'गीतिकाव्य' जैसे महत्वपूर्ण कलात्मक विधा का विकास नहीं हो पाया और इसी कारण पदों के रूप में लिखे गए गीतिकाव्यों का अभाव परिलक्षित होता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने अंग्रेजी एवं भारतीय कविता का तुलनात्मक विश्लेषण करके भारतीय कविता के दुर्बल पक्ष को उजागर किया है। **(2) भाषा–** सरल, सुबोध एवं साहित्यिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** गम्भीर और विवेचनात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता, उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'डॉ० श्यामसुन्दर दास' द्वारा लिखित 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' नामक निबंध से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने स्पष्ट किया है कि भारतीय साहित्य की मूल प्रवृत्ति समन्वयवादी रही है।

व्याख्या– श्यामसुन्दर दास जी कहते हैं कि भारतीय साहित्य में अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जो विश्व-साहित्य में उसकी एक अलग पहचान बनाती हैं। इनमें भारतीय साहित्य में निहित समन्वयवादी भावना ऊपर है। इसी भावना के कारण भारतीय साहित्य सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित दिखाई देता है। यह समन्वय भावना केवल साहित्यिक क्षेत्रों में ही नहीं अपितु धार्मिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार नदियाँ अपना पृथक उद्गम, पृथक अस्तित्व और पृथक वैशिष्ट्य रखते हुए अन्ततः समुद्र में ही विलीन होती हैं, वैसे ही भारत में विद्यमान समस्त पार्थक्य अन्ततः भारतीयता में ही विलीन हो जाते हैं, जो समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण ही संभव है।

(ख) आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने भारतीय दर्शन के आधार पर मानव-जीवन के चरम उद्देश्य का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या– भारतीय दर्शन में परमात्मा को आनन्दमय बताया गया है। आत्मा, परमात्मा का ही अंश है; अतः दोनों एक ही हैं, किन्तु मायाजन्य अज्ञान के कारण जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता है। जीवात्मा, परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप को जानकर ही माया से मुक्त होता है और सत्, चित्, आनन्दस्वरूप परमात्मा में विलीन होकर जीवन-मरण के बन्धनों से छुटकारा पाता है। इस प्रकार आनन्दस्वरूप परमात्मा में विलीन होना ही मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य है। साहित्य के अनुशीलन से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे भी ब्रह्मानंद सहोदर कहा जाता है। साहित्य हमें आनंद के धरातल पर खड़ा कर समरसता का अनुभव एवं अखंड विराटत्व से हमारा परिचय कराता है।

(ग) धर्म में धारण करने की शक्ति है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में धर्म के लक्षण तथा भारतीय साहित्य पर उसके प्रभाव को समझाया गया है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक के अनुसार धर्म में धारण करने की अद्भुत शक्ति होती है। इसीलिए जिस धर्म की हम रक्षा करते, वह रक्षित धर्म हमें भी धारण करता है। वह हमारी भी रक्षा करता है। इसी गुण के कारण आध्यात्मिक पक्ष से लेकर लौकिक आचार-विचार और राजनीति तक में धर्म का नियन्त्रण स्वीकार किया जाता है। हमारा भारतीय साहित्य भी धर्म से प्रभावित है, इसलिए उसमें आध्यात्मिकता की अधिकता और पवित्र भावों की प्रचुरता तो है, किन्तु लौकिक विचारों की न्यूनता भी हैं।

(घ) हमारी कल्पना अध्यात्म-पक्ष में तो निस्सीम तक पहुँच गई; परन्तु ऐहिक जीवन का चित्र उपस्थित करने में वह कुछ कुण्ठित-सी हो गई है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में लेखक ने स्पष्ट किया है कि भारतीय साहित्य में प्राय जीवन के व्यावहारिक पक्ष की उपेक्षा की गई है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में भारतीय साहित्य में अध्यात्म-पक्ष की प्रधानता और लौकिक जीवन की उपेक्षा का प्रकाश डाला गया है। भारत धर्मप्रधान देश है; अतः उसके साहित्य में धर्म-भावना की अधिकता पाई जाती है। भारतीय कवियों ने अपने साहित्य में धार्मिकता का पुट देते हुए आध्यात्मिकता से प्रेरित होकर पवित्र और गंभीर भावनाओं की अधिक अभिव्यक्ति की है। उन्होंने पवित्र भावनाओं का इतना वर्णन अपने साहित्य में किया है कि वे सीमा को भी लाँघ गए हैं और वास्तविक दृश्यमान् जगत् का चित्र यथार्थ रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। उनके साहित्य में लौकिक और व्यावहारिक पक्ष उपेक्षित बना रहा। साहित्यकार कल्पना जगत् में ही अधिक विचरण करते रहे, जबकि आवश्यकता यह थी कि वे वर्तमान सामाजिक समस्याओं को दृष्टिगत करके, उनके ऊपर भी अपनी लेखनी चलाते।

(ङ) भारत की शस्य-श्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उस पर भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में इस बात को बताया गया है कि भारत की अनुपम प्राकृतिक सुषमा ने भारतीय कविता को किस प्रकार से प्रभावित किया है।

व्याख्या– भारत की वसुन्धरा शस्य-श्यामला है। यहाँ की धरती नैसर्गिक सुन्दरता से भरपूर है और वह वहाँ के कवियों के मन

को अपनी ओर सदैव आकर्षित करती रही है। यहाँ बर्फ से ढकी शैलमालाओं का शृंगार, कल-कल करती नदियाँ, झर-झर झरनों, कमलों से शोभित सरोवरों और पुष्पित वृक्षों से लिपटी लताओं का सौन्दर्य किसके मन को नहीं हर लेगा? प्रकृति ने इन्हीं रम्य रूपों में रमकर भारतीय कवि, प्रकृति का सजीव ओर मार्मिक वर्णन कर सके हैं।

(च) प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है।

सन्दर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने स्पष्ट किया है कि प्रकृति ने अनेकानेक रूप विभिन्न भावनाओं में वृद्धि करते है।

व्याख्या– श्यामसुन्दर दास जी का कहना है कि व्यक्ति के सम्मुख प्रकृति अपने विभिन्न रूपों में उपस्थित होती है; उदाहरणार्थ- कभी आर्द्र रूप में तो कभी शुष्क रूप में, कभी शीत ऋतु के रूप में तो कभी ग्रीष्म ऋतु के रूप में, कभी वसंत के रूप में तो कभी पतझड़ के रूप में, कहीं घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी के रूप में तो कहीं नीरसता, शुष्कता और भद्देपन के रूप में, आदि आदि। जिस प्रकार प्रकृति के विभिन्न रूप हैं, उसी प्रकार व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में भी विभिन्न भावनाएँ विद्यमान होती हैं, इनमें से कुछ दमित होती है तो कुछ मुक्त। यही कारण है कि प्रकृति के विभिन्न रूप व्यक्ति के मन में विविध भावनाओं की वृद्धि करते हैं। प्रकृति के नाना रूपों में एक अव्यक्त किन्तु सजीव सत्ता का आभास होता है। विविध और विभिन्न भावनाओं में वृद्धि होने के कारण ही व्याक्ति के अभिव्यक्ति के माध्यम में भी विविधता और विभिन्नता की विद्यमानता रहती है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' पाठ का सारांश लिखिए।

उ०– भारतीय साहित्य की विशेषताएँ निबन्ध में डॉ० श्यामसुन्दर दास जी ने भारतीय साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। लेखक कहते हैं कि भारतीय साहित्य का विश्व साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। उसकी बहुत सी विशेषताएँ है जो उसकी उसको अलग पहचान बनाती है। समन्वय की भावना भारतीय साहित्य की पहली और महान् विशेषता है। अपनी इस विशेषता के कारण ही हमारा भारतीय साहित्य विश्व के अन्य साहित्यों से भिन्न, किन्तु सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित दिखाई देता है। भारत की सामाजिक संरचना को देखें तो यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण मिलते हैं। ये चारों एक-दूसरे पर निर्भर है तथा एक के बिना दूसरा पंगु है। इसी तरह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संयास आश्रम में गहरा तालमेल दिखाई देता है। इसी प्रकार साहित्य तथा मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्य, चित्रकला, संगीत का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनमें सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद तथा विरोधी भावों को एक साथ संजोकर प्रस्तुत किया जाता है। हमारे साहित्य में किसी भी विद्या में सुख-दु:ख में समन्वय दिखाया जाता है। इसी तरह उन्नति और अवनति में तथा हर्ष और विषाद जैसे विरोधी भावों में भी समन्वय दिखाकर एक आलौकिक आनन्द में इन सबका अंत हो जाता है। यही आनन्द सबको अपने में विलीन कर देता है। यही साहित्यिक समंवय है। हमारे नाटकों में, कहानियों में और साहित्य में सर्वत्र यही समन्वय दिखता है। हमारे नाटकों में सुख और दु:ख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाए जाते हैं, पर सबका अंत आनन्द में ही किया जाता है। क्योंकि हमारा ध्येय जीवन का आदर्श रूप उपस्थित कर उसे उन्नत बनाना रहा है। इस कारण हमारे प्रयासों में भविष्य की सम्भावित उन्नति की चिंता निहित होती है। इसी कारण हमारे साहित्य में पाश्चात्य शैली के दुखान्त: नाटकों का अभाव पाया जाता है। क्योंकि दु:ख व्यक्ति को अवसादग्रस्त कर देता है और अवसादग्रस्त मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। हमारे नाटकों की विशेषता है कि उनमें दु:ख का भी आनंद से समन्वय करके उसके अवसादी प्रभाव को समाप्त कर दिया जाता है। अपवादस्वरूप कुछ नाटककारों ने दो-चार दु:खान्त नाटकों का प्रणयन अवश्य किया है, परन्तु इन्हें पाश्चात्य आदर्श का अनुकरण मात्र कहा जा सकता है।

लेखक कहता है कि भारतीय साहित्य में आनन्द की भावना अत्यधिक महान् हैं पूर्व में मन ने यदि किसी आनन्द का अनुभव किया है तो उसे स्मरण कर नृत्य मग्न होने के लिए उद्यत रहता है। यद्यपि हिन्दी साहित्य के विकास का समस्त युग विदेशीय तथा विजातीय शासकों का था लेकिन साहित्य ने आनन्द में इस कारण कोई व्यवधान नहीं आया। विदेशी शासकों के अधीन होने के कारण भी कभी समन्वय की भावना को अनदेखा नहीं किया गया। आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने की छटपटाहट दिखाई देती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि सभी कवि एक तरह के हैं उनमें कुछ कवि ऐसे भी हैं जो भारतीय संस्कृति के पोषक हैं और भारतीय साहित्य की धारा को वर्तमान में अक्षुण्ण रख रहे हैं।

थोड़ा सा समझने पर ही साहित्यिक समन्वयवाद का रहस्य हमारी समझ में आ सकता है। अगर हम भारतीय कलाओं का विश्लेषण करें तो उनमें भी समन्वय की भावना दिखाई पड़ती है। लेखक ने सारनाथ की भगवान बुद्ध की प्रतिमा का उल्लेख किया है। भारतीय साहित्य और कलाओं के समन्वय की भावना को देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा होती है। लेखक ने इसका समाधान भारतीय दर्शन के आधार पर किया है। भारत में सभी दर्शनों में आत्मा और परमात्मा में स्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं माना जाता है। दोनों एक ही है, दोनों को सत्, चित् और आनन्द स्वरूप बताया गया है। जीवात्मा द्वारा अपने बालक स्वरूप को पहचानकर आनन्दमय परमात्मा में लीन हो जाना ही मानव-जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

लेखक का मत है कि भारतीय दर्शन में धर्म की इतनी व्यापक व्याख्या की गई है कि उससे जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रह

गया है। धर्म केवल हमारे आध्यात्मिक जीवन पर ही प्रभाव नहीं छोड़ता वरन् सामान्य आचार व्यवहार के अलावा वह हमारे साहित्य को भी अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। हमारे वेदों, पुराणों तथा दूसरे धर्मग्रन्थों में जो कुछ लिखा गया है, उसका प्रभाव सारे समाज के आचार-व्यवहार पर पड़ा है। एक ही ईश्वर की अवधारणा, ब्रह्म विषयक सोच, अवतारों में आस्था या अनेक देवी-देवताओं के प्रति मान्यता संबंधी दृष्टिकोण धर्म-भावना का ही प्रभाव है। यह सब धार्मिक भावों की अधिकता का ही परिणाम है, अर्थात् धार्मिक प्रभाव के कारण हमारा साहित्य आदर्शात्मक अधिक और व्यावहारिक कम है। इस मनोवृति के कारण ही साहित्य में लौकिक जीवन की अनेक रूपता का प्रदर्शन न हो सका।

धार्मिक भावना से प्रेरणा लेकर जिस प्रकार सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई, वह वास्तव में हमारे लिए गौरव की वस्तु है। परन्तु जैसे समाज में धर्म के नाम पर अनेक दोष होते हैं, ऐसे ही साहित्य में भी धर्म के नाम पर अनेक दोष होते हैं। हिन्दी साहित्य में हम ये दोष दो रूपों में देखते हैं, एक तो साम्प्रदायिक कविता एवं नीरस उपदेश तथा दूसरा कृष्ण को आधार बनाकर की गई श्रृंगारी कविता। लेखक कहते हैं कि श्रृंगारी कवियों ने धर्म के नाम राधा-रानी और गिरिधर लाल को आधार बनाकर जो कविताएँ लिखी, उनमें वासना का कलुष स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे वासनाजन्य उद्‌गार समाज का भला नहीं कर सकते, पर उसे बिगाड़ते अवश्य है। यद्यपि कुछ कवियों ने पवित्र भावना एवं शुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति भी की है, तथापि ऐसी कविताएँ बहुत कम है। भक्तिकाल के साहित्य में पवित्र भक्ति का जो ऊँचा आदर्श था, वह आगे चलकर रीतिकाल में शारीरिक वासनाजन्य प्रेम के रूप में बदलकर कलंकित हो गया।

लेखक कहता है कि प्रत्येक देश की जलवायु, दशाओं, स्थिति का प्रभाव वहाँ के साहित्य पर अवश्य पड़ता है। विश्व में सभी देशों की स्थिति एक समान नहीं है, उनमें जलवायु तथा वातावरण का अन्तर होता है। यहाँ कही मरूस्थल, कहीं विस्तृत मैदान, कहीं जलावृत द्वीप तथा कहीं विस्तृत भूखंड है। भारत की रमणीयता के प्रति कवियों का विशेष अनुराग रहा है। यद्यपि प्रकृति प्रत्येक रूप में मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है, परन्तु फिर भी प्रकृति के सुन्दरतम रूपों में मानव का मन अधिक रमता है। अरब देश में सौन्दर्य के नाम पर केवल रेगिस्तान, कुछ साधारण झरने अथवा ताड़ के कुछ लम्बे-लम्बे वृक्ष एवं ऊँटों की चाल ही देखने को मिलती है। यही कारण है उनकी कल्पना मात्र इतने सौन्दर्य तक सीमित रह जाती है। इसके विपरीत भारत में प्रकृति के विभिन्न मनोहारी रूपों में अपूर्व सौन्दर्य के दर्शन होते है जैसे— हिमालय की बर्फ से ढकी पर्वतश्रेणियाँ, उन चोटियों पर पड़ने वाली सुनहरी किरणों से उत्पन्न शोभा, आम के बागों की छाया में बहने वाली छोटी-छोटी नदियाँ, वसन्त की छटा तथा वनों में विचरण करने वाले विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल आदि। भारत के इन रमणीय दृश्यों के समक्ष अरब के सीमित प्राकृतिक सौन्दर्य में केवल नीरसता, शुष्कता और भद्देपन की अनुभूति होती है। भारतीय कवियों को इस सौन्दर्य का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त है यही कारण है कि भारतीय कवि प्रकृति के जितने मार्मिक व सजीव चित्र अंकित करते है वैसे रुखे-सूखे देश के निवासी नहीं कर सकते।

लेखक कहता है कि भारत की प्रकृति में अनन्त सौन्दर्य विद्यमान है। भारतीय कवि प्रकृति के इस सौन्दर्य में तन्मय होकर एक विशेष प्रकार के आनंद कर अनुभव करते हैं और इसी आनंद को अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं। संपूर्ण पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, तारे, ग्रह, उपग्रह, सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, आकाश, अग्नि आदि प्रकृति की नाना वस्तुएँ मनुष्य मात्र के लिए रहस्यमयी बनी हुई है। जिसे जान पाना कठिन है। इनको जानने के लिए दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों ने जिन तत्वों की खोज की है, वे बुद्धि और ज्ञान से सम्बन्धित होने के कारण नीरस है। काव्य सरस है इसलिए हमारे कविगण नीरसता से दूर रहे हैं। इन्होंने बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर प्रकृति के नाना रूपों के पीछे एक अव्यक्त, सजीव सत्ता की कल्पना कर ली।

लेखक कहता है कि प्रकृति के विभिन्न रूपों में मानव-मन की अनुभूतियों को जगाने की सामर्थ्य होती है। प्रकृति के माध्यम से रहस्यवादी भावों को व्यक्त करने की परम्परा हमारे साहित्य की देशगत विशेषता है, जो भारत की मनमोहन प्रकृति से प्रभावित है। ये विशेषताएँ हमारे साहित्य में भावों का समावेश करती है। अंग्रेजी कविता मे इस प्रकार की भिन्नता के आधार पर व्यक्तिगत तथा अव्यक्तिगत भेद किए गए हैं। किन्तु ये भेद कविता के नहीं, उसकी शैली के हैं। ये दोनों कविताएँ कवि के आदर्शों को व्यक्त करती है। भारतीय कवियों ने वर्णात्मक शैली का प्रयोग अधिक किया है। कुछ भक्त कवियों ने नीतिकाव्य का भी सृजन किया है। यहाँ गीतिकाव्यों का अभाव परिलक्षित होता है।

साहित्य की अतिरिक्त विशेषताओं से परिचित होने के लिए हमें उसके शब्द समुदाय पर ध्यान देना पड़ेगा। वाक्य निर्माण के भेदों, अलंकारों, अक्षरों, मात्रिक एवं लघुमात्रिक छन्दों को जानना होगा। ये विभिन्न अन्तर स्पष्ट रूप से प्रत्येक देश के साहित्य में दिखाई पड़ते है।

2. भारतीय साहित्य धर्म से किस प्रकार प्रभावित है?

उ०– धर्म केवल हमारे आध्यात्मिक जीवन पर ही अपना प्रभाव नहीं छोड़ता वरन् सामान्य आचार-व्यवहार के अलावा वह हमारे साहित्य को भी अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। हमारे वेदों, पुराणों तथा दूसरे धर्मग्रन्थों में जो कुछ लिखा गया है, उसका प्रभाव सारे समाज के आचार-व्यवहार पर पड़ा है। एक ही ईश्वर की अवधारणा, ब्रह्म विषयक सोच, अवतारों में आस्था या अनेक देवी-देवताओं के प्रति मान्यता सम्बन्धी दृष्टिकोण धर्म-भावना का ही प्रभाव है। इन भावों की अधिकता ने एक ओर हमारे साहित्य में पवित्र भावनाएँ भरकर जीवन के विषय में गहराई से सोचना सिखाया तो दूसरी ओर इसी कारण से लौकिक

भावों की कमी होने लगी। धार्मिक प्रभाव के कारण हमारा साहित्य आदर्शात्मक अधिक और व्यवहारिक कम है।

3. साहित्य पर जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव क्यों पड़ता है?

उ०– प्रत्येक देश की जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति भिन्न है, जिसका प्रभाव वहाँ के साहित्य पर पड़ता है, जो बहुत स्थायी होता है। स्थानों की प्राकृतिक सुन्दरता भिन्न-भिन्न होती है, कहीं मरूस्थल है, तो कहीं विशाल मैदान तथा कहीं बर्फ से ढकी चोटियाँ। कवि इनका वर्णन अपने साहित्य में करते हैं, जो प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न है इसलिए जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।

4. भारतीय नाटकों का अवसान आनन्द में ही किया जाता है क्यों?

उ०– भारतीय नाटकों में सर्वत्र समन्वय भाव पाया जाता है। सुख और दु:ख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाए जाते हैं, पर सबका अन्त आनन्द में इसलिए किया जाता है क्योंकि इनका ध्येय जीवन का आदर्श रूप उपस्थित कर उसे उन्नत बनाना है। जिससे लोग उससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर ले जाने में सफल हो सके। हमारे प्रयासों में भविष्य की सम्भावित उन्नति की चिन्ता निहित होती है। हमारे नाटकों की विशेषता यह होती है कि उनमें दु:ख का भी आनंद से समन्वय करके उसके अवसादी प्रभाव को समाप्त कर दिया जाता है।

5. भारतीय साहित्य, अंग्रेजी साहित्य से किस प्रकार भिन्न है?

उ०– भारतीय साहित्य में कवि प्रथम पुरुष एवं अन्य पुरुष में काव्य रचनाएँ करते हैं किन्तु इससे उनकी कविता के आदर्शों में भिन्नता नहीं आती और न ही इस आधार पर कविता का वर्गीकरण किया गया है। जबकि अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की विभिन्नता के आधार पर व्यक्तिगत तथा अव्यक्तिगत भेद किए गए है। किन्तु ये भेद कविता के नहीं, उसकी शैली के हैं। दोनों ही कविताएँ कवि के आदर्शों को व्यक्त करती है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

4 आचरण की सभ्यता

(सरदार पूर्णसिंह)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–48 व 49 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. सरदार पूर्णसिंह का जीवन-परिचय देते हुए हिन्दी में उनका स्थान बताइए।

उ०– लेखक परिचय– प्रसिद्ध निबन्धकार सरदार पूर्णसिंह का जन्म 17 फरवरी, सन् 1881 ई० को एबटाबाद, पंजाब के 'सलहड़' नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान अब पाकिस्तान में है। इनके पिता सरदार करतार सिंह भागर सरकारी कर्मचारी थे। कानूनगो पिता को सरकारी कार्य से तहसील में प्राय: घूमते रहना पड़ता था, अत: बच्चों की देखरेख का कार्य प्राय: माता को ही करना पड़ता था। पूर्णसिंह ने मैट्रिक तक की शिक्षा रावलपिण्डी में प्राप्त की तथा लाहौर से इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की। रसायन-शास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए सन् 1900 में ये जापान गए और वहाँ इम्पीरियल यूनिवर्सिटी में तीन वर्ष तक अध्ययन किया। जापान में ही ये स्वामी रामतीर्थ के सम्पर्क में आए। उनके व्याख्यानों से पूर्णसिंह बहुत प्रभावित हुए तथा संन्यास लेकर उन्हीं के साथ वापस भारत आ गए। कुछ समय बाद स्वामी रामतीर्थ की मृत्यु हो गई और पूर्णसिंह के विचार परिवर्तित हो गए। इन्होंने गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लिया और देहरादून के इम्पीरियल फॉरेस्ट इन्स्टीट्यूट में सात सौ रुपए मासिक वेतन पर अध्यापक हो गए। परन्तु अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण ये अधिक समय तक इस नौकरी को नहीं निभा सके। वहाँ से त्यागपत्र देकर ये ग्वालियर चले गए। वहाँ भी ये अपना मन नहीं लगा सके और पंजाब में जड़ाँवाला नामक स्थान पर रहकर कृषि-कार्य करने लगे। क्रान्तिकारियों से भी इनका सम्पर्क रहता था। 'देहली षड्यन्त्र' के अभियोग में मास्टर अमीरचन्द के साथ इन्हें भी पूछताछ के लिए बुलाया गया; लेकिन इन्होंने उनसे अपना सम्बन्ध होना स्वीकार नहीं किया। मास्टर अमीरचन्द स्वामी रामतीर्थ के परम भक्त और इनके गुरुभाई थे। उनके प्राणों की रक्षा के लिए पूर्णसिंह ने न्यायालय में झूठा बयान दिया था। सच्चे अर्थों में ये राष्ट्रीय-जागरण के अग्रदूत व एक महापुरुष थे, जिन्होंने लाक्षणिक एवम् भावात्मक निबन्धों की रचना करके हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व योगदान दिया। 31मार्च, सन् 1931 ई० को यह महान् साहित्यकार मात्र 50 वर्ष की आयु में सदैव के लिए इस असार-संसार से विदा हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– मात्र छह निबन्ध लिखकर ही सरदार पूर्णसिंह हिन्दी-निबन्धकारों की प्रथम पंक्ति में गिने जाते हैं। ये सच्चे अर्थों में एक साहित्यिक निबन्धकार थे। पूर्णसिंह हिन्दी व पंजाबी भाषा के पाठकों में समान रूप से लोकप्रिय हुए। अपने महान् दार्शनिक व्यक्तित्व एवं विलक्षण कृतित्व के लिए ये सदैव स्मरणीय बने रहेंगे। इनके निधन से हिन्दी एवं पंजाबी-साहित्य की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति असम्भव है।

2. सरदार पूर्णसिंह की कृतियों तथा भाषा-शैली का वर्णन कीजिए।

उ०– कृतियाँ– इनकी सबसे अधिक रचनाएँ अंग्रेजी में हैं। पंजाबी भाषा में भी इन्होंने काफी लिखा है। मात्र छ: निबन्धों की रचना करके हिन्दी-गद्य-साहित्य क्षेत्र में आपने प्रसिद्धि प्राप्त की। आपके जो छ: निबन्ध उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. कन्यादान 2. आचरण की सभ्यता 3. सच्ची वीरता 4. मजदूरी और प्रेम
5. पवित्रता 6. अमेरिका का मस्त योगी वॉल्ट ह्विटमैन।

भाषा-शैली– सरदार पूर्णसिंह की भाषा में विषय को मूर्तिमान करने की अद्‌भुत क्षमता है। एक सफल चित्रकार की भाँति ये शब्दों की सहायता से एक परिपूर्ण चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, किन्तु इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ फारसी और अंग्रेजी के शब्द भी यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं। इन्हें किसी शब्द-विशेष से मोह नहीं है। ये तो उसी शब्द का प्रयोग कर देते हैं, जो शैली के प्रवाह में स्वाभाविक रूप से व्यक्त हो जाता है।

सरदार पूर्णसिंह की शैली की अपनी विशेषताएँ हैं इसे उनकी निजी शैली भी कह सकते हैं। इनकी शैली में भावात्मक, वर्णनात्मक और विचारात्मक शैलियों का मिला-जुला रूप मिलता है। सरदार पूर्णसिंह ने प्राय: भावात्मक निबन्ध लिखे हैं, इसीलिए उनकी शैली में भावात्मकता और काव्यात्मकता मिलती है। यहाँ तक की इनके विचार भी भावुकता में लिपटे हुए दृष्टिगत होते हैं। विषय की गम्भीरता के साथ इनकी शैली में विचारात्मकता का गुण भी देखने को मिलता है। ऐसे स्थानों पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है और वाक्य भी लम्बे हो गए हैं। पूर्णसिंह जी द्वारा प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली अपेक्षाकृत अधिक सुबोध और सरल है। इसमें वाक्य छोटे-छोटे हैं और विषय का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है। यह शैली अधिक प्रभावमयी और हृदयग्राहिणी भी है। अपने कथन को स्पष्ट करने से पहले पूर्णसिंह उसे सूत्र में कह देते हैं और फिर उसकी व्याख्या करते हैं। इनके ये सूत्र-वाक्य सूक्तियों का-सा आनन्द प्रदान करते हैं। पूर्णसिंह जी के निबन्धों के विषय प्राय: गम्भीर हैं, फिर भी इनमें हास्य और व्यंग्य का पुट आ ही गया है।

पूर्णसिंह जी अपनी शैली में कोई साधारण वाक्य लिखकर, उससे मिलते-जुलते कई वाक्य उपस्थित कर देते हैं। इससे इनकी शैली अधिक मनोरम हो गई हैं। ये अपनी शैली में अपनी भावनाओं का चित्रण रहस्यमय ढंग से करते हैं। इसके लिए इन्होंने शब्दों की लाक्षणिक शक्ति का आश्रय लिया है। परिणामस्वरूप इनकी शैली भावों का भण्डार बन गई है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) विद्या, कला, कविता ..... हो जाता हैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'सरदार पूर्णसिंह' द्वारा लिखित 'आचरण की सभ्यता' नामक निबंध से उद्‌धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने आचरण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है और इसे ही सर्वोत्तम बताया है।

व्याख्या– सरदार पूर्णसिंह का कहना है कि आचरण की सभ्यता विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन-सम्पदा और राज-पद से अधिक प्रकाशयुक्त है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करने वाला एक निर्धन मनुष्य भी राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है; अर्थात् अपने सदाचरण से उन्हें प्रभावित करता है और सम्मान का पात्र बन जाता है। आचरण में अपूर्व शक्ति है, जो व्यक्ति को कुछ से कुछ बना देती है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में आचरण का पालन करता हो और कला, साहित्य व संगीत में भी रुचि रखता हो तो मात्र आचरण की पवित्रता के कारण ही उसे इन कलाओं में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हो जाती है। उसके इन गुणों में चार चाँद लग जाते हैं। आचरण के कारण ही उसका स्वर अधिक मधुर हो जाता है, उसके ज्ञान का तीसरा नेत्र खुल जाता है अर्थात् व्यक्ति प्रकाण्ड ज्ञानवान् हो जाता है और चित्रकार के चित्र मुख से कुछ न कहते हुए भी सब कुछ कह देते हैं उस समय एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि बोलने वाला अर्थात् वक्ता कुछ नहीं कह पाता और लिखने वाले की लेखनी भी रुक जाती है। आशय यह है कि आचरण की सभ्यता के प्रभाव को वाणी या लेखनी दोनों के द्वारा ही अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। आचरण की सभ्यता से युक्त मूर्तिकार के सम्मुख सदैव नयी छवि उपस्थित रहती है, जिसके समस्त अंग-प्रत्यंग नवीन होते हैं और उसे चहुँ ओर नवीनता के ही दर्शन होते हैं। आशय यह है कि व्यक्ति आचरण की सभ्यता के कारण सृजनात्मक एवं रचनात्मक कार्यों में अपने को लगा देता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली। **(2) शैली–** कवित्वपूर्ण एवं भावात्मक। **(3) वाक्य– विन्यास–** सुगठित। **(4) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(ख) आचरण की सभ्यतामय ..... अंग हो जाता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने अत्यधिक प्रभावी ढंग से आदर्श आचरण के महत्व का प्रतिपादन किया है। लेखक को 'कथनी' से ज्यादा 'करनी' में विश्वास है।

व्याख्या– आचरण की भाषा का कोई लिखित ग्रन्थ नहीं है और न ही उसका कोई शब्दकोष उपलब्ध है। आचरण की भाषा सदैव मूक रहती है और उसका प्रयोग व्यवहार के माध्यम से ही किया जा सकता है। आचरण के कोश में नाममात्र के लिए भी शब्द नहीं है। वस्तुत: उसके सभी पृष्ठ पूरी तरह कोरे है। इसकी ध्वनि मूक है। सभ्यता का आचरण स्वयं को व्यक्त करता हुआ भी अव्यक्त और मौन रहता है; आकर्षक राग गाता हुआ भी राग के अन्दर विद्यमान रहता है। इसके मीठे वचनों में उसी प्रकार की मूक भावना पाई जाती है, जिस प्रकार किसी बच्चे की तोतली बोली में एक आकर्षक मौन छिपा रहता है। उसकी बोली स्पष्ट न होने पर भी उसकी सभी बातें स्पष्ट हो जाती है। सभ्य आचरण के चार प्रमुख व्याख्यान हैं- नम्रता, दया, प्रेम और उदारता। व्यवहार में लाने पर इन तत्वों का जितना अधिक और स्थायी प्रभाव पड़ता है, उतना इन तत्वों के वर्णन से नहीं पड़ सकता। इस प्रकार आचरण की भाषा मौन होकर भी आत्मा का एक अनन्य अंग बन जाती है; अर्थात् सदाचरण मनुष्य की आत्मा को स्थायी रूप से प्रभावित करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने अत्यन्त सशक्त रूप में आचरण के प्रभाव को दर्शाया है। **(2) भाषा–** आलंकारिक एवं प्रवाहमयी। **(3) शैली–** कवित्वपूर्ण एवं भावात्मक। **(3) वाक्य–** विन्यास- सुगठित। **(4) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **(5) विचार-सौंदर्य–** उपदेशों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना शिष्ट एवं उदार व्यवहार का पड़ता है।

(ग) मौनरूपी व्याख्यान ..... घुसकर देखो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आचरण में निहित मौन भाषा की तुलना सामान्य भाषा से करते हुए लेखक ने उच्च आचरण की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

व्याख्या– आचरण की मौन भाषा का सम्बन्ध हृदय अथवा आत्मा से है। आचरण के मौन कथन का महत्व बहुत अधिक है। इसकी भाषा बहुत शक्तिशाली, अर्थयुक्त और प्रभावशाली होती है। इसके प्रभाव और बल के समक्ष कोई भी मातृभाषा, साहित्य की भाषा अथवा किसी भी देश की भाषा कमजोर ही सिद्ध होती है। संसार की प्रत्येक लौकिक भाषा की तुलना में आचरण की मौन भाषा का अलौकिक स्थान है। इसका कारण यह है कि संसार की अन्य भाषाएँ तो मनुष्य द्वारा निर्मित हैं, जबकि आचरण की भाषा प्राकृतिक है। यदि थोड़ा-सा भी विचार करके देखें तो पाएँगे कि आचरण की मौन भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में हमारे हृदय पर पड़ता है। इसका रूप भले ही प्रकट न हो, किन्तु सम्बन्धित व्यक्ति पर इसका चुम्बकीय प्रभाव अवश्य पड़ता है। वस्तुत: वही कथ्य व्याख्यान कहलाने का अधिकारी होता है, जो सबके हृदयों की सोच, लगन ओर मन के लक्ष्य का परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य रखता हो। इस मौन व्याख्या का महत्व व्यक्ति को तब दृष्टिगत होता है, जब वह पूर्ण गंभीरता के साथ अपने अथवा किसी दूसरे के आचरण की तटस्थ विवेचना करता है। उस समय व्यक्ति को अनुभव होता है, मानो उसकी नाड़ी की एक-एक धड़कन उसके हृदय में आचरण की महत्ता के एक-एक फूल को पिरोकर उसे अलंकृत कर देना चाहती है। चन्द्रमा की मौन हँसी तथा तारों का मौन कटाक्ष का प्रभाव तभी लगाया जा सकता है, जब किसी कवि के दिल में घुसकर देखा जाएँ कि इतना मौन व्यवहार एक कवि के मन में कितने भाव उत्पन्न करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) यहाँ मानवीय प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। **(2)** हृदय से किया गया सद्व्यवहार निश्चय की दिव्य और ईश्वरीय होता है। **(3)** यहाँ संसार की लिखित भाषाओं और आचरण की मौन भाषा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। **(4) भाषा–** परिष्कृत, प्रवाहमयी और आलंकारिक। **(5) शैली–** भावात्मक। **(6) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(7) शब्द-चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

(घ) बर्फ का दुप्पटा ..... पर जमा दे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने स्पष्ट किया है कि आचरण का निर्माण आकस्मिक रूप में नहीं होता, वरन् लम्बी और कठिन साधना के पश्चात् ही आचरण की सभ्यता का निर्माण ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार प्रकृति ने शताब्दियों की साधना के बाद हिमालय का निर्माण किया है।

व्याख्या– जिस प्रकार हिमालय अपने सिर पर बर्फरूपी साफा बाँधकर अपने महिमामय स्वरूप की घोषणा करता है और जिस प्रकार अपनी ऊँची चोटी पर पवित्र कलश यात्रा धारण करने वाला मन्दिर अपनी दिव्यता का उद्घोष करता है, उसी प्रकार आचरण भी महिमामय और दिव्य होता है। जिस प्रकार हिमालय और ऊँचे मन्दिर का निर्माण एक दिन में नहीं हो सकता, उसी प्रकार श्रेष्ठ आचरण भी लंबी साधना के पश्चात् ही प्राप्त होता है। श्रेष्ठ आचरण का निर्माण किसी मदारी या जादूगर द्वारा, दर्शकों को धोखा देकर क्षणभर में उगाए हुए आम के वृक्ष की भाँति नहीं होता, इसके निर्माण में शताब्दियों का समय लगता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– लालित्यपूर्ण आलंकारिक। **(2) शैली–** भावात्मक शैली में आचरण की तुलना हिमायल एवं मंदिर से की गई है। **(3) वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **(4) शब्द चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

(ङ) किसी का आचरण ..... अर्थ नहीं रखते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने स्पष्ट किया है कि किसी महापुरुष के सदाचरण अथवा किसी आकस्मिक व्यक्तिगत अनुभूति के प्रभावस्वरूप ही व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होता है।

व्याख्या– लेखक ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य का आचरण किसी भी परिस्थिति के झोंके से टकराकर बदल सकता है, किन्तु साहित्य एवं उपदेशात्मक शब्दों के लगातार प्रयोग मनुष्य के आचरण पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। हाँ, किसी भी आकस्मिक अनुभूति से आचरण अवश्य प्रभावित हो सकता है। आचरण का यह प्रभाव वैसे ही होता है, जैसे फूल की पंखुडियों के स्पर्श से आनन्दपूर्ण रोमांच उत्पन्न हो जाता है या जल की शीतलता क्रोध एवं विषय-वासना को शांत कर देती है या सूर्य की किरणें सोए हुए जीव को जगा देती हैं, परन्तु आचरण के लिए कोई उपदेश अथवा कोई नीतिवाक्य ठीक वैसा ही निरर्थक होता है, जैसे अंग्रेजी भाषा में कारलायल जैसे विद्वान का लिखा हुआ व्याख्यान भी बनारस के पण्डितों के लिए व्यर्थ के शोरगुल से अधिक कुछ भी नहीं होगा। उसी प्रकार ज्ञानहीन लोगों के लिए भाप के इंजन से निकलने वाली फप-फप की आवाज कुछ नहीं है। ये आवाज तो इसका अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों के लिए अर्थ रखती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में सटीक उदाहरणों का प्रयोग करके आचरण को प्रभावित करने वाले तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। **(2) भाषा–** लालित्यपूर्ण और साहित्यिक। **(3) शैली–** भावात्मक। **(4) विचार-सौन्दर्य–** प्रकृति से तो सदाचरण की प्रेरणा मिल सकती है, परन्तु उपदेशों से नहीं।

(च) मनुष्य का जीवन ..... लिप्त रहे हों।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में न केवल अच्छे विचार एवं व्यवहार ही सहायक होते हैं, वरन् बुरे विचार, बुरे आचरण, दु:खद स्थितियाँ आदि भी व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

व्याख्या– लेखक के अनुसार मानस के विशाल जीवन में सभी प्रकार के अच्छे और बुरे कारक उसके आचरण का निर्माण करने में सहायक होते हैं। सभी प्रकार के ऊँच-नीच व भले-बुरे की भावना पर आधारित विचार, धनाढ्यता व निर्धनता की स्थिति तथा उन्नति व अवनति आदि का, व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बुरे विचार प्रत्येक स्थिति में अहितकर सिद्ध नहीं हुआ करते; अर्थात् अपवित्रता में भी आचरण के विकास की सम्भावना विद्यमान रहती है। जो पाप जान-बूझकर नहीं किया गया हो, उस पाप को करने वाला यदि प्रायश्चित करके महान् बन सकता है तो इस दृष्टि से अपवित्रता का भी उतना ही महत्व है जितना कि पवित्रता का; प्रारंभ में अपवित्रता का भाव रखने वाला व्यक्ति यदि बाद में पवित्रता पर आधारित जीवन व्यतीत करने लगता है तो उसे पवित्रता की शक्ति की गहन अनुभूति होनी प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार इस संसार में जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह आचरण के निर्माण की दृष्टि से सहायक ही सिद्ध हो रहा है। व्यक्ति की आत्मा भी सामान्यत: उसे उन्हीं कार्यों को करने के लिए प्रेरित करती है, जो बाह्य पदार्थों के संयोग के प्रतिबिम्बित होते हैं। जिन व्यक्तियों को हम पवित्रात्मा कहते हैं, वे न मालूम कितनी अपवित्रताओं को त्यागकर ही पवित्र बन सके हैं। जिन व्यक्तियों को हम सभ्य कहते हैं तथा जिनके जीवन में पवित्रता ही सब कुछ है क्या मालूम पूर्व में वह किन-किन बुरे और अपवित्र कर्मों में लिप्त रहा हो।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में अच्छाई एवं बुराई दोनों का ही सापेक्ष महत्व बताया है। **(2) भाषा–** सरस साहित्यिक एवं प्रवाहमयी। **(3) शैली–** भावात्मक एवं लाक्षणिक। **(4) वाक्य विन्यास–** सुगठित **(5) शब्द चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप **(6) विचार सौन्दर्य–** सभी अच्छे बुरे विचारों को आचरण के विकास में सहायक माना गया है। **(7) भावसाम्य–** नीत्शे ने भी कहा है कि, ''जिन्हें आकाश की ऊँचाइयाँ छूनी हों, उन्हें पाताल की गहराईयों से भी परिचित होना पड़ता है।''

(छ) वह आचरण जो ..... गौरवान्वित नहीं करता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने आचरण की महत्ता पर बल देते हुए कहा कि धर्म और सम्प्रदाय; प्रेमपूर्ण आचरण के अभाव में परस्पर द्वेष, हिंसा और अत्याचार ही फैलाते हैं।

व्याख्या– लेखक कहता है कि संसार में अनेक धर्म और सम्प्रदाय हैं। उन सभी के धर्म-ग्रन्थों में अनेकानेक उपदेश भरे हैं, किन्तु उनके अनुयायी उन उपदेशों के अनुरूप आचरण नहीं करते। लोग किसी धर्म का आचरण करते समय उसकी बाहरी क्रियाओं पर तो ध्यान देते हैं, पर उसके वास्तविक उपदेशों की ओर ध्यान नहीं देते। धर्म की बाहरी

क्रियाएँ धर्म का असली स्वरूप नहीं हैं। धर्म-ग्रन्थों में उपदेशों से भी कुछ बातें हैं, जिन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ये बातें सभ्य आचरण से संबंधित हैं। सभ्य आचरण के अभाव में हमारे तथाकथित धर्म और सम्प्रदाय हमारे मन में विद्वेष और घृणा उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे रहे हैं। चारों ओर हिंसा और अत्याचार का बोलबाला रहा है। मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम नहीं; क्योंकि हमारे हृदय में पवित्रता नहीं है। मनुष्य किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय का अनुयायी बनकर महान् नहीं होता, वह अपने अच्छे आचरण से ही महान् बनता है; अत: किसी धर्म को धारण करने से किसी व्यक्ति का सम्मान नहीं होता है, किन्तु आचरणशील मनुष्य को पाकर ही कोई धर्म गौरवान्वित होता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** वही धर्म श्रेष्ठ है, जो सभ्य आचरण सिखाता है। **(2)** प्रेमपूर्ण आचरण के अभाव में बाहरी कर्मकाण्ड पर आधारित धर्म आपसी द्वेष, घृणा और हिंसा उत्पन्न करते हैं। **(3)** मनुष्य का महत्व आचरण के कारण होता है, धर्म के कारण नहीं। **(4) भाषा–** साहित्यिक, संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली। **(5) शैली–** भावात्मक।

(ज) आचरण का विकास ..... स्वयं ही बनाई थी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक की मान्यता है कि आचरण का विकास करना ही हमारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए। उस व्यक्ति के लिए कोई भी धर्म अथवा सम्प्रदाय कल्याणकारी नहीं हो सकता, जो सदाचरण से रहित है।

व्याख्या– मानव जीवन की उन्नति के लिए आचरण का विकास परम आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महान् उद्देश्य आचरण का विकास ही होना चाहिए। आचरणहीन व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए उन्नत जीवन के लिए आचरण का विकास करना ही होगा। व्यक्ति अथवा संपूर्ण मानव-जाति के आचरण को विकसित करने के लिए शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। आचरण के विकास के लिए हमें उन सभी कर्मों को धर्म के अंतर्गत स्वीकार करना होगा, जो आचरण का विकास करते हैं। तात्पर्य यह है कि आचरण के विकास की जो प्रणाली है, उसे धर्म के अंतर्गत स्वीकार करके ही हम जीवन-पथ पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो सकते हैं। यहाँ लेखक ने महात्मा गाँधी जैसे महान् पुरुषों का उदाहरण देते हुए कहा है कि ऐसे महात्मा किसी पूर्व निर्मित सड़क के द्वारा अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचे अपितु उन्होंने अपने आचरण से स्वयं ही अपना मार्ग प्रशस्त बनाया।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने आचरण के विकास हेतु आवश्यक साधनों पर प्रकाश डाला है। **(2) भाषा–** परिष्कृत एवं परिमार्जित। **(3) शैली–** विचारप्रधान एवं विवेचनात्मक। **(4) भाव-साम्य–** महाभारत में भी कहा गया है कि ''चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। चरित्र से हीन व्यक्ति मृतक तुल्य है।''

(झ) जब साहित्य, संगीत ..... उसे जगा सका।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ लेखक ने आचरण को मानव-उन्नति का कारण बताते हुए, विलासिता को मानव के पतन का कारण बताया है।

व्याख्या– रोमवासी बहुत परिश्रमी और वीर थे और अपने देश की रक्षा के लिए निरन्तर सन्नद्ध रहते थे। उनका जीवन घोड़ों की पीठ पर बैठे-बैठे ही व्यतीत होता था, किन्तु जब से रोमवासियों में आलस्य की प्रवृत्ति पनपी, जब वे केवल संगीत, साहित्य और कला में डूब गए, जब उन्होंने घोड़ों की पीठ को त्याग दिया और जब जंगलों तथा पहाड़ों की स्वच्छ वायु में व्यतीत होने वाले कठोर जीवन से उनका मन फिर गया, तभी से रोमवासियों का पतन प्रारंभ हो गया। रोम विषय-भोग में ऐसा डूबा, आलस्य में ऐसा सोया कि कि आज तक उससे मुक्त न हो सका।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** लेखक ने कर्मठता को उन्नति एवं विलासिता को अवनति का कारण बताते हुए चरित्र और आचरण में कर्मठता को महत्व देने की प्रेरणा दी है। **(2) भाषा–** प्रभावपूर्ण एवं परिमार्जित। **(3) शैली–** विचारप्रधान एवं विवेचनात्मक।

(ञ) आचरण का रेडियम ..... वह मिल सकता है?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने आचरण को बहुत मूल्यवान् और परिश्रम-साध्य बताया है। इस बहुमूल्य आचरण की प्राप्ति कठोर साधना और दृढ़ इच्छा शक्ति से होती है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार रेडियम एक बहुमूल्य और प्रकाशयुक्त धातु होती है, जिसे बड़े प्रयत्न से प्राप्त किया जाता है। हमारा आचरण भी रेडियम की तरह बहुत मूल्यवान और प्रकाशवान है। आचरण चाहे किसी व्यक्ति विशेष का हो, चाहे समाज का और चाहे विश्व समुदाय का; उसका निर्माण बड़ी कठिनाई और परिश्रम से होता है। जैसे रेडियम का एक कण समुद्र के अत्यधिक जल को उड़ाकर हाथ लगता है, उसी प्रकार सत् आचरण की प्राप्ति भी सारी प्रकृति को खाक बनाए बिना, उसे भाप बनाकर उड़ाए बिना नहीं होती है। वेदान्तशास्त्रियों के समान सृष्टि को मिथ्या या माया कहने से हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। आचरण की प्राप्ति के लिए तो प्रकृति की आन्तरिक स्थिति में प्रवेश कर अपने अहं को मिटाकर, आचरण के तत्व को निकालकर मिथ्या प्रकृति को उड़ा देना होगा। तात्पर्य यह है कि प्रकृति में जो सारभूत तत्व है, उसे ग्रहण कर असार तत्व को छोड़ देना है, किन्तु यह काम सरल नहीं है। यह समुद्र मन्थन जैसा दुष्कर और कष्टसाध्य काम है। जब देवताओं और राक्षसों ने

समुद्र को मथा, तब कहीं थोड़ा-सा अमृत मिल पाया था। ठीक इसी तरह सारे विश्व के कण-कण को टटोलने के बाद आचरणरूपी स्वर्ण बहुत कम मात्रा में मिल सकेगा। आलसियों के लिए तो आचरण प्राप्ति की कल्पना भी असंभव है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) आन्तरिक प्रकृति से तात्पर्य दया, शील, स्नेह, करुणा आदि सद्गुणों तथा मिथ्या प्रकृति से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकारों से है। **(2) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक और अलंकृत। **(3) शैली–** आलंकारिक, विवेचनात्मक और कवित्वपूर्ण। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(ट) हिन्दुओं का संबंध ..... ओर जा रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने आचरण एवं समाज के उत्थान के लिए कठोर भौतिक कर्तव्यों की पृष्ठभूमि के महत्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– लेखक सरदार पूर्णसिंह जी का कहना है कि हिन्दुओं की अवनति का मुख्य कारण उनको अतीत का गौरव में खोए रहना है।

यदि उनका सम्बन्ध किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ होता तो उनके वर्तमान वंश में भी ऐसे मनुष्य होते जो अधिक बलशाली होते। इनमें ऋषि भी होते और पराक्रमी वीर भी, सामान्य भी होते तो धैर्यशाली वीर पुरुष भी। परन्तु आजकल हिन्दू लोग अपना पूर्वज ऋषियों; जिनकी गाथाएँ उपनिषदों-पुराणों में उपलब्ध हैं; के पवित्र और प्रेम-जीवन को जानकर अहंकार के भाव से भरे हुए प्रसन्न हुए जा रहे हैं। लेकिन उनके त्यागयुक्त जीवन का अनुकरण करने की शक्ति इनमें दिखाई नहीं पड़ रही है। इसी का परिणाम है कि ये दिन-प्रतिदिन पतन के गर्त में गिरते जा रहे हैं और इन्हें अपने उत्थान के लिए भी कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने रेडियम के रूपक के माध्यम से, आचरण के महत्व को स्पष्ट किया है। **(2) भाषा–** साहित्यिक और परिष्कृत। **(3) शैली–** विवेचनात्मक।

(ठ) आचरण की सभ्यता ..... मनुष्य का स्वदेश है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक द्वारा आचरण का स्वरूप और उसका व्यापक क्षेत्र स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या– आचरण की सभ्यता की अपनी निराली विशेषता होती है, उसमें किसी प्रकार का द्वन्द्व, वैर या विरोध नहीं होता। शरीर, मन और मस्तिष्क में शांति रहती है। उसमें न तो विद्रोह का भय होता है और न ही युद्ध की चिन्ता सर्वत्र सुख-शांति का राज्य रहता है। वहाँ ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी का भी भेदभाव देखने को नहीं मिलता, अपितु एक आनन्दमय समरसता के दर्शन होते हैं; प्रेम और एकता का साम्राज्य होता है। वहाँ ईश्वरीय भावों से परिपूर्ण मानव-प्रेम को ही महत्व दिया जाता है।

आचरण की ऐसी सभ्यता जब आती है, तब नीले आकाश से वेदमन्त्र सुनाई देते हैं, ज्ञान का सूर्योदय होता है और विकसित कमल के समान नर-नारियों के हृदय खिल जाते हैं। उनके हृदय में ईर्ष्या, घृणा, द्वेष और शत्रुता के भाव लुप्त हो जाते हैं और उनके हृदय करूणा, प्रेम, उदारता आदि सद्भावों से भर जाते हैं। चारों ओर प्रभात जैसा सरस और सुखद वातावरण व्याप्त हो जाता है। नारद जी की वीणा का मधुर और मोहक स्वर सुनाई देने लगता है, ध्रुव के शंख की ध्वनि वातावरण को आनंद से भर देती है और प्रह्लाद का नृत्य हमारे जीवन में उल्लास भर देता है। शिव का डमरू चेतना उत्पन्न कर देता है और कृष्ण की बाँसुरी का मधुर स्वर प्रेम। जहाँ ऐसी ध्रुव-धीरता हो, ऐसा प्रेम, सद्भाव और आत्मीयता हो तथा जहाँ ऐसी समरसता और आह्लाद हो, वही आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) आचरणशील देश में प्रेम और सद्भाव का वातावरण रहता है। लड़ाई-झगड़े, ऊँच-नीच और अमीरी-गरीबी का भेदभाव नहीं होता। **(2)** आचरण की सभ्यता से प्रेम, उल्लास, स्फूर्ति और पवित्रता का वातावरण व्याप्त हो जाता है। **(3)** प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक के उदात्त विचारों का प्रकाशन हुआ है। **(4) भाषा–** सरल, सहज और सरस खड़ी बोली। **(5) शैली–** काव्यमयी, अलंकृत और भावात्मक। **(6) उपमा-विधान–** विभिन्न प्रकार की उपमाओं का प्रयोग लेखक ने ऐसे सुन्दर ढंग से किया है कि भाषा का प्रवाह कहीं भी अवरुद्ध नहीं होता।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) आचरण की सभ्यता मय भाषा सदा मौन रहती है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'सरदार पूर्णसिंह' द्वारा लिखित 'आचरण की सभ्यता' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में सहृदय लेखक ने अत्यधिक प्रभावी ढंग से आदर्श आचरण के महत्व का दिग्दर्शन कराया है। लेखक को 'कथनी' से ज्यादा 'करनी' में विश्वास है।

व्याख्या– आचरण की भाषा का कोई लिखित ग्रन्थ नहीं है और न ही उसका कोई शब्दकोश। आचरण की भाषा सदैव मूक रहती है और इसका प्रयोग व्यवहार के माध्यम से ही किया जाता है। आचरण के कोश में नाममात्र के लिए भी कोई शब्द नहीं

है। वस्तुत: उसके सभी पृष्ठ पूरी तरह कोरे हैं। इसकी ध्वनि मूक है। सभ्यता का आचरण स्वयं को व्यक्त करता हुआ भी अव्यक्त और मौन रहता है तथा आकर्षक राग गाता हुआ भी राग के अन्दर ही विद्यमान रहता है। इसके मीठे वचनों में उसी प्रकार की मूक भावना निहित रहती है, जिस प्रकार किसी बच्चे की तोतली बोली में एक आकर्षक मौन छिपा रहता है। बोली स्पष्ट न होने पर भी उस बच्चे की सभी बातें स्पष्ट हो जाती है।

(ख) आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि सदाचारी व्यक्ति का ही दूसरों के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

व्याख्या– लेखक का मत है कि सदाचार सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करने से अथवा उपदेशकों के व्याख्यान सुनकर कोई भी व्यक्ति सदाचारी नहीं बन सकता। यदि कोई व्यक्ति आदर्श आचरण करता है तो ऐसे सदाचारी व्यक्ति का आचरण, दूसरों को अवश्य प्रभावित करता है। ऐसा व्यक्ति अपने मुख से कुछ भी न कहे तो भी उसके आचरण से सम्बन्धित विभिन्न क्रिया-कलाप, मौन रूप से दूसरों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार शब्द की अपेक्षा व्यक्ति का आचरण ही दूसरों को प्रेरित करने तथा उनके जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की दृष्टि से अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है।

(ग) सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक का कहना है कि सदाचरण से निर्जीव में भी जीवन का संचार हो जाता है।

व्याख्या– सरदार पूर्णसिंह ने आचरण की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि बड़ी-बड़ी बातें करना, पुस्तकें लिखना, दूसरों को उपदेश देना आदि आसान बातें हैं, किन्तु ऊँचे आदर्शों को अपने आचरण में उतारना अत्यन्त कठिन है। सामान्यजन पर सबसे अधिक प्रभाव सभ्य आचरण का ही पड़ता है। परिश्रम, प्रेम और सरल व्यवहार ही इसका पैमाना है। यदि कोई व्यक्ति ऐसा आचरण करता है तो वह दूसरों को प्रभावित अवश्य करता है। ऐसा व्यक्ति यदि अपने मुख से कुछ भी नहीं कहता, तो भी उसके मौन का प्रभाव दूसरों पर अवश्य पड़ता है और नये-नये विचार स्वत: ही स्पष्ट होने लगते हैं। निर्जीव पेड़-पौधे में भी जीवन का संचार हो जाता है; अर्थात् वे हरे-भरे दिखाई देने लगते हैं और सूखे कुओं में भी जल भर जाता है। लेखक के कहने का आशय यह है कि व्यक्ति का सदाचरण ही दूसरों को प्रेरित करने, उनके जीवन में उचित परिवर्तन करने की दृष्टि से अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है।

(घ) प्रेम की भाषा शब्दरहित है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक के विचार से प्रेम और सदाचरण मौन स्थिति में ही अपना प्रभाव डालते हैं। इन्हें प्रकट करने के लिए किसी भाषा की आवश्यकता नहीं होती।

व्याख्या– प्रेम को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रेम तो मानव के व्यवहार और उसकी चेष्टाओं से ही प्रकट हो सकता है। हमारे ललाट की रेखाएँ, हमारे नेत्र और हमारे कपोल अपनी भिन्न-भिन्न मुद्राओं से हमारे हृदय के भावों को व्यक्त कर देते हैं। जीवन का सार-तत्व भी शब्दों की सीमा से परे हैं, उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। मानव का सदाचार न तो लम्बे-लम्बे व्याख्यानों से प्रकट किया जा सकता है और न किसी धार्मिक क्रिया के माध्यम से ही उसे व्यक्त किया जा सकता है।

(ङ) आचरण भी हिमालय की तरह ऊँचे कलश वाला मन्दिर है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– सरदार पूर्णसिंह ने प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में आचरण सम्बन्धी कतिपय विशिष्ट गुणों का उल्लेख करने के लिए आचरण की तुलना हिमालय से की है।

व्याख्या– हिमायल का निर्माण धीरे-धीरे बहुत समय में हुआ है; अत: उसका स्थायित्व विश्वसनीय है। हिमालय सर्वोच्च है और मन्दिर के समान पवित्र भी। बर्फ की चोटियों से ढका हिमालय अत्यन्त सुन्दर है। आचरण भी दीर्घकाल में निर्मित होने वाले मानव-व्यक्तित्व के महान् एवं पवित्र ऊँचे कलश वाले मन्दिर की भाँति है, अत: वह हिमालय के समान ही स्थायी और विश्वसनीय है।

(च) पुस्तकों में लिखे हुए नुस्खों से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ लेखक ने यह स्पष्ट कने का प्रयास किया है कि मनुष्य के आचरण के निर्माण में धर्मोपदेश तथा शास्त्र-वचनों का कोई विशेष महत्व नहीं होता।

व्याख्या– आदर्श आचरण का विकास पुस्तकों में लिखे नियमों अथवा उपदेशों के अध्ययनमात्र से सम्भव नहीं है; क्योंकि

पुस्तकें भाषा पर आधारित होती हैं और उनमें दी गई विषय-वस्तु तर्क-वितर्क पर, जबकि आचरण में न तो तर्क-वितर्क का महत्व है और न ही पुस्तकीय भाषा का। यहाँ तो केवल व्यक्ति का व्यवहार ही आचरण की भाषा का काम करता है। शब्दों पर आधारित पुस्तकें तो साधारण जीवन व्यतीत करने वालों को ही सन्तुष्ट कर सकती हैं, सभ्य आचरण के निर्माण में इनका कोई विशेष महत्व नहीं होता। पुस्तकों में निहित वह ज्ञान व्यक्ति के जीवन में और अधिक भ्रान्ति उत्पन्न कर उसे भटका देता है।

(छ) आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति-वाक्य में आचरण को जीवन का परम उद्देश्य बताकर उसकी महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में कहा है कि मानव-जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य चरित्र का विकास करना है। इसके लिए हमें प्रकृति से, हृदय से, शरीर से और आध्यात्मिक जीवन से जो कुछ भी पोषक तत्व मिलें, उन्हें संग्रहीत करना चाहिए। इसके बाद अपनी विशिष्ट रीति से अपने आप को ढालकर आदर्श बनाना चाहिए। आचरणहीन व्यक्ति कदापि उन्नति नहीं कर सकता, अतएव उन्नत जीवन के लिए आचरण का विकास करना ही होगा।

(ज) पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती हैं, जितनी कि पवित्र पवित्रता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में आचरण का निर्माण करने वाले तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– सरदार पूर्ण सिंह ने प्रस्तुत सूक्ति में बताया है कि अपवित्रता में भी आचरण के विकास की संभावना विद्यमान रहती है। मनुष्य के विशाल जीवन में आचरण के विकास में नाना प्रकार के ऊँच-नीच और भले-बुरे विचार, अमीरी-गरीबी, उन्नति-अवनति ये सभी बातें सहायता पहुँचाती हैं आचरण के विकास में पवित्र पवित्रता जो सहायता देती है, वही सहायता पवित्र अपवित्रता भी देती है। गरीब और निम्न कुल में पले और निम्न कार्यों को करने वाले व्यक्ति भी अपने आचरण का उसी प्रकार विकास कर सकते हैं, जिस प्रकार ऊँचे कुल में पले अमीर एवं उच्च कार्यों को करने वाले व्यक्ति करते हैं। मनुष्य चाहे जिस परिस्थिति में पला हो, वह अपने आचरण का विकास कर सकता है। जिस प्रकार कोयला सैकड़ों वर्षों तक जमीन में दबे रहने के पश्चात् हीरे का रूप ले लेता है, उसी प्रकार व्यक्ति की चेतना भी क्रमश: पवित्र होती रहती है।

(झ) संसार की खाक छानकर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक का मत है कि सारे विश्व की खाक छानने पर ही मनुष्य को मूल्यवान् आचरण का एक-आध कण प्राप्त हो पाता है।

व्याख्या– जिस प्रकार स्वर्ण क्षेत्र के अपरिमित धूल-कणों को छानने के बाद थोड़े-से स्वर्ण की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व की खाक छानने पर ही मनुष्य को आचरणरूपी मूल्यवान् स्वर्ण प्राप्त हो सकता है। निश्चय ही आलस्य में बैठे रहने पर हम आचरण को प्राप्त नहीं कर सकते। वस्तुत: इसके लिए कठोर एवं सतत् परिश्रम अपेक्षित है।

(ञ) मानसिक सभ्यता के होने पर ही आचरण-सभ्यता की प्राप्ति सम्भव है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में आचरण की सभ्यता के विकास हेतु मानसिक सभ्यता की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

व्याख्या– लेखक ने अनुसार आचरण की सभ्यता अथवा सदाचरण; किसी भी प्रकार की विद्या, कला, साहित्य अथवा राजत्व से भी अधिक श्रेष्ठ है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपना सर्वोपरि लक्ष्य, आचरण की सभ्यता के विकास को ही निर्धारित करना चाहिए। आचरण की सभ्यता का विकास, मानसिक सभ्यता के विकसित होने पर ही सम्भव हो पाता है। मानसिक सभ्यता का तात्पर्य है- वैचारिक रूप से आदर्श विचारों को अपने मन में स्थान देना और प्रेम, करूणा व सहयोग आदि की भावनाओं का विकास करना। मानसिक सभ्यता का उदय होने पर धीरे-धीरे मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति समाप्त हो जाती है; अर्थात् मन स्थिर हो जाता है और व्यक्ति में श्रेष्ठ आचरण का विकास हो जाता है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'आचरण की सभ्यता' सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित एक भावात्मक निबन्ध है। लेखक का कहना है कि आचरण की सभ्यता विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन-सम्पदा और राज-पद से अधिक प्रकाशयुक्त है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करने वाला एक निर्धन मनुष्य भी राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। आचरण में वह अपूर्व शक्ति है, जो व्यक्ति को कुछ से कुछ बना देती है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में आचरण का पालन करता हो और कला, साहित्य व संगीत में भी रुचि रखता हो तो मात्र आचरण की पवित्रता के कारण ही उसे इन कलाओं में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हो जाती है। आचरण के कारण ही उसका स्वर अधिक मधुर हो जाता है, उसके ज्ञान का तीसरा नेत्र खुल जाता है। उस समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि बोलने वाला अर्थात् वक्ता कुछ नहीं कह पाता और लिखने वाले की लेखनी ही रुक जाती है। आचरण की सभ्यता से युक्त मूर्तिकार के सम्मुख सदैव नई छवि उपस्थित रहती है।

लेखक कहते हैं कि दूसरे व्यवहारों की तरह आचरण की भी अपनी एक भाषा होती है, किन्तु वह भाषा मौन की होती है। इसका दूसरे मनुष्य पर गुप्त प्रभाव पड़ता है। आचरण के कोश में नाममात्र को भी शब्द नहीं है। उस कोश के पन्ने बिलकुल कोरे हैं। यह सभ्य आचरण राग की भाँति मधुर प्रभाव उत्पन्न करता है। विनय, दया, प्रेम, उदारता आदि गुणों से सभ्याचरण प्रकट हो जाता है, इन सात्विक गुणों के द्वारा वह दूसरों के मन को जीत लेता है। अत: इन गुणों को सभ्य आचरण का मौन व्याख्यान कहा जाता है। सदाचरण आत्मा पर प्रभाव डालकर धीरे-धीरे मनुष्य की आत्मा को अपने रंग को रंग लेता है। इस सदाचरण का न कोई रंग, न कोई आकार और न ही कोई दिशा है। आत्मा के सदाचरण से ही इसकी सुगंध फैलती है। सदाचरण से मन और हृदय की भावनाएँ परिवर्तित हो जाती है। आचरण की एक बूँद विश्व को भिगो देती है। सदाचरण के द्वारा निर्जीव में भी जीवन का संचार हो जाता है। सूखे कुएँ जल से भर जाते हैं।

लेखक कहता है कि सदाचारी मनुष्य अपने श्रेष्ठ आचरण से दूसरों को प्रभावित करता है। आचरण की मौनरूपी भाषा बहुत ही शक्तिशाली, प्रभावपूर्ण और सार्थक होती है, इसका जितना प्रभाव पड़ता है, उतना मातृभाषा, साहित्य की भाषा या किसी अन्य देश की भाषा का नहीं पड़ता। केवल आचरण की भाषा दिव्य और आलौकिक है। अत: आचरण की भाषा के सामने संसार की सभी भाषाएँ तुच्छ, प्रभावहीन और फीकी है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति का आचरण ऐसा होना चाहिए कि लोग उससे प्रभावित होकर उसका अनुकरण करने के लिए प्रेरित हो। चन्द्रमा की मौन हँसी तथा तारों के मौन कटाक्षों का प्रभाव तो केवल किसी कवि के हृदय में झाँककर ही अनुभव किया जा सकता है।

लेखक कहता है कि प्रेम को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य के नेत्र, कपोल अथवा माथे की विभिन्न चेष्टाएँ या मुद्राएँ ही हृदय के भाव को व्यक्त कर देती है, जो आचरण, प्रभावकारी, स्थायी और शील से युक्त होता है, वही सभ्य आचरण होता है। वह वेद, कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थों या धर्मोपदेशों से भी व्यक्त नहीं होता है। इसे प्राप्त करने के लिए जीवन की गहराई में प्रवेश करना पड़ता है, विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है तथा अपने मन पर नियन्त्रण करना पड़ता है। जिस प्रकार सुनार अपने हथौड़े की मंद-मंद चोट से सुन्दर आभूषण गढ़ता जाता है, वैसे ही प्रकृति के कार्यकलाप तथा मनुष्य का मधुर एवं विनम्र व्यवहार ही किसी के भी आचरण को सँवारता है।

लेखक का कहना है कि बर्फ से ढका हुआ हिमालय पर्वत इस समय अति सुन्दर, अति ऊँचा और गौरवशाली दिखाई देता है। किन्तु इसका निर्माण एक-दो दिन में ही नहीं हो गया, उसके निर्माण में प्रकृति को अनगिनत वर्षों तक कठोर परिश्रम करना पड़ा है। प्रकृति ने अनगिनत सदियों तक इसे बड़े प्रयत्न से सँवारा है, तब कहीं यह गर्वोन्नत हिमालय बन पाया है। सभ्याचरण भी हिमालय की तरह ऊँचे कलश वाला मन्दिर है। आचरण का निर्माण मदारी का जादू नहीं है, जो दर्शकों को धोखा देकर क्षण भर में ही अपनी हथेली पर आम का पेड़ उगा देता है। इसके निर्माण में अनन्त समय लगता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और पृथ्वी को बने हुए इतना समय बीतने के बाद भी, आज तक आचरण के सुंदर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हो सके।

लेखक कहते हैं कि पुस्तकों में लिखे उपदेशों तथा नियमों के अध्ययन से आचरण का विकास संभव नहीं है। सारे वेदों को पढ़कर भी आचरण का विकास नहीं हो सकता। ईश्वर की भाषा भी मौन है और वह भी आचरण के द्वारा अपने आपको व्यक्त करता है। वह शब्द और भाषा से परे की चीज है जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। पुस्तकीय ज्ञान किसी मनुष्य को उच्चकोटि का ज्ञान तो प्राप्त करा सकता है, किन्तु उसे सदाचारी भी बना दे, यह आवश्यक नहीं। यह सब कार्य तो किसी का सदाचरण ही कर सकता है।

लेखक ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य का आचरण किसी प्राकृतिक पदार्थ को देखकर तो बदल सकता है, किन्तु पुस्तकीय ज्ञान अथवा उपदेशों के लगातार प्रयोग भी उसके आचरण पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसका प्रभाव ऐसा होता है जैसे- फूल की पंखुड़ियों के स्पर्श से आनन्दपूर्ण रोमांच उत्पन्न होता है या शीतल जल क्रोध एवं विषय-वासना को शांत कर देता है, अथवा बर्फ को देखकर मन पवित्र हो जाता है। परन्तु आचरण के लिए कोई उपदेश ठीक वैसे ही बेकार है-जैसे अंग्रेजी भाषा में कारलायल जैसे विद्वान का लिखा हुआ कोई व्याख्यान बनारस के पण्डितों के लिए शोरगुल से अधिक नहीं है। हम पर सदाचरण का सदैव प्रभाव पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी धर्म या जाति की कन्या की रक्षा के लिए अपने प्राणों को दाँव पर लगा दे तो उसके आचरण की मौन भाषा सभी व्यक्तियों को समझ आ जाती है। प्रेम के आचरण को सभी स्वयं ही समझ लेते हैं। मनुष्य के आचरण को सही रूप में ढ़ालने के लिए अमीरी-गरीबी और ऊँच-नीच के अलावा अच्छे-बुरे विचारों एवं परिस्थितियों का समान रूप से योगदान होता है। यदि जीवन की पवित्र पवित्रता आचरण को अच्छा रूप देती है तो पवित्र पवित्रता आचरण को सँवारने में भी सहयोग करती है।

लेखक कहते हैं कि धर्म-ग्रन्थों में अनेकानेक उपदेश भरे हैं, किन्तु उनके अनुयायी उन उपदेशों के अनुरूप आचरण नहीं करते। सभ्य आचरण के अभाव में हमारे धर्म और सम्प्रदाय हमारे मन में विद्वेष और घृणा उत्पन्न करते हैं। इसी कारण चारों और अत्याचार और हिंसा का बोलबाला हो रहा है। मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम नहीं, क्योंकि हमारे हृदय में पवित्रता नहीं है। मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य आचरण का विकास करना है। आचरण के विकास को सम्पूर्ण पर्यावरण प्रभावित करता है, चाहे वह पर्यावरण प्राकृतिक हो या शारीरिक। धर्म ही मनुष्य के आचरण की उन्नति करता है, अत: आचरण के विकास के लिए धर्म की व्यापक व्यवस्था करनी पड़ेगी। प्रत्येक मनुष्य का कुछ न कुछ कर्त्तव्य होता है, लेकिन उस कर्त्तव्य को धर्म से

जोड़ना परमावश्यक है। आचरणशील महात्माओं ने स्वयं का मार्ग बनाया तथा लोगों का मार्ग प्रशस्त किया। हमें भी प्रतिदिन अपने जीवन को स्वयं बनाना होगा और अपनी जीवन रूपी नैया को बनाकर इसे चलाना होगा।

पूर्णसिंह जी कहते हैं कि यदि कोई लोहार अपना कार्य भली-भाँति करता है तो यही ज्ञान उसके लिए पर्याप्त है यदि वह मोक्ष मार्ग को नहीं पहचानता तो कोई बात नहीं, वह उसके लिए आवश्यक भी नहीं है। वे कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति अपना आचरण ठीक रखता है। अपने कर्त्तव्यों का पालन भली भाँति करता है, उसकी आत्मा पवित्र है और उसके कर्म शुद्ध है तो उसके लिए इतना ही पर्याप्त है उसे अध्यात्मिकता और दर्शन के गूढ़ रहस्यों को जानने से कोई प्रयोजन नहीं।

लेखक कहता है कि मैं कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं करता परन्तु मैं अपनी खेती, हल, बैलों को प्रात:काल उठकर प्रणाम करता हूँ यही मेरे लिए पर्याप्त है। यदि कोई मेरे साथ धोखा करे तो उससे मुझे कोई हानि नहीं होती।

लेखक कहता है कि रोमवासी वीर और परिश्रमी थे परन्तु जब वे साहित्य, संगीत जैसी कलाओं में सीमा से अधिक डूब गए, तब वे आलसी और लम्पट बन गए। इससे उनका पतन हो गया। इसके विपरीत ऐंग्लो-सैक्सन जाति के यूरोपवासियों का जीवन सदैव परिश्रमी रहा जिससे वे उन्नति के शिखर पर पहुँच गए। लेखक कहता है कि धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों को सदा ही कमर बाँधकर तैयार रहना होगा। जिस प्रकार रेडियम जैसी बहुमूल्य और प्रकाशयुक्त धातु को बड़े प्रयत्नों से प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आचरण का निर्माण भी बड़ी कठिनाई और परिश्रम से होता है। आचरण की प्राप्ति के लिए तो प्रकृति की आन्तरिक स्थिति में प्रवेश कर अपने अहं को मिटाकर, आचरण के तत्व को निकालकर मिथ्या प्रकृति को उड़ा देना होगा। सारे विश्व के कण-कण को टटोलने के बाद आचरणरूपी स्वर्ण बहुत कम मात्रा में मिल सकेगा। आलसियों के लिए आचरण प्राप्ति की कल्पना भी असम्भव है।

लेखक कहता है कि यदि हिन्दु किसी प्राचीन असभ्य जाति के होते तो उनके वर्तमान वंश में भी ऐसे मनुष्य होते जो बलशाली होते। इनमें ऋषि, पराक्रमी वीर, सामान्य, धैर्यशाली वीरपुरुष भी होते। परन्तु आजकल हिन्दु लोग अपने पूर्वजों के पवित्र और प्रेममय जीवन को जानकर अहंकार के भाव भरे हुए प्रसन्न हुए जा रहे हैं। लेकिन उनके त्यागयुक्त जीवन का अनुकरण करने की शक्ति इनमें दिखाई नहीं पड़ रही है। इसी कारण इनका पतन होता जा रहा है। प्राचीनकाल में यूरोप के लोग असभ्य थे, परन्तु आजकल हम असभ्य बन गए हैं। अपने समाज को ज्ञान-विज्ञान की चरम सीमा पर पहुँचाना और सदा ऋषियों को उत्पन्न करने योग्य समाज का निर्माण करना ही जीवन के नियमों का पालन करना है तथा कठोर परिश्रम और कर्त्तव्यों का अनुपालन करना ही श्रेष्ठ जीवन शैली है।

लेखक कहते हैं कि धर्म के आचरण की उपलब्धि दिखावटी आड़म्बरों-आचरणों से नहीं होती, यदि ऐसा होता तो भारत के समस्त निवासी अब तक सूर्य के समान विशुद्ध आचरण से सम्पन्न हो गए होते। व्यक्ति प्राकृतिक सौन्दर्य का दिव्य आनन्द तभी ले सकता है जब वह आत्मिक रूप से सन्तुष्ट हो।

लेखक कहता है कि जब व्यक्ति प्राकृतिक रूप से सभ्य होगा तभी उसके अन्दर मानसिक सभ्यता उत्पन्न होगी। यदि हमारा व्यवहार सभी के प्रति विनम्र है तो ही हमारे अन्दर विनम्रता विकसित होगी, अन्यथा नहीं और इस मानसिक सभ्यता की स्थिरता भी तब ही रहेगी। जब तक निर्धन पुरुष पाप कर्म करके अपना पेट भरता है तब तक धनवान पुरुष के शुद्ध आचरण की परीक्षा नहीं हो सकती क्योंकि यदि धनवान को पूर्ण मनुष्य बनना है तो उसे अपने आचरण को सुन्दर और श्रेष्ठ बनाना होगा।

आचरण की सभ्यता की अपनी विशेषता निराली है। उसमें किसी प्रकार का बैर, द्वन्द्व नहीं होता। शरीर, मन और मस्तिष्क में शांति रहती है। वहाँ कोई भी भेदभाव नहीं मिलता, अपितु एक आनन्दमय समरसता के दर्शन होते हैं। आचरण की ऐसी सभ्यता जब आती है तब नीले आकाश से वेदमन्त्र सुनाई देते हैं, ज्ञान का सूर्योदय होता है और कमल की तरह नर-नारियों के हृदय खिल जाते हैं। चारों ओर प्रभात जैसा वातावरण हो जाता है। नारद की वीणा का मधुर मोहक स्वर सुनाई देने लगता है। जहाँ ऐसी ध्रुव वीरता हो प्रेम, सद्भाव और आत्मीयता हो तथा जहाँ ऐसी समरसता और आह्लाद हो वहीं आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है।

2. लेखक के अनुसार 'आचरण की सभ्यता का देश निराला है।' इस निराले देश की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

उ०– लेखक ने आचरण की सभ्यता के देश को इसलिए निराला कहा है क्योंकि इस देश में किसी प्रकार का द्वन्द्व, वैर या विरोध नहीं होता। शरीर, मन और मस्तिष्क में शांति रहती है। उसमें न तो विद्रोह का भय रहता है और न ही युद्ध की चिन्ता। चारों ओर सुख-शांति का राज्य रहता है। वहाँ ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी का भी भेदभाव देखने को नहीं मिलता अपितु एक आनन्दमय समरसता के दर्शन होते हैं। प्रेम और एकता का साम्राज्य होता है। वहाँ तो तुच्छ स्वभाव से परे, ईश्वरीय भावों से परिपूर्ण मानव-प्रेम को ही महत्व दिया जाता है।

3. 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध के माध्यम से लेखक क्या सन्देश देना चाहता है?

उ०– आचरण की सभ्यता निबन्ध के माध्यम से लेखक आचरण के विभिन्न पक्षों का वर्णन कराकर मानव-जीवन में उसके महत्व पर प्रकाश डालना चाहता है। लेखक संदेश देता है कि सदाचरण अपूर्व वस्तु है। जिस व्यक्ति को आचरण का यह भंडार मिल जाता है उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता। सदाचरण सभी विधाओं, कलाओं, साहित्य एवं राजत्व से भी श्रेष्ठ है। सदाचरण की मौन भाषा मन के विभिन्न क्रिया-कलापों से स्वयं प्रकट होती है। सदाचरण के निर्माण में दीर्घकाल लगता है। इस

प्रकार सदाचरण की प्राप्ति आसानी से नहीं होती। आचरण की सभ्यता के विकसित होने पर मानव में मानसिक सभ्यता का उदय होता है और समस्त द्वन्द्व स्वयं समाप्त हो जाते हैं। इस निबन्ध के माध्यम से लेखक ने सर्वनात्मक एवं रचनात्मक कार्यों में लगने का भी संदेश दिया है।

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

5 शिक्षा का उद्देश्य
(डॉ० सम्पूर्णानन्द)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०— बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—54 व 55 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. डॉ. सम्पूर्णानंद का जीवन परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०— लेखक परिचय— दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान, प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री व मर्मज्ञ साहित्यकार डॉ० सम्पूर्णानन्द का जन्म 1 जनवरी, सन् 1890 ई० को काशी के एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री विजयानन्द था। इन्होंने बी.एस.-सी. की परीक्षा क्वीन्स कॉलेज, वाराणसी तथा एल. टी. की परीक्षा ट्रेनिंग कॉलेज, इलाहाबाद से उत्तीर्ण की। 'प्रेम-महाविद्यालय', वृन्दावन में ये अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। इसके उपरान्त डूँगर कॉलेज, बीकानेर में इन्होंने 'प्रधानाचार्य' के पद को सुशोभित किया।

सन् 1921 में महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम से प्रेरणा प्राप्त करके ये स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कूद पड़े, जिस कारण कई बार इन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। सन् 1926 में पहली बार कांग्रेस के टिकट पर विधान-सभा सदस्य चुने गए। सन् 1937 ई० में इन्होंने उत्तर प्रदेश के शिक्षामन्त्री के पद को सुशोभित किया। ये सन् 1954 ई० से सन् 1960 ई० तक दो बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री भी रहे। सन् 1962 ई० में राजस्थान के राज्यपाल के पद को सुशोभित किया। सन् 1967 ई० में राज्यपाल के पद से मुक्त होने के बाद आप मृत्युपर्यन्त काशी विद्यापीठ के कुलपति रहे। 10 जनवरी, सन् 1969 ई० को काशी में ही इनका देहावसान हो गया।

डॉ० सम्पूर्णानन्द को हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी के साथ ही उर्दू व फारसी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इतिहास, राजनीति, ज्योतिष, योग, विज्ञान व दर्शन इनके प्रिय विषय थे। राजनैतिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी इन्होंने अपना अध्ययन का क्रम जारी रखा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य-वाचस्पति' इन्हें प्रदान की गई। 'समाजवाद' नामक इनकी कृति पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा इन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया।

कृतियाँ— इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

निबन्ध संग्रह— पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल, अन्तरिक्ष-यात्रा, भाषा की शक्ति, चिद्विलास, ज्योतिर्विनोद।

राजनीति और इतिहास— मिस्र की राज्यक्रान्ति, चीन की राज्यक्रान्ति, आर्यों का आदिदेश, समाजवाद, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, काशी का विद्रोह, भारत के देशी राज्य, सम्राट हर्षवर्धन।

सम्पादन— 'मर्यादा' हिन्दी मासिक, 'टुडे' अंग्रेजी दैनिक।

जीवनी— देशबन्धु चितरंजन दास, महात्मा गाँधी।

धर्म— नासदीय सूक्त की टीका, ब्राह्मण सावधान, गणेश।

फुटकर निबन्ध— जीवन और दर्शन।

अन्य कृतियाँ— पुरुष सूक्त, स्फुट विचार, अधूरी क्रान्ति, भारतीय सृष्टि क्रम विचार, व्रात्यकाण्ड, हिन्दू देव परिवार का विकास, वेदार्थ प्रवेशिका।

2. डॉ० सम्पूर्णानन्द की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए तथा हिन्दी साहित्य में उनका स्थान बताइए।

उ०— भाषा शैली— डॉ० सम्पूर्णानन्द गम्भीर विषयों पर लेखनी चलाने वाले विद्वान रहे हैं; अत: इनकी भाषा-शैली प्रौढ़ व गम्भीर है। सम्पूर्णानन्द जी की भाषा सामान्यत: शुद्ध साहित्यिक भाषा है। इनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। इसका रूप शुद्ध, परिष्कृत और साहित्यिक है। अत्यन्त गम्भीर विषयों का विवेचन करते समय इनकी भाषा क्लिष्ट हो गई है। इनकी भाषा में मुहावरों व कहावतों का प्रयोग नहीं के बराबर है। अपवादस्वरूप कहीं-कहीं 'गम गलत करना', 'धर्मसंकट में

पड़ना' आदि मुहावरों के प्रयोग मरुभूमि में नखलिस्तान सा दिखाई देता हैं। सामान्यतया सम्पूर्णानन्द जी उर्दू के प्रयोग से बचे है, फिर भी उर्दू के प्रचलित शब्द इनकी भाषा में कहीं-कहीं मिल ही जाते है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्णानन्द जी भाषा की दृष्टि से एक पारंगत साहित्यकार थे।

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी के निबन्धों के विषय प्राय: गम्भीर होते हैं; अत: इनकी शैली अधिकांशत: विचारात्मक है। इसमें इनके मौलिक चिन्तन को वाणी मिली है। इस शैली में प्रौढ़ता तो है ही; गम्भीरता, प्रवाह और ओज भी है। इनके धर्म, दर्शन और आलोचना संबंधी निबन्धों में गंवेषणात्मक शैली के दर्शन होते हैं। नवीन खोज और चिन्तन के समय इस शैली का प्रयोग हुआ है। विषय की स्पष्टता के लिए इन्होंने अनेक स्थलों पर व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। इसमें भाषा सरल, संयत, शुद्ध और प्रवाहमयी है। वाक्य प्राय: छोटे हैं। कहीं-कहीं ये सूक्ति-कथन भी करते चलते हैं; यथा — ''एकाग्रता ही आत्म-साक्षात्कार की कुंजी है।'' इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं ये उद्धरण भी देते हैं। कुछ स्थलों पर इनकी शैली में भावात्मकता और आलंकारिकता आ गई है। कुल मिलाकर डॉ० सम्पूर्णानन्द की शैली विचारप्रधान, पाण्डित्यपूर्ण, प्रौढ एवं परिमार्जित है।

हिन्दी साहित्य में स्थान– डॉ० सम्पूर्णानन्द हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित, कुशल राजनीतिज्ञ, मर्मज्ञ साहित्यकार, भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के ज्ञाता, गम्भीर विचारक तथा महान शिक्षाविद् आदि के रूप में जाने जाते हैं। इनके निबन्धों का हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान हैं। अपने विषय की सर्वप्रथम कृति होने के कारण, इनकी कई कृतियाँ अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। एक मनीषी साहित्यकार के रूप में इनकी सेवाओं के लिए सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) अध्यापक और समाज ..... का उद्देश्य है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'डॉ० सम्पूर्णानन्द' द्वारा लिखित निबन्ध संग्रह 'भाषा की शक्ति' से 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– लेखक का विचार है आज अध्यापक और समाज के समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि शिक्षा किसलिए दी जाए? शिक्षा देने का उद्देश्य क्या हो? शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण के पश्चात् ही विद्यार्थियों को पढ़ाए जाने वाले विषयों का निर्धारण सम्भव है। लेखक का मानना है कि शिक्षा देने का उद्देश्य स्वयं में स्वतंत्र नहीं है, अर्थात् किसी एक बिन्दु को लेकर शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के जीवन के उद्देश्य से जुड़ा है, यह जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ से सम्बद्ध है इसलिए पुरुषार्थ का निर्धारण होने के बाद ही शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण किया जा सकता है।

लेखक स्पष्ट करते हुए कहता है कि पुरुषार्थ की सफलता के लिए ही शिक्षा देना शिक्षा का उद्देश्य है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– सरल। **(2) शैली–** विवेचनात्मक। **(3) वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **(4) शब्द चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(ख) पुरुषार्थ दार्शनिक ..... कठिन हो जाएगा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– विद्वान् लेखक ने मानव-जीवन के पुरुषार्थ को जानने से पहले, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक व्यापक दार्शनिक मत स्वीकार करने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या– लेखक का विचार है कि मानव-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य पुरुषार्थ की प्राप्ति है। पुरुषार्थ चार माने गए हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें सबसे बड़ा पुरुषार्थ मोक्ष है; अत: मानव-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। पुरुषार्थ का सम्बन्ध दर्शन से है और दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। जीवन से सम्बन्ध रखने वाला दर्शन थोड़े-से विद्यार्थियों द्वारा पढ़ने योग्य विषय नहीं है, अपितु वह जीवन की प्रत्येक विचारधारा का नाम है। प्रत्येक समाज को अपने जीवन को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए एक व्यापक विचारधारा को स्वीकार करने की आवश्यकता है; जैसा कि आज के समाज में दिखाई भी दे रहा है। जाति के नाम पर, क्षेत्र और भाषा के नाम पर, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों के नाम पर, प्रगतिशील और पिछड़ों के नाम पर सबके लिए अलग-अलग नीतियाँ निर्धारित हो रही हैं। कहीं भी समग्रता के दर्शन नहीं होते; चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई है। अगर कोई एक निश्चित दार्शनिक मत स्वीकार किया जाए तो सारी कठिनाईयाँ दूर हो सकती है। अत: समाज के स्थायित्व और व्यवस्था के लिए कोई ऐसा दार्शनिक आधार स्वीकार करना चाहिए, जो सबको मान्य हो और सब पर समान रूप से लागू हो, कहीं भी तुष्टीकरण न दिखाई दे।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने सामाजिक व्यवस्था के लिए एक समान दार्शनिक विचारधारा को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया है और इसे राजनीति, समाज और परिवार सभी के लिए अनिवार्य तत्व स्वीकार किया है। **(2)** अवसरवादिता और कल्पित उपयोगिता के आधार पर कोई भी समाज-व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती। **(2) भाषा–** विषय के अनुरूप गम्भीर तथा

शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(4) शैली–** विवेचनात्मक। **(5) भावसाम्य–** दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध दर्शाते हुए डॉ० राधाकृष्णन लिखते हैं कि ''दर्शन का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना नहीं; जीवन को बदलना है।''

(ग) आत्मा अजर ..... दुःख होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने भारतीय दर्शन, विशेषकर श्रीमद्भगवतगीता के आधार पर आत्मा के स्वरूप का चित्रण किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि आत्मा न कभी मरती है, न बूढ़ी होती है। वह अजर-अमर है, शाश्वत है। इस आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अक्षय आनन्द का भण्डार है। यदि हम आत्मा को केवल अनन्त ज्ञान का भण्डार ही कहें तो भी पर्याप्त है; क्योंकि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ शक्ति होती है और जहाँ ज्ञान और शक्ति होते हैं, वहाँ आनन्द का भण्डार होता है। आत्मा को जानने-पहचानने से चिरस्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है और परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है। अत: आनन्द चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा का ज्ञान होना चाहिए, जो आत्म-चिन्तन द्वारा ही सम्भव है। अपनी बात स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है कि यह जीव अज्ञान के कारण आत्मा के अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्दमय स्वरूप को भूला हुआ है। जीव को ऐसा अनुभव होता है, जैसे उसमें ज्ञान की कमी है। ज्ञान के अभाव में वह अपने को अल्पशक्ति वाला समझने लगता है। परिणामस्वरूप वह आनन्द से रहित होकर दु:खी हो जाता है। इस प्रकार वह अपने स्वरूप को न पहचानकर आजीवन दु:ख भोगता रहता है। अपने स्वरूप को जानकर ही जीव को आनन्द प्राप्त हो सकता है; अत: आत्मज्ञान कराना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक के विचारों का स्रोत श्रीमद् भगवद् गीता में वर्णित; ''नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक:'' आत्मा का स्वरूप है। **(2) भाषा–** परिमार्जित शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। **(3) शैली–** विचारात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **(6) भावसाम्य–** आत्मा अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का भंडार है। कबीर ने भी लिखा है कि अपने अजर-अमर स्वरूप को न जानने के कारण प्राय: मनुष्य भयभीत होता है–

कबीर मैं तो तब डरौं, जो मुझ ही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय॥

(घ) आत्म-साक्षात्कार का ..... उत्पन्न किया जाय।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में व्यक्ति के आत्मसाक्षात्कार हेतु योगाभ्यास की दृष्टि से शिक्षक व समाज की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– लेखक ने अनुसार व्यक्ति का प्रमुख पुरुषार्थ; शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द से परिपूर्ण अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना है। अपनी आत्मिक शक्तियों का ज्ञान ही आत्मसाक्षात्कार कहलाता है और आत्मसाक्षात्कार का प्रमुख साधन योग का अभ्यास करना है। योगाभ्यास एक आध्यात्मिक साधना है, जिसके माध्यम से व्यत्तिक्त का चित्त एकाग्र हो जाता है तथा वह अपनी आत्मिक शक्तियों को पहचानने और उनका विकास करने में समर्थ होने लगता है, परन्तु योगाभ्यास सिखाने के लिए राज्य अथवा विद्यालय विशेष सहायक सिद्ध नहीं हो सकते। जिसमें जिज्ञासा और लगन होगी, वह स्वयं ही एक दिन योगाभ्यास सिखाने वाले श्रेष्ठ गुरु की खोज कर लेगा। समाज और शिक्षक तो व्यक्ति की इतनी ही सहायता कर सकते हैं कि वे उसके लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दें अथवा उसके लिए आवश्यक साधन आदि सुलभ कराकर इस दिशा में उसे प्रेरित करें।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) आत्मसाक्षात्कार के लिए योगाभ्यास को ही सर्वोपरि साधन बताया गया है। **(2)** योगाभ्यास जैसी परम उपयोगी आध्यात्मिक विद्या को सीखने में व्यक्ति के अपने प्रयास ही अधिक सहायक हो सकते हैं। **(3) भाषा–** शुद्ध संस्कृतनिष्ठ, परिष्कृत एवं बोधगम्य। **(4) शैली–** विवेचनात्मक। **(5) भावसाम्य–** लेखक का मत है कि कोरे उपदेशों से नहीं, वरन् कठिन परिश्रम व स्वाध्याय से ही जीवन का अमृत प्राप्त होता है। कहा भी गया है-

कथनी मीठी खाँड सी, करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, बिष से अमरित होय॥

(ङ) यह अध्यापक का ..... न करना उपेक्षा है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– मनुष्य का मूल उद्देश्य है आत्मसाक्षात्कार। प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने आत्मसाक्षात्कार के उपायों का विवेचन किया है।

व्याख्या– अध्यापक का दायित्व है कि वह छात्र में एकाग्रता का गुण उत्पन्न करे। चित्त की एकाग्रता से ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव होता है। चित्त की एकाग्रता का उपाय यह है कि छात्रों में सात्विक भाव उत्पन्न किए जाएँ। जब छात्र के मन में मित्रता, करुणा, उपेक्षा तथा प्रसन्नता का भाव जाग्रत हो जाएगा, तभी वह निष्काम भाव से कर्म में प्रवृत्त हो सकेगा। जब छात्र दूसरे के सुख को देखकर सुखी होने लगे तो समझना चाहिए कि उसमें मैत्रीभाव उत्पन्न हो गया है, जब वह दूसरों के दु:ख को देखकर

दु:ख का अनुभव करे तो यह मानना चाहिए कि उसमें करुणा का भाव जाग्रत हो गया है, जब वह दूसरे के अच्छे कार्यों को देखकर प्रसन्नता के साथ-साथ उसको प्रोत्साहित भी करने लगे तो समझना चाहिए कि उसमे प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हो गया है और जब वह किसी दुष्ट व्यक्ति के बुरे कर्मों का विरोध करते हुए भी उस दुष्ट व्यक्ति से शत्रुता न करे तो समझना चाहिए कि उसमें उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो गया है। जैसे-जैसे व्यक्ति में मैत्री, करुणा, प्रसन्नता और उपेक्षा के भाव जाग्रत होते जाते हैं, वैसे-वैसे उसके मन से ईर्ष्या और द्वेष की भावना कम होती जाती है। ऐसी स्थिति में उसमें एकाग्रता उत्पन्न होती है और एकाग्रता उत्पन्न होने पर ही उसे आत्मसाक्षात्कार हो सकता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक की मान्यता है कि चित्त की एकाग्रता से ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है। आत्मसाक्षात्कार की ऐसी ही मन:स्थिति की ओर संकेत करते हुए तुलसी ने भी लिखा है-

तुलसी ममता राम सो, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष-दु:ख, दास भए भव-पार।।

(2) भाषा– संस्कृतनिष्ठ और परिमार्जिता। **(3) शैली–** विवेचनात्मक।

(च) निष्कामिता की ..... साक्षात्कार हो जाता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में विभिन्न उदाहरण देकर निष्काम कर्मयोग के स्वरूप का प्रतिदान किया गया है।

व्याख्या– मैत्री, करुणा, प्रसन्नता और उपेक्षा का भाव जाग्रत हो जाने पर व्यक्ति में निष्काम भावना उत्पन्न होती है। निष्काम कर्म का अर्थ है-फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करना। इस सात्विक भाव के लिए यह आवश्यक है कि अपनी अपेक्षा दूसरे व्यक्तियों का अधिक ध्यान रखा जाए। छात्रों में प्रारंभ से ही परोपकार, लोक-कल्याण, जीव-सेवा एवं दूसरों की सेवा हेतु भावना उत्पन्न की जाए। ऐसी भावना उत्पन्न होने पर मनुष्य आत्मसाक्षात्कार करते हुए परम आनन्द का अनुभव करता है। जब मनुष्य सच्चे मन से समाज-सेवा करता है तो उसे महान् आनन्द का अनुभव होता है। जब हम किसी भूखे को अन्न देते हैं, जलते हुए या डूबते हुए को संकट से बचा लेते हैं अथवा किसी रोगी की सेवा-शुश्रुषा करते हैं तो हम 'मैं' और 'पर' के संकुचित भावों से ऊपर उठ जाते हैं। उस समय हमें अपनी आत्मा की झलक दिखाई देती है। वास्तव में यही क्षण आत्मसाक्षात्कार का क्षण होता है। पर-सेवा की यह तन्मयता जितनी प्रबल होगी और जितने अधिक समय के लिए होगी, उतने ही अधिक समय के लिए साक्षात्कार भी संभव हो सकेगा।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) यहाँ निष्काम कर्मयोग का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। **(2)** यदि व्यक्ति में पर-सेवा की भावना जाग्रत हो जाए तो आज के सारे अनाचार और दुराचार स्वयं समाप्त हो जाएँगे। **(3) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक और गम्भीर भावों को सरलता से समझाने में भी सक्षम है। **(4) शैली–** विवेचनात्मक। **(5) भावसाम्य–** निष्कामी व्यक्ति की तो उपस्थिति मात्र से भी कल्याण की प्राप्ति होती है। सन्त कबीर ने भी कहा है—

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी का बास।
जो गंधी कछु दे नहीं, तो भी बास सुबास।।

(छ) चित्त को छुद्र ..... प्रेम उत्पन्न करें।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में विद्वान् लेखक ने बताया है कि काव्य, कला, संगीत तथा प्रकृति-निरीक्षण के द्वारा मन को शुद्ध रखा जा सकता है और तुच्छ वासनाओं पर विजय पाई जा सकती है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि नीच लोग वासनाओं में लिप्त रहते हैं। इन वासनाओं से मुक्ति पाने का एक सुगम मार्ग है- कला, संगीत और काव्य का निरन्तर अभ्यास करना। इन कलाओं में तल्लीनता के कारण उत्पन्न आनन्द के प्रभाव से सारे मानसिक तनाव स्वत: समाप्त हो जाते हैं। उस समय मनुष्य की इन्द्रियाँ सांसारिक भोगों के क्षणिक आनन्द को भूलकर आत्मा के सनातन आनन्द में लीन हो जाती हैं और सभी प्रकार के तुच्छ भाव दूर हो जाते हैं। मनुष्य को प्रकृति के निरीक्षण से भी यही आनन्द प्राप्त होता है। प्रकृति का उपयोग केवल निम्न श्रेणी के काव्य में ही काम-वासना जगाने के लिए होता है, किन्तु अन्य सभी स्थलों पर प्रकृति मनुष्य के हृदय को शांति और आनन्द प्रदान करती है। ऐसी दशा में अध्यापकों का नैतिक उत्तरदायित्व यह है कि वे प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति छात्रों में प्रेम-भाव उत्पन्न करें। उन्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि सौन्दर्य-प्रेम भी निष्काम होता है। यह सौन्दर्य-प्रेम भी इस प्रकार का होना चाहिए कि मनुष्य तन्मय होकर अपने अहंकार को भूल जाए।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने बताया कि है कि कलाओं के अभ्यास से और प्रकृति के सौन्दर्य से मन बुरी वासनाओं से मुक्त हो जाता है और उसे दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का भी ऐसा ही मत है। इसलिए अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्र में सौन्दर्य के प्रति निष्काम प्रेम-भाव उत्पन्न करें। **(2) भाषा–** संस्कृतनिष्ठ शुद्ध खड़ी बोली। भाषा में बोधगम्यता का गुण विद्यमान है। **(3) शैली–** विवेचनात्मक। **(4) भावसाम्य–** साहित्य, संगीत और कला ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती हैं। भर्तृहरि ने इन सबसे विहीन मनुष्य को साक्षात् पशु कहा है- ''साहित्य-संगीत-कला विहीन:, साक्षात् पशु: पुच्छविषाण- हीन:।''

(ज) धर्म का तात्पर्य ..... का आदेश होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में सभी प्रकार के कल्याणकारी कार्यों को धर्म बताया गया है।

व्याख्या– इस गद्यांश में लेखक ने कहा है कि धर्म का अर्थ पूजा-पाठ नहीं है, अपितु वे सभी कार्य धर्म के अंतर्गत आते हैं, जिनमें कल्याण की भावना अन्तर्निहित होती है। जब पूरे समाज का कल्याण होता है, तब उस सम्पूर्ण के साथ व्यक्ति का अपना कल्याण भी स्वत: ही हो जाता है। समाज के बिना मानवीय गुणों का विकास असंभव तो है ही, साथ ही ऐसे अनेक सुख-भोग हैं, जिन्हें मनुष्य समाज के बिना प्राप्त कर ही नहीं सकता। जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसमें पशु, पक्षी, मनुष्य, वनस्पतियाँ और देवता भी हैं। इसलिए सबके कल्याण का ध्यान रखते हुए ही कर्त्तव्यों का निर्धारण करना चाहिए। सभी धर्मशास्त्र भी व्यक्ति को यही उपदेश देते हैं कि हमें अपने किसी भी कार्य को करने से पूर्व समाज के हित का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक विद्यार्थियों में वास्तविक धर्म, बुद्धि एवं विवेक जाग्रत करने का पक्षधर है। **(2)** समाज के कल्याण में भी व्यक्ति का कल्याण निहित है, इस तथ्य को स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया गया है। **(3) भाषा–** प्रवाहपूर्ण, परिमार्जित खड़ी बोली। **(4) शैली–** विचारात्मक। **(5) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(6) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप एवं उपयुक्त।

(झ) अच्छे उपाध्याय के ..... अधिक उन्नत हो?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की महत्ता और उसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि योग्य, प्रशिक्षित और सदाचारी अध्यापक के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करके स्नातक की उपाधि प्राप्त करने वाला शिष्य सदैव सत्य और प्रेम का उपासक होता है। निज नवीन तथ्यों, विशेषकर सत्य के अनुसंधान में उसकी विशेष रूचि होती है। उसके मन में सदैव इस संसार को और अधिक जानने-समझने और निकटता से देखकर कल्याणकारी तत्वों की खोज की जिज्ञासा बनी रहती है। अपनी इस जिज्ञासा के शमन के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। जो कोई भी स्रोत उसकी जिज्ञासा को शान्त करने में रंचमात्र भी सहायता पहुँचाता है, उसके मन में उसके प्रति अत्यधिक आदर होता है। इसके अतिरिक्त उसके हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति नम्रता, प्रेम और भाईचारे की भावना विद्यमान होती है। अनसूया (किसी से ईर्ष्या-द्वेष न करना) की भावना के कारण सम्पूर्ण संसार के प्रति वह ममत्व रखता है। तप, त्याग, संयम और परिश्रम उसके जीवन-सूत्र होते हैं और उसके जीवन का मूलाधार होते हैं। वह सौन्दर्य की उपासना करनेवाला एवं अन्याय, अत्याचार तथा दुराचार का कट्टर विरोधी होता है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' अथवा त्याग के साथ जीवन का भोग करने को ही वह अपना धर्म मानता है। त्याग की एकमात्र भावना ही उसके जीवन का प्रेरणस्रोत होती है। उसका सदैव यही प्रयास रहता है कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर सर्वोत्तम सभ्यता और संस्कृति का विकास हो, प्रत्येक समाज उन्नति के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त करें। लेखक कहता है कि मेरा कहने का आशय यह कदापि नहीं है कि योग्य अध्यापक पूरे संसार को संन्यासी बना दे, वरन् यह है कि गृहस्थ भी अपने उत्तरदायित्वों का भली-भाँति सोच-समझकर निर्वाह करें और अध्यापक उन दायित्वों को सोचने-समझने और उनके निर्वहन की योग्यता उनमें विकसित करें।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि योग्य गुरु का शिष्य निश्चित ही योग्य होता है। **(2) भाषा–** शुद्ध, सरल, संस्कृतनिष्ठ एवं बोधगम्य, **(3) शैली–** विचारात्मक। **(4) भावसाम्य–** सद्गुरु की महत्ता स्पष्ट करते हुए कबीरदास जी ने अन्यत्र स्वयं कहा है—

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥

(ञ) इसका तात्पर्य यह ..... आत्मोन्नति करेंगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि छात्रों के चरित्र को विकसित करने के लिए अध्यापक और समाज ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं। अध्यापक और समाज द्वारा इस दिशा में सत्प्रयास करने से अनेक लोग अपनी त्रुटियों से शिक्षा पाकर सन्मार्ग की ओर अवश्य बढ़ेंगे।

व्याख्या– विद्वान् लेखक ने कहा है कि चरित्रवान् नागरिक ही एक सभ्य, सुसंस्कृत और उन्नत समाज का निर्माण कर सकते हैं तथा वे सांसारिक गतिविधियों के साथ धर्म का समन्वय करके अधर्म को नष्ट कर सकते हैं। गृहस्थ लोगों पर भी धर्म-पालन का उत्तरदायित्व संन्यासियों के समान ही होता है। व्यापार, शासन एवं परिवार का संचालन सन्यासी नहीं, अपितु गृहस्थ ही करते हैं और धर्म-पालन अर्थात् कर्त्तव्य-पालन को यहाँ भी प्रमुख स्थान दिया जाता है; अत: अध्यापक का दायित्व है कि वह सत्य-प्रेमी, सौन्दर्य-प्रेमी, संयमी, कर्मनिष्ठ एवं विनम्र नागरिक बनाने का प्रयत्न करे। लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ के धार्मिक होने का दावा नहीं किया जा सकता, उसमें भी पारस्परिक सुदृढ़ता अथवा आसक्ति का भाव हो

सकता है तथापि इतना अवश्य है कि एक अच्छा अध्यापक और समाज के चरित्रवान व्यक्ति, उन्हें दुर्गुणों से बचाने का प्रयास कर सकते हैं। ऐसा भी नहीं है कि अध्यापक के प्रयत्नमात्र से ही समाज में सभी सदाचारी बन जाएँगे, पर इतना तो अवश्य होगा कि अनेक लोग कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग पर आ जाएँगे और अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान कर सकेंगे। कुछ लोग मार्ग से भटक सकते हैं, गिर सकते हैं, कुछ भूल कर सकते हैं, परन्तु वे अपनी भूलों से ही कुछ सीखकर उन्नति भी अवश्य करेंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** चरित्र के विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। **(2)** लेखक का मत है समाज में रहने वाले व्यक्ति अनेक प्रकार की भूल करते हैं, लेकिन महान् व्यक्ति वे ही होते हैं जो अपनी भूलों से शिक्षा लेते हैं तथा भविष्य में भूल न करने का संकल्प भी लेते हैं। **(3) भाषा–** सरल, सुबोध एवं परिमार्जित साहित्यिक हिन्दी। **(4) शैली–** विचारात्मक।

(ट) साधारणः शिक्षक ..... से ऊँचे होंगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने शिक्षक के भावों को योगी के समान बताते हुए कहा है कि शिक्षक को निःस्वार्थ भाव से शिष्य में ज्ञान का विकास करते हुए उसे अपने कर्त्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर करना चाहिए।

व्याख्या– सामान्यता एक शिक्षक का आचार और व्यवहार एक योगी के समान होना चाहिए। जिस प्रकार एक योगी निष्काम और निःस्वार्थ भाव से समाज के समक्ष संसार के गूढ़ रहस्यों से आवरण हटाता है, भौतिक ऐश्वर्य का त्याग करके समाजोत्थान का कार्य करता है तथा ज्ञान का प्रचार-प्रसार ही उसका मुख्य लक्ष्य होता है; उसी प्रकार शिक्षक को भी निःस्वार्थ भाव से शिष्यों में ज्ञान का विकास करना चाहिए। अनेक जन्म-जन्मान्तरों के पश्चात् मानव-जीवन प्राप्त होता है, ऐसा पौराणिक मत है। मानव-जीवन को उन्नत बनाने के लिए अध्यापक द्वारा शिष्य को कर्त्तव्य-मार्ग की ओर प्रेरित कर उसके चरित्र का विकास करना है, जिससे उसे भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण किया जा सके। गुरु का प्रभाव शिष्य पर आजीवन दिखाई देता है। गुरु और शिष्य दोनों के माध्यम से ही सुव्यवस्थित समाज और राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। भारतीय साहित्य में कर्म को ही प्रधान माना गया है और कहा गया है कि कर्महीन व्यक्ति को अधोगति प्राप्त होती है। इस जन्म के पुनीत कर्मों का फल मनुष्य के भविष्य में जन्म लेने को भी प्रभावित करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** लेखक की अभिव्यक्ति में दार्शनिक उच्चता के दर्शन होते हैं। **(2) भाषा–** संस्कृतनिष्ठ शुद्ध खड़ी बोली। **(3) शैली–** विवेचनात्मक। **(4) भावसाम्य–** अध्यापक अथवा गुरु के विषय में यह शास्त्रानुमोदित तथ्य है कि गुरु एक धोबी की भाँति शिष्यरूपी कपड़े को चेतना की शिला पर इस प्रकार धो देता है कि उसकी चेतना असीम उज्जवल हो उठती है-

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइए, निकसै जोति अपार॥

(ठ) यह आदर्श बहुत ..... सबका काम नहीं है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने दार्शनिक धरातल पर शिक्षक के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– डॉ० सम्पूर्णानन्द एक अध्यापक के आदर्श कर्त्तव्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि एक अध्यापक को अपने शिष्य से प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करते हुए उसे उसके परम पुरुषार्थ की प्राप्ति करानी चाहिए। लेखक कहते हैं कि यह आदर्श बहुत ऊँचा है, किन्तु अध्यापक का पद भी इस आदर्श से कम ऊँचा नहीं है; अर्थात् अध्यापक का पद तो संसार में सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपने इस पद की उच्चता का ध्यान न रखते हुए केवल वेतन का लालची बना रहता है और इसी के लिए अध्यापन-वृत्ति करता है, तो ऐसे व्यक्ति को अध्यापक बनने का कोई अधिकार नहीं। अध्यापक के कर्त्तव्यों का मूल्य रुपयों में नहीं मापा जा सकता। उसके आदर्श कर्त्तव्य तो अमूल्य हैं, भला दूसरे का कल्याण करके उसे परम पुरूषार्थ की प्राप्ति कराने का मूल्य भी कोई चुना सकता है? अध्यापक बनने की योग्यता पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहता है कि प्राचीन काल में धर्मगुरु और पुरोहित की योग्यता रखने वाला व्यक्ति ही शिक्षक होता था। वह महान् विद्वान् और तपस्वी हुआ करता था। वह धन-लोलुपता से कोसों दूर रहता था। अपने शिष्यों का कल्याण करने हेतु उनका सर्वांगीण विकास करने की निष्काम भावना जिस व्यक्ति में हुआ करती थी, उसे ही अध्यापक के पद का भार उठाने के योग्य समझा जाता था। वास्तव में अपने शिष्य को आत्मा-परमात्मा आदि का ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाना तथा अपने यजमान को दिव्यलोकों की अनुभूति के लिए तैयार करना, प्रत्येक गुरु अथवा धर्माचार्य द्वारा सम्भव नहीं है। एक विद्वान् , तपस्वी, परिश्रमी, कर्त्तव्यपरायण तथा सदाचारी गुरु ही इस आदर्श की प्राप्ति में सफल हो सकता है।

लेखक वर्तमान व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि आज वैसे तपस्वी नहीं रहे, जो निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सकें, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आज के शिक्षक अपने कर्त्तव्यों से मुख मोड़ लें। हम शिक्षकों को आज भी शिक्षक के प्राचीन आदर्श को अपने सामने रखकर ही अपने दायित्वों का निर्वाह करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(2) शैली–** विवेचनात्मक। **(3) भाव-साम्य–** लेखक ने स्वार्थहीन शिक्षा देने पर बल देते हुए यह सिद्ध किया है कि लोभी अध्यापक अपना यश, मान, धर्म सभी कुछ खो बैठता है। कहा भी गया है-

आब गयी आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह।।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) पुरुषार्थ दार्शनिक विषय है, पर दर्शन का जीवन से घनिष्ठ संबंध है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'डॉ० सम्पूर्णानन्द' द्वारा लिखित निबंध 'शिक्षा का उद्देश्य' से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि दर्शन का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से अटूट संबंध है।

व्याख्या– पुरुषार्थ का अर्थ जीवन के लिए निर्धारित किए गए प्रमुख उद्देश्यों से है। ये उद्देश्य हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनका निर्धारण दर्शन के आधार पर किया गया है। इस प्रकार पुरुषार्थ का अध्ययन दार्शनिक विषय से संबंधित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन उद्देश्यों की जानकारी केवल दर्शन का अध्ययन करने वालों के लिए ही आवश्यक है। इसका कारण यह है कि दर्शन और जीवन का अभिन्न संबंध है; अत: प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार के दार्शनिक विषयों को महत्व प्रदान करना चाहिए।

(ख) आत्मा अजर और अमर है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– पुरातन भारतीय संस्कृति के श्रेयस्कर तथ्यों के रूप में इस सूक्ति को उद्धृत किया गया है।

व्याख्या– पुरातन भारतीय संस्कृति ने अपने लिए जो श्रेयस्कर आधार ढूँढ़ निकाले थे, वे आज भी पहले जितने ही शाश्वत और श्रेष्ठ हैं। ऐसा ही एक आधार आत्मा के स्वरूप के विषय में ढूँढ निकाला गया था कि आत्मा न तो कभी बूढ़ा होता है और न कभी मरता है। वास्तव में बुढ़ापा और मृत्यु शरीर के विषय हैं, आत्मा के नहीं। यह तथ्य जितना शाश्वत पहले था, उतना ही आज भी है और कल भी रहेगा। यह आत्मा ज्ञान, शक्ति और आनन्द का भंडार है। जो इसके स्वरूप को जान लेता है, वहीं आनन्द, सुख और शक्ति से परिपूर्ण हो जाता हैं।

(ग) आत्म-साक्षात्कार का मुख्य साधन योगाभ्यास है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति-वाक्य में योगाभ्यास के महत्व पर प्रकाश डाला गया हैं।

व्याख्या– मर्मज्ञ साहित्यकार ने कहा है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य, छात्रों को आत्म-साक्षात्कार के योग्य बनाना ही होना चाहिए। उनके अनुसार छात्रों को अपने ज्ञानमय स्वरूप का सही बोध हो जाना ही आत्म-साक्षात्कार है। विद्वान् लेखक ने कहा है कि यदि अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर परम आनन्द को प्राप्त करना है तो इसके लिए योगाभ्यास करना होगा। योगाभ्यास के लिए अध्यापक या समाज अनुकूल वातावरण तो उत्पन्न कर सकता है, पर इसके लिए साधक को अपना गुरु स्वयं ही ढूँढ़ना पड़ेगा।

(घ) पुरुषार्थ को सामने रखकर ही चरित्र सँवारा जा सकता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में पुरुषार्थ के महत्व के प्रकाश में शिक्षा के उद्देश्य को बताया गया है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक का कहना है कि मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य ही पुरुषार्थ (मोक्ष) कहलाता है। इस उद्देश्य या पुरुषार्थ को प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य होता हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति सदाचरण से होती है और सदाचरण ही सच्चरित्र का निर्माण करता है। जब इस उद्देश्य पर हमारी दृष्टि रहेगी, तभी हम अपने चरित्र का विकास भी कर सकेंगे। यह उद्देश्य है–आत्मस्वरूप को पहचानकर मुक्ति प्राप्त करना।

(ङ) एकाग्रता ही आत्म-साक्षात्कार की कुंजी है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए डॉ० सम्पूर्णानन्द ने बताया है कि शिक्षक को अपने छात्रों में चित्त की एकाग्रता का अभ्यास विकसित करना चाहिए।

व्याख्या– डॉ० सम्पूर्णानन्द का मत है कि आत्मदर्शन के लिए एकाग्रता परम आवश्यक है। एकाग्रता धारण करने पर ही मानव को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। बिना एकाग्रता के आत्म साक्षात्कार सम्भव नहीं है। मानव-मन अनेक प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए भटकता है, किन्तु उसे वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिए आत्मसाक्षात्कार हेतु किसी एक लक्ष्य को निर्धारित करके ही आगे बढ़ना होगा।

(च) निष्कामिता की कुंजी यह है कि अपना ख्याल कम और दूसरों का अधिक किया जाय।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– निष्काम कर्मयोग की चर्चा करते हुए लेखक ने निष्काम भावना को प्राप्त करने का मार्ग बताया है।

व्याख्या– मैत्री, करुणा, प्रसन्नता और उपेक्षा का भाव जागृत हो जाने पर ही निष्काम भावना उत्पन्न होती है। निष्काम कर्म का अर्थ है–फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करना। इस सात्विक भाव की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि अपनी अपेक्षा दूसरे व्यक्तियों का अधिक ध्यान रखा जाए।

(छ) बुद्धि की जड़ तभी दृढ़ हो सकती है जब चित्त में सत्य के लिए निर्बाध प्रेम हो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि खोज एवं आलोचनात्मक अध्ययन पर आधारित धर्म–बुद्धि का विकास तभी हो सकता है, जब व्यक्ति के चित्त में सत्य के प्रति लगाव हो।

व्याख्या– व्यक्ति को कर्त्तव्यपरायण बनाने तथा दूसरों के साथ सह–आचरण की दिशा में प्रेरित करने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें धर्म–बुद्धि का विकास किया जाए और धर्म–बुद्धि का विकास तभी सम्भव है, जब हमारे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का भाव स्थायी रूप से विद्यमान् रहे। सभी शास्त्र इस प्रेम को उत्पन्न कर सकते हैं। निर्भीक वातावरण का शोधपरक एवं आलोचनात्मक बुद्धि के आधार पर सत्य की खोज की प्रवृत्ति धर्म–बुद्धि का विकास करती है। वास्तव में सत्य ही हीरा है, शेष सभी काँच। कबीर ने कहा भी है–

कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाही साँच।
जानि बूझ कंचन तजै, क्यों तू पकरै काँच॥

(ज) भूल करना बुरा नहीं है, भूल को भूल न समझना ही बड़ा दुर्भाग्य है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यह भाव निहित है कि व्यक्ति से भूल होना स्वाभाविक है, परन्तु भूलवश किए गए अनुचित कार्यों को भी सही समझते रहना व्यक्ति का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि समाज और शिक्षकों के समन्वित प्रयासों का परिणाम यह होगा कि लोग सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित होंगें। अपने सत–प्रयासों के मार्ग से वे अनेक बार पथभ्रष्ट भी होंगे, परन्तु वे शीघ्र ही अपनी भूलों को पहचान जाएँगे और उन पर प्रायाश्चित कर पुन: सन्मार्ग पर चलने का प्रयास करेंगे। किसी भी व्यक्ति से भूल होना स्वाभाविक है, परन्तु यदि वह व्यक्ति अपनी भूल को समझकर उस पर प्रायश्चित करने का प्रयास न करे तो यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'शिक्षा का उद्देश्य' निब्न्ध का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत निबन्ध 'शिक्षा का उद्देश्य' में डॉ० सम्पूर्णानन्द ने प्राचीन आदर्शों को विशेष महत्व देते हुए शिक्षा के उद्देश्य पर अपने मौलिक विचार व्यक्त किए हैं। लेखक कहता है कि आज अध्यापक और समाज के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि शिक्षा किसलिए दी जाए? शिक्षा देने का उद्देश्य क्या है? तभी विद्यार्थियों को पढाए जाने वाले विषयों का निर्धारण सम्भव है। लेखक का मानना है कि शिक्षा देने का उद्देश्य स्वयं में स्वतंत्र नहीं है। यह मनुष्य के जीवन के उद्देश्य से जुड़ा है, इसलिए पुरुषार्थ का निर्धारण होने के बाद ही शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित किया जा सकता है।

लेखक कहता है पुरुषार्थ का संबंध दर्शन से है और दर्शन का संबंध जीवन से। दार्शनिक सिद्धान्तों के अभाव में समाज का संचालन नहीं हो सकता। प्रत्येक समाज को कोई–न–कोई दार्शनिक मत स्वीकार करना होता है, क्योंकि इसी मत के आधार पर ही उस समाज की राजनैतिक, सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था संभव होती है। जिस समाज में किसी दार्शनिक मत के आधार पर व्यवस्था नहीं की जाती तथा केवल अवसरवादिता तथा उपयोगिता के आधार पर समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है, उस समाज को अपने संचालन में अनेक प्रकार की कठिनाईयों का समाना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में एक विभाग के आदर्श दूसरे के आदर्श से टकराएँगे, जो अन्तत: सम्प्रदायिकता का रूप ले लेती है। यह कठिनाई दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर विचार करने से ही दूर हो सकती है। आज समाज में दिखावट का तमाशा सा लगा हैं चोरी करना बुरी लत है, परन्तु दूसरे देश का शोषण करना बुरा नहीं है। झूठ बोलना बुरा है, परन्तु राजनीति के क्षेत्र में झूठ बोलना बुरा नहीं है। घरवालों, स्वदेशी व विदेशियों के साथ व्यवहार करने का अलग–अलग तरीका, ऐसे ही अनेकों आचारों का समूह बना है। इसलिए सोच–विचार करके दार्शनिक मत स्वीकार कर सबके प्रति समान व्यवहार किया जाए। प्राचीन भारत में वर्ण और आश्रम इसी प्रकार स्थापित किया गया था। वर्तमान समय में रूस ने मार्क्सवाद को ही सब नियमों का केन्द्र बनाया हुआ है। इन नियमों को बनाने से समाज एक सूत्र में बँध जाता है और आदर्शों के आपस में टकराने की संभावना कम हो जाती है।

लेखक कहते हैं कि आत्मा न कभी मरती है न बूढ़ी होती है। यह अजर–अमर शाश्वत है। इस आत्मा में अनन्त ज्ञान, शक्ति और अक्षय आनन्द का भंडार है। आत्मा को पहचानने से चिरस्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है और परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है। लेखक कहता है कि जीव अज्ञान के कारण आत्मा के अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्दमय स्वरूप को भूला हुआ हैं ज्ञान के

अभाव में वह अपने को अल्पशक्ति वाला समझने लगता है। फलस्वरूप वह आनन्द से रहित होकर दु:खी हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसका कुछ खो गया है परन्तु क्या खो गया है उसे यह समझ में नहीं आता। उस खोई वस्तु की वह निरन्तर खोज करता रहता है। यद्यपि उसे इन विषयों में अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन नहीं हो पाते और कोई भी विषय उसकी जिज्ञासा को तुष्ट नहीं कर पाता। बिना आत्मज्ञान के आनन्द की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। आत्मज्ञान की प्राप्ति करना मनुष्य का पुरुषार्थ है और मनुष्य को इस पुरुषार्थ के योग्य बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

लेखक के अनुसार व्यक्ति का प्रमुख पुरुषार्थ अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना है। अपनी आत्मिक शक्तियों का ज्ञान ही आत्मसाक्षात्कार कहलाता है और आत्मसाक्षात्कार का प्रमुख साधन योग का अभ्यास करना है। योगाभ्यास एक आध्यात्मिक साधना है, जिसके माध्यम से व्यक्ति का चित्त एकाग्र हो जाता है। योगाभ्यास सिखाने के लिए राज्य अथवा विद्यालय विशेष सिद्ध नहीं हो सकते। जिसमें लगन होगी वही श्रेष्ठ गुरु की खोज कर पाएगा। परन्तु समाज व अध्यापक तो उसके लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर, आवश्यक साधन उलपब्ध कराकर उसे इस दिशा में प्रेरित करें।

लेखक कहते हैं कि चरित्र का विकास पुरुषार्थ के द्वारा ही किया जा सकता हैं प्रत्येक विद्यार्थी की आत्मा स्वयं को ढूँढ़ती है, पर उसे इसका आभास नहीं होता। जब उसे कोई अभिलाषित वस्तु मिल जाती है तो उसका मन सुख अनुभव करता है परंतु कुछ समय बाद वह किसी दूसरी वस्तु की इच्छा करता है। जब एक वस्तु की अभिलाषा अधिक मनुष्य करते है तो उनमें टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। किसी एक मनुष्य को उसका लाभ उठाने से द्वेष, क्रोध की भावना बढ़ती है। लेखक कहता है कि अध्यापक का यह दायित्व है कि वह छात्र में एकाग्रता का गुण उत्पन्न करें। चित्त की एकाग्रता से ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है। इसे उत्पन्न करने के लिए छात्रों के मन में सात्विक भाव उत्पन्न किए जाए। जब उनके मन में, मित्रता, करुणा, उपेक्षा का भाव जागृत हो जाएगा, तभी वह निष्काम भाव से कर्म में प्रवृत हो सकेगा। दूसरे के सुख में सुखी होना, मैत्रीभाव उत्पन्न होना तथा किसी का दु:ख देखकर दु:खी होने पर उसमें करुणा का भाव जागृत हो जाएगा। किसी को अच्छा कार्य करते देखकर प्रसन्न होकर उसे प्रोत्साहित करने से प्रसन्नता का भाव जागृत होगा और जब वह किसी व्यक्ति के बुरे कर्मों का विरोध करते हुए भी उससे शत्रुता न करें तब उसमें उपेक्षा का भाव जागृत हो जाएगा। जैसे-जैसे ये भाव जागेंगे उससे ईर्ष्या-द्वेष की भावना कम हो जाएगी। निष्काम कर्म का अर्थ है-फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करना। इसके लिए आवश्यक है कि अपनी अपेक्षा दूसरों का ख्याल अधिक रखा जाए। छात्रों में प्रारंभ से ही परोपकार, लोक-कल्याण, जीव सेवा एवं दूसरों की सेवा हेतु पुरूषार्थ की भावना उत्पन्न की जाए। जब हम किसी भूखे को अन्न देते हैं, जलते या डूबते हुए को बचाते हैं या किसी रोगी की सेवा करते हैं तो हम मैं और पर के भावों से ऊपर उठ जाते हैं। तब हमें अपनी आत्मा की झलक दिखाई पड़ती है। पर-सेवा की भावना जितनी प्रबल व जितने अधिक समय तक होगी, उतने ही अधिक समय के लिए आत्मसाक्षात्कार भी संभव हो सकेगा।

लेखक कहता है कि संसार अनेक प्रकार के प्रलोभनों और विषय-वासनाओं से भरा पड़ा हैं कला इन प्रलोभनों और वासनाओं से मुक्त होने का महत्वपूर्ण साधन है। सांसारिक वासनाओं से मुक्ति पाने के लिए मानव को साहित्य, संगीत और चित्रकला में अपना मन लगाना चाहिए। जिस समय मानव इन कलाओं में आनन्द प्राप्त करता हैं, उस समय उसके सारे तनाव दूर हो जाते हैं और हृदय अध्यात्म की ओर प्रवृत्त हो जाता है। बहुत से कवि प्रकृति का प्रयोग कामोद्दीपन के लिए करते हैं, किन्तु प्रकृति वास्तव में शांत रस को उद्दीप्त करती है। अध्यापक को अपने छात्रों में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति निष्काम प्रेमभाव जागृत करना चाहिए। सौन्दर्य के प्रति जो वास्तविक प्रेम होता है वह भी निष्काम होता है। सौन्दर्य का प्रत्यक्ष स्वरूप यह है कि जब द्रष्टा स्वयं को भूलकर उसमें ही लीन हो जाए।

लेखक कहता है कि शिक्षक को छात्र के चरित्र का विकास इस प्रकार करना चाहिए कि उसमें मैं और तू की भावना समाप्त हो जाए। सेवाभाव व अच्छे ढंग से किए कार्यों से संघर्ष की भावना समाप्त हो जाए। एक वस्तु की प्राप्ति के लिए समाज में कलह न हो। प्राचीन आचार्य इसलिए ही धर्म की शिक्षा देते हैं। धर्म का अर्थ पूजा-पाठ नहीं है, अपितु वे सभी कार्य धर्म के अंतर्गत आते हैं, जिनमें कल्याण की भावना अन्तर्निहित होती है। मनुष्य का कल्याण तभी हो सकता है जब समाज का कल्याण होगा। मनुष्य के अनेकों गुणों का विकास केवल समाज में रहकर ही संभव है और मनुष्य अनेक सुखों को केवल समाज में ही भोग सकता है। इसलिए सबको ध्यान में रखकर ही कर्त्तव्यों का निर्धारण करना चाहिए। यह हमारा कर्त्तव्य है कि जिस संस्कृति को हमारे पूर्वज छोड़ गए है उसका लोप न होने पाए तथा वह हमारी आने वाली पीढ़ी में पहुँचाई जाए। लेखक कहते है कि सबके प्रति उचित कर्त्तव्य का पालन ही धर्म है। कर्त्तव्य की यही भावना धर्म-बुद्धि है। अगर यह भावना सबमें प्रविष्ट कर जाए तो सम्पूर्ण विवाद ही नष्ट हो जाए। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब मन में सत्य के प्रति प्रेम हो। सभी शास्त्र इस प्रेम को उत्पन्न कर सकते हैं किन्तु शर्त यह है कि उसे औषधि की तरह ऊपर से न पिलाया गया हो अर्थात् सिर्फ रटाया न गया हो।

लेखक कहता है कि योग्य, प्रशिक्षित और सदाचारी अध्यापक के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करके स्नातक की उपाधि प्राप्त करने वाला शिष्य सदैव सत्य और प्रेम का उपासक होता है। उसके मन में सदैव संसार को अधिक जानने-समझने ओर निकटता से देखकर कल्याणकारी तत्वों की खोज की जिज्ञासा बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उसके हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति नम्रता, प्रेम और भाईचारे की भावना विद्यमान् रहती है। वह हर प्रकार के अन्याय, दुराचार का कट्टर विरोधी होता है। लेखक कहता है कि सन्यासी तपस्वी होता है, वह धर्म तथा त्याग का पालन करता है, किन्तु सद्गृहस्थ भी पूरी तरह धार्मिक होता है और उस पर

भी धर्म का पूरा भार होता है। यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ के धार्मिक होने का दावा नहीं किया जा सकता, उनमें भी परस्पर रागात्मक तथा द्वेषात्मक संबंध अथवा आसक्ति का भाव हो सकता है, तथापि इतना अवश्य है कि एक अच्छा अध्यापक और समाज के चरित्रवान व्यक्ति उन्हें दुगुर्णों से बचाने का प्रयास कर सकते हैं। हमें यह बात भली प्रकार जान लेनी चाहिए कि गलतियाँ होना बुरी बात नहीं है, दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि गलतियाँ करके भी उन पर पश्चाताप न किया जाए।

लेखक कहता है कि जिस प्रदेश अथवा क्षेत्र में हर समय लड़ाई-झगड़े, दंगे-फसाद होते रहते हैं वहाँ तनान व्याप्त रहता है। इसी प्रकार जिन घर परिवारों में आजीविका के सुनिश्चित साधन न हो और उनमें मूलभूत आवश्यकताओं का सदैव अभाव बना रहता हो, जहाँ पिता शराबी तथा माता दुराचारिणी हो या माँ-बाप में मारपीट अथवा गाली-गलौच होती रहती है ऐसे परिवारों के बच्चे कभी संस्कारवान नहीं हो सकते। ऐसे विकृत मानसिकता वाले बच्चों में संस्कारों का बीजारोपण नहीं हो सकता। सामान्यत: एक शिक्षक का व्यवहार एक योगी के समान होना चाहिए। जिस प्रकार योगी निष्काम भाव से संसार के गूढ़ रहस्यों से आवरण हटाता है, उसी प्रकार शिक्षक को भी नि:स्वार्थ भाव से शिष्यों में ज्ञान का विकास करना चाहिए। मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए अध्यापक द्वारा शिष्यों को कर्त्तव्य-मार्ग की ओर प्रेरित कर उसके चरित्र का विकास करना चाहिए, जिससे उन्हें भौतिक, दैविक और अध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण किया जा सके।

लेखक कहता है कि एक शिक्षक का आर्दश समाज में बहुत ऊँचा है। वह समाज को शिक्षित करता है। जो व्यक्ति अपने पद की उच्चता का ध्यान न रखते हुए केवल वेतन का लालची बना रहता है तथा इसके लिए कर्म करता है, ऐसे व्यक्ति को अध्यापक बनने का कोई अधिकार नहीं। अध्यापक के कर्त्तव्यों का मूल्य रुपयों में नहीं आँका जा सकता। वास्तव में अपने शिष्य को आत्मा-परमात्मा आदि का ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनाना तथा अपने यजमान को दिव्यलोकों के लिए तैयार करना प्रत्येक गुरु अथवा धर्माचार्य द्वारा संभव नहीं है। लेखक कहता है कि आज वैसे तपस्वी नहीं रहे, जो निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सके। हम शिक्षकों को अपने सामने प्राचीन शिक्षकों का आदर्श रखकर अपने दायित्वों के निर्वाह करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

2. पाठ के आधार पर बताइए कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उ०– डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य पुरुषार्थ की सफलता के लिए शिक्षा देना है। शिक्षा का उद्देश्य स्वयं में स्वतंत्र नहीं है अर्थात् किसी एक बिन्दु को लेकर शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के जीवन के उद्देश्य से जुड़ा है। यह जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ से सम्बद्ध है इसलिए पुरुषार्थ का निर्धारण होने के बाद ही शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण किया जा सकता है।

3. पाठ के आधार पर बताइए कि अध्यापक को छात्र के चरित्र का विकास किस प्रकार करना चाहिए?

उ०– अध्यापक का दायित्व है कि वह छात्र के चरित्र का विकास करने के लिए उसमें एकाग्रता का गुण उत्पन्न करें। इसके लिए छात्रों में सात्विक भाव उत्पन्न किए जाएँ। छात्रों में मैत्री, करुणा, उपेक्षा तथा प्रसन्नता के भाव उत्पन्न करें तथा निष्काम प्रवृत्ति जागृत करें। जैसे-जैसे व्यक्ति में मैत्री, करुणा, प्रसन्नता तथा उपेक्षा के भाव जागृत होते जाते हैं, वैसे-वैसे उनके मन में ईर्ष्या और द्वेष की भावना कम होती जाती है। छात्रों के चरित्र का विकास करने के लिए अध्यापक को उनके मन में 'मैं' और 'पर' की भावना समाप्त कर 'स्व' की भावना जागृत करनी चाहिए जिससे वे दूसरों के सुख में सुखी, दु:ख में दु:खी तथा बुरे व्यक्तियों के प्रति शत्रुता का भाव न रखे और अपना व समाज का विकास कर सकें।

4. अध्यापक को छात्र में किस प्रकार के भाव जागृत करने के लिए समाज के सहयोग की आवश्यकता होती है?

उ०– अध्यापक को छात्र में कल्याण का भाव जागृत करने के लिए समाज के सहयोग की आवश्यकता है, क्योंकि हमारा कल्याण समाज से पृथक नहीं है। यदि हमें अपना हित करना है तो हमें समाज का भी हित करना होगा। समाज के बिना मानवीय गुणों का विकास असंभव तो है ही, साथ ही ऐसे अनेक सुख-भोग हैं जिन्हें मनुष्य समाज के बिना प्राप्त नहीं कर सकता।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

6 आनन्द की खोज, पागल पथिक

(राय कृष्णदास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–58 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. राय कृष्णदास का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान बताइए।

उ०– लेखक परिचय– गद्य–गीत के प्रवर्त्तक राय कृष्णदास का जन्म काशी के एक सम्भ्रान्त परिवार में 13 नवम्बर, सन् 1892 ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम प्रहलाददास था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। इसके बाद इन्हें शिक्षा–प्राप्ति

के लिए विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया। लेकिन जब ये बारह वर्ष के ही थे, तब इनके पिता स्वर्गवासी हो गए, जिस कारण इनका शिक्षा का क्रम टूट गया। राय कृष्णदास जी ने स्वाध्याय द्वारा हिन्दी, अंग्रेजी व संस्कृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। ये भारतेन्दु जी के निकट संबंधी थे; अत: इनके पिता हिन्दी भाषा–प्रेमी थे। पिता से प्रभावित होने के कारण राय कृष्णदास भी हिन्दी साहित्य से अगाध प्रेम करने लगे। आठ वर्ष की अल्पायु में ही ये छन्द–रचना करने लगे थे। साहित्य–क्षेत्र में निरन्तर संलग्न रहते हुए इनका सम्पर्क रामचन्द्र शुक्ल, जयंशकर प्रसाद तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों से हुआ।

भारतीय कला आन्दोलन में राय कृष्णदास का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने 'भारत–कला–भवन' नामक एक विशाल संग्रहालय स्थापित किया था, जो अब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का एक विभाग है। यह संग्रहालय विश्व के प्रमुख संग्रहालयों में से एक है। भारत सरकार द्वारा सन् 1980 ई० में इन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1985 ई० में ये इस नश्वर संसार से सदैव के लिए विदा हो गए।

हिन्दी साहित्य में स्थान– राय कृष्णदास भारतीय कला के पारखी और साहित्य के मनस्वी साधक थे। इन्हें गद्य–गीत विधा का प्रथम रचनाकार माना जाता है। गद्य–गीतकार के अतिरिक्त एक कहानीकार एवं निबन्धकार के रूप में भी इन्होंने अपार ख्याति अर्जित की है। भारतीय साहित्य में इन्हें हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार के रूप में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिन्दी–साहित्य जगत में राय कृष्णदास जी का नाम सदैव अमर रहेगा।

2. राय कृष्णदास की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कृतियाँ– राय कृष्णदास जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं–

कविता-संग्रह– खड़ी बोली में 'भावुक' तथा ब्रजभाषा में 'ब्रजरज'।

कहानी-संग्रह– अनाख्या, सुधांशु, आँखों की थाह।

कला-संबंधी– भारतीय मूर्तिकला, भारत की चित्रकला।

गद्य-काव्य– साधना, छायापथ।

निबन्ध– संलाप, प्रवाल।

अनूदित– खलील जिब्रान के 'दि मैड मैन' का 'पगला' नाम से हिन्दी–रूपान्तर।

भाषा शैली– राय कृष्णदास जी ने अपनी भाषा का गठन संस्कृत के तत्सम शब्दों के आधार पर किया है किन्तु तत्सम शब्दों का चयन करते समय इन्होंने व्यावहारिकता को विशेष महत्व प्रदान किया है। संस्कृत शब्दों के साथ–साथ इन्होंने उर्दू के व्यावहारिक शब्दों को भी ग्रहण किया। उर्दू के हमसाया, खैर, ताज्जुब, दुरुस्त आदि शब्द इनकी भाषा में बार–बार प्रयुक्त हुए हैं। इन्होंने अपनी भाषा में प्रान्तीय और ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है। यत्र–तत्र पण्डिताऊ शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं, लेकिन ऐसे शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक नहीं किया गया है। राय कृष्णदास जी ने शुद्ध हिन्दी को स्वीकार किया। इसके लिए इन्होंने बहुत से उर्दू मुहावरों का रूप भी बदल दिया है; जैसे– 'दिल का छोटा है' का रूप इन्होंने 'हृदय से लघुतर' कर दिया है। राय कृष्णदास ने अधिकतर गद्य–गीतों की रचना की है, जिन्हें गद्य–काव्य भी कहा जाता है। राय कृष्णदास की भाषा उनकी कवित्वपूर्ण भावुकता को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ है।

इन्होंने भावात्मक शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता चमत्कारप्रियता है। इस शैली में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता है। प्रकृति के सुन्दर रूप का चित्रण करते समय राय साहब की शैली में चित्रात्मकता का गुण आ जाता है। प्राचीन इतिहास और भारतीय कला से संबंधित खोजपूर्ण निबन्धों में राय साहब की शैली गवेषणात्मक हो गई है। इन्होंने प्राय: सभी रचनाओं में सीधी–सादी बात को चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। इससे इनकी शैली आलंकारिक हो गई है।

कोमल भावनाओं को सजीव शब्दों में प्रकट करना राय कृष्णदास जी की गद्य–शैली की प्रमुख विशेषता है। इनकी गद्य–शैली भावात्मक, सांकेतिक और कवित्वपूर्ण है। इन्होंने हिन्दी–गद्य को एक नई दिशा प्रदान करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) मुझे यह सोचकर ..... मैं अवाक था।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'राय कृष्णदास' द्वारा लिखित 'आनन्द की खोज, पागल पथिक' नामक गद्यगीतों से उद्धृत है।

प्रसंग– लेखक के विचारानुसार संसार का प्रत्येक प्राणी इस ब्रह्माण्ड के बाहर तक जाकर भी आनन्द की खोज करना चाहता है, परन्तु सच्चा सुख तो अपने भीतर ही है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि आनन्द की खोज में भटकते हुए समय व्यर्थ नष्ट करने पर मुझे यह अचरज हो रहा है कि इस आनन्द के भंडार को देने वाली संसार रूपी लता में मुझे कण मात्र का आनन्द भी प्राप्त नहीं हो पाया और मुझे आनन्द के बदले में रुदन ही प्राप्त हो पाया। बाह्य जगत में आनन्द की खोज में भटकते हुए थक जाने पर लेखक की आत्मा से अज्ञान का आवरण हट गया। अब उसने समझा कि उसने इतना मूल्यवान समय व्यर्थ के प्रयत्न में खो दिया हैं लेखक को ज्ञात हुआ कि आनन्द तो

मनुष्य के भीतर ही निहित है। तब उसे ऐसा जान पड़ा कि सृष्टि का प्रत्येक कण उसकी हँसी उड़ाता हुआ उससे यही प्रश्न पूछ रहा था कि अरे मूर्ख! तुमने सारी दुनिया छान मारी है, पर कभी अपने अन्दर भी आनन्द को ढूँढ़ा है? या सारी उम्र ऐसे ही व्यर्थ में गँवा दी है। प्रकृति के इस प्रश्न पर लेखक की आत्मा मौन और लेखक स्वयं चकित हो रहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** संसार के सभी बाह्य पदार्थों से आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि आनन्द आन्तरिक भाव है, अत: उसे बाहर खोजना व्यर्थ है। **(2)** लेखक का संदेश है कि आनन्द की प्राप्ति के लिए अपनी आत्मा को पहचानना होगा। **(3) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक एवं कवित्वपूर्ण खड़ी बोली। **(4) शैली–** भावात्मक और अनुभूतियुक्त। **(5) भावसाम्य–** संत कबीर ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं–

कस्तुरी कुंडी बसै, मृग ढूँढै.बन माहिं।
ऐसै घटि-घटि राम है, दुनिया देखै नाहिं।।

(ख) सच तो यह है। जब ..... अपने आप में मिली।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने इस गद्यगीत के माध्यम से मनुष्य को स्वयं में झाँककर देखने के लिए प्रेरित किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि मैं आनन्द की खोज में बहुत समय तक भटकता रहा। परंतु वह मुझे नहीं मिला। जब मैंने उसे विश्व के अंश अर्थात् स्वयं में झाँककर नहीं देखा तो मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैंने सारी सृष्टि में आनन्द की खोज की? जिस आनन्द को मैं स्वयं को प्रदान नहीं कर सका भला उसे दूसरे व्यक्ति मुझे कैसे प्रदान करने में समर्थ होते? परन्तु आनन्द की खोज का जो ज्ञान मुझे स्वयं न हो पाया वह मुझे संसार से मिल गया और आनन्द की खोज में भटकते हुए जो आनन्द मुझे संसार से न मिल सका वह मुझे स्वयं से ही मिल गया।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** लेखक का कहना है कि मनुष्य के स्वयं के अन्दर ही आनन्द विद्यमान है। **(2) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक एवं कवित्तपूर्ण खड़ी बोली **(3) शैली–** भावात्मक और अनुभूतियुक्त।

(ग) मैंने सखेद कहा ..... छक जाओगे।'

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने अपने गद्यगीत के इस अंश में, संसार में पागल बने पथिक के समान दौड़ते मनुष्यों को सही मार्ग दिखाने का प्रयास किया है। वह नहीं चाहता कि मृगतृष्णा अर्थात् आनन्द की खोज में भटकता पथिक रूपी मनुष्य इस संसार में कष्ट उठाता रहे।

व्याख्या– लेखक आनन्द की खोज में भटके हुए प्राणी को समझाता हुआ कहता है कि हे पथिक! तुम भारी भ्रम में पड़ गए हो? तुम इस विश्व के बाहर जाकर आनन्द की खोज तो करना चाहते हो, पर तुम संसार के बाहर कैसे पहुँच सकते हो? क्योंकि यह पृथ्वी घड़े के समान गोलाकार है, इसलिए विश्वमण्डल में तुम जिस स्थान से चलोगे, लौटकर फिर वहीं पहुँच जाओगे। तुम इस संसार के बाहर ऐसे लोक की कल्पना कर रहे हो, जहाँ सुख–ही–सुख है एवं दु:ख का नामोनिशान भी नहीं है, लेकिन तुम्हारी यह कल्पना निर्मूल है; क्योंकि तुम ब्रह्माण्ड के बाहर के सुख की कल्पना इसी संसार में पूर्ण सुख के आधार पर कर रहे हो और जब तुम्हें इसी संसार में पूर्ण सुख नहीं मिल रहा है तो उस काल्पनिक संसार में सुख कैसे मिल सकता है?

लेखक पथिक को सम्बोधित करते हुए कहता है कि यह संसार सुख और दु:ख से परिपूर्ण है। इस संसार में सुख के साथ दु:ख भी जुड़ा हुआ है। सुख–दु:ख में से दु:ख को छोड़कर सुख को ग्रहण कर लो। इसी प्रयत्न में तुम्हें सुख मिलेगा। तुम्हारे द्वारा कल्पित एवं निरन्तर प्राप्त होने वाला सुख तो तुम्हारे लिए वेदना का विषय बन जाएगा। तुम सोचो कि बिना नवीनता के भी कहीं सुख मिलता है? सुख के लिए नवीनता आवश्यक है; अत: तुम्हारी कल्पना बिलकुल झूठी और व्यर्थ है, इसलिए तुम पूर्ण सुख को प्राप्त करने की कल्पना त्याग दो। ऐसा करने से तुम्हें इसी संसार में इतना सुख मिलेगा कि तुम पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाओगे, लेकिन वह सुख तुम्हें अपने अन्दर मिलेगा, बाहर नहीं। उसे अपने भीतर ही खोजना पड़ेगा। तुम यही करो।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** इस संसार के बाहर सुख की कल्पना करना भ्रामक और मिथ्या है। **(2)** सुख का सच्चा अनुभव इसी संसार में होता है, उसे अपने अन्दर ही खोजना चाहिए। **(3)** सुख के लिए नवीनता अपेक्षित है। **(4) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(5) शैली–** भावात्मक और सम्बोधनात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) आनन्द के बदले में रूदन और शोच परिपोषित कर रहा था।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'राय कृष्णदास' द्वारा लिखित 'आनन्द की खोज, पागल पथिक' नामक गद्यगीत से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने आनन्द की खोज की विवेचना प्रस्तुत की है।

व्याख्या– प्रस्तुत पंक्ति में लेखक कहता है कि जीव जब तक बाह्य जगत् में आनन्द की खोज करता है, तब तक उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। आनन्द की खोज में वह कभी मंदिर, कभी मस्जिद तथा कभी किसी महात्मा की शरण में जाता है। इन सभी क्रियाओं से अन्तत: वह निराश हो जाता है और दु:ख प्राप्त करता है, जिसका परिणाम रुदन और चिन्ता है। इन बाह्याचारों के

स्थान पर व्यक्ति यदि अपने भीतर ही आनन्द को खोजे तो निश्चय ही उसे आनन्द की प्राप्ति हो जाएगी। कबीर ने कहा भी है—

कबीर खांडी छाड़ि कै, काँकर चुनि-चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय।।

(ख) यहाँ तो सुख के साथ दु:ख लगा है और उससे सुख को अलग कर लेने के उद्योग में भी एक सुख है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में संसार की सुख और दु:खपूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालते हुए सुख—प्राप्ति का उपाय सुझाया गया है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है कि संसार सुख—दु:खमय है। यहाँ सुख के साथ दु:ख और दु:ख के साथ सुख जुडा हुआ है। व्यक्ति दु:खी इसलिए है कि वह केवल सुख चाहता है, जबकि संसार में वास्तविक सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसीलिए सुख भोगते समय भी व्यक्ति दु:ख की कल्पना करके दु:खी होता है, जब कि सुख चाहने वाले को दु:ख भोगते समय सुख की कल्पना करके सुख का अनुभव करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें सुख और दु:ख में से सुख को अलग करके देखने की आवश्यकता है। जब हम दु:ख में से सुख को अलग करने का प्रयास करेंगे, तब उस प्रयत्न में हमें इसलिए सुख का अनुभव होगा कि हमारे ध्यान में वह प्राप्तव्य सुख ही रहेगा। जब हम इस कला में निपुण हो जाएँगे, तब हमें अपार सुख की अनुभूति होगी।

(ग) बिना नव्यता के सुख कहाँ?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नवीनता को सुख का मूलाधार बताकर लेखक ने निरन्तर नवीनता की सृष्टि के लिए उत्प्रेरित किया है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में कहा गया है कि नवीनता में सुख है। बिना नवीनता के सुख की प्राप्ति नहीं होती। यदि तुम निरन्तर एक जैसा सुख भोगते रहोगे, तो वही सुख तुम्हें दु:ख रूप प्रतीत होने लगेगा; अत: निरन्तर प्राप्त होने वाले सुख से सुख की अनुभूति नहीं हो सकती। सुख के अस्तित्व के लिए भी परिवर्तन अत्यावश्यक है। यदि कोई नित्यप्रति अपना मनपसन्द स्वादिष्ट भोजन करता रहे तो एक दिन वह भी उसे अरुचिकर प्रतीत होगा। इसलिए परम सुख की अनुभूति के लिए दु:ख परमावश्यक है। स्वर्ग में यद्यपि सभी सुख है किन्तु वहाँ नवीनता नहीं, इसलिए महादेवी वर्मा उसे भी ठुकरा देती हैं—

क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का वरदान
रहने दो हे देव! अरे! यह मेरा मिटने का अधिकार।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न—

1. 'आनन्द की खोज, पागल पथिक' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत गद्यगीत 'आनन्द की खोज, पागल पथिक' में राय कृष्णदास ने आनन्द की खोज कर अपने विचार व्यक्त किए है और आत्मा को ऐसा पथिक माना है जो आनन्द की खोज में भटकता रहता है। लेखक कहता है कि मैं आनन्द की खोज में जाने कहाँ—कहाँ नहीं भटका। परंतु जब हर जगह से मेरी आत्मा को उसी प्रकार विलाप करते हुए वापस लौटना पड़ा। जिस प्रकार चन्द्रमा की ओर से चकोर लड़खड़ाता हुआ जाता है। मुझे किसी भी यत्न से आनन्द की प्राप्ति न हो पाई। मुझे समझाने वाला कोई व्यक्ति न था और मैं बार—बार यही सोचकर विलाप करता रहा कि ईश्वर के होते हुए भी मैं अनाथ कैसे हो गया हूँ क्या मैं जगत से बाहर हो गया हूँ? मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता रहा है कि इस आनन्द के भंडार संसार में मुझे अणुमात्र भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सका। मुझे आनन्द तो प्राप्त नहीं हो पाया बल्कि मैं रुदन और सोच में घिर गया।

लेखक कहता है कि जब मैं आनन्द को खोजते—खोजते थक गया और मुझे कहीं भी आनन्द नहीं मिला, तब मेरी आत्मा से अज्ञान का आवरण हट गया। अब मैंने समझा कि मैंने इतना मूल्यवान समय नष्ट कर दिया। लेखक को जब ज्ञात हुआ कि आनन्द तो मनुष्य के भीतर ही समाहित है तब उसे ऐसा लगा जैसे सारी सृष्टि उसकी हँसी उड़ा रही है और उससे प्रश्न पूछ रही है कि अरे मूर्ख! तुने सारी सृष्टि ढूँढ़ मारी है, पर कभी अपने अंदर भी आनन्द को ढूँढ़ा है या सारी उम्र ऐसे ही व्यर्थ में गवाँ दी है? इस प्रश्न पर लेखक की आत्मा मौन और वह चकित हो गया।

लेखक कहता है कि यह सच है कि जब मैंने स्वयं में आनन्द को न खोजा, जो स्वयं में विश्व का एक अंश है। तब मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैंने सारी दुनिया छान मारी है। जो वस्तु अर्थात आनन्द मैं स्वयं को प्रदान नहीं कर सका। वह दूसरे अर्थात् सृष्टि में मुझे कैसे प्राप्त हो सकता था। परन्तु एक ज्ञान जो मैं स्वयं को कभी प्रदान नहीं कर सका उसके विषय में मुझे सृष्टि ने सिखाया कि सच्चा आनन्द तो स्वयं के भीतर छिपा हुआ है तथा जो आनन्द मुझे सृष्टि से नहीं मिल पाया वह मुझे स्वयं के भीतर झाँकर प्राप्त हुआ है।

लेखक कहता है कि मैंने आनन्द की खोज में भटकते हुए आत्मा रूपी पथिक से पूछा कि तुम कहाँ से चले हो और कहाँ जा रहे हो? तुम्हारी यात्रा बहुत लंबी मालूम हो रही है क्योंकि तुम्हारा तन बहुत दुर्बल हो रहा है और तुम्हारे वस्त्र फटकर तुम्हारे शोकग्रस्त हृदय की लाज रख रहे हैं। अथक चलते रहने के कारण तुम्हारे पैरों से रक्त बह रहा है। क्या बात है? तुम इतने व्यथित क्यों हो?

उस पथिक ने दीनता ने उत्तर दिया,' मित्र मै इस संसार में अपना मार्ग भूल गया हूँ। मैंने सुना है कि इस संसार से बाहर एक ऐसा स्थान है जहाँ सुख और विलास की सभी सामग्रियाँ प्राप्त होती है परंतु वहाँ लेशमात्र भी दु:ख नहीं है। मेरे गुरु ने मुझे उसका पता बताया था और मैं उसी मार्ग पर सावधानीपूर्वक चला भी था किन्तु जाने मुझसे बार—बार कौन—कौन सी गलतियाँ हो गई जो मैं बार—बार घूमकर उसी स्थान पर आ जाता हूँ। जिस स्थान से चला था। परन्तु चाहे कुछ भी हो मैं अपने प्रयासों से वहाँ अवश्य पहुँचूगा।

लेखक ने पथिक से कहा कि तुम भारी भ्रम में पड़ गए हो। तुम इस विश्व से बाहर जाकर आनन्द की खोज करना चाहते हो, पर तुम संसार से बाहर कैसे पहुँच सकते हो? यह पृथ्वी घड़े के समान है तुम जिस स्थान से चलोगे अंत में घूमकर उसी स्थान पर पहुँच जाओगे। जिस लोक की कल्पना तुम कर रहे हो वह आधारहीन है, जब तुम्हें इस संसार में सुख नहीं मिलता तब काल्पनिक संसार में सुख कैसे प्राप्त करोगे?

लेखक कहता है कि यह संसार सुख और दु:ख से परिपूर्ण हैं सुख—दु:ख में से तुम दु:ख को छोड़कर सुख ग्रहण कर लो। इसी प्रयत्न में तुम्हें सुख मिलेगा। तुम सोचो कि बिना नवीनता के भी कहीं सुख मिलता है? तुम्हारी यह कल्पना असत्य और सार रहित है इसलिए तुम इसे त्याग दो। ऐसा करने पर जो सुख तुम्हें मिलेगा, तुम पूरी तरह उसी में संतुष्ट हो जाओगे। लेकिन यह सुख तुम्हें तुम्हारे अंदर मिलेगा बाहर नहीं। तुम्हें उसे अपने भीतर ही खोजना पड़ेगा। परन्तु उस पर मेरी बात का कोई असर नहीं हुआ और वह अपनी पोटली उठाकर चला गया।

2. लेखक को कब आनन्द की अनुभूति हुई?

उ०– लेखक को स्वयं के अंतर्मन से झाँककर आनन्द की प्राप्ति हुई। जिस आनन्द को प्राप्त करने के लिए लेखक सारी दुनिया में घूम रहा था, जब प्रकृति के सम्बोधन करने पर उसने स्वयं के भीतर झाँककर देखा तब उसे सच्चे आनन्द की अनुभूति हुई।

3. क्या कोई भी पथिक विश्व-मण्डल के बाहर जा सकता है?

उ०– नहीं, कोई भी पथिक विश्व-मण्डल के बाहर नहीं जा सकता। यह पृथ्वी एक घड़े के समान है, इसलिए विश्व-मण्डल से कोई पथिक जिस स्थान से चलेगा घूम—फिरकर उसी स्थान पर वापस लौट आएगा। पथिक का विश्व मंडल से बाहर जाना मात्र एक कल्पना है, जो निर्मूल है।

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

7 अथातो घुमक्कड़-जिज्ञासा

(राहुल सांकृत्यायन)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—64 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. राहुल सांकृत्यायन का जीवन-परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान बताइए।

उ०– लेखक परिचय– राहुल सांकृत्यायन जी का जन्म 9 अप्रैल, सन् 1893 ई० को जिला आजमगढ़ के पन्दहा नामक गाँव में अपने नाना पं० रामशरण पाठक के यहाँ हुआ था, जो फौज में सिपाही थे। इनका बचपन का नाम केदारनाथ था। इनके पिता पं० गोवर्धन पाण्डे एक कट्टर धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। राहुल जी की बौद्ध धर्म में बहुत आस्था थी, अत: इन्होंने महात्मा बुद्ध के पुत्र के नाम पर अपना नाम भी बदलकर राहुल रख लिया और संकृति गोत्र में जन्म लेने के कारण इनके नाम के साथ 'सांकृत्यायन' जुड़ गया। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा 'रानी की सराय' में प्राप्त की और उसके बाद निजामाबाद में उर्दू मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत की उच्च शिक्षा इन्होंने वाराणसी से प्राप्त की। इसी समय से साहित्य के प्रति प्रेम इनके मन में उत्पन्न हुआ। इनके पिता की अभिलाषा थी कि ये उच्च शिक्षा प्राप्त करें, परन्तु इनका मन पढ़ाई में न होकर कहीं और ही था। बौद्ध धर्म में आस्था होने के कारण घर तथा परिवार का बन्धन भी इन्हें अच्छा नहीं लगा। राहुल जी ने अपने नाना जी के श्रीमुख से उनके फौजी जीवन की कहानियाँ तथा दक्षिण भारत की यात्रा के वृत्तान्त सुने थे, जिनसे प्रभावित होकर इनके मन में भ्रमण के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ।

इन्होंने घुमक्कड़ी को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना दिया और नेपाल, तिब्बत, रूस, यूरोप, जापान, श्रीलंका, मंचूरिया, चीन, ईरान, कोरिया, अफगानिस्तान आदि देशों की अनेक बार यात्रा की। भारत के बदरीनाथ, केदारनाथ, कुमायूँ, गढ़वाल, केरल,

कर्नाटक, कश्मीर, लद्दाख आदि के पर्यटन को इनकी दिग्विजय कहना अतिशयोक्ति न होगी। अपनी इन यात्राओं में इन्होंने अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की खोज की।

भावी घुमक्कड़ों को प्रभावित करने के उद्देश्य से इन्होंने 'घुमक्कड़ शास्त्र' ही लिख डाला। अपनी आत्मकथा में उन्होंने यह तथ्य भी स्पष्ट किया है कि वे मैट्रिक पास करने के लिए भी तैयार नहीं थे। स्नातक की परीक्षा तो क्या उत्तीर्ण करते, उन्होंने कभी विश्वविद्यालय की चौखट के अन्दर भी कदम नहीं रखा। घुमक्कड़ी ही इनकी पाठशाला और विश्वविद्यालय थी। 14 अप्रैल, सन् 1963 ई० को माँ सरस्वती के इस महान् सपूत का निधन हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान

राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के एक प्रकाण्ड विद्वान थे। वे छत्तीस एशियाई एवं यूरोपीय भाषाओं के ज्ञाता थे। मानव-जीवन और आधुनिक समाज के जितने क्षेत्र को राहुल जी ने स्पर्श किया, उतने क्षेत्रों में एक साधारण मस्तिष्क की पैठ असम्भव है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में उनकी गणना सदैव हिन्दी के महान रचनाकारों में की जाती रहेगी।

2. राहुल सांकृत्यायन की कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– कृतियाँ– राहुल जी ने यात्रा, दर्शन, धर्म, पुराण, राजनीति व इतिहास आदि विषयों को अपने लेखन का आधार बनाया। राहुल जी द्वारा रचित कृतियाँ इस प्रकार हैं –

यात्रा साहित्य– मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, रूस में पच्चीस मास, एशिया के दुर्लभ भू-खण्डों में, यात्रा के पन्ने, घुमक्कड़ शास्त्र।

आत्मकथा– मेरी जीवन यात्रा।

कोश ग्रन्थ– तिब्बती-हिन्दी कोश, शासन शब्दकोष, राष्ट्रभाषा-कोष।

कहानी संग्रह– सतमी के बच्चे, वोल्गा से गंगा, बहुरंगी मधुपरी, कनैला की कथा।

उपन्यास– विस्मृत यात्री, मधुर स्वप्न, सिंह सेनापति, दिवोदास, जीने के लिए, सप्त सिन्धु, जय यौधेय।

जीवनी साहित्य– कार्ल्स मार्क्स, स्टालिन, वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली, सरदार पृथ्वी सिंह, नए भारत के नए नेता, महात्मा बुद्ध, लेनिन, असहयोग के मेरे साथी।

दर्शन– दर्शन-दिग्दर्शन, बौद्ध-दर्शन आदि।

देश-दर्शन– सोवियत भूमि, किन्नर देश, हिमालय प्रदेश, जौनसार-देहरादून आदि।

विज्ञान– विश्व की रूपरेखा।

साहित्य और इतिहास– इस्लाम धर्म की रूपरेखा, आदि हिन्दी की कहानियाँ, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, मध्य एशिया का इतिहास आदि।

3. राहुल सांकृत्यायन की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– राहुल जी संस्कृतनिष्ठ और नागरी लिपि के समर्थक थे। इनकी भाषा पारिभाषिक, संयत व तर्कपूर्ण है। इसे विचार व चिन्तन की भाषा कहा जा सकता है। प्रकृति या मानव के सौन्दर्य का चित्रण करते समय राहुल जी ने प्राय: काव्यमयी भाषा का ही प्रयोग किया है। ऐसे में इनकी भाषा व्याख्यात्मक व आलंकारिक हो गई है। अनेक स्थलों पर राहुल जी की व्यावहारिक भाषा भी दृष्टिपथ में आती है। इनकी भाषा विषय और सौन्दर्य के अनुसार बदलती रही है। राहुल जी की रचनाओं में शब्द-प्रयोग में स्वच्छन्दता स्पष्टता दृष्टिगोचर होती है।

राहुल की रचनाओं में वर्णनात्मक, विवेचनात्मक और व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। यात्रा-साहित्य की शैली वर्णनात्मक है। इतिहास, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि विषयों पर लिखते समय इनकी शैली विवेचनात्मक हो गई है। समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों, परम्पराओं तथा पाखण्डों पर व्यंग्य करते समय इनकी शैली व्यंग्यात्मक हो गई है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) आधुनिककाल में ..... न लिया होता?

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'राहुल सांकृत्यायन' द्वारा लिखित प्रसिद्ध रचना 'घुमक्कड़शास्त्र' से 'अथातो घुमक्कड जिज्ञासा' नामक निबन्ध से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में श्री राहुल सांकृत्यायन ने घुमक्कड़ प्रवृत्ति के महत्व पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि वर्तमान युग के मनुष्यों का सुप्रसिद्ध घुमक्कड़ों से परिचय कराना आवश्यक है; क्योंकि यश-लोभी अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं, जो इन बेचारे घुमक्कड़ों की रचनाओं को चुराकर अपने नाम से प्रकाशित और प्रचारित कराते रहते हैं तथा समाज में विद्वान् बनने का ढोंग रचा करते हैं, जबकि वास्तव में ये कोल्हू के बैल हैं। आधुनिक वैज्ञानिक जगत में चार्ल्स डार्विन का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिसने अपनी अद्वितीय खोज से प्राणियों की उत्पत्ति एवं मानव-वंश के

विकास पर न केवल नए दृष्टिकोण से प्रकाश डाला, अपितु विद्वानों को एक नवीन दिशा भी प्रदान की। उसकी खोज के कारण ही अनेक विद्वानों को अपने पूर्वाग्रह से ग्रसित विचारों में भी परिवर्तन करना पड़ा। मानव-समाज की इस सेवा के मूल में डार्विन महोदय की घुमक्कड़ प्रवृत्ति ही प्रमुख रूप से विद्यमान थी। यदि उसने घुमक्कडी का व्रत न लिया होता तो वह कदाचित् ही ऐसे नवीन दृष्टिकोण जगत् के सामने प्रस्तुत कर पाता।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** लेखक ने डार्विन के उदाहरण द्वारा घुमक्कड़ी की महत्ता का प्रतिपादन किया है। **(2) भाषा–** परिष्कृत, परिमार्जित तथा मुहावरेदार। **(3) शैली–** विवेचनात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(ख) मैं मानता हूँ ..... को बनाया है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने घुमक्कड़ी से प्राप्त होने वाले ज्ञान एवं यात्रा-साहित्य से प्राप्त होने वाले ज्ञान में अन्तर स्पष्ट किया है।

व्याख्या– लेखक इस बात को स्वीकार करता है कि देश-विदेश की यात्राओं पर लिखी गई पुस्तकों को पढ़ने से भी उन स्थानों के भ्रमण से मिलता-जुलता कुछ आनन्द मिल जाता है, परन्तु उनसे वह आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता, जो उन स्थानों के प्रत्यक्ष भ्रमण से प्राप्त होता है। जिस प्रकार हम हिमालय के चित्र को देखकर, देवदार के गहन वनों और बर्फ से ढकी चोटियों के सौन्दर्य का अनुमानमात्र ही कर पाते हैं, किन्तु उसकी बर्फ से ढकी चोटियों के सौन्दर्य का वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते, न उसके रूप को देख सकते हैं और न वहाँ की गन्ध का ही अनुभव कर सकते हैं। पुस्तकों में लिखे गए यात्रा वर्णनों को पढ़कर वह आनन्द नहीं मिल सकता, जो उन स्थानों की यात्रा करने वाले घुमक्कड़ों को प्राप्त होता है। यात्रा-कथाओं को पढ़ने से थोड़ा मार्गदर्शन मिलता है और कुछ दिनों के लिए ही सही देश-विदेश का भ्रमण करने की प्रेरणा भी मिलती है। पुस्तकों को पढ़कर पाठक के मन में उन स्थानों को प्रत्यक्ष देखने की लालसा उत्पन्न हो जाती है, जिससे यह भी संभव है कि वह यात्रा-पुस्तक पढ़ते हुए घूमने का निश्चय कर ले। घुमक्कड़ को इसलिए ही संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति बताया गया है क्योंकि इन घुमक्कड़ों ने ही वर्तमान समय के विश्व का निर्माण किया है तथा विश्व का मार्गदर्शन कर उसे उन्नत बनाने का प्रयास किया है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** केवल यात्रा-वर्णनों को पढ़कर घुमक्कड़ी का वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं होता है। **(2) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक आलंकारिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** विवेचनात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **(6) भावसाम्य–** आगस्टाइन ने भी घुमक्कड़ी के विषय में कहा है-''संसार एक बड़ी पुस्तक है, जिसका वे लोग जो घर से बाहर नहीं जाते, केवल एक पृष्ठ ही पढ़ पाते हैं।''

(ग) वे भारतीय ..... लात लगाते गए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में बताया है कि भारत में अनेक घुमक्कड़ हुए जिन्होंने बहुत से देशों की खोज की परन्तु अपनी घुमक्कड़ प्रकृति त्यागने के कारण ही भारत पराधीन हो गया था।

व्याख्या– लेखक कहता है कि भारतभूमि में बहुत बड़े-बड़े घुमक्कड़ पैदा हुए हैं जिन्होंने दक्षिण पूरब में लंका, वर्मा, मलाया, यवनद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्नियो तथा सैलीबीज ही नहीं फिलीपाइन जैसे दूर देशों तक अपना परचम लहराया। एक समय तो ऐसा लगने लगा था जैसे न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया भी भारत का ही एक अंग बनने वाले है। परन्तु बाद में उन्होंने घुमक्कड़ी करना छोड़ दिया और कूपमण्डूक बन गए। भारत में हिन्दू धर्म के कुछ उपदेशकों ने भारतवासियों की समुद्र-यात्रा पर प्रतिबंध लगा दिए। उन्होंने लोगों के मन में यह धारणा बना दी कि समुद्र यात्रा करने से धर्म नष्ट हो जाता है। उनकी बातों से ऐसा लगने लगा कि मानो हिन्दू धर्म कोई नमक की पुतली हो, जो समुद्र के जल का स्पर्श करने मात्र से गल जाएगी। इस बात में क्या सन्देह है कि समाज का उत्थान देश-विदेश में भ्रमण से ही होता है। समाज की उन्नति के लिए घुमक्कड़ी अत्यन्त आवश्यक है। जिस देश ने, समाज ने या व्यक्ति ने भी घुमक्कड़ी धर्म को स्वीकार किया, उसे चारों फल-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो गए। सभी क्षेत्रों में उसकी उन्नति हुई, लेकिन जिसने घुमक्कडी धर्म को त्यागा, वह पतन के गर्त में गिरता गया। सीमित दायरे में संकुचित हो जाने के कारण भारतीयों का विकास न केवल रुक गया, वरन् वह विश्व की तुलना में अत्यधिक पिछड़ भी गया। भ्रमण से जो साहस का गुण विकसित होता है, उसका उनमें नितान्त अभाव हो गया और यही दोष उनकी पराधीनता का कारण सिद्ध हुआ।

साहित्यिक सौन्दर्य– **(1)** लेखक ने घुमक्कड़ी को बहुमुखी प्रगति और समाजोत्थान का महत्वपूर्ण साधन माना है और इसके समर्थन में इतिहास ने प्रमाण दिए हैं। **(2) भाषा–** व्यावहारिक एवं सरल खड़ी बोली। मुहावरों का सटीक प्रयोग। **(3) शैली–** व्यंग्यात्मक और वर्णनात्मक।

(घ) भारत के प्राचीन ..... बाधा न रहे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक राहुल सांकृत्यायन ने विभिन्न धर्मों के शलाका पुरुषों के भी घुमक्कड़ी होने का वर्णन किया है।

व्याख्या– श्री राहुल सांकृत्यायन जी कहते हैं कि भारत में विभिन्न धर्मावलम्बी मनुष्य एक साथ मिलकर रहते हैं। उन सभी धर्मों में एक जैन धर्म भी है। जैन धर्म के प्रतिष्ठापक श्रवण महावीर भी घुमक्कड़ ही थे। जिज्ञासा मानव-मन की मूल प्रवृत्ति है। इसी कारण महावीर ने घर-द्वार और नारी-सन्तान ही नहीं वरन् शरीर पर पहनने के वस्त्रों को भी त्याग दिया था। घुमक्कड़ी के कारण ही संसार में नयी-नयी खोजें हो पाती है। यदि मनुष्य एक ही स्थान पर बैठा रहता तो दुनिया का यह विकसित स्वरूप देखने को न मिलता। जैन धर्म के प्रतिष्ठापरक (प्रवर्तक) महावीर स्वामी ने सब कुछ त्यागकर 'हाथ में भिक्षा और वृक्ष के नीचे निवास' अर्थात् निर्द्वन्द्व विचरण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। दिशाओं को ही वे अपना वस्त्र मानते थे। ऐसा उन्होंने इसलिए किया जिससे निर्द्वन्द्व विचरण में किसी प्रकार की कोई बाधा न रहे और निर्बाध होकर वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहें।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने इस गद्यावतरण में बताया है कि घुमक्कड़ी से व्यक्ति के वास्तविक ज्ञान में वृद्धि होती है। (2) नई-नई खोजें जो आज हमारे सामने हैं वे घुमक्कड़ी के ही कारण प्राप्त हुई हैं। **(3) भाषा–** सरल खड़ी बोली। **(4) शैली–** वर्णनात्मक।

(ङ) बुद्ध और महावीर से बढ़कर ..... जैसा बना रखेंगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस अवतरण में राहुलजी ने घुमक्कड़ी को श्रेष्ठ व महान् बताया है। उन्होंने इस बात की ओर विशेष रूप से संकेत किया है कि महापुरुषों के महान् होने का मुख्य श्रेय घुमक्कड़ी को ही है।

व्याख्या– महात्मा गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी दोनों ही घुमक्कड़ थे। वे एक स्थान पर अधिक समय तक रुकना पसंद नहीं करते थे। इतना ही नहीं, उनके अनुयायी शिष्य भी उनकी इस घुमक्कड़ प्रवृत्ति से पूरी तरह प्रभावित थे क्योंकि उन्होंने अपने गुरु के द्वारा घुमक्कड़ होने की शिक्षा प्राप्त की। यदि कोई व्यक्ति बुद्ध और महावीर से बढ़कर त्याग, तपस्या, और सहृदयता का दावा करता है तो इसे उसकी अहंकार-भावना का परिचायक ही कहा जा सकता है। वस्तुत: ये दोनों ही सर्वश्रेष्ठ घुमक्कड़ कहे जाते हैं। उन्होंने संसार के दु:खों का मूल खोजने के लिए ही महान् त्याग किया था, तपस्या की थी। उनकी तपस्या और उनके त्याग का उदाहरण सम्पूर्ण विश्व में नहीं मिलता। आजकल सैकड़ों व्यक्ति साधुओं का वेश धारण कर, कोल्हू से बँधे तेली के बैल की तरह एक ही स्थान पर जमे रहते हैं और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ महात्मा कहने एवं कहलाने का डंगा पीटते हैं। वास्तविकता यह है कि वे अज्ञानी और घमंडी होते हैं। वे बिना घुमक्कड़ी के ज्ञान प्राप्त कर ही नहीं सकते। यदि कोल्हू के बैल जैसी स्थिति के सभी लोग ज्ञानी और महात्मा बन जाएँ तो विश्व के प्रत्येक स्थान पर इस प्रकार के महात्माओं की भीड़ लग जाए। इस प्रकार के दम्भी और झूठे लोगों से सभी को सावधान रहना चाहिए; क्योंकि इनके चक्कर में आना जीवन के लिए महान् संकट सिद्ध होगा। सच्चा महात्मा कभी भी एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरता। दम्भी स्वभाव के साधुगण स्वयं तो कोल्हू के बैल (संकुचित विचारधारा) होते ही हैं, अपने शिष्यों को भी अपनी जैसी स्थिति में ढालने का प्रयास करते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) राहुल जी ने घुमक्कड़ी का महत्व बताते समय आजकल के पाखंडी साधुओं की कलई खोली है और उन पर तीखा व्यंग्यरूपी प्रहार किया है। **(2) भाषा–** प्रवाहपूर्ण तथा व्यावहारिक; मुहावरों के प्रयोग से अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि हुई है। **(3) शैली–** हास्य-व्यंग्यप्रधान। **(4) वाक्य विन्यास–** सुगठित, **(5) शब्द-चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

(च) शंकर तरूणाई ..... महामेल को देखा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने भारतीयों की सुदूर भ्रमण की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला हैं।

व्याख्या– महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी का कहना है कि भारतवर्ष की चारों दिशाओं के अन्त तक बिना किसी साधन के यात्रा करने वाले आचार्य शंकर अपनी युवावस्था के प्रारंभ में ही दिवंगत हो गए थे। इतनी कम उम्र; तीस-बत्तीस वर्ष; में उन्होंने तीन संस्कृत ग्रन्थों के भाष्य लिखने के साथ-साथ अपने मानने वाले व्यक्तियों को घुमक्कड़ी धर्म का पाठ भी पढ़ा गए। वर्तमान समय में भी उनके घुमक्कड़ धर्म को मानने वाले अनेक लोग है। वास्कोडिगामा जब भारत की खोज कर भारत पहुँचा था, उसके बहुत समय पहले ही आचार्य शंकर के शिष्य भ्रमण करते हुए यूरोप और मास्को तक पहुँच चुके थे। आचार्य शंकर के साहसी शिष्यों-अनुयायियों ने उनके द्वारा भारत की चारों दिशाओं के छोर पर स्थापित किए गए चार धामों की यात्रा करके ही सन्तुष्ट नहीं हुए। उनके कई शिष्यों ने रूस के वाकू नामक स्थान तक की यात्रा की और वहाँ निवास भी किया। आचार्य शंकर के शिष्यों में से ही एक वोल्गा नदी के तट पर स्थित निज्जी नोवोग्राद नामक स्थान पर हुए महा-परिवर्तन का साक्षी भी रहा।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) बिना किसी उपयुक्त साधन के भारतवासियों के द्वारा वोल्गा तक की दुष्कर यात्रा किए जाने का वर्णन किया गया है। **(2) भाषा–** व्यावहारिक एवं सरल खड़ी बोली। **(3) शैली–** वर्णात्मक एवं विवेचनात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(छ) यह कोई आकस्मिक ..... बना देती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस गद्यांश में लेखक ने मानव-जीवन में घुमक्कड़ी के महत्व को समझाया है।

व्याख्या– भारत से बौद्ध धर्म के लुप्त होने का कारण भी राहुल सांकृत्यायन ने घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के प्रति उदासीनता को माना है। उनका मानना है कि हमारा देश सात शताब्दियों तक दासता और परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहा, जिस कारण यहाँ घुमक्कड़ी धर्म की बड़ी हानि हुई, जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध जैसे धर्म यहाँ से लुप्तप्राय हो गए। यह सब कोई एक दिन में नहीं हो गया। जिस शासक-वर्ग अथवा धर्माधिकारियों पर समाज को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ाने का उत्तरदायित्व था, उन्हीं ने लोगों के पैरों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें कूप-मण्डूक बने रहने पर विवश कर दिया। समाज के अगुवा धर्माचार्यों ने भी शासक-वर्ग के लोभ और सत्ता के दबाव में आकर समाज के लोगों को कूप-मण्डूप बने रहने के लिए प्रेरित किया; फिर भी समय-समय पर ऐसे अनेक लोगों ने जन्म लिया, जिन्होंने घुमक्कड़ी को ही अपना कर्म-क्षेत्र बनाया और लोगों को यह समझाने का प्रयास किया कि उनका वास्तविक कर्म पथ यह विस्तृत संसार है। वे इसमें फैलकर अपने कर्मों का भली-भाँति पालन करें। इतिहास-पुरुष गुरु नानकदेवजी इस बात का जीता-जागता प्रमाण हैं। वे अपने समय के महान् घुमक्कड़ थे। उन्होंने न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण विश्व को अपना कर्म-क्षेत्र मानकर उन्होंने ईरान और अरब देशों तक में भ्रमण किया। घुमक्कड़ी योग-विद्या की भाँति ही अनेक सिद्धियाँ प्रदान करने में सक्षम है और निर्भीकता उसकी सबसे बड़ी सिद्धि है। अर्थात् घुमक्कड़ी करने वाले व्यक्ति से अधिक निडर कोई नहीं हो सकता। वह व्यक्ति के भीतर से सब प्रकार के भय खींचकर बाहर निकाल फेंकती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) घुमक्कड़ी के प्रति समाज की उदासीनता के दुष्परिणाम को बौद्ध धर्म के लुप्त होने के दृष्टान्त द्वारा लेखक ने चेतावनी भी दी है कि यदि यह उदासीनता इसी प्रकार बनी रही तो हमारी वर्तमान सभ्यता और संस्कृति का विश्व से अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। **(2)** मानवीय गुणों के विकास में घुमक्कड़ी के महत्व को भली प्रकार स्पष्ट करने में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। **(3) भाषा–** मुहावरों से परिपूर्ण प्रवाहयुक्त व्यावहारिक खड़ीबोली। **(4) शैली–** गणेषणात्मक। **(5) वाक्य विन्यास–** सुगठित, **(6) शब्द चयन–** विषयवस्तु के अनुरूप।

(ज) इतना कहने के बाद ..... नहीं भूषण है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने घुमक्कड़ी को सर्वश्रेष्ठ एवं नकद धर्म घोषित किया है।

व्याख्या– लेखक ने सभी धर्मों और महापुरुषों की उन्नति का कारण घुमक्कड़ी को बताया है। घुमक्कड़ी की महिमा के कारण ही लेखक उसे दुनिया का सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार करता है और उसे धर्म की संकुचित सीमा में नहीं बाँधना चाहता। इसलिए धर्म जैसी सामान्य बात से उसकी तुलना भी नहीं करना चाहता। उसका मत है कि घुमक्कड़ी के साथ 'धर्म' शब्द का प्रयोग करने से घुमक्कड़ी का महत्व वैसे ही घट जाता है, जैसे दुराचारी और अन्यायी रावण के द्वारा शासित लंका के पड़ोस में होने के कारण समुद्र की महिमा कम हो गई थी और राम ने अलंध्य समुद्र पर पुल बनाकर उसके ऊपर से अपनी वानर-सेना को लंका पहुँचा दिया था। धर्म लोगों में विद्वेष और घृणा फैलाते हैं; इसे विपरीत घुमक्कड़ी विभिन्न भू-भागों के निवासियों को एक साथ जोड़ती है। घुमक्कड़ी का अवसर बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। यह धर्म अपने अनुयायियों को मरने के बाद स्वर्ग-प्राप्ति का झूठा लालच नहीं देता। इसके विषय में कहा जा सकता है कि यह ऐसा सौदा है कि इस हाथ दे और उस हाथ ले; अर्थात् घुमक्कड़ी से तत्काल लाभ प्राप्त होता है। इससे प्राप्त होने वाले सुख और आनन्द के लिए समय की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। लेकिन पर्यटन करना भी सरल नहीं है, इसमें भी अनेक कठिनाईयाँ हैं चिन्ता से मुक्त व्यक्ति ही घुमक्कड़ी कर सकते हैं। लेखक ने घुमक्कड़ बनने के लिए आवश्यक शर्तों को बताते हुए कहा कि चिन्ताहीन व्यक्ति घुमक्कड़ बनने का अधिकारी होता है। लेखक कहता है घुमक्कड़ और चिन्ताहीन दोनों एक दूसरे के पूरक है। दोनों का एक दूसरे पर आश्रित होना गलत नहीं हैं अपितु एक दूसरे का पूरक है तथा इनका आभूषण है जो दोनों को सुसज्जित करता हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) भाषा– सरल, व्यावहारिक खड़ी बोली। **(2) शैली–** भावात्मक और आलंकारिक। **(3)** लेखक ने घुमक्कड़ी को धर्म से भी बढ़कर माना हैं **(4)** घुमक्कड़ी करने से तत्काल सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। **(5)** निश्चिन्त व्यक्ति ही घुमक्कड़ी कर सकते हैं।

(झ) घुमक्कड़ी से बढ़कर सुख ..... खिल उठता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– राहुलजी ने स्पष्ट किया है कि घुमक्कड़ी संसार का सबसे बड़ा सुख है और घुमक्कड़ी के लिए चिन्तारहित होना आवश्यक है। जो व्यक्ति चिन्तारहित है, उससे अधिक सुखी व्यक्ति संसार में कोई नहीं हैं।

व्याख्या– राहुल जी का मत है कि वही व्यक्ति वास्तविक घुमक्कड़ बन सकता है, जिसने सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त कर ली हो। इसके साथ ही उनका मानना है कि जो व्यक्ति सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होना चाहता है, उसके लिए घुमक्कड़ी परमावश्यक हैं घुमक्कड़ी संसार का सबसे बड़ा सुख है; क्योंकि चिन्ताहीनता की मनोदशा में ही सर्वाधिक सुख सम्भव है। वस्तुत: चिन्तारहित होना संसार में सुखी होने का साक्षात् प्रमाण है। घुमक्कड़ी में छोटे-छोटे कष्ट भी होते हैं, किन्तु वे कष्ट बिलकुल वैसे ही होते हैं, जैसे भोजन में मिर्च का प्रयोग। मिर्च में तीखापन होता है, उसके खाने से कष्ट होता है; किन्तु मिर्च के तीखेपन से भोजन का स्वाद बढ़ता है और तीखेपन के कारण ही मिर्च का महत्व भी है। यदि मिर्च में यह तीखापन न हो तो

कोई भी व्यक्ति उसका सेवन नहीं करेगा। इसी प्रकार घुमक्कड़ी में कभी-कभी होने वाले कटु अनुभव उसके आनन्द और उसकी सरसता को उसी प्रकार बढ़ाते हैं, जिस प्रकार काली पृष्ठभूमि पर बनाया गया चित्र और अधिक आकर्षक हो उठता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) घने अन्धकार में दीपक की भाँति घुमक्कड़ी में होने वाले कष्टपूर्ण अनुभव घुमक्कड़ी के आनन्द को और भी बढ़ा देते हैं। **(2) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(3) शैली–** सरल, सुबोध, आलंकारिक और विवेचनात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **(6) भावसाम्य–** वस्तुत: चिन्ताओं से मुक्त व्यक्ति ही परमसुखी है। किसी कवि ने कहा भी है—

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, ते ही शाहंशा।।

(ञ) व्यक्ति के लिए ..... वे दिवांध हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों के अंतर्गत राहुल जी ने घुमक्कड़ी को अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध करते हुए प्रत्येक युवक एवं युवती को घुमक्कड़ी का जीवन अपनाने हेतु प्रेरित किया है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुभव प्राप्त करने तथा अपना विकास करने की दृष्टि घुमक्कड़ी का विशेष महत्व है। न केवल व्यक्ति के लिए वरन् किसी जाति, धर्म, समाज अथवा संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करना आवश्यक है। विशेष रूप से युवा-काल में तो प्रत्येक युवक एवं युवती को घुमक्कड़ी करने का संकल्प ही कर लेना चाहिए। इसका कारण यह है कि विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके व्यक्ति विभिन्न प्रकार की भौतिक, प्राकृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं को देखने और समझने का प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार संस्कृतियों और व्यक्तित्व वाले लोगों के संपर्क में आने के फलस्वरूप व्यक्ति की संकीर्ण विचारधाराओं का अंत होने लगता है और वह विराट् व्यक्तित्व का स्वामी बनने लगता है। इसके अतिरिक्त घुमक्कड़ी ऐसा धर्म है, जिसके परिणाम, नकद रूप में, साथ-के-साथ प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में, जो जितना अधिक घुमक्कड़ी का अवसर प्राप्त करता है, उसे विभिन्न दृष्टियों से उतने ही अधिक लाभ होते है; अत: यदि कोई घुमक्कड़ी को व्यर्थ सिद्ध करने का प्रयास करे तो उसके द्वारा दिए जाने वाले प्रमाणों को झूठा और निरर्थक ही समझना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) किसी भी व्यक्ति, जाति तथा विशेष रूप से युवक-युवतियों के लिए घुमक्कड़ी का अत्यधिक महत्व दर्शाया गया है। **(2) भाषा–** सरल, सुबोध एवं भावात्मक। **(3) शैली–** भावपूर्ण एवं विवेचनात्मक। **(4) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(5) शब्द चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य—पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'राहुल सांकृत्यायन' द्वारा लिखित 'अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– राहुल जी ने इस सूक्ति में घुमक्कड़ी को संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रवृत्ति सिद्ध किया है।

व्याख्या– विश्व का ज्ञान और विज्ञान, घुमक्कड़ी और पर्यटन का ही परिणाम है। आदिमानव घुमक्कड़ था। इसी प्रकार प्राणियों की उत्पत्ति और मानव-वंश की खोज करने वाला डार्विन तथा नई दुनिया की खोज करने वाले कोलम्बस और वास्को-डि-गामा भी घुमक्कड़ थे। सामाजिक विकास के समस्त सिद्धान्त घुमक्कड़ी पर ही आधारित है। इस प्रकार मानवीय विकास के लिए घुमक्कड़ी सबसे बड़ा साधन हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि घुमक्कड़ों ने समाज का परम हित किया है।

(ख) पुस्तकें भी कुछ-कुछ घुमक्कड़ी रस प्रदान करती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यात्रा-वृतान्ता पढ़ने से प्राप्त आनन्द और यात्रा करने से प्राप्त आनन्द का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

व्याख्या– राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि पुस्तकों में मुद्रित यात्रा-साहित्य के अध्ययन से भी हमको यात्रा का आनंद तो प्राप्त होता है, परन्तु घुमक्कड़ी द्वारा प्राप्त यात्रा का आनन्द कुछ विशेष ही होता है। जिस प्रकार हिमाच्छादित पर्वत-श्रृंखलाओं के चित्र को देखकर हमें आनन्द तो प्राप्त होता ही है, लेकिन हिमाच्छादित चोटियों के प्रत्यक्ष दर्शन, स्पर्शन, गन्ध आदि के अनुभव से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसकी तुलना में यह आनन्द क्षणमात्र का और नगण्य होता है। इसी प्रकार पुस्तकों से घुमक्कड़ी के वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नहीं की जा सकती। वास्तविक आनन्द तो घुमक्कड़ी से ही प्राप्त होता है।

(ग) समुन्दर के खारे पानी और हिन्दू धर्म में बड़ा बैर है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– किसी समय में हिन्दू धर्म में समुद्री-यात्रा वर्जित मानी जाती थी। राहुल जी के अनुसार यह संकुचित विचारधारा ही भारत के पतन और पराधीनता का कारण बनी।

व्याख्या– राहुल जी कहते हैं कि प्राचीन भारतीय घुमक्कड़ थे, किन्तु जब से हिन्दू धर्म में समुद्री-यात्रा पर प्रतिबंध लगा दिया गया तब से भारतवासी कूप-मण्डूक बन गए। उन्होंने घुमक्कड़ी ही बन्द कर दी। हिन्दू धर्म की ऐसी बातों पर आक्षेप करते हुए लेखक कहते हैं कि यह विचित्र विडम्बना हैं कि समुद्र यात्रा और हिन्दू धर्म में शत्रुता सिद्ध की जाने लगी, मानो हिन्दू धर्म कोई नमक की पुतली हो, जो समुद्र की हवाओं का स्पर्श करते ही गल जाएगी।

(घ) घुमक्कड़ धर्म ब्राह्मण धर्म जैसा संकुचित धर्म नहीं है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान न हो। स्त्रियाँ इसमें उतना ही अधिकार रखती हैं, जितना पुरुष।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि घुमक्कड़ी के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष दोनों एक समान अधिकार रखते हैं।

व्याख्या– स्त्रियों द्वारा यह पूछने पर कि क्या उन्हें भी पुरुषों की भाँति घुमक्कड़ी का अधिकार है; लेखक इसका उत्तर देते हुए कहता है कि हाँ, घुमक्कड़ी में लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। स्त्री और पुरुष में लिंग के आधार पर भेदभाव केवल ब्राह्मण धर्म करता है। वह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को बहुत सीमित अधिकार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण धर्म केवल पुरुषों को ही यज्ञ करने-कराने और वेदाध्ययन का अधिकार देता है, स्त्रियों को नहीं। ब्राह्मण-धर्म के इस भेदभाव का कोई तर्कपूर्ण औचित्य नहीं है। वरन् यह उसकी संकीर्णता है। स्त्रियों के प्रति पूर्वाग्रह है। घुमक्कड़ धर्म ब्राह्मण धर्म की भाँति संकुचित नहीं है। इसमें स्त्रियों को भी उतने ही अधिकार प्राप्त है, जितने पुरुषों को; अत: स्त्रियों को साहस का परिचय देते हुए घुमक्कड़ी धर्म में दीक्षा देकर आत्मोत्थान के साथ-साथ विश्वोत्थान में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

(ङ) घुमक्कड़ी किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायनी नहीं है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घुमक्कड़ी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए राहुल जी ने उसे योग-साधना के समकक्ष स्वीकार किया है।

व्याख्या– राहुल जी का कहना है कि जिस प्रकार योग-साधना से व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उसे तो केवल एक बार निश्चय और संकल्प के साथ योग-साधना में तत्पर हो जाने की आवश्यकता होती है; उसी प्रकार घुमक्कड़ी भी योग-साधना के समान ही सिद्धियाँ (योग-साधना से प्राप्त होने वाली आठ सिद्धियाँ हैं- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्वस) प्रदान करती हैं। इस प्रकार योग-साधना द्वारा जो कार्य होता है, वही कार्य घुमक्कड़ी से भी हो जाता है। अत: घुमक्कड़ी एक ऐसी योग-साधना के समान है, जो प्रत्येक सिद्धि प्रदान करने में सक्षम है।

(च) मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं है, वह जंगम प्राणी है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने घुमक्कड़ी को मनुष्य की प्रकृति के अनुरूप बताकर उसकी महत्ता को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि हमारे अनेक धर्मग्रन्थों में विदेश-यात्रा को व्यक्ति के लिए वर्जित बताकर घुमक्कड़ी धर्म को अपार क्षति पहुँचाई गई है, जो किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इसीलिए महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने धर्मग्रन्थों की उन अतार्किक अवधारणाओं का जमकर विरोध किया और लोगों को समझाया कि व्यक्ति की उन्नति का एकमात्र उपाय घुमक्कड़ी धर्म ही है। स्वयं ईश्वर ने उसे घुमक्कड़ी के अनुरूप बनाया है। यदि व्यक्ति के लिए घूमना-फिरना हानिकारक होता तो ईश्वर उसे स्थावर अर्थात् एक स्थान पर स्थिर रहने वाला बनाता, किन्तु उसने उसे स्थावर न बनाकर गतिशील प्राणी बनाया है, जिससे वह सारे संसार में घूम-घूमकर न केवल अपना, वरन् प्राणिमात्र का कल्याण कर सके।

(छ) चलना मनुष्य का धर्म है जिसने इसे छोड़ा वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति के अंतर्गत एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करना मनुष्य का धर्म बताया गया है तथा इसे प्रत्येक मनुष्य के लिए परमावश्यक सिद्ध किया गया है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति के माध्यम से लेखक ने प्रत्येक मनुष्य के लिए घुमक्कड़ी को अनिवार्य रूप से आवश्यक बताया है। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने भी इस विचार पर विशेष बल दिया था और यह स्पष्ट किया था कि जो मनुष्य चलना बन्द कर देता है, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी ही नहीं है। मनुष्य कोई स्थावर वृक्ष अथवा जंगली प्राणी नहीं है, जो उसके लिए घुमक्कड़ी की आवश्यकता न हो। सच्ची मनुष्यता के विकास में घुमक्कड़ी का विशेष योगदान होता है।

(ज) महिमा घटी समुद्र की रावण बसा पड़ोस।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति के अंतर्गत घुमक्कड़ी को किसी भी धर्म से अधिक ऊँचा सिद्ध किया गया है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार घुमक्कड़ी एक प्रकार का ऐसा धर्म है, जो संसार के सभी धर्मों से ऊपर है। उनका कथन है कि कोई भी अन्य धर्म घुमक्कड़ धर्म की तुलना नहीं कर सकता। यही नहीं, किसी भी धर्म की तुलना घुमक्कड़ी के साथ करना ऐसा

ही है, जैसे विशाल समुद्र के पास दुराचारी रावण के रहने से समुद्र की महिमा भी घट गई। अर्थात् प्रत्येक धर्म की तुलना में घुमक्कड़-धर्म की महिमा बहुत अधिक है।

(झ) व्यक्ति के लिए घुमक्कड़ी से बढ़कर कोई नकद धर्म नहीं हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– घुमक्कड़ी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए राहुल जी ने स्पष्ट किया है कि जीवन के सबसे बड़े सुख की प्राप्ति घुमक्कड़ी से ही होती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को घुमक्कड़ी करनी चाहिए।

व्याख्या– यदि हमें अपने कार्य का प्रतिफल तुरन्त मिल जाए तो इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है। हम अपना प्रत्येक कार्य प्रतिफल के उद्देश्य से ही नहीं करते हैं। घुमक्कड़ धर्म का निर्वाह करते समय भी हमारे मन में किसी प्रकार की स्वार्थ भावना नहीं होती; तथापि घुमक्कड़ी से ही व्यक्ति और समाज का परम हित साधता है। घुमक्कड़ी करने वाला व्यक्ति घुमक्कडी से ही परम आनन्द की प्राप्ति कर लेता है। इस प्रकार तुरन्त पुरस्कार मिल जाने के कारण घुमक्कड़ी को नकद धर्म के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।

(ञ) सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महान् घुमक्कड़ राहुल सांस्कृत्यायन ने प्रसिद्ध शायर इस्माइल मेरठी के शेर की इस पंक्ति के माध्यम से समय गँवाए बिना युवाओं को शीघ्र घुमक्कड़ी आरंभ कर देने के लिए प्रेरित किया है।

व्याख्या– कोई व्यक्ति घुमक्कड़ी करके ही जीवन का वास्तविक आनन्द और अनुभव प्राप्त कर सकता है, किन्तु यह घुमक्कड़ी जीवन की किसी भी अवस्था में नहीं हो सकती। बचपन और वृद्धावस्था दोनों में घुमक्कड़ी नहीं की जा सकती; क्योंकि बचपन में न तो बुद्धि परिपक्व होती है और न नई परिस्थिति में स्वयं को ढालने की समझ, जबकि वृद्धावस्था में शरीर की जर्जरता इसकी अनुमति नहीं देती। इस प्रकार घुमक्कड़ी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अवस्था युवावस्था ही है। जो व्यक्ति संसार को बहुत निकट से देखना और समझना चाहता है, जीवन के रहस्यों, सुखों और दु:खों को जानना चाहता है तो उसे बिना विलम्ब किए घुमक्कड़ी आरंभ कर देनी चाहिए। यदि कल-कल करके घुमक्कड़ी के विषय में सोचता रहेगा तो उसका सारा जीवन यूँ ही समाप्त हो जाएगा और घुमक्कड़ी आरंभ न की जा सकेगी। यह जीवन दुबारा मिलने वाला नहीं है; अत: घुमक्कड़ी को कल पर टालकर इसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'अथातो घुमक्कड़-जिज्ञासा' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत निबन्ध 'अथातो घुमक्कड़-जिज्ञासा' राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा लिखित' घुमक्कड़ शास्त्र' से लिया गया है। इस निबन्ध में लेखक ने घुमक्कड़ी को शास्त्रों के समान बताया है। लेखक कहता है कि अगर मैं संस्कृत भाषा से लिखना प्रारंभ करूँ तो पाठकों को क्रोधित नहीं होना चाहिए क्योंकि मैं एक शास्त्र ही लिखने जा रहा हूँ तो फिर शास्त्र लिखने के नियमों का पालन आवश्यक है। शास्त्र में व्यक्ति और समाज के लिए परोपकारी जिज्ञासा का होना आवश्यक है। ऋषि व्यास ने अपने शास्त्र में ब्रह्म को जिज्ञासा का विषय बताया। उनके शिष्य जैमिनी ने धर्म को विषय बनाया। छ: शास्त्रों के रचयिताओं में से आधों ने ब्रह्म को अपना विषय बताया। परन्तु मेरी समझ के अनुसार घुमक्कड़ी सर्वश्रेष्ठ विषय है, जो व्यक्ति घुमक्कड़ है, वही समाज का सबसे बड़ा हित चाहने वाला व्यक्ति है। प्राचीन काल में आदिमानव भी घुमक्कड़ था। सांसारिक झंझटों से मुक्त वह पक्षियों की भाँति विचरण करता रहता था। सर्दी के मौसम में वह यहाँ, तो गर्मी में उस स्थान से दो सौ किलोमीटर की दूरी पर मिलता था।

लेखक का कहना है कि वर्तमान युग के मनुष्यों का सुप्रसिद्ध घुमक्कड़ों से परिचय कराना आवश्यक है, क्योंकि यश-लोभी अधिकांशत: मनुष्य ऐसे है, जो इन बेचारे घुमक्कड़ों की रचनाओं को चुराकर अपने नाम से प्रकाशित और प्रचारित कराते रहते हैं तथा समाज में विद्वान बनने का ढोंग रचा करते है, जबकि वे वास्तव में कोल्हू के बैल है। आधुनिक वैज्ञानिक जगत में चार्ल्स डार्विन का स्थान बहुत उच्च है क्योंकि इसने अपनी खोजों के माध्यम से विद्वानों को नई दिशा प्रदान की है। यदि डार्विन ने घुमक्कड़ी का व्रत न लिया होता तो वह कदाचित् ही ऐसे नवीन दृष्टिकोण जगत के सामने प्रस्तुत कर पाता।

लेखक कहता हैं कि मैं स्वीकार करता हूँ कि देश-विदेश की यात्राओं पर लिखी गई पुस्तकों को पढ़ने से भी उन स्थानों के भ्रमण से मिलता जुलता कुछ आनन्द प्राप्त हो जाता है। परंतु वह आनन्द नहीं प्राप्त होता जो प्रत्यक्ष भ्रमण से प्राप्त होता है। यात्रा-कथाओं को पढ़ने से थोड़ा मार्गदर्शन मिलता है और कुछ समय भ्रमण करने की प्रेरणा भी मिलती है। पुस्तकों को पढ़कर पाठक मन में उन स्थानों को देखने की जो इच्छा उत्पन्न होती है, उससे संभव है वह यात्रा का निश्चय कर ले। घुमक्कड़ को आज की सर्वश्रेष्ठ विभूति इसलिए ही कहा जाता है क्योंकि उसी ने आज के समाज का निर्माण किया है। यदि आदिमानव एक ही स्थान पर रहता तो वह दुनिया का विकास नहीं कर पाता। मनुष्य की इस घुमक्कड़ी से अनकों बार युद्ध उत्पन्न हुए तथा खून की नदियाँ बही, हम ऐसा नहीं चाहते परन्तु यदि घुमक्कड़ व्यक्ति भ्रमण न करते तो मानव जाति का विकास नहीं हो पाता और वह पशु के समान रहती। आर्यों, शकों, हूणों आदि घुमक्कड़ों ने क्या-क्या किया इसका वर्णन इतिहास में स्पष्ट ही है किन्तु मंगोलों द्वारा किए गए अत्याचारों को हम

सब जानते हैं। बारुद, तोप, कागज, छापाखाना आदि चीजों का पश्चिमी देशों में प्रचार करने वाले मंगोल थे जो घुमक्कड़ थे।

लेखक कहता है कि कोलम्बस, वास्को-डि-गामा ऐसे ही दो घुमक्कड़ थे जिन्होंने पश्चिमी देशों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। अमेरिका का अधिकतर भाग तब निर्जन था, जब एशिया महाद्वीप के व्यक्ति कुएँ के मेढ़क बनकर घुमक्कड़ धर्म की महत्ता भूल गए और वे अमेरिका पर अपना परचम लगराने में विफल रहे। दो सौ वर्षों पहले तक तो आस्ट्रेलिया भी निर्जन सा पड़ा था। चीन और भारत की सभ्यता बहुत पुरानी है परंतु इन्होंने वहाँ अपना झंडा नहीं गाडा और आज जनसंख्या के भार से इनकी भूमि दबती जा रही है भारत और चीन घुमक्कड़ धर्म से विमुख हो गए और इसलिए अमेरिका और आस्ट्रेलिया की अपार सम्पत्ति से ये वंचित रह गए। मैं इसे विमुख होना ही कहूँगा क्योंकि इससे पहले भी भारत और चीन भूमि में महान् पुरुषों ने जन्म लिया है। भारतीय घुक्कड़ों ने दक्षिण पूरब में लंका, वर्मा, मलाया, पवनद्वीप, स्याम, कम्बोज, चम्पा, बोर्नियों आदि देशों की खोज की परंतु बाद में उन्होंने घुमक्कड़ी करना छोड़ दिया और कूप मण्डूक बन गए। भारत में हिन्दू धर्म के कुछ उपदेशकों ने भारतवासियों की समुद्र यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिए। उन्होंने लोगों के मन में धारणा बना दी कि समुद्र यात्रा करने से धर्म नष्ट हो जाता है। इस बात में क्या सन्देह है कि समाज का उत्थान देश-विदेश में भ्रमण से ही होता है। समाज की उन्नति के लिए घुमक्कड़ी आवश्यक है। जिस देश ने घुमक्कड़ी धर्म को स्वीकार किया, उसे चारों फल-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त हो गए और जिसने इसे त्यागा वह पतन की गर्त में गिर गया।

लेखक कहता है कि ऐसा संभव है कि जो युक्तियाँ मैंने दी है वे शास्त्रों के ग्रहण के योग्य नहीं है। राहुल जी कहते हैं कि दुनिया के अधिकांश धर्मनायक घुमक्कड़ थे। यद्यपि वे भारत से बाहर नहीं गए परन्तु वर्षा ऋतु के तीन मासों को छोड़कर वे एक स्थान पर रहना पाप मानते थे। उन्होंने अपने शिष्यों से भी कहा-शिष्यों घुमक्कड़ी करो। बुद्ध के शिष्यों ने अपने गुरु का आदेश मानकर अपने धर्म को पश्चिम में मकदूनिया, तथा मिश्र से पूरब में जापान, उत्तर में मंगोलिया से लेकर दक्षिण में बाली द्वीप तक फैलाया। जिस विशाल भारत पर सभी को गर्व है उसका निर्माण इन घुमक्कड़ों ने ही किया है। घुमक्कड़ी का वर्चस्व बुद्ध से एक या दो शताब्दी पूर्व भी था, जिसके कारण बुद्ध जैसे घुमक्कड़ भारतभूमि में अवतीर्ण हुए।

लेखक कहते हैं कई महिलाएँ हमसे अकसर पूछती है क्या महिलाएँ भी घुमक्कड़ी का व्रत धारण कर सकती है? लेखक कहते हैं कि यह (घुमक्कड़ी) धर्म ब्राह्मण धर्म जितना संकुचित नहीं है जिसमें सारे अधिकार केवल पुरुषों के पास है। स्त्रियाँ इस धर्म में बराबर अधिकार रखती है। राहुल जी का कहना है कि भारत के प्राचीन धर्मों में एक जैन धर्म भी है। जिसके प्रतिष्ठापक भगवान महावीर थे। वे भी एक घुमक्कड़ ही थे। अपने घुमक्कड़ धर्म के पालन के लिए उन्होंने सभी बाधाओं और उपाधियों का त्याग कर दिया। उन्होंने घर-सम्पत्ति, नारी-संतान ही नहीं वस्त्रों का भी त्याग कर दिया। महावीर स्वामी ने सब त्याग कर 'हाथ में भिक्षा और वृक्ष के नीचे निवास' अर्थात् निर्द्वन्द्व विचरण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। वे दिशाओं को अपना वस्त्र मानते थे। जिससे कोई बाधा न हो और वह स्वतंत्रतापूर्वक घूमते रहे। भगवान महावीर प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ थे। वैशाली में जन्म लेकर उन्होंने विचरण करते हुए पावा में अपने शरीर का त्याग किया। बुद्ध और महावीर ने बढ़कर कोई स्वयं को यदि त्यागी या महात्मा बताता है तो वह झूठे अहंकार के वशीभूत होकर ही ऐसा कहता है। लेखक उन साधुओं की कड़ी आलोचना करता है जो आश्रम या कुटिया बनाकर एक ही स्थान पर कोल्हू के बैल की तरह एक स्थान पर ही चक्कर काटते रहते हैं और स्वयं को श्रेष्ठ बताते हैं। लेखक ऐसे ढोंगी, नकलची और पाखंडी महात्माओं से जनता को सावधान करना चाहता है कि इनके संपर्क में आना खतरे से खाली नहीं है। ये लोग स्वयं संकुचित विचारधारा के है, दूसरों को भी अपने ही रंग में रंगकर अवनति के गर्त में गिरा देंगे।

लेखक का कहना है कि उन्होंने जो बुद्ध और महावीर की घुमक्कड़ी के उदाहरण दिए हैं, इससे यह नहीं मानना चाहिए कि केवल इन दो महापुरुषों ने ही केवल घुमक्कड़ी की है और दूसरे लोगों ने कोठरियों में बैठकर सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली है। यदि ऐसा होता तो शंकराचार्य जैसे विद्वान भारत के चारों कोनों में क्यों घूमत फिरते। शंकराचार्य को शंकर किसी ईश्वर ने नहीं बनाया बल्कि उन्हें ईश्वर के समतुल्य बनाने वाला यही घुमक्कड़ धर्म हैं। शंकराचार्य का जीवन अल्प था। परन्तु इस अल्पकाल में ही उन्होंने न केवल तीन संस्कृत ग्रन्थों के भाष्य लिखने के साथ-साथ अपने अनुयायियों को घुमक्कड़ी धर्म का पाठ भी पढ़ा दिया। वास्को-डि-गामा के भारत आने से पहले ही शंकराचार्य के शिष्य मास्को और यूरोप तक पहुँच गए।

लेखक रामानुज, मध्यावाचार्य और वैष्णवाचार्यों के अनुयायियों से क्षमा माँगते हुए कहते हैं इन लोगों ने ही भारत को कुएँ का मेढ़क बनाने में मुख्य भूमिका निभाई हैं। ऐसे समय में रामानंद और चैतन्य कीचड़ में खिले कमल की भाँति अवर्तीण हुए और पुन: घुमक्कड़ धर्म की स्थापना की। लेखक कहता है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी भारत में कम हो गए तो भारत में कूप-मण्डूकों का बाहुल्य हो गया। यह स्थिति लगभग सात सौ वर्षों तक रही। इन वर्षों में गुलामी और परवशता ने यहाँ पर स्थायी निवास कर लिया। परन्तु इस देश की मिट्टी ने ऐसे रत्नों को जन्म दिया, जिन्होंने देश के नागरिकों को सदैव कर्म-पथ पर चलने को प्रेरित किया। भारत में गुरुनानक अपने समय के महान् घुमक्कड़ थे। उन्होंने केवल भारत में ही नहीं ईरान और अरब तक धावा मारा।

लेखक कहता है कि दूसरी शताब्दियों को छोड़िए अभी शताब्दी भी नहीं बीती भारतवर्ष में महर्षि दयानंद सरस्वती जी जैसे महापुरुष हुए। महर्षि दयानंद को स्वामी दयानंद सरस्वती जी इसी घुमक्कड़ी धर्म ने बनाया। उन्होंने लगभग संपूर्ण भारत का भ्रमण करते रहे। वह पुस्तक लिखते व शास्त्रार्थ करते हुए भ्रमण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त कर दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य स्थिर रहने वाला वृक्ष नहीं अपितु चलने फिरने वाला प्राणी हैं। राहुल जी कहते हैं समाज में अनेक धर्म है

लेकिन सभी धर्मों में घुमक्कड़ी सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ धर्म है। घुमक्कड़ी संकुचित धर्म नहीं है। यह अनन्त आकाश की तरह और गंभीर समुद्र की तरह विशाल है। ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह ने घुमक्कड़ी के बल पर ही अपने ईसाई मत का विश्व के कोने-कोने में प्रचार किया।

लेखक कहता है कि इतना वर्णन करने के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि दुनिया में घुमक्कड़ धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। उसका मत है कि घुमक्कड़ी के साथ 'धर्म' शब्द का प्रयोग करने से घुमक्कड़ी का महत्व वैसे ही घट जाता है, जैसे दुराचारी और अत्याचारी रावण के द्वारा शासित लंका के पड़ोस में होने के कारण समुद्र की महिमा कम हो गई थी और राम ने अलंघ्य समुद्र पर पुल बनाकर अपनी सेना को लंका पहुँचा दिया था। घुमक्कड़ी का अवसर बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। यह धर्म अपने अनुयानियों को मरण के बाद स्वर्ग का लालच नहीं देता, यह तो तत्काल लाभ पहुँचाता है।

राहुल जी कहते हैं कि निश्चित होकर घूमने में जो सुख मिलता है, वह अन्य किसी कार्य में नहीं मिलता। चिन्ताहीन व्यक्ति ही घुमक्कड़ी कर सकते हैं। पर्यटन के समय जो कष्टप्रद अनुभव होते हैं, वे किसी भी तरह घुमक्कड़ी के आनन्द को कम नहीं करते अपितु और भी बढ़ा देते हैं। लेखक के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए, वरन् किसी भी जाति, धर्म, समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति के लिए घुमक्कड़ी आवश्यक है। प्रत्येक युवक व युवती को घुमक्कड़ी करने का दृढ़ संकल्प लेना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की संकीर्ण विचारधारा का अन्त होने लगता है और वह विराट व्यक्तित्व का स्वामी बनने लगता है। इसके साथ यह धर्म ऐसा है, जिसका लाभ नकद रूप में तत्काल प्राप्त होता है। यदि माता-पिता तुम्हारे इस धर्म का विरोध करे तो उनके कथनों की अवहेलना उसी प्रकार कर देनी चाहिए। जिस प्रकार प्रह्लाद ने अपने पिता की की थी। प्रत्येक बाधा उत्पन्न करने वालों को उपेक्षित कर देना चाहिए। लेखक कहते हैं घुमक्कड़ों की गति महानदी के प्रवाह के समान है, जिसे किसी राज्य की कोई सीमाएँ कभी नहीं रोक सकती। राहुल जी कहते हैं कि उन्होंने स्वयं कई बार सीमाओं को सीमारक्षकों को धोखा देकर पार कर लिया है।

लेखक युवक व युवतियों से कहता है कि यह दीक्षा उसे लेनी चाहिए जिसमें साहस, निर्भयता, आत्मविश्वास आदि गुण विद्यमान हो। लेखक कहते हैं कि हमें मनुष्य जन्म एक बार मिलता है, जवानी भी एक बार मिलती है इसलिए मन में साहस और आत्म विश्वास से घुमम्मड़ी के लिए तैयार हो जाओ। संसार तुम्हारे स्वागत के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

2. लेखक ने पाठ में किन-किन घुमक्कड़ों का वर्णन किया है? ये घुमक्कड़ किन-किन क्षेत्रों से संबंधित थे?

उ०– लेखक ने पाठ में चार्ल्स डार्विन, कोलम्बस, वास्को-डि-गामा, महावीर बुद्ध, शंकराचार्य, रामानन्द, चैतन्य, गुरुनानक, दयानंद, प्रभु ईसा आदि का वर्णन किया है। इनमें से चार्ल्स डार्विन विज्ञान क्षेत्र से संबंधित है जिसने प्राणियों की उत्पत्ति तथा मानव-वंश के विकास पर अद्वितीय खोज की। कोलम्बस, वास्को-डि-गामा ने भूगोल से संबंधित थे जिन्होंने भारत तथा अमेरिका की खोज की। महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानन्द चैतन्य, गुरुनानक, प्रभु ईसा सभी धार्मिक क्षेत्र से संबंधित थे जिन्होंने धर्म का प्रसार एवं कुरीतियों का खंडन किया। महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने आर्य समाज की स्थापना कर समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त कर सामंजस्य स्थापित करने में सहायता प्रदान की।

3. लेखक ने घुमक्कड़ी के लिए किन गुणों को आवश्यक बताया है?

उ०– लेखक का मानना है कि घुमक्कड़ी के लिए व्यक्ति को चिन्ताहीन, साहसी, निडर, अडिग, निर्भय होना चाहिए। उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आँसू बहने की परवाह करनी चाहिए। न पिता के भय और उदास होने की, न पत्नी के रोने-धोने की, और न पति के कलपने की। उसे अपने लक्ष्य पर अडिग तथा स्थिर होना चाहिए।

4. लेखक ने घुमक्कड़ी को शास्त्र क्यों कहा है?

उ०– लेखक ने घुमक्कड़ी को शास्त्र इसलिए कहा है क्योंकि लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि घूमने अर्थात् यात्रा आदि से प्राप्त होने वाला ज्ञान, ग्रन्थों से प्राप्त ज्ञान से भी बढ़कर होता है। कदाचित ऐसा इसलिए कि इसमें व्यवहारिकता अधिक होती है। लेखक ने विभिन्न महापुरुषों के उदाहरण देकर आदिमकाल से आधुनिक काल तक इनकी सफलता का रहस्य घुमक्कड़ी प्रवृत्ति को बताया है। घुमक्कड़ी से व्यक्ति के वास्तविक ज्ञान में वृद्धि होती है। नई-नई खोजे जो आज हमारे सामने हैं वे घुमक्कड़ी के ही कारण प्राप्त हुई है इसलिए लेखक ने धुमक्कड़ी की तुलना शास्त्र से की है।

5. कुटिया या आश्रम बनाकर रहने वाले महात्माओं को लेखक ने 'तेली का बैल' क्यों कहा है?

उ०– लेखक राहुल सांकृत्यायन जी ने कुटिया या आश्रम बनाकर रहने वाले महात्माओं को 'तेली का बैल' इसलिए कहा है क्योंकि ऐसे महात्मा-साधु एक जगह पर जमकर ही चक्कर काटते रहते है। घुमक्कड़ी नहीं करते, न ही जनता के बीच में जाते हैं। ये पाखंडी साधु अपने को श्रेष्ठ महात्मा कहते हैं और अपने शिष्यों से भी ऐसा प्रचार करवाते है। लेखक का मानना है कि यदि एक जगह रहकर ही व्यक्ति ज्ञानी और महात्मा बना जाता तो ऐसे महात्मा प्रत्येक स्थान पर मिल जाते क्योंकि घुमक्कड़ी के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

8

गेहूँ बनाम गुलाब
(रामवृक्ष बेनीपुरी)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—70 का अध्ययन करें।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. रामवृक्ष बेनीपुरी का जीवन-परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– प्रसिद्ध साहित्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बिहार के जिला मुजफ्फरपुर के 'बेनीपुर' नामक गाँव में 23 दिसम्बर, सन् 1899 ई० को हुआ था। इनके पिता फूलवन्त सिंह एक साधारण कृषक थे। अल्पायु में ही रामवृक्ष माता-पिता के वात्सल्य से वंचित हो गए थे। इनका पालन-पोषण इनकी मौसी की छत्र-छाया में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इनकी ननिहाल में हुई। ये गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए; अत: मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पढ़ाई छोड़कर स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़े।

स्वाध्याय के बल पर ही इन्होंने हिन्दी साहित्य की 'विशारद' परीक्षा उत्तीर्ण की। राष्ट्र-सेवा के साथ ही साहित्य के इस पुजारी ने स्वाध्याय व साहित्य-सृजन का क्रम जारी रखा। अनेक बार इनको जेल यातना भी सहन करनी पड़ी। इन्होंने अपने निबन्धों के माध्यम से जन-मानस में देश-भक्ति की भावना जाग्रत की। मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ये पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में योगदान करने लगे थे। इसी से साहित्य के प्रति प्रेम इनके मन में उत्पन्न हुआ। इनके साहित्य में इनके उच्च विचारों एवं गहन अनुभूतियों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। इन्होंने विशेष रूप से निबन्ध व रेखाचित्र विधा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वतन्त्रता व साहित्य का यह प्रेमी 9 सितम्बर, सन् 1968 ई० में चिर-निद्रा में विलीन हो गया।

कृतियाँ– बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न बेनीपुरी जी की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं —

निबन्ध और रेखाचित्र– गेहूँ और गुलाब, वन्दे वाणी विनायकौ, मशाल, (निबन्ध) माटी की मूरतें, लाल तारा (रेखाचित्र)।

संस्मरण– जंजीरें और दीवारें, मील के पत्थर आदि भावपूर्ण संस्मरण हैं।

नाटक– सीता की माँ, अम्बपाली, रामराज्य आदि राष्ट्रप्रेम को उजागर करने वाले नाटक हैं।

उपन्यास और कहानी– 'पतितों के देश में', उपन्यास और 'चिता के फूल' कहानी-संग्रह हैं।

जीवनी– कार्ल्स मार्क्स, जयप्रकाश नारायण, महाराणा प्रताप सिंह आदि जीवनियाँ हैं।

यात्रावृत्त– 'पैरों में पंख बाँधकर' तथा 'उड़ते चलें' इनके ललित यात्रा-वृत्तान्तों के संग्रह हैं।

आलोचना– 'विद्यापति पदावली' और 'बिहारी सतसई की सुबोध टीका' इनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का परिचय देते हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ (सम्पादन)– तरुण भारती, युवक, हिमालय, नई धारा, कैदी, जनता, योगी, बालक, किसान मित्र, चुन्नू-मुन्नू, तूफान, कर्मवीर आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का इन्होंने बड़ी कुशलतापूर्वक सम्पादन किया था।

2. रामवृक्ष बेनीपुरी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– बेनीपुरी जी ने प्राय: व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। सरलता, सुबोधता और सजीवता से युक्त बेनीपुरी जी की भाषा का अपना अलग ही प्रभाव है। इनका शब्द-चयन चमत्कारिक है। भाव, प्रसंग व विषय के अनुरूप ये तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू, फारसी आदि शब्दों का ऐसा सटीक प्रयोग करते हैं कि पाठक आश्चर्यचकित हो उठता है। इनकी इस विशेषता के कारण इन्हें शब्दों का जादूगर कहा जाता है। बेनीपुरी जी ने अपनी रचनाओं में मुहावरों व कहावतों का खुलकर प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता और अलंकारिकता विद्यमान है। इनके छोटे-छोटे वाक्य गहरी अर्थ-व्यंजना के कारण बड़ी तीखी चोट करते हैं।

बेनीपुरी जी की रचनाओं में हमें विषय के अनुरूप विविध प्रकार की शैलियों के दर्शन होते हैं। किसी वस्तु अथवा घटना का वर्णन करते समय बेनीपुरी जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। जीवनी, कहानी, यात्रावृत्त, निबन्धों और संस्मरणों में इनकी इसी शैली के दर्शन होते हैं। बेनीपुरी जी की रचनाओं की प्रधान शैली भावात्मक है। इसमें भावों का प्रबल वेग, हृदयस्पर्शी मार्मिकता और अलंकारिक सौन्दर्य विद्यमान है। रेखाचित्रों में बेनीपुरी जी ने शब्दचित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहानियों और ललित निबन्धों में भी कहीं-कहीं इस शैली के दर्शन हो जाते हैं। बेनीपुरी जी सीधे-सीधे बात न कहकर उसे प्राय: प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं; अत: इनके निबन्धों में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग अधिक हुआ है। 'गेहूँ बनाम गुलाब', 'नींव की ईंट' आदि ललित निबन्ध इनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकात्मक शैली के सुन्दर उदाहरण हैं। शैली के इन प्रमुख रूपों के अतिरिक्त बेनीपुरी जी ने बिहारी और विद्यापति की समीक्षाओं में आलोचनात्मक शैली अपनाई है। इनकी रचनाओं में डायरी शैली, संवाद शैली, सूक्ति शैली आदि के दर्शन भी होते हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) रात का काला ..... में रँग दिया।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' में 'रामवृक्ष बेनीपुरी' द्वारा लिखित निबन्ध 'गेहूँ बनाम गुलाब' से

नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपने जीवन में केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं चाहता, वरन् वह मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए भी प्रयास करता है।

व्याख्या– सर्वप्रथम मानव अपनी भूख मिटाने के लिए प्रयासरत हुआ। जिस प्रकार काली रात के व्यतीत हो जाने के बाद मनुष्य प्रात:काल की लालिमा और सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होता है, उसी प्रकार पेट की आग बुझ जाने के बाद वह प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुआ। जब उसने उषा की अलौकिक लालिमा सूर्य के दिव्य प्रकाश और मधुरिम हरियाली के अनेक दृश्य अपने नेत्रों से निहारे तो वह उल्लास और प्रसन्नता से उछल पड़ा। आकाश में गरजती-चमकती श्यामल घटाओं को देखकर आदिमानव केवल इसीलिए प्रसन्न नहीं हुआ कि ये घटाएँ बरसकर तथा खेतों में अन्न उगाकर उसके पेट को भर देगी, वरन् प्रकृति के अद्वितीय और अनुपम सौन्दर्य से आकर्षित होकर ही उसका मनरूपी मयुर नाचने लगा। इसी प्रकार आकाश में सतरंगे इन्द्रधनुष के बिंब को निहारकर भी मानव-मन उल्लास से भर गया। तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने केवल अपनी भूख ही नहीं मिटाई, वरन् उसने प्रकृति के सौन्दर्य को भी निहारा। उसने केवल शारीरिक तृप्ति ही नहीं प्राप्त की, वरन् उसका मन भी तृप्त हुआ।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में मनुष्य के सौन्दर्य बोध को एक अलौकिक गुण के रूप में चित्रित किया गया हैं **(2)** यह सच है कि भूख या कष्ट की अवस्था में सौन्दर्य बोध का उल्लास प्रभावित नहीं करता, परन्तु जब पेट भरा होता है तो व्यक्ति नि:स्वार्थ भाव से ओर स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता हैं। **(3) भाषा–** आलंकारिक। **(4) शैली–** विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक। **(5) वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **(6) शब्द-चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

(ख) मानव शरीर में ..... रूप रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवित रहने हेतु अपना पेट भरे, किन्तु लेखक का मत है कि उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य पेट भरना ही नहीं है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा, मानसिक वृत्तियों की तृप्ति को अधिक महत्व दिया गया है।

व्याख्या– मानव के शरीर में पेट, हृदय और मस्तिष्क- ये तीन प्रमुख अंग है। इनके महत्व के अनुसार ही शरीर में इनका क्रम ऊपर से नीचे का है। मानव की शरीर-रचना में मस्तिष्क का स्थान सर्वोपरि है। हृदय का स्थान उसके नीचे तथा पेट का स्थान मस्तिष्क और हृदय से भी नीचे हैं इसका अर्थ यह है कि मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्व मस्तिष्क (बुद्धि) का; उससे कम, किन्तु पेट से अधिक महत्व हृदय (भाव) का है और सबसे कम महत्व पेट (शारीरिक भूख) को दिया गया है। यदि पशु की शरीर-रचना को देखा जाए तो उसका पेट और मस्तिष्क समानान्तर रेखा (बिलकुल सीध) में होता है। पशु के लिए शारीरिक भूख और मानसिक तृप्ति का समान महत्व है। इसी कारण पशुओं की पेट भरने से ही तृप्ति हो जाती है। जब तक मनुष्य पैरों के बल चलना नहीं सीखता और घुटनों के बल चलता है, तब तक वह पशु की तरह पेट भरने मात्र से सन्तुष्ट रहता है, लेकिन जब वह सीधे तनकर खड़ा हो जाता है तो पशु के स्तर से ऊपर उठकर पेट से अधिक मन की आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्व देने लगता है। मानसिक तृप्ति के अभाव में वह पशु के समान ही है। मानसिक तृप्ति को महत्व देना ही, मनुष्य के हृदय की उसके पेट पर विजय है। रामवृक्ष बेनीपुरी जी का कहना है कि मनुष्य को गेहूँ की आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि उसे अपना पेट भरना होता है और शरीर की रक्षा भी करनी होती है। लेकिन मानव चिरकाल से यह प्रयत्न करता रहा है कि वह मात्र पेट भरने के लिए ही अपनी सारी शक्ति न लगा दे। पेट भरने को वह केवल साधन ही समझे, साध्य नही। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही वह उपवास, व्रत और तपस्या करता रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह प्रारंभ से ही अपनी इस मूलभूत आवश्यकता पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करता रहा है। वह इस ओर ध्यान देता रहा है कि पेट की भूख के ऊपर मन या हृदय और मस्तिष्क की भूख भी है और इनकी सन्तुष्टि हेतु प्रयास करना भी उसके लिए परम आवश्यक है।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने प्राणि-विज्ञान का प्रस्तुतीकरण बहुत ही कुशलता से किया है तथा मानव की शरीर-रचना में उसके अंगों का महत्व शरीर-रचना के आधार पर बताया गया है। **(2)** मनुष्य के लिए शारीरिक भूख शान्त करने की अपेक्षा मानस की सन्तुष्टि का महत्व अधिक है। **(3)** यहाँ पर गेहूँ को पेट की भूख और धन दौलत का प्रतीक माना गया है। **(4) भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली। **(5) शैली–** प्रतीकात्मक, आलंकारिक और विवेचनात्मक। **(6) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(7) शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप एवं उपयुक्त।

(ग) अपनी वृत्तियों को ..... के उन्नयन का।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में बेनीपुरी जी ने शारीरिक आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों की प्रभुता स्थापित करने पर बल दिया है।

व्याख्या– लेखक ने गेहूँ को भौतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रगति का प्रतीक माना है और गुलाब को मानसिक अर्थात् सांस्कृतिक प्रगति का। लेखक के अनुसार मन की अवस्थाओं का अध्ययन करने वाले अर्थात् मनोवैज्ञानिक मन को नियंत्रित करने के लिए दो उपाय बतलाते हैं। उनका प्रथम उपाय इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ-आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ- हाथ, पाँव, वाक, गुदा और उपस्थ) द्वारा होने वाले क्रिया-कलापों के नियमन-संयमन से है तथा दूसरा उपाय वृत्तियों अर्थात् मन की अवस्थाओं के उन्नयन अर्थात् उनका उच्चस्तरीय विकास करने से है। प्रथम उपाय के सफल न हो पाने के लेखक दो उदाहरण प्रस्तुत करता है-एक प्राचीन काल से और दूसरा वर्तमान काल से। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि-मुनि इन्द्रियों को संयमित करने के उपदेश जन-मानस को देते रहते हैं। इससे

अच्छे परिणामों के साथ-साथ बुरे परिणाम भी हमारे सामने आए। ऐसे कई तपस्वी जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को संयमित करने के लिए दीर्घकालीन तपस्याएँ की, उनकी ये तपस्याएँ स्थूलवासना के क्षेत्र से ऊपर नहीं उठ पाई थी और यही कारण था कि ये किसी रम्भा, मेनका और उर्वशी (अप्सराएँ, भारतीय पौराणिक आख्यानों में अत्यधिक सुन्दर स्त्रियों के रूप में प्रसिद्ध) के कारण असमय ही भंग हो गई। वर्तमान काल में हमारे तपस्वी अर्थात् भारतीय नेतृत्व ने महात्मा गाँधी के इन्द्रिय- संयम के आदर्श पर चलने का जो मार्ग अपनाया, वह भी दिन-प्रतिदिन पतन के मार्ग पर ही अग्रसर है। श्री बेनीपुरी जी के अनुसार वृत्तियों को वश में करने का एकमात्र उपाय है उनके उन्नयन का, उनके संयम का नहीं। इसीलिए उनका कहना है कि व्यक्ति को अपनी सर्वांगीण उन्नति के लिए अपनी इच्छाओं को ऐन्द्रिक धरातल के चिन्तन से ऊपर उठाकर सूक्ष्म मानवीय भावनाओं की ओर उन्मुख करना चाहिए और ऐसा तब ही संभव हो सकता है जब इन्द्रियों अर्थात् शरीर पर मन का साम्राज्य स्थापित हो। तात्पर्य यह है कि मानव के मन-मस्तिष्क पर गेहूँ की नहीं गुलाब की सत्ता स्थापित हो।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) लेखक ने पौराणिक और आधुनिक काल के उद्धरण के माध्यम से गुलाब की सत्ता को प्रमुखता दी है। **(2) भाषा–** शुद्ध, साहित्यिक, तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली। **(3) शैली–** उद्धरणों से युक्त लाक्षणिक और विवेचनात्मक। **(4) शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप एवं उपयुक्त। **(5) वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **(6) विचार-सौष्ठव–** यही कारण है कि कुछ दार्शनिकों ने एकादश इन्द्रयों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियों के ऊपर मन को माना है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद् गीता में कहा है– **'मनो दुर्निग्रहं चलम्'।**

(घ) गेहूँ की दुनिया ..... लोक बसाएँगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– लेखक ने गेहूँ को भौतिकता और गुलाब को आध्यात्मिकता का प्रतीक माना हैं और विश्वास व्यक्त किया है कि भविष्य में भौतिकवाद पर आध्यात्मिक मानसिकता का आधिपत्य होगा।

व्याख्या– लेखक भौतिकवादी मानसिकता के स्थान पर आध्यात्मिक मानसिकता को महत्व देते हुए कहता है कि भौतिकता पर आधारित यह जगत्, जो आर्थिक और राजनैतिक रूप में हम पर शासन करता रहा, अब समाप्त होने वाला है। मनुष्य की वह भौतिक मानसिकता अब समाप्त होने वाली है, जो अब तक आर्थिक शोषण के रूप में निर्धन का रक्त पीती रही है और तुच्छ राजनैतिक गतिविधियों के रूप में बढ़ती रही। लेखक का विश्वास है कि अब मानसिक सन्तोष का युग आने वाला है। यह ऐसा संसार होगा, जिसमें मन को सन्तोष मिल सकेगा और मानव की संस्कृति विकसित हो सकेगी। लेखक ने अपना हर्ष प्रकट करते हुए लिखा है कि वह शुभ दिन कैसा होगा जब हम शरीर की बाह्य आवश्यकताओं के बन्धन से मुक्त हो सकेंगे और हमारे मन में आध्यात्मिकता का नवीन संसार विकसित होगा। लेखक उस शुभ दिवस की कल्पना करता है, जब हम गुलाब की सांस्कृतिक धरती पर स्वछन्दता के साथ विचरण कर सकेंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य– (1) यहाँ पर लेखक ने मानसिक सुख और समृद्धि से परिपूर्ण भविष्यलोक की कल्पना की है। **(2)** लेखक को विश्वास है कि शीघ्र ही भौतिकवादी दृष्टिकोण की समाप्ति होगी और सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण विकसित होगा। **(3) भाषा–** काव्यात्मक और प्रवाहपूर्ण। **(4) शैली–** प्रतीकात्मक और लाक्षणिक। **(5) शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **(6) वाक्य-विन्यास–** सुगठित।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूँघते हैं। एक के शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से हमारा मानस तृप्त होता है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'रामवृक्ष बेनीपुरी' द्वारा लिखित पुस्तक 'गेहूँ बनाम गुलाब' से नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में बेनीपुरी जी ने गेहूँ और गुलाब दोनों को ही जीवन के लिए उपयोगी बताया है। यहाँ पर गेहूँ भौतिकता का और गुलाब मानसिक तृप्ति एवं सांस्कृतिक प्रगति का प्रतीक है।

व्याख्या– जिस प्रकार मानव-शरीर में पेट और मस्तिष्क का महत्तवपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में गेहूँ और गुलाब का भी महत्त्व है। गेहूँ हम खाते हैं, उससे हमारी भूख शान्त होती है। वह हमारी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता हैं। वह हमारी आर्थिक उन्नति का भी प्रतीक है। गुलाब हम सूँघते हैं। वह मन को सन्तोष और सुख प्रदान करता है। तात्पर्य यह है कि शरीर और मन में अर्थात् आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में समन्वय बना रहना चाहिए।

(ख) जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर। क्षुधा, क्षुधा; पिपासा, पिपासा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक बता रहा है कि शारीरिक सन्तुष्टि मनुष्य की प्राथमिकताओं में प्रथम स्थान पर आती है। इसके लिए उसने सभी उचित-अनुचित कार्य किए।

व्याख्या– मनुष्य जब शिशु-रूप में पृथ्वी पर आया, तब वह भूख-प्यास से व्याकुल रोता हुआ आया। उस समय उसके सामने सबसे बड़ी समस्या अपनी भूख प्यास शांत करने की थी। अपनी भूख-प्यास की व्याकुलता के कारण वह खूब रोया-चिल्लाया, किन्तु समस्या का कोई समाधान न निकला; अन्ततः उसने उसे शान्त करने के लिए स्वयं प्रयास किए। उसका एक ही लक्ष्य था, किसी प्रकार अपनी भूख-प्यास शान्त करना; अतः इसके लिए उसने बड़े वहशीपन से काम लिया। उसके सामने जो कुछ आया, उसने उसी को चबाना और चूसना शुरु कर दिया। इस प्रयास में उसका पहला शिकार स्वयं उसकी माँ बनी। उसने

सर्वप्रथम अपनी माँ के स्तनों को निचोड़ा। जब उनसे भी काम न चला तो उसने पेड़-पौधों को झकझोर डाला और उनके कन्द-मूल-फल-पत्ते आदि जिससे भी उसकी भूख-प्यास मिट सकती थी, उसको चबा डाला। यहाँ तक कि कीट-पतंग और पशु-पक्षियों तक को उसने अपनी भूख अर्थात शारीरिक सन्तुष्टि का साधन बना डाला।

(ग) बाँस से उसने लाठी ही नहीं बनाई, वंशी भी बजाई।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति-वाक्य में लेखक ने मनुष्य के द्वारा किसी वस्तु के एकाधिक प्रकार से उपयोग करने का वर्णन किया है।

व्याख्या– प्रारंभ में मनुष्य भी अन्य जीवधारियों के ही समान था, जिसके लिए शारीरिक सन्तुष्टि सर्वप्रमुख थी। जैसे-जैसे उसका विकास होता गया, उसे शारीरिक सन्तुष्टि के साथ-साथ मानसिक सन्तुष्टि की आवश्यकता का भी अनुभव होने लगा। इस मानसिक सन्तुष्टि की पूर्ति के लिए उसके द्वारा ध्वनि या संगीत की खोज हुई। शारीरिक सन्तुष्टि के लिए वह पशुओं को मारकर खा जाता था और मानसिक सन्तुष्टि के लिए उसने उनकी खाल से ढोल बनाए और सींग से तुरही। ये दोनों ही आरंभिक वाद्ययंत्र उसकी मानसिक सन्तुष्टि में सहायक थे। इसी क्रम में उसने आगे जो कार्य किए वे भी ऐसे ही थे। शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जब उसने बाँस से लाठी बनाई तो मानसिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने बाँस से ही बाँसुरी भी बनाई और उसे बजाया भी। तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे मानवीय सभ्यता विकास प्राप्त करती गई उसने मानसिक आवश्यकताओं को भी वरीयता देना प्रारंभ कर दिया।

(घ) मानव शरीर में पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सबसे ऊपर।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में शारीरिक सन्तुष्टि अथवा अनियंत्रित भावनाओं की तुष्टि की अपेक्षा बुद्धि की तुष्टि पर अधिक बल दिया गया है।

व्याख्या– विधाता ने एक सुनिर्धारित क्रम में ही मानव-शरीर के विभिन्न अंगों की रचना की है। उसने सबसे ऊपर मस्तिष्क की और सबसे नीचे पेट की रचना की है। हृदय को इन दोनों के मध्य स्थान दिया गया है। इन तीनों को इनकी स्थिति के अनुसार ही महत्व प्रदान किया गया है। मस्तिष्क बुद्धि के माध्यम से व्यक्ति को विचारशील बनाता है, हृदय भावनाओं को जन्म देता है और पेट शारीरिक भूख उत्पन्न करता है। इस दृष्टि से व्यक्ति को मानसिक तुष्टि को ही सबसे अधिक महत्व प्रदान करना चाहिए। इसके उपरान्त भावनात्मक तुष्टि पर और सबसे अन्त में शारीरिक सन्तुष्टि पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(ङ) जब तक मानस के जीवन में गेहूँ और गुलाब का सन्तुलन रहा, वह सुखी रहा, सानन्द रहा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति के माध्यम से लेखक ने आर्थिक आवश्यकताओं तथा सौन्दर्य-बोध में सामंजस्य बैठाने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या– यहाँ गेहूँ से तात्पर्य है- स्थूल शारीरिक, आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताएँ। इसी प्रकार गुलाब का अर्थ सूक्ष्म मानस-जगत अथवा सांस्कृतिक-जगत की आवश्यकताओं से है। लेखक का कथन है कि जब तक इन दोनों में सन्तुलन बना रहा, तब तक मनुष्य सुखी रहा, परन्तु जैसे ही शरीर और मन की आवश्यकताओं का सन्तुलन बिगड़ा, मनुष्य अपना आनन्द एवं सुख-चैन खो बैठा।

(च) गेहूँ सिर घुन रहा है खेतों में; गुलाब रो रहा है बगीचों में- दोनों अपने-अपने पालनकर्ताओं के भाग्य पर, दुर्भाग्य पर-!

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– सुखी जीवन के लिए गेहूँ और गुलाब दोनों में समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

व्याख्या– बेनीपुरी जी का मत है कि गेहूँ भूख और श्रम का प्रतीक है और गुलाब सौन्दर्य का, किन्तु सम्पन्न लोगों ने गेहूँ को शारीरिक श्रम के शोषण का और गुलाब को विलासिता का प्रतीक मान लिया है। प्राचीन काल में गेहूँ और गुलाब दोनों में सन्तुलन था। मनुष्य शारीरिक क्षुधा शान्त करने के साथ-साथ मानसिक सुख पर भी ध्यान देता था, परन्तु आज मनुष्य ने भौतिक प्रगति अधिक कर ली है, जिसके कारण हमारे जीवन का उद्देश्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना मात्र रह गया है। अपनी शारीरिक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए किसान कड़ी धूप और भयानक ठण्ड में भी खेतों में कठिन परिश्रम करता है, किन्तु उसे भरपेट भोजन नहीं मिलता। सौन्दर्य, कला और संस्कृति के लिए उसे पास समय कहाँ? अत: गेहूँ अपने पालनकर्ता बड़े किसानों, जमींदारों के संरक्षण में रहकर सिर धुनता रहता है। दूसरी ओर गुलाब विलासिता और भ्रष्टाचार का प्रतीक बन रहा है। संपन्न व्यक्ति कला और सौन्दर्य के नाम पर विलासिता में डूब रहा है, जिससे वह अपने शरीर को नष्ट करने के साथ मन को भी कलुषित कर रहा है। इस कारण गुलाब भी अमीर लोगों के संरक्षण में रहकर रो रहा है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'गेहूँ बनाम गुलाब' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत निबन्ध में रामवृक्ष बेनीपुरी जी ने गेहूँ को राजनैतिक एवं आर्थिक प्रगति का प्रतीक माना है और गुलाब को सांस्कृतिक प्रगति का। लेखक कहते हैं कि गेहूँ और गुलाब दोनों में समन्वय है। एक को हम खाते हैं तथा दूसरे को सूँघते हैं। एक से हमारा शरीर पुष्ट होता है तथा दूसरे से हमारा मन आनन्दित होता है। लेखक कहता है कि अब प्रश्न है गुलाब बड़ा है या गेहूँ। जब मनुष्य शिशु रूप में पृथ्वी पर आया, तब वह भूख प्यास से रोता हुआ आया। उसके सामने सबसे बड़ी समस्या थी कि क्या खाए क्या पिएँ। अपनी

समस्या के समाधान के लिए उसने सबसे पहले अपनी माँ के स्तनों को निचोड़ा, वृक्षों, पेड़-पौधों को झकझोर डाला और उनके कन्द-मूल फल पत्ते आदि से अपनी भूख शांत की। यहाँ तक कि अपने कीट-पतंगों तथा पशु-पक्षियों को भी नहीं छोड़ा।

लेखक कहता है कि मनुष्य ने अपनी भूख शांत करने के लिए गेहूँ उगाने का प्रयास किया। जिसके लिए उसने मैदानों को जोता, बागों को साफ किया। बेचारा गुलाब भरी जवानी में रो रहा है। मानव की शारीरिक आवश्यकताओं ने मनुष्य की मानसिक वृत्ति (सुरक्षा, आदर्शवादिता, सौन्दर्यानुभूति, रसात्मकता आदि) को कहीं पीछे कोने में धकेल दिया।

लेखक कहता है कि चाहे मनुष्य गेहूँ को पकाकर खाए या जानवर उसे कच्चा खाए। गेहूँ तक आते-आते दोनों समान हो जाते हैं। प्रारंभ में आदिमानव भी दूसरे जीवधारियों के समान ही था, जिसके लिए शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि ही सर्व प्रमुख थी। धीरे-धीरे उसने सभ्यता का विकास किया तथा मानसिक वृत्तियों को वरीयता देना प्रारंभ किया। लेखक कहता है कि मानसिक वृत्तियों के विकास ने ही मनुष्य को मनुष्य के रूप में विकसित किया।

लेखक कहता है कि जब गेहूँ को ऊखल और चक्की में कूटा जाने लगा तो उसमें भी मनुष्य ने संगीत की अनुभूति प्राप्त की। जब पशुओं को मारकर खाकर भी वह संतुष्ट नहीं हुआ तब उसने उसकी खाल से ढोल बनाया तथा सींग से तुरही बजाई। मछली पकड़ने के लिए जब वह नाव लेकर समुद्र में गया तब उसने पतवार की छप-छप की आवाज से संगीत की अनुभूति की। उसने बाँस से शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लाठी तो बनाई ही साथ ही उसने वंशी बनाकर मानसिक संतुष्टि भी प्राप्त की।

लेखक कहता है कि काली रात बीत जाने पर जहाँ वह अपनी भूख मिटाने के लिए भोजन की तलाश में निकला, वहीं उषाकाल की लालिमा को देखकर आनन्दित भी हुआ। अन्तरिक्ष से धरती पर आने वाली सुनहरी किरणों तथा हरी घास पर बिखरी ओस की बूँदों ने उसे भावविभोर कर दिया। जब आसमान में काले बादल घुमड़ने लगे तो वह केवल यह देखकर खुश नहीं हुआ कि मेरी फसल अच्छी होगी, बादलों के सौन्दर्य को देखकर भी उसका मनरूपी मोर नाचने लगा। इन्द्रधनुष के मनमोहक रंगों ने उसके मन में भी विविध रंग भर दिए। लेखक कहता है कि मानव शरीर में हृदय और मस्तिष्क-ये तीन प्रमुख अंग है। इनके महत्व के अनुसार ही इनका क्रम ऊपर नीचे है। उसका मस्तिष्क सबसे ऊपर, उसके नीचे हृदय तथा सबसे नीचे पेट का स्थान है। अर्थात मनुष्य के लिए मस्तिष्क का महत्व अधिक है तथा पेट का महत्व सबसे कम है। यदि पशुओं को देखा जाए तो उनका मस्तिष्क, हृदय और पेट तीनों सामान्तर रेखा में है इसलिए पशु के लिए शारीरिक भूख और मानसिक वृत्ति का समान महत्व है। जब तक मनुष्य पशुओं की भाँति घुटनों के बल चलता है, तब तक वह पशु की भाँति पेट भरने मात्र तक संतुष्ट रहता है, लेकिन जब वह सीधा खड़ा हो गया। वह पेट से अधिक मन की आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान देने लगा। लेखक कहता है कि मानव प्राचीनकाल से ही इस प्रयत्न में रहा है कि वह केवल पेट भरने में अपनी सारी शक्ति न लगा दे। इसलिए वह प्राचीनकाल से ही व्रत, उपवास, तपस्या करता रहा है।

जब तक मनुष्य के जीवन में गेहूँ व गुलाब में संतुलन था वह सुखी था। किन्तु धीरे-धीरे वह संतुलन बिगड़ गया। अब गेहूँ मनुष्य के कठोर परिश्रम, दु:खों का कारण बन गया, परंतु यह परिश्रम भी पेट की भूख शांत नहीं कर पाया। अब गुलाब विलासिता का भ्रष्टाचार एवं अपवित्र गन्दगी प्रतीक बन गया। क्योंकि विलासिता मनुष्य के शरीर और हृदय का विनाश कर देती हैं अपने शारीरिक सुखों के लिए उसने अपने हाथों में हथियार उठा लिए। जिसका परिणाम महाभारत का युद्ध तथा यदुवंशियों का सर्वनाश हुआ। लेखक कहता है कि गेहूँ अपने पालनकर्ता बड़े किसानों, जमींदारों के संरक्षण में रहकर सिर धुनता रहता है। दूसरी ओर गुलाब विलासिता में डूब रहा है जिससे वह अपने शरीर को नष्ट करने के साथ मन को भी कलुषित कर रहा है। इसलिए गुलाब भी अमीर लोगों के संरक्षण में रो रहा है। लेखक कहता है कि चलो हम एक बार पुन: पीछे जाकर इनमें समन्वय स्थापित करे। परन्तु क्या मानव पीछे जा सकता है। उसकी यात्रा तो निरन्तर आगे बढ़ती जाती है।

लेखक कहता है इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास से तो अच्छा है कि गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करें। आज के वैज्ञानिक युग में, नये युग के मानव की यही इच्छा है। विज्ञान ने यह बता दिया कि गेहूँ क्या है और मनुष्य में चिरकाल से चली आ रही भूख क्यों है? अत: हमें इसका समाधान छोड़ देना चाहिए।

पृथ्वी और आकाश के कुछ तत्व एक विशेष प्रक्रिया से पौधों की बालियों में एकत्र होकर गेहूँ बनाते है जिसकी कमी शरीर में भूख कहलाती है। क्यों हम पृथ्वी को जोते, क्यों बुवाई, निराई करें? हम इन तत्वों को सीधे ही पृथ्वी और आकाश से प्राप्त कर ले। यह विचार काल्पनिक है। परंतु यह काल्पनिक तब तक ही है जब तक विज्ञान आकाश, पाताल एक करता रहेगा। जैसे उसने मानव जीवन की समस्याओं पर ध्यान लगाया ये समस्याएँ कम हो जाएगी। विज्ञान इस तरफ धीरे-धीरे अपने कदम बढ़ा रहा है। जिससे गेहूँ के साथ-साथ हवा, पानी जैसी मूलभूत आवश्यकताओं में भी वृद्धि हो जाए।

लेखक कहता है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक समय हमारा देश सोने की नगरी था जिसमें निरंकुश व अत्याचारी राक्षसता वास करती थी। जो मनुष्य को सताती तथा उन पर अत्याचार करती थी। उन्हें अपना दास बनाती थी। इसी प्रकार गेहूँ भी हमें अपना दास बनाकर रखना चाहता है। लेखक ने मन की अवस्थाओं का अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिक मन को नियंत्रित करने के लिए दो उपाय बताए है। प्रथम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँचों कार्मेन्द्रियों का नियमन-संयमन तथा दूसरा वृत्तियों अर्थात् मन की अवस्थाओं के उच्चस्तरीय विकास से है। लेखक कहता है संयमन का यह उपदेश हमारे ऋषि मुनि प्राचीनकाल से देते आ रहे हैं। परन्तु इसके अच्छे परिणामों के साथ-साथ बुरे परिणाम भी हमारे सामने आए। ऐसे कई वयस्वी जिन्होंने दीर्घकाल तक तपस्या की, उनकी ये तपस्या स्थूल वासना के क्षेत्र से ऊपर न उठ सकी और स्वर्ग की अपसराओं रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि की एक मुस्कान पर भंग हो गई। वर्तमान काल में भी महात्मा गाँधी ने इन्द्रिय-संयम के आदर्श पर चलने का जो मार्ग अपनाया, वह भी दिन-प्रतिदिन पतन के मार्ग पर ही अग्रसर है। इसलिए लेखक ने वृत्तियों को वश में करने का एकमात्र उपाय उसके उन्नयन का बताया है। लेखक कहता है कि समाज में जो भौतिकवाद व्याप्त है वह अब समाप्त होने

वाला है। भौतिकवाद की दुनिया स्थूल दुनिया है। शारीरिक आवश्यकताएँ मनुष्य को आर्थिक और राजनीतिक रूप में जकड़े रहती है। अब यह युग समाप्त होने वाला है, जिसमें आर्थिक रूप से निर्धनों का शोषण होता रहा है और राजनीतिक घिनौने, दावपेंचों, हथकंडों और संघर्षों के कारण सदा खून की धारा बहायी जाती है। अब नया युग आने वाला है यह गुलाब का युग होगा। जो संस्कृति को महत्व देगा। लेखक उस शुभ दिन की कल्पना करता है जब हम गुलाब की सांस्कृतिक धरती पर स्वच्छन्दता के साथ विचरण कर सकेंगे। गुलाब की दुनिया रंगों व सुगंधों की दुनिया होगी जब भौंरें नाचेंगे, फूलसुँघनी नामक पक्षी फुदक-फुदक कर नाचेगा। इस दुनिया में कहीं भी किसी प्रकार की गन्दगी नहीं होगी। चारों तरफ गुलाब ही गुलाब ही गुलाब खिलेंगे। मनुष्य का जीवन रंगमय, सुगन्धमय हो जाएगा। वह दिन अब आने ही वाला है। लेखक कहता है कि अपनी आँखों पर से स्वार्थरूपी गेहूँ का पर्दा उतारिए और इस पृथ्वी के नए लोक को देखिए। लेखक कहता है कि इस लोक को देखने के लिए मानव को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा, तभी वे अनुभव कर पाएँगे कि सद्भावों की सुगन्ध कितनी मनमोहक है और उसके इन्द्रधनुषी रंगों में कितना आकर्षण है।

2. लेखक ने मानव तथा पशुओं में क्या अंतर बताया है?

उ०– लेखक ने मानव तथा पशुओं में अंतर बताते हुए कहा है। पशुओं का मस्तिष्क, हृदय तथा पेट सामान्तर रेखा में होता है। इसलिए पशुओं के लिए शारीरिक भूख और मानसिक तृप्ति का समान महत्व है। जबकि मानव की शरीर रचना में, मस्तिष्क का स्थान सर्वोपरि, हृदय का स्थान उसके नीचे तथा पेट का स्थान सबसे नीचे है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्व मस्तिष्क (बुद्धि) का उससे कम हृदय (भाव) का और सबसे कम पेट (शारीरिक भूख) का है। इस प्रकार व्यक्ति के लिए मानसिक तुष्टि का ही सबसे अधिक महत्व है।

3. आज गेहूँ तथा गुलाब किसके प्रतीक बन गए है?

उ०– लेखक के अनुसार आज गेहूँ राजनैतिक एवं आर्थिक प्रगति का तथा गुलाब सांस्कृतिक प्रगति का प्रतीक बन गए हैं। हम गेहूँ खाते हैं, उससे हमारी भूख शांत होती है। वह हमारी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह हमारी आर्थिक उन्नति तथा भौतिकता का भी प्रतीक है। जबकि गुलाब मन को संतोष और सुख प्रदान करता है जो सांस्कृतिक प्रगति का प्रतीक है।

4. अपनी वृत्तियों को वश में करने के लिए लेखक ने क्या उपाय बताए हैं?

उ०– अपनी वृत्तियों को वश में करने के लिए इनका उन्नयन ही एकमात्र उपाय लेखक ने बताया है। व्यक्ति को अपनी सर्वांगीण उन्नति के लिए अपनी इच्छाओं को ऐन्द्रिक धरातल के चिन्तन से ऊपर उठाकर सूक्ष्म मानवीय भावनाओं की ओर उन्मुख करना चाहिए और ऐसा तब ही संभव है जब इन्द्रियों अर्थात् शरीर पर मन का साम्राज्य स्थापित हो।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

काव्यांजलि

भूमिका

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न–

1. महाकाव्य तथा खण्डकाव्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– महाकाव्य का नाटक उदात्त चरित्र का होता है। शान्त, श्रृंगार व वीर में से कोई रस प्रधान तथा अन्य रस गौण रूप में उपस्थित रहते हैं। इसमें कम से कम आठ सर्ग होते हैं। खण्डकाव्य किसी लोकनायक के जीवन के किसी एक अंश पर आधारित काव्यात्मक रचना होती है।

2. प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य में मुख्य अन्तर कौन-सा है?

उ०– प्रबन्ध काव्य में कोई कथा काव्य का आधार होती है। इसमें किसी क्रिया अथवा घटना का काव्यात्मक वर्णन होता है। मुक्तक काव्य, काव्य का वह रूप है जिसमें पद तो कई हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक पद स्वयं में पूर्ण होता है। उनमें परस्पर सम्बन्ध का होना अनिवार्य नहीं है।

3. काव्य के कितने भेद होते हैं?

उ०– काव्य के दो भेद होते हैं– (i) श्रव्य काव्य, (ii) दृश्य काव्य।

4. श्रव्य काव्य के कितने भेद होते हैं?

उ०– श्रव्य काव्य के दो भेद होते हैं– (i) प्रबन्ध काव्य, (ii) मुक्तक काव्य।

5. हिन्दी-काव्य-साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी-काव्य साहित्य के इतिहास के काल के नाम हैं– आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल।

6. शब्द-शक्ति किसे कहते हैं?

उ०– शब्द के आन्तरिक अर्थ को स्पष्ट करने वाली शक्ति शब्द-शक्ति कहलाती है।

7. दो महाकाव्यों के नाम बताइए।

उ०– दो महाकाव्य के नाम हैं– (i) श्रीरामचरितमानस्, (ii) पद्मावत।

8. मुक्तक काव्य का एक उदाहरण बताइए।

उ०– रीतिकालीन कवि 'बिहारीलाल' की 'बिहारी-सतसई' मुक्तक काव्य का प्रमुख उदाहरण है।

9. खण्डकाव्य किसे कहते हैं?

उ०– किसी लोकनायक के जीवन के किसी एक अंश पर आधारित काव्यात्मक रचना खण्डकाव्य कहलाती है। इसकी रचना महाकाव्य की शैली पर ही होती है।

10. आदिकाल के सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य के एक-एक प्रमुख कवि का नाम लिखिए।

उ०– आदिकाल के सिद्ध साहित्य के प्रमुख कवि सरहपा है तथा जैन साहित्य के प्रमुख कवि मुनि जिनविजय हैं।

11. आदिकाल की दो प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए। या
वीरगाथाकालीन काव्य की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) युद्धों के सुन्दर व सजीव वर्णन। (ii) आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा।

12. हिन्दी के प्रथम कवि का नाम लिखिए।

उ०– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चन्द्रवरदाई' को तथा राहुल सांकृत्यायन ने 'सरहपा' को हिन्दी का प्रथम कवि माना है परन्तु सर्वमान्य मत के अनुसार 'सरहपा' को हिन्दी का प्रथम कवि माना जाता है।

13. वीरगाथाकाल के एक प्रमुख कवि और उनकी एक रचना का नाम लिखिए।

उ०– वीरगाथाकाल के प्रमुख कवि चन्द्रवरदाई थे जिनकी रचना पृथ्वीराज रासो है।

14. आदिकालीन दो प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– आदिकाल की दो प्रमुख रचनाएँ हैं– (i) पृथ्वीराज रासो, (ii) जयचन्द प्रकाश।

15. आदिकाल के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों में से किन्हीं दो नामों का उल्लेख कीजिए।

उ०– आदिकाल को चारणकाल तथा वीरगाथाकाल के नाम से भी जाना जाता है।

16. प्रेममार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– प्रेममार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं– (i) मलिक मुहम्मद जायसी, (ii) कुतुबन।

17. भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि और उनकी रचना का नाम लिखिए।

उ०– भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं, इनकी प्रमुख रचना पद्मावत है।

18. प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने किस भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है?

उ०– प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने अवधी भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है।

19. प्रेमामार्गी शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– (i) सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त एवं सौन्दर्य-वृत्ति से प्रेरित स्वच्छन्द प्रेम तथा प्रगाढ़ प्रणय की भावना,
(ii) सांसारिक प्रेम की सहज अनुभूति में आध्यात्मिकता तथा उसकी प्राप्ति के प्रयास में योग-साधना के दर्शन,
(iii) आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं रहस्यवादिता का आरोपण,
(iv) रहस्यवाद के दर्शन, (v) अवधी भाषा एवं मसनवी शैली का प्रयोग।

20. सगुण भक्तिधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– सगुण भक्तिधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है–
(i) परमात्मा के सगुण रूप की उपासना,
(ii) जीवन की सामान्य भावनाओं- वात्सल्य, सख्य, रति भाव के सभी रूपों की भक्ति में परिणति,
(iii) वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा,
(iv) जीवन की सभी परिस्थितियों के लिए आचार एवं धर्म के मानदण्ड।

21. अवधी भाषा के किसी एक कवि का नाम बताइए।

उ०– अवधी भाषा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं।

22. कृष्णभक्ति शाखा का प्रथम कवि कौन माना जाता है?

उ०– कृष्णभक्ति शाखा का प्रथम कवि विद्यापति को माना जाता है।

23. 'अष्टछाप' समूह के कवियों के नाम लिखिए।

उ०– 'अष्टछाप' समूह के कवियों के नाम हैं– सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, नन्ददास व परमानन्द दास।

24. कृष्णभक्ति शाखा के किन्हीं तीन सम्प्रदायों के नाम लिखिए।

उ०– कृष्णभक्ति शाखा के तीन सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं–

(i) वल्लभ सम्प्रदाय, (ii) हरिदासी सम्पद्राय, (iii) चैतन्य सम्प्रदाय।

25. सूरदास किस शाखा के प्रसिद्ध कवि थे?

उ०– सूरदास कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि थे।

26. कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए।

उ०– कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

(i) कृष्ण के बाल और किशोर रूप की आराधना, (ii) ब्रजभाषा का प्रयोग जिसमें मुक्तक काव्य की प्रचुरता है,
(iii) काव्य में श्रृंगार एवं वात्सल्य रसों की प्रधानता,
(iv) उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग,
(v) जीवन की सभी इच्छाओं का पालनकर्ता श्री कृष्ण को माना गया है।

27. कृष्ण की बाललीला का वर्णन करने वाले दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– सूरदास एवं कृष्णदास।

28. रामभक्ति शाखा के दो कवियों के नाम बताइए।

उ०– गोस्वामी तुलसीदास एवं केशव।

29. रामभक्ति शाखा के किसी एक कवि द्वारा रचित दो ग्रन्थों के नाम लिखिए।

उ०– रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी है इनके दो प्रमुख ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस एवं गीतावली है।

30. तुलसीदास का रचना-काल किस युग में पड़ता है? उनकी सर्वप्रमुख रचना का उल्लेख कीजिए। या 'रामचरितमानस' के रचयिता कौन हैं? यह किस काल की रचना है?

उ०– गोस्वामी तुलसीदास जी भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवि है। इनकी सर्वप्रथम रचना 'श्रीरामचरितमानस' है।

31. आदिकाल के साहित्य को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है?

उ०– आदिकाल के साहित्य को पाँच वर्गों में विभाजित किया जाता है–

(i) सिद्ध साहित्य, (ii) जैन साहित्य, (iii) नाथ साहित्य, (iv) रासो साहित्य, (v) लौकिक साहित्य।

32. जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ कौन-सा माना जाता है?

उ०– जैन साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ 'रूपरास' माना जाता है।

33. जैन साहित्य के तीन रास ग्रन्थों और उनके रचयिताओं के नाम लिखिए।

उ०– जैन साहित्य के तीन रास ग्रन्थ एवं उनके रचयिता हैं–

(i) मुनि जिनविजय का भरतेश्वर बाहुबली रास (ii) जिन धर्म सूरि का स्थूलभद्र रास
(iii) विजयसेन सूरि का रेवंतगिरी रास

34. नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक कौन माने जाते हैं?

उ०– नाथ साहित्य के प्रवर्तक गोरखनाथ माने जाते हैं।

35. रासो साहित्य के दो कवियों व उनकी एक-एक रचना का नाम बताइए।

उ०– रासो साहित्य के दो कवि नरपति नाल्ह तथा दलपति विजय हैं। जिनकी रचनाएँ क्रमश: बीसलदेव रासो तथा खुमानरासो हैं।

36. 'पृथ्वीराज रासो' की रचना किस काल में हुई? इसके रचयिता कौन हैं?

उ०– 'पृथ्वीराज रासो' की रचना आदिकाल में हुई। इसके रचयिता कवि चन्द्रवरदाई है।

37. 'नरपति नाल्ह' द्वारा रचित रासो साहित्य से सम्बन्धित रचना कौन-सी है?

उ०– बीसलदेव रासो।

38. भक्तिकाल की सभी मुख्य काव्यधाराओं का परिचय दीजिए।

उ०– भक्तिकाल की दो प्रमुख काव्यधाराएँ हैं–

(i) निर्गुण भक्तिधारा, (ii) सगुण भक्तिधारा।

निर्गुण भक्तिधारा की भी दो उपशाखाएँ हैं–

(i) ज्ञानमार्गी शाखा, (ii) प्रेममार्गी शाखा।

सगुण भक्ति-धारा की भी दो उपशाखाएँ हैं–

(i) कृष्णभक्ति शाखा, (ii) रामभक्ति शाखा।

39. भक्तिकाल की कालाविधि बताइए।

उ०– भक्तिकाल की कालावधि सन् 1343 ई० से सन् 1643 ई० तक की मानी जाती है।

40. ज्ञानमार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– ज्ञानमार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं– (i) सन्तकबीर, (ii) रैदास।

41. बिहारी लाल किस काव्यधारा के कवि हैं?

उ०– बिहारी लाल रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि हैं।

42. रीतिकाल की पाँच प्रमुख काव्य कृतियों के नाम बताइए।

उ०– रीतिकाल की पाँच प्रमुख काव्य कृतियाँ निम्न हैं–

(i) शृंगार मंजरी, (ii) शिवा-बावनी, (iii) रसिक प्रिया, (iv) ललितललाम, (v) बिहारी सतसई।

43. रीतिकाल को और किस नाम से पुकारा जाता है?

उ०– रीतिकाल को अलंकृतकाल, शृंगारकाल एवं कलाकाल आदि नामों से पुकारा जाता है।

44. रीतिकाल में काव्य-रचना किन छन्दों में की गई है?

उ०– रीतिकाल में दोहा, सवैया, घनाक्षरी एवं कवित्त आदि छन्दों में काव्य-रचना की गई।

45. पुनर्जागरण काल किस युग को मानते हैं? उस युग की एक काव्य कृति का नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल मानते हैं। भारतेन्दु जी की प्रेम-सरोवर इस युग की एक काव्य कृति है।

46. भारतेन्दु युग और किन-किन नामों से जाना जाता है?

उ०– भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल, नई धारा एवं प्रथम उत्थान के नाम से जाना जाता है।

47. भारतेन्दु जी ने किस सभा की स्थापना की? इसका क्या उद्देश्य था?

उ०– भारतेन्दु जी ने कवितावर्धिणी सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य हिन्दी काव्यधारा में नवजीवन का संचार करना था।

48. 'कवि-वचन सुधा' पत्रिका के सम्पादक कौन थे?

उ०– 'कवि-वचन सुधा' पत्रिका के सम्पादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी थे।

49. भारतेन्दु युग के प्रमुख दो कवियों के नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु युग के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं– (i) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, (ii) बदरीनारायण चौधरी।

50. भारतेन्दु जी की दो काव्य रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु जी की दो काव्य रचनाओं के नाम हैं– (i) प्रेम-सरोवर, (ii) प्रेम-माधुरी।

51. द्विवेदी युग की कालावधि बताइए।

उ०– द्विवेदी युग की कालावधि सन् 1900 ई० से सन् 1922 तक मानी गई है।

52. द्विवेदी युग का नाम किसके नाम पर रखा गया?

उ०– द्विवेदी युग का नाम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के नाम पर रखा गया।

53. द्विवेदी युग के दो कवियों के नाम बताइए।

उ०– द्विवेदी युग के दो कवियों के नाम हैं– (i) मैथिलीशरण गुप्त, (ii) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।

54. द्विवेदी युग की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) इस युग में कवियों ने ब्रजभाषा के मध्ययुगीन माध्यम को छोड़कर खड़ी बोली के आधुनिक माध्यम को अपनाया,

(ii) परम्परा के जड़ पक्षों को छोड़कर नए क्षेत्रों व विषयों के पक्ष पर अग्रसर होने का आह्वान।

55. मैथिलीशरण गुप्त की दो काव्य रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– (i) साकेत, (ii) पंचवटी।

56. द्विवेदी युग के दो महाकाव्यों के नाम बताइए।

उ०– द्विवेदी युग के दो महाकाव्यों के नाम हैं– (i) साकेत, (ii) प्रियप्रवास।

57. द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के किन्हीं दो कवियों की दो-दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– मैथिलीशरण गुप्त जी का साकेत एवं पंचवटी तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का प्रियप्रवास एवं पारिजात इस युग की रचनाएँ हैं।

58. छायावाद की कालावधि बताइए।

उ०– छायावाद की कालावधि सन् 1919 ई० से 1938 ई० तक मानी गई है।

59. छायावाद की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– छायावाद की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं– (i) स्वच्छन्दकारी काव्य रचनाएँ, (ii) आध्यात्मिकता का संस्पर्श।

60. कामायनी तथा दीपशिखा के रचयिताओं के नाम बताइए।

उ०– कामायनी के रचयिता जयशंकर प्रसाद तथा दीपशिखा की रचयिता महोदवी वर्मा हैं।

61. रामभक्ति शाखा की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) शान्त रस तथा दास्य-भावना की प्रधानता,
(ii) अवधी तथा ब्रजभाषा का प्रयोग, प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्य शैलियों तथा विविध छंदों का प्रयोग।

62. केशव द्वारा रचित किसी एक रचना का नाम बताइए।

उ०– केशव द्वारा रचित प्रमुख रचना का नाम रामचन्द्रिका है।

63. भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल क्यों कहा जाता है?

उ०– भक्तिकाल की विभिन्न विशेषताओं के कारण भक्तिकाल को हिन्दी-काव्य साहित्य का स्वर्ण काल माना जाता है।

64. हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का क्या योगदान रहा?

उ०– हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का प्रमुख योगदान यह रहा है कि भक्त कवियों ने डूबती हुई भारतीय संस्कृति को विनष्ट होने से बचा लिया है।

65. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—
(i) रीति निरूपण, (ii) श्रृंगारिकता की प्रधानता, (iii) भक्ति का पुट,
(iv) राजाओं की प्रशंसा, (v) वीर रस का प्रयोग, (vi) नीति की प्रवृत्ति।

66. रीतिकाल की प्रथम कृति कौन-सी है?

उ०– रीतिकाल की प्रथम कृति नन्ददास की 'रसमंजरी' है।

67. रीतिकालीन कविता की दोनों प्रमुख धाराओं का नाम बताइए।

उ०– रीतिकाल की दोनों प्रमुख धाराओं के नाम हैं—
(i) रीतिबद्ध काव्यधारा, (ii) रीतिमुक्त काव्यधारा।

68. रीतिकाल में वीर रस का प्रमुख कवि कौन था? उसकी एक रचना का नाम बताइए।

उ०– कविवर भूषण रीतिकाल में वीर रस के प्रमुख कवि थे। उनकी एक रचना छत्रसाल दशक है।

69. रीतिबद्ध काव्यधारा के दो कवियों के नाम उनकी एक-एक रचना सहित बताइए।

उ०– रीतिबद्ध काव्यधारा के दो कवि चिन्तामणि एवं केशव है जिसकी रचनाएँ क्रमशः रस विलास एवं कविप्रिया है।

70. रीतिकाल के किन्हीं दो रीतिमुक्त कवियों के नाम लिखिए।

उ०– रीतिकाल के दो रीतिमुक्त कवियों के नाम हैं— (i) घनानन्द, (ii) भूषण।

71. 'सुनहले शैवाल' तथा 'गीतफरोश' के रचनाकारों के नाम बताइए।

उ०– 'सुनहले शैवाल' के रचनाकार अज्ञेय जी तथा 'गीतफरोश' के रचनाकार भवानी प्रसाद मिश्र जी हैं।

72. नई कविता से आप क्या समझते हैं?

उ०– सन् 1960 ई० में नई कविता प्रकाश में आई, जो कि प्रयोगवादी धारा का विकसित रूप थी। हिन्दी कविता वर्तमान में प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति से आगे बढ़ गई है। नई कविता अब पहले की कविता से अपनी पूर्ण पृथकता घोषित करने के लिए प्रयत्नशील है।

73. नई कविता की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– नई कविता की दो विशेषताएँ हैं— (i) नवीन-अभिव्यञ्जना विधान, (ii) नूतन कलात्मकता।

74. नई कविता की किन्हीं दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– नई कविता की दो रचनाएँ हैं— (i) कला और बूढ़ा चाँद, (ii) चक्रवाल।

75. नई कविता को अकविता क्यों कहा जाने लगा?

उ०– कविता के परम्परागत स्वरूप से अत्यधिक भिन्नता धारण किए होने के कारण नई कविता को 'अकविता' कहा जाने लगा।

76. 'नई कविता' से सम्बन्धित किन्हीं दो पत्रिकाओं के नाम लिखिए।

उ०– (i) कल्पना, (ii) ज्ञानोदय।

77. जयशंकर प्रसाद तथा सुमित्रानन्दन पन्त की दो-दो रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद की दो रचनाएँ हैं— (i) कामायनी, (ii) झरना तथा
सुमित्रानन्दन पन्त की दो रचनाएँ हैं— (i) वीणा, (ii) लोकायतन।

78. जयशंकर प्रसाद की किस कृति में सर्वप्रथम छायावाद की झलक दिखाई देती है?

उ०– जयशंकर प्रसाद की कृति 'झरना' में सर्वप्रथम छायावाद की झलक दिखाई देती है।

79. छायावादी कविता के ह्रास का क्या कारण था?

उ०– विदेशी शासन के दमन-चक्र के नीचे पिसते हुए भारतीय जनसाधारण की निरन्तर बढ़ती हुई पीड़ा को छायावादी कविता के ह्रास का सबसे बड़ा कारण कहा जा सकता है।

80. 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना कब हुई? इसके प्रथम सभापति कौन थे?

उ०– प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् 1936 ई० में हुई। इसके प्रथम सभापति 'मुंशी प्रेमचन्द' जी थे।

81. प्रगतिवादी युग के तीन प्रमुख कवि कौन थे?

उ०– प्रगतिवादी युग के तीन प्रमुख कवि थे–

(i) रामधारी सिंह 'दिनकर', (ii) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', (iii) शिवमंगल सिंह 'सुमन'।

82. पहला 'तार सप्तक' कब प्रकाशित हुआ? इसके कवियों के नाम बताइए।

उ०– पहला 'तार सप्तक' सन् 1943 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें सात कवि हैं– जिनके नाम इस प्रकार हैं–

(i) अज्ञेय, (ii) नेमिचन्द्र जैन, (iii) भारत भूषण, (iv) रामविलास शर्मा, (v) गजानन माधव 'मुक्ति बोध', (vi) गिरिजाकुमार माथुर, (vii) प्रभाकर माचवे।

83. पहले 'तार सप्तक' का प्रकाशन किसने किया?

उ०– पहले 'तार सप्तक' का प्रकाशन सन् 1943 ई० में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने किया।

84. दूसरे 'तार सप्तक' के कवियों के नाम बताइए।

उ०– दूसरे 'तार सप्तक' के कवियों के नाम इस प्रकार हैं–

(i) रघुवीर सहाय, (ii) शकुन्तला माथुर, (iii) हरिनारायण व्यास, (iv) भवानीप्रसाद मिश्र, (v) शमशेर बहादुर, (vi) धर्मवीर भारती, (vii) नरेश मेहता।

85. धर्मवीर भारती की दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– धर्मवीर भारती की दो रचनाओं के नाम हैं– (i) कनुप्रिया, (ii) ठण्डा लोहा।

86. प्रयोगवादी युग में कौन-कौन सी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं?

उ०– पाटला, प्रतीक, दृष्टिकोण आदि पत्रिकाएँ प्रयोगवादी युग में प्रकाशित हुईं।

1 साखी, पदावली (सन्त कबीरदास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–97 का अध्ययन करें।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. कबीरदास जी का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान बताइए।

उ०– कवि परिचय– भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि सन्त कबीरदास के जन्म के विषय में कोई प्रामाणिक मत उपलब्ध नहीं है। कबीरदास का जन्म सन् 1398 ई० में माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि काशी में किसी विधवा ब्राह्मणी ने गुरु रामानन्द जी के आशीर्वाद से इन्हें जन्म दिया तथा लोक-लज्जावश वह इन्हें लहरतारा नामक तालाब पर छोड़ गई। नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति ने वहाँ से जाते हुए इन्हें देखा। वे नि:सन्तान थे अत: इन्हें उठा ले गए और उन्होंने पुत्र की भाँति इनका पालन-पोषण किया। जन-श्रुतियों के आधार पर लोई नामक स्त्री से इनका विवाह हुआ। इनके पुत्र का नाम कमाल व पुत्री का नाम कमाली था। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय काशी में ही व्यतीत किया। उस समय ऐसी मान्यता थी कि काशी में मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है तथा मगहर में मरने से नर्क प्राप्त होता है। लोगों के मन की इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए इन्होंने जब अपना अन्तिम समय निकट जाना, तब ये मगहर चले गए। वहाँ सन् 1518 ई० में माघ महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि को इनका देहावसान माना जाता है।

इनकी मृत्यु के उपरान्त हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही सम्प्रदाय अपनी-अपनी रीति से इनका अन्तिम संस्कार करना चाहते थे। जनश्रुति के आधार पर माना जाता है कि जब इनके शव पर से चादर हटाई गई, तब वहाँ शव के स्थान पर पुष्प मिले। दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने उन पुष्पों को आधा-आधा बाँट लिया तथा अपनी-अपनी रीति से उनका अन्तिम संस्कार किया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– वास्तव में सन्त कबीर महान् विचारक, श्रेष्ठ समाज-सुधारक, परम योगी और ब्रह्म के सच्चे साधक थे। इनकी स्पष्टवादिता, कठोरता, अक्खड़ता यद्यपि कभी-कभी नीरसता की सीमा तक पहुँच जाती थी; परन्तु इनके उपदेश आज भी सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले हैं। इनके द्वारा प्रवाहित की गई ज्ञान-गंगा आज भी सबको पावन करने वाली है। कबीर में एक सफल कवि के सभी लक्षण विद्यमान थे। ये हिन्दी-साहित्य की श्रेष्ठतम विभूति थे। इन्हें भक्तिकाल की ज्ञानमार्गी व सन्तकाव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनका दृष्टिकोण सारग्राही था और "अपनी राहू तू चल कबीरा" ही इनका आदर्श था। इसमें सन्देह नहीं कि निर्गुण भक्तिधारा के पथप्रदर्शक के रूप में ज्ञानोपदेशक सन्त कबीर का नाम सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा।

2. कबीरदास जी की रचनाओं तथा भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– रचनाएँ– कबीरदास जी की रचनाओं की प्रमाणिकता यद्यपि नहीं हो पाई है लेकिन ऐसा माना जाता है कि इनके मुख से उच्चरित होने वाली वाणी को इनके शिष्य लिपिबद्ध कर लेते थे। सन्त कबीर की रचनाएँ 'कबीर ग्रन्थावली' व 'कबीर वचनावली' में संगृहीत हैं। इनकी रचनाओं को इनके शिष्यों ने 'बीजक' नामक संग्रह में प्रकाशित किया, जिसके तीन भाग हैं—

1. साखी, 2. सबद 3. रमैनी

1. साखी– साखी शब्द तत्सम शब्द साक्षी का तद्भव रूप है, इसमें इनके धार्मिक उपदेश संगृहीत हैं। यह दोहा छन्द में लिखा गया है।

2. सबद– सबद संगीतात्मकता से युक्त गेयपद है, इसमें कबीर के अलौकिक-प्रेम व आध्यात्मिकता के भाव मुखरित हुए हैं।

3. रमैनी– इसमें कबीरदास के दार्शनिक व रहस्यवादी विचार मुखरित हुए हैं। यह चौपाई छन्द में रचित है।

भाषा-शैली– कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। इन्होंने तो सन्तों के सत्संग से ही सब कुछ सीखा था। इसीलिए इनकी भाषा साहित्यिक नहीं हो सकी। इन्होंने व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली सीधी-सादी भाषा में ही अपने उपदेश दिए। इनकी भाषा में अनेक भाषाओं; यथा— अरबी, फारसी, भोजपुरी, पंजाबी, बुन्देलखण्डी, ब्रज, खड़ी बोली आदि के शब्द मिलते हैं। इसी कारण इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। भाषा पर कबीर का पूरा अधिकार था। कुछ अद्भुत अनुभूतियों को कबीर ने विरोधाभास के माध्यम से उलटबाँसियों की चमत्कारपूर्ण शैली में व्यक्त किया है, जिससे कहीं-कहीं दुर्बोधता आ गई है। इन्होंने आवश्यकता के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया। इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' बताते हुए लिखा है— ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया— बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर।'' कबीर ने सहज और सरस शैली में उपदेश दिए हैं, इसलिए इनकी उपदेशात्मक शैली क्लिष्ट अथवा बोझिल नहीं है। उसमें स्वाभाविकता एवं प्रवाह है। व्यंग्यात्मकता एवं भावात्मकता इनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

कबीर ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। इन्होंने अलंकारों को कहीं भी थोपा नहीं है। कबीर के काव्य में रूपक, उपमा, अनुप्रास, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के प्रयोग अधिक हुए हैं। कबीर को दोहा और पद अधिक प्रिय रहे। इन्होंने साखियों में दोहा तथा सबद व रमैनी में गेयपदों का प्रयोग किया है। कबीर के काव्य में प्रतीकों की अधिकता है। साधनात्मक रहस्यवाद में तो प्रतीक सर्वत्र विद्यमान हैं। सामान्यत: इन्होंने दीपक को हृदय, शरीर तथा ज्ञान का; तेल को प्रभु-भक्ति का, अघटट् बाती (साधुओं अथवा ज्ञानियों से की गई अटूट वार्त्ता) को आत्मज्ञानरूपी बत्ती का तथा हट्ट (झोपड़ी) को संसार का प्रतीक माना है; यथा—

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणाँ, बहुरि न आवौं हट्ट।।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) सतगुरु की ..... दिखावणहार।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'संत कबीरदास' द्वारा रचित 'कबीर ग्रन्थावली' से 'साखी' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत दोहे में गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि सद्गुरु की महिमा अपार है। उन्होंने मुझे ईश्वर-दर्शन का मार्ग दिखाकर मुझ पर असीम उपकार किया है। उन्होंने मुझे लौकिक (सांसारिक) दृष्टि के साथ-साथ ऐसी दिव्यदृष्टि प्रदान की है। जिससे मैं ब्रह्म के विराट् स्वरूप को देख सका और ईश्वर का साक्षात्कार कर सकने में समर्थ हो सका।

काव्य-सौन्दर्य– (1) साधारणत: मनुष्य की दृष्टि सांसारिक होती है। ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए उसे दिव्यदृष्टि चाहिए, जिसे केवल सद्गुरु ही दे सकता है। **(2) भाषा–** घुमक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** यमक। **(5) रस–** शान्त। **(6) छन्द–** दोहा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) शब्द–** शक्ति- लक्षणा। **(9) भावसाम्य–** श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि तू साधारण दृष्टि से मेरे विराट रूप को नहीं देख सकता, इसीलिए मैं तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ—

दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य में योगमैश्वरम्।

(ख) दीपक दीया ..... आवौं हट्ट।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत साखी में शिष्य पर गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का प्रभाव दर्शाया गया है।

व्याख्या– सन्त कबीर कहते हैं कि गुरु ने शिष्य के शरीररूपी दीपक को ईश्वरीय प्रेमरूपी तेल से भर दिया और उसमें ज्ञानरूपी अक्षय (अर्थात् कभी समाप्त न होने वाली) बत्ती डाल दी। उसकी ज्योति से जीव की सांसारिक वासना समाप्त हो गई; अर्थात् सांसारिक भावनाओं का क्रय और विक्रय समाप्त हो गया। परिणामत: जीव को आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल गई। अब उसे संसाररूपी बाजार में फिर नहीं आना पड़ेगा।

काव्य सौन्दर्य– (1) कबीर ने प्रतीकारात्मक शैली के माध्यम से शरीर को दीपक, ईश्वरीय प्रेम को तेल तथा ज्ञान को बत्ती

कहा है। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) अलंकार–** रूपकातिशयोक्ति। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) छन्द–** दोहा।

(ग) तूँ तूँ करता ..... देखो तित तूँ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में कबीरदास बता रहे हैं कि ईश्वर का स्मरण करते-करते जीवात्मा भी परमात्मा में लीन हो जाता है और उसे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

व्याख्या– हे प्रभो! निरन्तर तुम्हारा नाम जपते-जपते, तुम्हारी रट लगाते-लगाते मुझसे मेरेपन का भाव (अहं भाव) जाता रहा है और मैं तुम्हारा ही रूप बन गया। तब संसार में आवागमन का चक्र नष्ट हो गया अर्थात् जन्म-मरण का चक्र पूरा हो गया है, अब दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ेगा और अब मैं सर्वत्र एकमात्र तुमको ही देखने लगा हूँ। ईश्वर की कृपा से ही यह संभव हो सका है। इसलिए जीवात्मा कृतज्ञतापूर्वक परमात्मा पर बलिहारी जाती है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) भगवान के निरन्तर ध्यान से साधक भगवद् रूप ही बन जाता है– **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति** (ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है।) **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** शांत। **(5) छन्द–** दोहा। **(6) गुण–** प्रसाद **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(8) अलंकार–** तद्गुण। **(9) भावसाम्य–** आत्मा की परमात्मा से एकरूपता का भाव कबीर की इन पंक्तियों में भी दर्शनीय है-

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखने मैं गयी, मैं भी ह्वै गयी लाल।।

(घ) लंबा मारग ..... हरि दीदार।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भगवान की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं–

व्याख्या– भगवान की प्राप्ति का मार्ग (साधना-पथ) बहुत लम्बा है; क्योंकि जहाँ पहुँचना है, वह घर (परमात्मा) बहुत दूर है। (प्रभु-प्राप्ति का) मार्ग न केवल लम्बा है, अपितु कठिन भी है। फिर इस मार्ग में बहुत-से लुटेरे (सांसारिक आकर्षण) भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में हे सन्तों, बताइए कि भगवान के दुर्लभ दर्शन कैसे प्राप्त हो?

काव्य-सौन्दर्य- (1) साधना-पथ को लम्बा इसीलिए कहा गया है कि जीव अनेक योनियों में भटकता हुआ किसी योनि में सौभाग्य से भगवान् की ओर उन्मुख होता है। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) अलंकार–** रूपकातिशयोक्ति। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्द-शक्ति-** लक्षणा। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) छन्द–** दोहा।

(ङ) यहु तन जारौं ..... राम पठाऊँ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस 'साखी' में कबीरदास ने विरहिणी जीवात्मा की चरम विरहावस्था का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

व्याख्या– विरहिणी जीवात्मा कहती है कि मैं प्रियतम राम की प्रतीक्षा करते-करते थक गई, पर उनके दर्शन न पा सकी; अत: अब एक ही उपाय शेष रहता है कि मैं वियोगाग्नि में अपने शरीर को जलाकर उसकी स्याही बना लूँ और अपनी हड्डियों की कलम बनाकर उससे राम का नाम लिख-लिखकर बार-बार उनके पास भेजूँ। देखूँ वे कब तक नहीं पसीजते हैं?

काव्य-सौन्दर्य– (1) जब तक साधक भगवान् के प्रेम में अपने को पूर्णत: नहीं मिटा देता, तब तक ईश्वर-प्राप्ति संभव नहीं। यही आत्म-विसर्जन का भाव यहाँ कवि द्वारा बड़ी मार्मिकता से व्यंजित किया गया है। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** शान्त। **(5) छन्द–** दोहा। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(8) अलंकार–** रूपक तथा पुनरुक्तिप्रकाश।

(च) सायर नाहीं ..... गढ़ माँहि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत साखी में कबीर ने मोक्षरूपी मोती का वर्णन करते हुए कहा है–

व्याख्या– शरीररूपी किले में सुषुम्ना नाड़ी के ऊपर स्थित ब्रह्मरन्ध्र में न समुद्र है, न सीप और न ही स्वाति नक्षत्र की बूँद है, फिर भी वहाँ मोक्षरूपी मोती उत्पन्न हो रहा है; अर्थात् एक अद्भुत ज्योति का दर्शन हो रहा है। सामान्य रूप से यह विख्यात है कि जब समुद्र की सीप में स्वाति नक्षत्र की बूँद पड़ती है तो वह मोती बन जाती है, परन्तु ब्रह्मरन्ध्र एक ऐसा अद्वितीय स्थल है, जहाँ पर समुद्र, स्वाति नक्षत्र की बूँद और सीप का अभाव होने पर भी मोक्षरूपी मोती उत्पन्न हो रहा हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) साधन के अंतर्गत जब कुण्डलिनी ऊपर उठकर सहस्रार-चक्र (तान्त्रिक साधना में कुण्डलिनी के जागरण हेतु बताए गए आठ चक्रों में से अंतिम चक्र) में मिलती है, तब ज्योति का साक्षात्कार होता है। (2) साधनात्मक रहस्यवाद का चित्रण हुआ है। **(3)** मोक्ष प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है। **(4) प्रतीकात्मकता–** 'गढ़' शरीर का और 'मोती' मोक्ष का प्रतीक है। **(5) भाषा–** पंचमेल खिचड़ी। **(6) अलंकार–** विभावना (बिना कारण के कार्य), रूपकातिशयोक्ति एवं अनुप्रास। **(7) रस–** भक्ति। **(8) छन्द–** दोहा।

(छ) पंखि उड़ाणी ..... यहु देस।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत साखी में यह मत व्यक्त किया गया है कि ब्रह्मनंद की प्राप्ति हो जाने पर, जीवात्मा पुन: सांसारिक सुख-भोग में आसक्त नहीं होती।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि जीवात्मारूपी पक्षी योग-साधना करके कुण्डलिनी के सहारे उठकर सहस्रार चक्ररूपी आकाश में पहुँच गया और उसका भौतिक शरीर इस लोक में ही पड़ा रह गया। सहस्रार में उसने चोंच (इन्द्रियों) के बिना ही पानी (बह्मानंद) का पान किया (क्योंकि ब्रह्मानंद एक अलौकिक अनुभूति है, जो लौकिक, स्थूल साधनों से प्राप्त नहीं की जा सकती)। उस ब्रह्मसुख का अनुभव करके जीवात्मा इस भौतिक संसार के भ्रामक सुखों को पूर्णत: भूल गई।

काव्य-सौन्दर्य- (1) जीव को सांसारिक विषय-भोग तभी तक आकृष्ट करते हैं, जब तक उसे अलौकिक आनन्द प्राप्त नहीं होता। (2) 'पंखि' जीवात्मा का, 'गगन' सहस्रार का, 'चंचु' इन्द्रियों का और 'जल' अलौकिक आनन्द या ब्रह्मानंद का प्रतीक है। **(3) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** शान्त। **(6) छन्द–** दोहा। **(7) अलंकार–** विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति और 'पाणी पीया चंच बिन' में विभावना। **(8) भाव-सौन्दर्य–** इसके अंतर्गत ब्रह्म की सत्यता और जगत् की अनित्यता का प्रतिदान हुआ है।

(ज) पिंजर प्रेम ..... फूटी बास।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कबीरदास जी कहते हैं कि जब जीव के अन्दर ईश्वर का सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो उसकी वाणी भी रससिक्त हो उठती है।

व्याख्या– जीव के अन्दर जब परमात्मा का प्रेम प्रकट हुआ तो उसका हृदय अलोकिक हो उठा, अर्थात् हृदय में स्थित काम-क्रोधादि विकार तथा राग-द्वेषरूपी मैल नष्ट हो जाने से हृदय पूर्णत: स्वच्छ हो गया, प्रकाशित हो उठा। मुख में राम-नाम की कस्तूरी महक उठी और वाणी से प्रभु-प्रेम की सुगन्धि फूट पड़ी।

काव्य-सौन्दर्य– (1) आशय यह है कि जब जीव को भगवत् प्रेम प्राप्त हो जाता है तो उसका अन्तर्ब्राह्य सभी आलोकिक हो उठता है और उसकी वाणी में प्रभु-प्रेम के कारण अद्‌भुत सरसता उत्पन्न हो जाती है, जो सुगंध से सदृश सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** शान्त। **(5) छन्द–** दोहा। **(6) अलकंार–** रूपकातिशयोक्ति और अनुप्रास।

(झ) हेरत-हेरत ..... हेरी जाइ।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत साखी में आत्मा के परमात्मा में विलय हो जाने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि जीवात्मा अपनी सखी से कहती है कि वह परमात्मा को खोजते-खोजते स्वयं उसमें लीन हो गई है और उसका पृथक् अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। यह वैसा ही है, जैसे बूँद समुद्र में समाकर समुद्रमय हो जाती है। इसके बाद उसको बूँद के रूप में अलग से नहीं खोजा जा सकता। उसी प्रकार परमात्मा को जान लेने के बाद जीवात्मा और परमात्मा में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता, दोनों एकाकार हो जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) जीवात्मा परमात्मा का ही अभिन्न अंश है, पर अज्ञानवश वह अपने को अलग समझने लगता है। जब वह पुन: परमात्मा को पाने की साधना करता है तो उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, और वह पुन: परमात्मा में लीन होकर अपना अलग अस्तित्व समाप्त कर देता है। **(2) भाषा–** घुमक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** शान्त। **(5) छन्द–** दोहा। **(6) अलंकार–** दृष्टान्त और पुनरुक्तिप्रकाश। **(7) भावसाम्य–** रत्नाकर जी ने भी निम्नांकित पंक्तियों में आत्मा के परमात्मा में लीन होने का भाव व्यक्त किया है-

जैहैं बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि कौं
बूँदता बिलैहैं बूँद बिबस बिचारि की।।

(ञ) कबीर यहु ..... घर माहिं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कबीर प्रेम के मार्ग को बहुत कठिन बताते हुए कहते हैं—

व्याख्या– यह घर तो प्रेम का है मौसी का नहीं, जहाँ हर कोई सरलतापूर्वक प्रवेश पा सके। इसमें जाने के लिए व्यक्ति को सिर काटकर हथेली पर रखना पड़ता है, तब कहीं उसमें प्रवेश का अधिकार मिल पाता है। भाव यह है कि जब साधक अपने अहं भाव को पूरी तरह मिटा देता है, तभी वह ईश्वर के प्रेम को पा सकता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) ईश्वर का प्रेम पाने के लिए साधक को सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहना होता है। **(2) भाषा–** पंचमेल खिचड़ी। **(3) अलंकार–** व्यतिरेक **(4) रस–** शान्त **(5) छन्द–** दोहा **(6) भावसाम्य–** कविवर घनान्द ने भी प्रेम के मार्ग पर चलना बहुत कठिन बताया है—

प्रेम का पंथ कराल महा, तलवार की धार पै धावनो है।

(ट) जब मैं था ..... देख्या माहिं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत साखी में कवि का कथन है कि अहंकार के रहते परमात्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अहं भाव के मिटने पर ही परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं।

व्याख्या– सन्त कबीर कहते हैं कि जब तक मुझमें अहं भाव प्रबल था अर्थात् मैं स्वयं को भगवान् से पृथक् इकाई समझता था, तब तक मुझे परमात्मा नहीं मिले। जब मेरा अहंकार नष्ट हो गया, तब मुझे सर्वत्र हरि ही दिखाई पड़ते हैं। वस्तुत: ज्ञानरूपी दीपक मेरे अन्दर ही स्थित था, परन्तु मुझे उसका पता न था। जब मैंने उसे जलाया तो अज्ञान का सारा अन्धकार मिट गया और मुझे परमात्मा से अपनी अभिन्नता की अनुभूति होने लगी।

काव्य-सौन्दर्य- (1) परमात्मा को पाने के लिए अहंकार को मिटाना ही सबसे पहली आवश्यकता है। **(2)** 'दीपक' ज्ञान का और 'अंधकार' अज्ञान का प्रतीक है। **(3) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** शान्त। **(6) छन्द–** दोहा। **(7) अलंकार–** रूपकातिशयोक्ति। **(8) भावसाम्य–** ऐसे ही विचार कबीर ने अन्यत्र भी व्यक्त किए हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाहिं।।

(ठ) बहुत दिनन थैं ..... मोहिं दीन्हाँ।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सन्त कबीर' द्वारा रचित 'कबीर ग्रन्थावली' से 'पदावली' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में परमात्मा और जीवात्मा के मिलन से उत्पन्न होने वाले आनन्द का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि मैं (जीवात्मा) बहुत दिनों के बाद परमात्मारूपी प्रियतम को पा सकी; अर्थात् जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद ही परमात्मा से मिलन का सौभाग्य प्राप्त कर सकी। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि प्रियतम मेरे घर पर ही आ गए। मैं प्रिय के आगमन की प्रसन्नता से मन-ही-मन मंगल गीत गाने लगी और जिह्वा से ईश्वरीय आनन्द का आस्वादन करने लगी। मेरे मनरूपी मन्दिर में ज्ञान का प्रकाश फैल गया और मैं अपने प्रिय स्वामी को साथ लेकर मिलन का सुख भोगने लगी। मुझ जैसी अकिंचन जीवात्मा के लिए परमात्मा की प्राप्ति रत्नों का खजाना मिलने जैसा है। इस असाधारण उपलब्धि का कारण मेरी योग्यता नहीं है, अपितु परमात्मा की उदारता और महानता है। जीवात्मा कहती है कि उसे जो सुहाग मिला है, यह परमात्मा ने उस पर कृपा करके दिया है। यहाँ श्रेय परमात्मा की दयालुता को दिया गया है, जीवात्मा के किसी गुण व साधना को नहीं।

काव्य-सौन्दर्य- (1) यहाँ ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण भाव व्यक्त हुआ है। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) छन्द–** गेय पद। **(5) रस–** संयोग शृंगार तथा शान्त रस। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षण। **(7) गुण–** प्रसाद और माधुर्य। **(8) अलंकार–** रूपक।

(ड) संतौ भाई आई ..... तम षीनाँ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– ज्ञान की प्राप्ति होते ही मोह पर आधारित समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। साधक को आत्मा अथवा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। इसी तथ्य को कबीरदास ने 'झोपड़ी' और 'आँधी' के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।

व्याख्या– कबीरदास जी ज्ञान का महत्व बताते हुए कहते हैं कि हे भाई साधुओ! ज्ञान की आँधी आ गई है। जिस प्रकार आँधी आने पर आड़ के लिए लगाई गई टटिया अर्थात् परदे उड़ जाते हैं; उसी प्रकार ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर मेरे सारे भ्रम नष्ट हो गए हैं। अब मैं वास्तविकता-अवास्तविकता का भेद समझने लगा हूँ। अब मायारूपी रस्सी भी टूट गई है, अर्थात् माया के समस्त बन्धन समाप्त हो गए हैं। जैसे प्रबल आँधी के वेग के कारण छप्पर में लगी दो थूनी (खम्भे) गिर जाती है, उसी प्रकार ज्ञान की प्राप्ति के साथ मोह और आसक्ति के स्तम्भ भी ढह गए हैं। इतना ही नहीं, तृष्णारूपी छप्पर को सँभाले हुए मोहरूपी शहतीर के टूटते ही शारीरिक अहंकाररूपी छप्पर भी गिर पड़ा अर्थात् मोह और तृष्णा के समाप्त होते ही शारीरिक अहंकार भी समाप्त हो गया। जैसे छप्पर के गिरने से झोपड़ी के भीतर रखे हुए बर्तन फूट जाते हैं, उसी प्रकार शारीरिक अहंकार समाप्त होते ही मेरी दुर्बुद्धिरूपी वासनाएँ समाप्त हो गईं; अर्थात् जब तृष्णा ही नहीं रही, तब इच्छा कैसी। जब ज्ञान की प्राप्ति हुई तो संतों ने वास्तविकता को समझ लिया। वे समझ गए कि ये बाहरी छप्पर (माया-मोह) व्यर्थ हैं। उन्होंने योग की युक्तियों एवं सद्वृत्तियों की सहायता से अपने शरीररूपी छप्पर का निर्माण किया। इसका कूड़ा-करकट तुरंत बाहर निकल आया और अब शरीररूपी छप्पर में विषय-विकार रूपी जल की एक बूँद भी आने की संभावना नहीं रह गई। ज्ञान की इस आँधी के बाद प्रभु के भक्तिरूपी जल की वर्षा हुई। उससे समस्त भक्त-जन भीग गए; अर्थात् वे भक्ति से अभिभूत हो गए। सन्त कबीरदास जी कहते हैं कि जल-वर्षा के पश्चात् ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हुआ और अज्ञान का समस्त अन्धकार सदा के लिए समाप्त हो गया।

काव्य-सौन्दर्य- (1) सन्त कबीरदास जी के अनुसार ज्ञान और भक्ति दोनों ही साधना के फल हैं। उनके मतानुसार भक्ति एवं ज्ञान अभिन्न हैं। **(2)** ज्ञान प्राप्त होने पर माया से उत्पन्न अज्ञान के नाश होने का वर्णन बहुत आकर्षक है। **(3) भाषा–** पंचमेल

खिचड़ी। **(4) अलंकार–** सांगरूपक तथा रूपकातिशयोक्ति। **(5) रस–** शान्त। **(6) शब्द शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) छन्द–** गेयपद। **(9) शैली–** मुक्तक।

(ढ) हम न मरै ..... सुख सागर पावा।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में कबीरदास जी कहते हैं कि राम-भक्तिरूपी मधुर रसायन पीने वाला अमर हो जाता है। केवल संसारी जीव ही बार-बार मरते और जन्म लेते हैं।

व्याख्या– संसार के प्राणी किसी अमर पुरुष के अभिन्न अंग नहीं हुए हैं, अत: वे सब बार-बार मरेंगे, किन्तु मैं (भगवान् का भक्त) नहीं मरूँगा; क्योंकि मुझको चिरजीवन प्रदान करने वाले प्रभु राम मिल गए हैं। मेरे मन में यह बात पूर्णत: बैठ गई है कि मृत्यु से मैं नहीं मरूँगा; क्योंकि मरते केवल वे ही हैं, जो राम को नहीं जानते हैं और जिन्होंने परमतत्व का साक्षात्कार नहीं किया है। राम को न जानने के कारण शाक्त (शक्ति के उपासक) मरेंगे, किन्तु राम-भक्त जीवित रहेंगे; क्योंकि वे छककर रामरूपी जीवनदायक रसायन का पान करते हैं। मैंने अपने को हरि से मिलाकर एक रूप कर दिया है, इसलिए मैं तो तभी मर सकता हूँ, जब हरि (राम) स्वयं मरेंगे। यदि वे नहीं मरते तो मैं भला क्यों मरूँगा। कबीरदास जी कहते हैं कि मैंने तो अपना मन परमात्मा में मिला दिया है और इस कारण अमरतत्व तथा चिर आनन्द की स्थिति प्राप्त कर ली है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) इस पद में कबीरदास जी सभी भगवदभक्तों के प्रतिनिधि के रूप में बोलते हैं, केवल अपनी ही बात नहीं कहते। अत: इसमें उनका आत्मविश्वास प्रकट हुआ है, अहंकार नहीं। **(2) भाषा–** सधुक्कड़ी। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) छन्द–** गेय पद। **(5) रस–** शान्त। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) अलंकार–** रूपक; '**हरि न मरैं हम काहे कूँ मरिहैं**' में वक्रोक्ति। **(9) भाव-साम्य–** हरि-रस के पान से अमरत्व-प्राप्ति की बात कबीर ने अन्यत्र भी कही है—

कबीर हरि रस यों पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाकि।

(ण) काहे री नलनी ..... मुए हमारे जान।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ सन्त कबीरदास जी ने कमलिनी के माध्यम से आत्मा की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– इस पद की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है—

(i) कमलिनी के पक्ष में– सन्त कबीरदास जी कहते हैं— हे कमलिनी! तू क्यों मुरझा रही है? तेरी नाल (डण्डी) तो तालाब के जल में डूबी हुई है, फिर तेरे कुम्हलाने का क्या कारण है? तेरा जन्म जल में होता है, तू जल में रहती है और हे कमलिनी! जीवन पूर्ण करने के बाद भी तू उसी जल में लय (विलीन) हो जाएगी। न तो तू नीचे से तपती है, न तेरे ऊपर ही आग है; अर्थात् न तुझे नीचे से कोई कष्ट है, न ऊपर से; क्योंकि तू जल में स्थित है। फिर तेरे कष्ट (मुरझाने) का क्या कारण है? कबीरदास जी उसके मुरझाने का कारण खोज लेते हैं और पूछते हैं कि कहो, तुम्हारा किससे प्रेम हो गया है? कबीरदास जी को प्रतीत होता है कि कमलिनी का सूर्य से प्रेम हो गया है, इसीलिए वह मुरझा रही है।
अपना निष्कर्ष देते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि जो परमात्मा के सामान हो गए हैं, उनकी मृत्यु कभी नहीं होती; वे तो अमर हो जाते हैं।

(ii) आत्मा के पक्ष में– कबीरदास जी जीवात्मा से कहते हैं— हे आत्मा! तू क्यों दु:खी हो रही है? तेरा मूल तो परमात्मा है। परमात्मा से तेरा जन्म हुआ है, तू उसी में स्थित है और मृत्यु के पश्चात् तुझे उसी में विलीन होना है। फिर तेरे कष्ट का क्या कारण है? दूसरी बात यह है कि न तो तुझे कोई सांसारिक कष्ट है और न ही कोई दैविक कष्ट। दैहिक, दैविक जितने भी कष्ट होते हैं वे शरीर (जीव) को होते हैं, आत्मा को नहीं। फिर कहो, तुम्हारे कष्ट का क्या कारण है? कबीरदास जी पूछते हैं कि परमात्मा को छोड़कर शायद तुम्हारा प्रेम किसी अन्य से हो गया है। तात्पर्य यह है कि तुम्हें अन्य सांसारिक विषयों से जो प्रेम हो गया है, उसके कारण ही तुम दु:खी हो। अन्त में कबीरदास जी कहते हैं कि हे आत्मा! तुम स्वयं परमात्मा रूप हो और जो परमात्मा-रूप होते हैं, वे कभी नहीं मरते; अर्थात् प्रभुमय होकर अमर हो जाते हैं। इसलिए तुम्हें दु:खी नहीं होना चाहिए।

काव्य-सौन्दर्य– (1) '**उतपित**', '**बास**' और '**निवास**' शब्द विचारणीय हैं। '**उतपति**' का अर्थ जन्म से, '**बास**' का अर्थ स्थिति (स्थित होते रहने) से और '**निवास**' का अर्थ विलीन (मृत्यु के पश्चात् लय; एकरूप) होने से है। **(2) प्रतीकात्मकता–** '**नलिनीं**' आत्मा का, '**सरोवर**' ब्रह्म-तत्व का तथा '**उदित**' ब्रह्म का प्रतीक है। **(8) भाषा–** पंचमेल खिचड़ी। **(4) शैली–** गेय एवं प्रतीकात्मक। **(5) अलंकार–** अन्योक्ति। **(6) रस–** शान्त। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा एवं व्यंजन। **(8) गुण–** प्रसाद। **(9) छन्द–** गेयपद। **(10) भावसाम्य–** इसी प्रकार तुलसी भी कहते हैं-

"ईश्वर अंस जीव अबिनासी।"

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'संत कबीरदास जी' द्वारा रचित 'साखी' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में कबीरदास जी सद्गुरु द्वारा अपने ऊपर किए गए असीम उपकार का बखान करते हुए उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि सद्गुरु की महिमा अनँत है, उसका वर्णन नहीं हो सकता; क्योंकि परमात्मा से अपने को जोड़ लेने के कारण सद्गुरु ही परमात्मास्वरूप हो गए है। उन्होंने मुझ पर असीम उपकार किया है; क्योंकि सद्गुरु ने मुझे उस अनन्त ब्रह्म से मिला दिया, जिसे पाकर फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रहा जाता, जीव अमर हो जाता है। यह ब्रह्मप्राप्ति ही मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ है। इसी महत्तम उद्देश्य की सिद्धि कराने वाले सद्गुरु की अपने ऊपर असीम कृपा का वर्णन मैं मात्र शब्दों में किस प्रकार कर सकता हूँ।

(ख) लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बहुत लम्बा है और उनका घर भी बहुत दूर है। यही नहीं, ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में अनेक बाधाएँ भी आती हैं तथा साधक को अनेक प्रकार के कष्ट भी सहन करने पड़ते हैं। भाव यह है कि ईश्वर के दर्शन सहज ही सुलभ नहीं हो जाते, ईश्वर की कृपा और उनके दर्शन प्राप्त करने में समय लगता है। जो व्यवित निरन्तर कष्ट सहते हुए भी ईश्वर-भक्ति में अविचल भाव से लीन रहता है, वहीं ईश्वर को प्राप्त कर पाता है।

(ग) आठ पहर का दाक्षणा, मौपे सह्या न जाइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में आत्मा परमात्मा से अपने कष्टों का निवारण करने की प्रार्थना कर रही है।

व्याख्या– आत्मा परमात्मा के विरह में व्याकुल है। वह दिन-रात उससे मिलने के लिए तड़पती रहती है। लाख प्रयत्न और अनुनय-विनय करने के पश्चात् भी उसका अपने प्रियतम से मिलन नहीं हो पाया है। अन्ततः आत्मा दु:खी होकर परमात्मा से स्वयं को मार डालने की प्रार्थना करती हैं कि हे प्रियतम या तो तुम मुझे अपने दर्शन देकर मुझे भी अपने जैसा बना लो और यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो मुझे मारकर मेरा अस्तित्व ही समाप्त कर दो; क्योंकि तुम्हारी विरहाग्नि में आठों पहर(रात-दिन) जलना अब मुझसे सहन नहीं होता हैं।

(घ) कबीर मोती नीपजैं, सुन्नि सिषर गढ़ माँहि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस साखी में ब्रह्मरन्ध में स्थित मुक्तिरूपी मोती की विचित्रता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– सीप सागर में होती है, उसमें जब स्वाति नक्षत्र में होने वाली वर्षा की बूँद गिरती है, तब मोती उत्पन्न होता है, किन्तु मुक्तिरूपी मोती की उत्पत्ति बड़ी विचित्र है। वह उस ब्रह्मरन्ध्र में उत्पन्न होती है, जहाँ न तो सागर है, न सीप और न ही स्वाति-बूँद। आशय यह है कि जब कुण्डलिनी जाग्रत होकर सुषुम्मा नाड़ी के मार्ग से ऊपर उठते-उठते ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है तो साधक को मुक्ति की अनुभूति होती है, जो अलौकिक है। यह अनुभूति प्रकाशरूप होती है, जो हमारे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करती है और हमें ईश्वर की ओर उन्मुख करती है।

(ङ) पाणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में कबीरदास जी ने आत्मा एवं परमात्मा के अनन्य सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार पानी जमकर बर्फ का रूप धारण कर लेता है और वह बर्फ पिघलकर पुनः पानी के रूप में परिवर्तित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार परमात्मा से जीवात्मा का जन्म होता है और मृत्यु के समय यही जीवात्मा अपना शरीर त्यागकर पुनः उसी परमात्मा में विलीन हो जाती है। इस प्रकार कबीरदास जी ने इस दार्शनिक तथ्य को स्पष्ट किया है कि आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है।

(च) पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़ई चाकि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कबीरदास जी कहते हैं कि भगवान् के सच्चे प्रेम से छका हुआ साधक (भक्त) जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

व्याख्या– जिस प्रकार कुम्हार का घड़ा जब आँवे में पक जाता है तो वह पुनः चाक पर नहीं चढ़ता, उसी प्रकार भगवत प्रेम से पूर्ण परिपक्व हुआ साधक अर्थात् भक्ति में पूरी तरह रँगा हुआ भक्त संसार के आवागमन के चक्र में पुनः नहीं पड़ता। वह उससे मुक्त होकर ब्रह्म से एकरूप हो जाता है।

विशेष– कबीरदास जी का तात्पर्य है कि सांसारिक कष्टों की अनुभूति का मूल कारण अज्ञानता है। ज्ञान की प्राप्ति होने पर जीवात्मा आनन्द-स्वरूप परमात्मा में ही लीन हो जाती है।

(छ) सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में कबीरदास जी ने प्रेम के मार्ग की कठिनाईयों का उल्लेख किया है।

व्याख्या– माँ के बाद मौसी (माँ की बहन) का प्यार ही सर्वाधिक होता है; क्योंकि मौसी भी माँ जैसी ही होती है। मौसी के घर जाना भी सरल है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि मौसी के घर जाने के समान, प्रेम के घर में प्रवेश करना सरल नहीं समझना चाहिए। जो बाधाओं को सहन कर सकता है, आत्म-बलिदान करने को तत्पर है, वही प्रेम की वास्तविक अनुभूति कर सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अपना अहंकार छोड़कर प्रयास करना चाहिए।

(ज) बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठे आये।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य–पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सन्त कबीरदास' द्वारा रचित 'पदावली' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का श्रेय परमात्मा की दयालुता को दिया गया है, जीवात्मा के किसी गुण व साधना को नहीं।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि बहुत दिनों वे पश्चात् मैं जीवात्मा अपने परमात्मा रूपी प्रियतम को पा सकी; अर्थात् कई जन्मों की लगातार साधना के उपरान्त ही मुझे परमात्मा से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो सका। यह मेरा अत्यधिक सौभाग्य है कि प्रियतम परमात्मा मेरे घर ही आ गए। इस असाधारण उपलब्धि का कारण मेरी योग्यता नहीं है वरन् परमात्मा की उदारता और महानता है।

(झ) पंडित बाद बदंते झूठा।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि केवल ईश्वर के नाम-स्मरण से ही व्यक्ति को सांसारिक आवागमन से मुक्ति नहीं मिल सकती।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं कि विद्वानों का यह कथन बिलकुल झूठ है कि ईश्वर के नाम लेने मात्र से ही व्यक्ति जन्म-मरण के बन्धनों से छूट जाता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो राम के नाम की रट लगाने वाले तोते का उद्धार हो गया होता। यदि व्यक्ति को अपना उद्धार करना है तो उसे सच्चे मन से ही प्रभु का नाम-स्मरण करना होगा।

(ञ) काहे री नलनीं तूँ कुम्हिलानी,
तेरे ही नालि सरोवर पानी।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में 'कमलिनी' जीवात्मा का और 'जल' परमात्मा या ब्रह्म का प्रतीक है। संसार के दु:खरूप होने के कारण जीवात्मा को यहाँ आनन्द नहीं मिल पाता है।

व्याख्या– कबीरदास जीवात्मारूपी कमलिनी से पूछते हैं कि हे कमलिनी तू क्यों मुरझा रही है? तेरी नाल तो परमात्मारूपी सरोवर के जल में डूबी रहती है, जहाँ से तुझे निरन्तर आनन्दरूपी जीवन रस मिलता रहता है। यदि तू कूम्हला रही है तो इसका एकमात्र कारण मुझे यही दिखाई पड़ता है कि तेरा सम्बन्ध अब उस जल से न रहकर किसी और चीज से हो गया है; अर्थात् हे जीवात्मा! तेरे दु:ख का कारण परमात्मा से ध्यान हटाकर मोहग्रस्त हो जाना है।

(ट) कहै कबीर जे उदिक समाँन; ते नहीं मुए हमारे जान।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कबीरदास जी ने कमलिनी के माध्यम से आत्मा की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– कबीर ने कमलिनी को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे कमलिनी! तेरा जन्म जल में हुआ है और जल में ही तू रहती है। इस रूप में 'कमलिनी' आत्मा का और 'जल' परमात्मा का प्रतीक है। कबीर का मत है कि जो स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो गए हैं, वे कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। ब्रह्मस्वरूप हो जाने पर मृत्यु से कैसा भय? इस प्रकार प्रस्तुत सूक्ति में आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन को आधार बनाया गया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. गुरु के स्वरूप और महत्व पर कबीरदास जी के विचार प्रकट कीजिए।

उ०– कबीरदास ने गुरु के स्वरूप और उसकी महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है कि मैं अपने उन गुरु को अपना शरीर बार-बार अर्पित कर देना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझको अविलंब मनुष्य से देवता बना दिया। उन्होंने मुझ पर अनेक उपकार किए हैं। उन्होंने मुझे दिव्यदृष्टि प्रदान की और अनन्त ब्रह्म के दर्शन कराए हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि गुरु ने शिष्य के शरीररूपी दीपक को ईश्वरीय प्रेमरूपी तेल से भर दिया और उसमें ज्ञानरूपी कभी समाप्त न होने वाली बत्ती डाल दी। जिसकी ज्योति से जीव की सांसारिक वासना समाप्त हो गई। गुरु ही हमें भवसागर में डूबने से बचाया हैं उनकी कृपा से ही हमने देख लिया कि हमारी नाव अत्यन्त जर्जर है। गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान के कारण ही हमारा सांसारिक मोह समाप्त हो गया और हम भव सागर से पार हो गए।

2. कबीरदास जी ने भगवन प्राप्ति के मार्ग में आने वाली किन कठिनाईयों का वर्णन किया है?

उ०– कबीरदास जी ने भगवन प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन करते हुए कहा है कि भगवान की प्राप्ति का मार्ग (साधना-पथ) बहुत लंबा है। जिसमें चलते-चलते अर्थात् साधना करते-करते पूरा जीवन लग जाता है। वह रास्ता कठिन है।

उसमें परिवार, माया एवं अन्य सांसारिक आकर्षण आदि अनेक बाधाएँ है। परमात्मा का घर भी बहुत दूर है। रास्ता न केवल लंबा है अपितु बीहड़ भी है। रास्ते में बहुत से लुटेरे (काम, क्रोध, लोभ, मोह) भी मिलते हैं जो साधक को वहाँ पहुँचने से रोकते है।

3. कबीरदास जी के अनुसार व्यक्ति परमात्मा के प्रेम का अधिकारी कब बनता है?

उ०– कबीरदास जी के अनुसार व्यक्ति परमात्मा के प्रेम का अधिकारी तब बनता है जब व्यक्ति के अंदर से अहं का भाव समाप्त हो जाता है। परमात्मा का प्रेम वही पा सकता है, जो अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर हो।

4. कबीरदास जी ने जीवात्मा और परमात्मा की अभिन्नता का वर्णन किस प्रकार किया है?

उ०– कबीरदास जी ने जीवात्मा और परमात्मा की अभिन्नता का वर्णन करते हुए कहा है कि जीवात्मा बहुत दिनों बाद प्रियतम परमात्मा को प्राप्त कर पाई है। जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद ही उसे अपने प्रियतम प्राप्त हुए है। कबीरदास जी कहते हैं कि जब तक जीवात्मा में परमात्मा से मिलन की इच्छा जाग्रत नहीं होगी तब तक उसे परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। जीवात्मा के लिए परमात्मा की प्राप्ति रत्नों का खजाना मिलने जैसा है।

5. राम-नाम के उच्चारण मात्र से मुक्ति नहीं मिल सकती। कबीरदास जी ने ऐसा क्यों कहा? इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने क्या तर्क दिए?

उ०– राम-नाम के उच्चारण मात्र से मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं हो सकती ऐसा कबीरदास जी ने इसलिए कहा है कि अगर राम-नाम के उच्चारण मात्र से मुक्ति मिलती तो सभी व्यक्तियों को जन्म-मृत्यु के आवागमन से मुक्ति मिल जाती। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने तर्क प्रस्तुत किए है। कबीरदास जी कहते हैं कि यदि कहने मात्र से सबकुछ हो जाए तो खाँड का नाम लेते ही व्यक्ति का मुँह मीठा हो जाना चाहिए। आग कहने मात्र से पैर जल जाने चाहिए, जल कहते ही प्यास बुझ जानी चाहिए, भोजन कहते ही भूख भाग जानी चाहिए और नाममात्र का उच्चारण करके संसार का प्रत्येक प्राणी भवसागर से तरकर मोक्ष प्राप्त कर ले।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''सतगुरु की ..... दिखावणहार।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार तथा छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में यमक अलंकार तथा दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

2. ''चिंतातौ हरि नाँव..... की पास।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा उसका स्थायी भाव बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शांत रस का प्रयोग है जिसका स्थायी भाव निर्वेद है।

3. ''पाणी ही तैं ..... कहा न जाइ।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार तथा रस बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अन्योक्ति अलंकार तथा शांत रस प्रयुक्त हुए है।

4. ''नैना अंतरि ..... देखन देउँ।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा अलंकार लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में भक्ति से पुष्ट शृंगार रस तथा अनुप्रास अलंकार है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

2 नागमति–वियोग वर्णन
(मलिक मुहम्मद जायसी)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 105–106 का अध्ययन करें।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन-परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– भक्तिकाल की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म सन् 1492 ई० के लगभग माना जाता है। कुछ विद्वानों ने जायसी का जन्म-स्थान गाजीपुर और कुछ ने जायसनगर जिला रायबरेली को माना है। ''जायस नगर मोर अस्थानू'' कहकर जायसी ने स्वयं 'जायस' को ही अपना निवास-स्थान कहा है। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था। बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी और अनाथ होने के कारण ये सन्तों की संगति में ही रहते थे। सूफी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पीर शेख मोहदी (मुहीउद्दीन) इनके गुरु थे। जायसी की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो पाया है, परन्तु इन्हें वेदान्त, ज्योतिष, दर्शन, रसायन तथा हठयोग का पर्याप्त ज्ञान था। जायसी गाजीपुर और भोजपुर के राजा के आश्रय में रहते थे। बाद में ये अमेठी के राजा मानसिंह की अनुनय-विनय पर उनके दरबार में चले गए और जीवन के

अन्तिम समय में ये अमेठी से 2 किमी दूर एक वन में रहते थे। सन् 1542 ई० के लगभग इनकी मृत्यु हो गई।

जायसी भक्तिकाल की प्रेममार्गी निर्गुण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। जायसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और उसकी प्राप्ति के लिए 'प्रेम' की साधना में विश्वास रखते थे। इन्होंने अपने काव्य में इस 'प्रेममार्ग' के लिए विरहानुभूति पर बहुत अधिक बल दिया है। ईश्वर से वियोग की तीव्र अनुभूति ही भक्त को साधना-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। यह भक्ति-भावना 'पद्मावत' में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई है। जायसी का विरह-वर्णन अत्यधिक मर्मस्पर्शी है। वास्तव में जायसी हिन्दी-काव्य जगत के सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि थे। जायसी एक रहस्यवादी कवि थे। इन्होंने 'पद्मावत' में स्थूल पात्रों के माध्यम से सूक्ष्म दार्शनिक भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। इसमें ईश्वर एवं जीव के पारस्परिक प्रेम की अभिव्यंजना दाम्पत्य भाव से प्रस्तुत की गई है।

रचनाएँ– उपलब्ध तथ्यों के आधार पर जायसी द्वारा रचित कृतियाँ निम्नलिखित हैं–

पद्मावत (महाकाव्य)– इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्व सेन की पुत्री 'पद्मावती' की प्रेमगाथा वर्णित है। सूफी काव्य-परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा अवधी भाषा में लिखा गया यह महाकाव्य हिन्दी-साहित्य का सबसे पहला सरस व दोषरहित महाकाव्य है। इसमें इतिहास तथा कल्पना का सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है। प्रेम की पीड़ा के अनन्य साधक जायसी ने इसमें प्रतीकों का प्रयोग किया है।

अखरावट– इसमें ईश्वर, जीव, सृष्टि आदि पर जायसी के सैद्धान्तिक विचार वर्णित हैं।

आखिरी कलाम– इसमें जायसी द्वारा मृत्यु के बाद प्राणी की दशा का वर्णन किया गया है।

2. मलिक मुहम्मद जायसी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– 'पद्मावत' महाकाव्य विरहानुभूति के मार्मिक वर्णन और अलौकिक सौन्दर्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना के कारण अत्यन्त भावपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी हो गया है। जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण जायसी के काव्य में हुआ है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का मर्मस्पर्शी वर्णन, नख-शिख-वर्णन पद्धति पर हुआ है। शृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष के हृदयहारी एवं मार्मिक चित्र 'पद्मावत' में देखे जा सकते हैं। गोरा-बादल के युद्ध वाले प्रसंग में वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों की सुन्दर व्यजंना हुई है। आध्यात्मिकता की गंगा में नहाई यह प्रेम-कथा शान्त रस की दिव्य अनुभूति में पाठक को निमग्न कर देती है। इस प्रकार सौन्दर्य, प्रेम, रहस्यानुभूति, भक्ति आदि की अभिव्यंजना से पुष्ट जायसी के काव्य का भावपक्ष बड़ा सबल है।

जायसी की भाषा अवधी है। उसमें बोलचाल की लोकभाषा का उत्कृष्ट भावाभिव्यंजक रूप देखा जा सकता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से उसमें प्राणप्रतिष्ठा हुई है। अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक है। काव्य-रूप की दृष्टि से जायसी ने प्रबन्ध शैली को अपनाया है। केवल चमत्कारपूर्ण कथन की प्रवृत्ति जायसी में नहीं है। मसनवी शैली पर लिखित 'पद्मावत' में प्रबन्ध काव्योचित सौष्ठव विद्यमान है। जायसी ने प्रबन्ध और मसनवी दोनों शैलियों को समन्वित करके एक नवीन शैली को जन्म दिया है। दोहा और चौपाई जायसी के प्रधान छन्द हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) नागमती चितउर ..... मोहि दीन्ह।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'मलिक मुहम्मद जायसी' द्वारा रचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' के 'नागमति-वियोग-वर्णन' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्य में बताया गया है कि जब हीरामन तोते के मुँह से पद्मावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर चित्तौड़ के राजा रत्नसेन उसकी खोज में सिंहलद्वीप चले जाते हैं; तो उनकी रानी नागमती अपने पति के वियोग में सन्तृप्त होती हुई उनके लौटने की बाट जोहती है।

व्याख्या– नागमती चित्तौड़ में अपने पति राजा रत्नसेन की बाट जोह रही थी और कहती थी कि प्रियतम एक बार गए तो अभी तक लौटकर न आए। लगता है कि वे किसी चतुर और रसिकप्रिय नारी के प्रेम-जाल में फँस गए हैं और उसी ने उनका चित्त मेरी ओर से फेर दिया है। तोता मेरे लिए कालरूप बनकर आया था, जो प्रियतम को अपने साथ ले गया। इससे तो अच्छा था कि मेरे प्राण चले जाते, पर प्रिय न जाते। वह तोता तो बड़ा छली निकला। जिस प्रकार नारायण ने वामन रूप धारण करके राजा बलि को छला था, या जिस प्रकार इन्द्र ने ब्राह्मण का वेश धारण करके कर्ण से उसके कवच और कुण्डल ले लिए थे, या जिस प्रकार सुख-भोग करते राजा गोपीचंद भरथरी को योग से प्रभावित करके योगी जलन्धरनाथ ने अपने साथ ले जाकर योगी बना लिया था या जिस प्रकार अक्रुर कृष्ण को लेकर गायब हो गए थे, जिसके कारण गोपियों को असह्य विरह-वेदना सहनी पड़ी और उनका जीना कठिन हो गया, उसी प्रकार यह तोता सुखपूर्वक राज्य करते मेरे प्रियतम को छलकर अपने साथ ले गया, जिससे दु:ख व क्लेश से मेरा जीना दूभर हो रहा है। मेरे प्रियतम मेरे लिए कवचस्वरूप थे। उनके बिना मैं सर्वथा असहाय हो गई हूँ। सारस की जोड़ी में से एक (नर) को मारकर किस व्याध (बहेलिए) ने मादा को उससे अलग कर दिया है और यह विरहरूपी काल मुझे दे दिया है, जिसके कारण मैं सूखकर हड्डियों का ढाँचामात्र रह गई हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– (1) नागमती के विरह की मार्मिक व्यंजना हुई है। (2) नर-मादा सारस का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम विख्यात है।

एक के मरने पर दूसरा भी अपने प्राण त्याग देता है। (3) यहाँ चार अन्तर्कथाओं का उल्लेख मिलता है- **(क) पहली** कथा **विष्णु** के वामनावतार की है, जिसमें उन्होंने पहले वामन का रूप धारण कर राजा बलि से तीन पग भूमि माँगकर और फिर विराट रूप धारणकर उसे राज्यच्युत कर दिया, जिससे कि वह सौवाँ यज्ञ पूरा करके इन्द्रासन प्राप्त न कर सके। **(ख) दूसरी** कथा **कर्ण** से सम्बन्धित है। कुन्ती की प्रार्थना पर इन्द्र ने विप्र वेश धारण कर छल द्वारा दानी कर्ण से उसके दिव्य कवच-कुण्डल माँग लिए, जिससे कर्ण की अभेद्यता समाप्त हो गई और वह महाभारत के युद्ध में मारा गया। **(ग) तीसरी** कथा बंगाल के **राजा गोपीचंद भरथरी** की है। उनकी माता मैनावती ने उन्हें अनिष्ट से बचाने के लिए जलन्धरनाथ का शिष्य बना दिया था, जिससे उनकी रानियों को मर्मान्तक पीड़ा हुई। **(घ) चौथी** कथा **अक्रूर** से संबंधित है। अक्रुर कृष्ण को वृन्दावन से मथूरा लिवा ले गए, जिससे गोपियाँ कृष्ण-वियोग में जीवन भर तड़पती रही। इन अन्तर्कथाओं का उल्लेख कवि के प्रगाढ़ ज्ञान एवं अध्ययन का परिचायक है। **(4) भाषा–** अवधी। **(5) शैली–** प्रबंधकाव्य की मसनवी शैली। **(6) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(7) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(8) अलंकार–** रूपक (सुआ-काल), पुनरुक्तिप्रकाश (झुरि-झुरि), दृष्टान्त, उपमा आदि। **(9) भावसाम्य–** विरह की पीड़ा में सन्तप्त विरहिणी का इसी प्रकार का मार्मिक चित्र सन्त कवि कबीरदास जी ने भी खींचा है-

विरह जलन्ती मैं फिरौं, मों विरिहिन को दुक्ख।
छाँह न बैठों डरपती, मत जल उट्ठे रुक्ख॥

(ख) पाट महादेई! ..... अद्रा पलुहंत॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इन काव्य-पंक्तियों में नागमती की सखियाँ वियोगसन्तप्ता नागमती को धैर्य बँधा रही है।

व्याख्या– रानी नागमती पति-वियोग से पीड़ित है। उसकी सखियाँ उसे धीरज बँधाती हुई कहती हैं कि पटरानी जी! आप अपने हृदय में इतनी निराश न हों। धैर्य धारणकर स्वयं को सँभालिए। जी में समझकर होश में आइए और चित्त को चैतन्य कीजिए। भौंरे का यदि कमल से मिलन हो भी जाए तो भी वह मालती (पुष्प) के प्रति पूर्व स्नेह को स्मरण कर पुन: उसके पास लौट आता है। तात्पर्य यह है कि पद्मावती से यदि महाराज का मिलन हो भी जाएगा तो भी वे आपके पूर्व प्रेम का स्मरण कर पुन: आप ही के पास लौट आएँगे; अत: निराश होने की कोई बात नहीं। पपीहे को स्वाति (नक्षत्र में गिरने वाली वर्षा की बूँद) से जैसी प्रीति है (उसे स्मरण कर) अपनी प्रियदर्शन की प्यास को (कुछ दिन) सह लीजिए और मन में धैर्य धारण कीजिए (व्याकुलता छोड़िए)। पृथ्वी को आकाश से यदि प्रगाढ़ प्रेम है तो (उसके फलस्वरूप) आकाश भी मेघ के रूप में वापस आकर (वर्षा की बूँदों के रूप में अपनी प्रियतमा) पृथ्वी से आ मिलता है। फिर नवल वसन्त ऋतु आएगी। तब वही रस (मकरन्द, पुष्परस), वहीं भौंरा और वही बेल होगी। हे महारानी! तुम देवी तुल्य हो। तुम अपने हृदय में निराश मत हो (हतोत्साहित न हो)। यह (सूखा) वृक्ष पुन: हरा-भरा हो उठेगा; अर्थात् तुम्हारा गृहस्थ जीवन पुन: भरा-पूरा हो जाएगा)। कुछ दिनों के लिए जल सूख जाने से सरोवर विध्वस्त (शोभाहीन)-सा हुआ लगता भी है तो क्या? फिर (जल भर जाने पर) वही सरोवर होगा और वही हंस होगा (जो उसे सूखा देख छोड़कर चला गया था)।

जब बिछुड़े हुए पति तुम्हें पुन: मिलेंगे तो वे (द्विगुणित अनुराग से) तुम्हें प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लेंगे; क्योंकि जो मृगशिरा नक्षत्र में (ज्येष्ठ मास की) तपन सहते हैं, वे आर्द्रा नक्षत्र (आषाढ़) की वर्षा से पुन: पल्लवित (हरे-भरे) हो उठते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) सखियों ने जिन दृष्टान्तों से नागमती को धैर्य बँधाने का प्रयास किया है, वे अत्यधिक सटीक और भावपूर्ण हैं। (2) स्वाति नक्षत्र शीतकाल में कार्तिक शुक्लपक्ष में 15 दिन रहता है। पपीहा केवल स्वाति नक्षत्र में हुई वर्षा की बूँद पीकर ही अपनी साल भर की प्यास बुझाता है। वह स्वाति-बूँद की आशा में अपनी प्यास को साल भर तक रोके रहता है। (3) ऐसी प्राचीन मान्यता है कि पृथ्वी और आकाश में पति-पत्नी संबंध है। पृथ्वी और आकाश का चिर-बिछोह है, ये एक-दूसरे से कभी नहीं मिल सकते। पृथ्वी की पुकार से द्रवित होकर आकाश वर्षा की बूँदों के रूप में नीचे उतरकर तप्त पृथ्वी की प्यास बुझता है। यहाँ इस मान्यता की सार्थक अभिव्यक्ति है। **(4) भाषा–** अवधि। **(5) शैली–** प्रबंधकाव्य की मसनवी शैली। **(6) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(7) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(8) अलंकार–** अन्योक्ति और अर्थान्तरन्यास। **(9) भावसाम्य–** वियोग के बाद संयोग का सुख अत्यधिक बढ़ जाता है। वर्षा का सच्चा सुख वही जानता है, जो ग्रीष्म के ताप से दुग्ध हो। इसी भाव को गोस्वामी जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरुछाया-सुख जानइ सोई॥

(ग) चढ़ा असाढ़ ..... भूला सर्ब॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इन पंक्तियों में नागमती के विरह का वर्णन 'बारहमासा' पद्धति के आधार पर किया गया है। आषाढ़ के महीने में बरसते बादलों के बीच चमकने वाली बिजली उसे अपने शत्रु कामदेव की तलवार जैसी दिखाई देती है।

व्याख्या– आषाढ़ का महीना लग गया है और मेघ आकाश में गरज रहे हैं। लगता है (कामदेव के भेजे) विरह (रूपी सेनापति) ने (विरहिणियों पर चढ़ाई करने के लिए) अपनी सेना सजा ली है और (मेघ-गर्जन के रूप में) यह उसी के

(युद्ध प्रयाण के सूचक) नगाड़े बज रहे हैं। (विरहरूपी सेनापति की सेना के सैनिकों के रूप में) धूम्र, काले और सफेद रंगों के बाद दौड़ रहे हैं। इनके बीच में बगुलों की पंक्ति उड़ रही है, वही मानो इस सेना का सफेद पताका है। आषाढ़ के महीने में विरहिणी स्त्रियों का विरह और अधिक बढ़ रहा है। कौंधती हुई बिजली के रूप में चारों ओर चमकती तलवारें हैं। ये (मेघ रूपी सैनिक) वर्षा की बूँदों के रूप में बाणों की घनघोर वर्षा कर रहे हैं। घटाएँ (सेनाएँ) चारों ओर से उमड़ती चली आ रही है। हे प्रिय! कामदेव रूपी शत्रु ने मुझे सब ओर से घेर लिया है। अब तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकते हो। यदि आप न आए तो मेरे प्राण संकट में हैं। (ऐसे कामोद्दीपक वातावरण में जब) मेंढ़क, मोर और कोयल बोलते हैं, तो हे प्रियतम! मुझ पर बिजली-सी गिरती है, जिससे मेरे शरीर में प्राण नहीं रहते (अर्थात् प्राण निकलने से लगते हैं।)। पुष्य नक्षत्र भी अब सिर पर आ गया है (अर्थात् शीघ्र ही लगने वाला है, जबकि और भी मूसलाधार वर्षा होगी)। अब मेरे घर को कौन छवाएगा। क्योंकि मैं तो पति के बिना सर्वथा असहाय हो रही हूँ। आर्द्रा नक्षत्र लग गया है, जिसकी घनघोर वर्षा से खेत पानी से भर गए हैं। प्रियतम के बिना मुझे अब आदर-सम्मान कौन देगा? जिन स्त्रियों के पति घर पर हैं, वे ही सुखी और प्रसन्न हैं एवं अपने सौभाग्य पर गर्व का अनुभव कर सकती हैं। मेरे प्रियतम (पति) तो बाहर हैं, इसलिए मैं सारा सूख भूल गई हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कवियों में प्राचीनकाल से ही नायिका के वियोग-वर्णन के प्रसंग में 'बारहमासा' की परम्परा रही है। तदनुसार ही महाकवि जायसी ने नागमती-वियोग वर्णन के बारहमासे का आरंभ आषाढ़ मास से किया है; क्योंकि वर्षाऋतु विरहिणी के लिए विशेष रूप से कष्टदायक होती है। (2) नागमती का एक साधारण नारी के रूप में वर्णन किया गया है। यही कारण है कि उसकी विरह-वेदना के साथ मानव-मात्र तादात्म्य का अनुभव कर सकता है। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** प्रबंध काव्य की मसनवी शैली। **(5) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(6) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(7) अलंकार–** सांगरूपक, उत्प्रेक्षा आदि। **(8) भावसाम्य–** तुलसीदास ने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया है-

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

(घ) भा भादों ..... पिउ टेक॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में विरहवेदना में तड़पती हुई रानी नागमति ने भादों महीने के प्रारंभ होने पर अपनी वेदना के बढ़ने का वर्णन किया है।

व्याख्या– भादों का महीना प्रारंभ हो गया है। जिसकी दोपहर सूर्य की गर्मी से तप्त है। भादों की रात बहुत अंधकारमय है (अर्थात भादों मास में सबसे अधिक अंधकारमय रात होती है।) नागमती विरह वेदना से व्याकुल होकर कहती है हे प्रियतम! मेरा हृदयरूपी मन्दिर सूना हो गया है प्रिय अब आप वापस आकर उसमें बस जाओ (अर्थात् अब आप वापस लौट आओ) और अपना स्थान ग्रहण करो अब तो शयन की सेज भी मुझे नागिन के समान डसती है। मैं घर में खाट की पाट के समान अकेली रहती हूँ, जिसके नयन आपकी प्रतीक्षा में है, जिसका हृदय आपके वियोग में फटा जा रहा है (अर्थात मैं आपके दर्शनों के अभाव में मरी जा रही हूँ) वर्षा हो रही है जिसके कारण आकाश में बिजली चमकती है तथा बादल गरज-गरज कर मुझे डरा रहे है। इस विरह ने मेरे मन को हर लिया है (अर्थात् मुझे अब अपनी कोई सुध बुध नहीं है। हे प्रियतम! मघा नक्षत्र (वह नक्षत्र जो भाद्रपद कृष्ण पक्ष में लगकर घनघोर वर्षा करता है) में बादल घुमड़-घुमड़कर बरस रहे हैं तथा मेरे नयन छप्पर के छोर की भाँति बहे जा रहे हैं। हे प्रियतम! तुम्हारी धनि (पत्नि) भादों मास में (जब बादल बरसते हैं तथा चारों तरफ हरियाली है) सूख कर काँटा हो गई है जो अपने पति (प्रियतम) के वापस आने पर ही सींचित होंगी। हे प्रिय! पूरवा नक्षत्र (पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र, जो भाद्रप्रद शुक्ल पक्ष में लगता है) भी लग गया है जिससे भूमि जल से पूरित हो गई है। परंतु मेरा तन तुम्हारे वियोग के कारण कंटीली झाड़ी के समान हो गया है।

चारों तरफ पृथ्वी जल से भर गई है, और आकाश का अपनी प्रियतमा पृथ्वी से मिलन हो गया है परन्तु प्रियतम आपकी प्रियतमा का यौवन कठिनाई में है अब आप मेरी विनती स्वीकार कर वापस लौट आइए।

काव्य-सौन्दर्य- (1) यहाँ जायसी ने भादों मास में पड़ने वाली भीषण गर्मी तथा अंधकारमय रात्रि का का वर्णन किया है। (2) रानी नागमती को एक विरह वेदना से व्याकुल साधारण स्त्री के रूप में दिखाया गया है। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** प्रबंध काव्य की मसनवी शैली। **(5) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(6) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(7) अलंकार–** अनुप्रास, पुनरूक्तिप्रकाश, अतिशयोक्ति।

(ङ) कातिक सरद ..... सिर मेलि॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश में कार्तिक के महीने में विरह में व्याकुल नागमती की दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

व्याख्या– कार्तिक मास प्रारंभ हो गया है। जिसमें सर्दी प्रारंभ हो गई है तथा चाँद की चाँदनी से रात उजियारी हो गई है। संपूर्ण संसार शीतल हो गया है परन्तु मेरा (नागमती) का वियोग अभी भी बना हुआ है (क्योंकि मेरे प्रिय अभी तक वापस नहीं लौटे है) चौदस के चाँद का प्रकाश सब ओर फैल गया है जिससे धरती और आकाश सभी तरफ प्रकाश विद्यमान हैं परन्तु मेरा तन-मन और सेज अग्नि के दाह में जल रहे हैं। चाँद की चाँदनी मुझ पर क्रोधित हो रही है। मुझे तो चारों तरफ अंधकार नजर आ

रहा है क्योंकि मेरे प्रियतम विदेश गए हुए (अर्थात् मेरे प्रियतम मेरे साथ नहीं, है) है। अब निष्ठुर वह दिन भी आ गया है जब सारे संसार में त्योहार बनाए जा रहे है (अर्थात् सारे संसार में दीपावली का पर्व मनाया जा रहा है)। मेरी सखियाँ अपने प्रियजनों के साथ इस त्योहार को मनाते हुए झूम-झूमकर गीत गा रही है परन्तु मैं अपनी जोड़ी के बिछड़ने (अर्थात अपने प्रियतम के विरह के कारण) सूख रही (अर्थात् व्याकुल हो रही हूँ) हूँ। अब तो केवल मेरी यह मनोकामना है कि मेरे प्रियतम वापस आ जाए। मुझे तो अब विरह के अतिरिक्त दूसरा कोई दु:ख नहीं है।

सारी सखियाँ गा-गाकर तथा खेल-खेलकर दीपावली का त्योहार मना रही है। परंतु मैं अपने पति (प्रियतम) के बिना सिर पीट रही (अर्थात् शोक मना रही हूँ) हूँ।

काव्य सौन्दर्य– (1) यहाँ कवि ने कार्तिक मास में पड़ने वाली हलकी ठंड तथा चाँद की चाँदनी का वर्णन किया है। (2) यहाँ कवि ने नारी के सुलभ मन का वर्णन किया है जिसे अपने प्रियतम के बिना त्योहार भी आनन्द प्रदान नहीं करते। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** प्रबंध काण्य की मसनती शैली। **(5) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(6) रस–** विप्रलभ श्रृंगार। **(7) अलंकार–** अनुप्रास, उपमा।

(च) लागेउ माघ ..... उड़ावा झोल॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में माघ मास में पड़ने वाली सर्दी का वर्णन किया गया है जो नागमती की विरह वेदना को बढ़ाता है।

व्याख्या– माघ का महीना लग गया है, जिसके कारण पाला पड़ना आरंभ हो गया है और मेरा विरह काल इस जाड़े के मौसम में भी जारी हैं पहले-पहले तो मैंने अपने शरीर को रूई से ढक लिया था (अर्थात् रजाई से ढ़क लिया था) परंतु इस कँपकँपाती हुई ठंड में मेरा हृदय भी काँप रहा है। मुझे इस ठंड में रजाई में भी ताप नहीं प्राप्त हो रहा है परंतु हे प्रियतम! तुम्हारे बिना इस माघ मास की ठंड से मुझे छुटकारा नहीं मिलने वाला (अर्थात् मेरी सारी कठिनाईयों का अंत केवल आप ही कर सकते) हैं। इस माघ मास में ही वसंत में खिलने वाले पुष्पों का मूल बनना प्रारंभ हो जाता है और केवल आप ही मेरे लिए भँवरे के समान है जो मेरे यौवन को फूल के समान जीवित कर सकते (अर्थात् केवल आप ही मुझे नवजीवन प्रदान कर सकते) हैं। मेरे नयनों से माघ मास में लगने वाली वर्षा की झड़ी के समान जल बह रहा है (अर्थात् मैं आपकी याद में व्याकुल होकर अश्रु बहा रही) हूँ। तुम्हारे बिना मुझे शरीर का प्रत्येक अंग कटता हुआ प्रतीत होता है। टप-टप करती वर्षा की बूँदें ओलों के समान प्रतीत होती है और विरह में ठंडी पवन मुझे टक्कर मारती प्रतीत होती है। हे प्रिय! अब मैं किसके लिए श्रृंगार करूँ, किसके लिए नववस्त्र पहनूँ? तुम्हारे वियोग में मुझे कुछ भी प्रिय नहीं लगता।

हे प्रिय! तुम्हारे वियोग में तुम्हारी पत्नि का हृदय तिनकों के समूह की भाँति डोलता है (अर्थात भयभीत रहता है।) इस पर विरह की अग्नि मुझे जलाकर मेरी भस्म को चारों ओर उड़ाने को तैयार है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) नागमती की विरह वेदना का कवि ने बहुत ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। **(2) भाषा–** अवधी। **(3) शैली–** प्रबंध काव्य की मसनवी शैली। **(4) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(5) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(6) अलंकार–** अनुप्रास, पुनरूक्तिप्रकाश।

(छ) भा बैसाख ..... सींचै आइ॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद्यांश में वैशाख के महीने में विरहिणी नागमती की वियोग दशा का मर्मस्पर्शी अंकन हुआ है।

व्याख्या– वैशाख मास की प्रचण्ड गर्मी में अपनी दशा का वर्णन करती हुई विरहिणी नागमती कहती है कि वैशाख लगते ही ग्रीष्म का ताप प्रचण्ड हो उठता है। इसमें चोआ नामक सुगन्धित द्रव्य, हल्के वस्त्र एवं शीतल चन्दन का लेप भी शीतलता के स्थान पर दाह उत्पन्न कर रहे हैं। गर्मी इतनी अधिक है कि सूर्य तक उससे व्याकुल होकर हिमालय की ओर (शीतलता की खोज में) चला गया है; अर्थात् दक्षिणायन से अब उत्तरायण हो गया है, किन्तु (उस सूर्य से भी कहीं भयंकर) विरहरूपी वज्राग्नि ने अपना रथ सीधा मेरी ओर चला दिया है। (उस असह्य ताप से मैं कैसे अपनी रक्षा करूँ, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि) हे प्रियतम! इस वज्राग्नि में जलती हुई मुझ पर छाया कीजिए और विरहरूपी अगारों में दग्ध होती हुई मुझे, बचाने के लिए आकर उन विरहरूपी अंगारों को बुझाइए। आपके दर्शन पाते ही आपकी यह पत्नी तत्काल शीतल हो जाएगी। अत: आप दर्शन देकर मुझ आग में जलती हुई को (संयोगरूपी) फूलवारी में पहुँचा दीजिए। इस समय मैं भाड़ में पड़े दाने के समान भुन रही हूँ। भाड़ बार-बार उस दाने को भूनता है, पर दाना उसकी जलती हुई बालू को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार मैं विरह द्वारा बार-बार भूँजे जाने पर भी उस विरह को नहीं छोड़ूँगी। अर्थात् आपके प्रति अपनी एकनिष्ठता के कारण आपका विरह भी सहन करूँगी, पर आपका ध्यान नहीं छोड़ूँगी; मेरा हृदयरूपी सरोवर विरह के ताप से उत्तरोत्तर सूखता जा रहा है तथा शीघ्र ही खंड-खंड होकर टूटने वाला है। इस फटते हुए हृदय को सहारा दीजिए और अपनी दृष्टिरूपी प्रथम वर्षा से उसकी फटन को मिलाकर एक कर दीजिए।

मानसरोवर में जो कमल खिला था, वह जल के अभाव में सूख गया। आपके संपर्क में आकर मुझे जो प्रेम मिला था, अब वहीं विरह के कारण नष्ट होता जा रहा है। वह बेल फिर हरी-भरी हो सकती है, यदि प्रिय स्वयं आकर उसे सींचें।

काव्य-सौन्दर्य– (1) जायसी का यह पद्य अपनी मार्मिकता एवं काव्यात्मकता के कारण विख्यात है। यहाँ हम कवि को वेदना के स्वरूप-विश्लेषण में प्रवृत्त पाते हैं। (2) 'सरवर हिया ..... मेरवहु एका' में कवि द्वारा प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण तथा असाधारण भावुकता प्रकट होती है। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** प्रबंध काव्य की मसनवी शैली। **(5) छन्द–** चौपाई तथा दोहा। **(6) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(7) अलंकार–** अतिशयोक्ति, हेतूत्प्रेक्षा, उपमा, सांगरूपक और अन्योक्ति।

(ज) तपै लागि ..... आइ बसाउ॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने जेठ-आषाढ़ के दिनों में नागमती की मनोस्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या– जेठ-आसाढ़ माह में भीषण गर्मी के कारण दिन तपने लगे हैं। प्रियतम के बिना मेरा जी नहीं लग रहा है। अब तो मेरा शरीर तिनको के समूह के समान सूख गया है। इस समय तो आने वाली वर्षा भी मेरे दु:ख को बढ़ा रही है। अब तो साहस को बाँधने वाली रस्सी भी कोई सहायक सिद्ध नहीं हो रही है। अब तो बात-बात में मुझे रूलाई आ रही है। संसार का नियम है कि वह संपन्न और सुखी व्यक्तियों के ही आगे-पीछे घूमता है। जो अपना सब कुछ गंवाकर रिक्त हो चुका हो, उसकी कोई बात तक नहीं पूछता। इसी बात को आधार बनाते हुए नागमती कहती है कि पति ही नारी का सर्वस्व होता है। पति के बिना नारी सर्वस्व गँवाई हुई दीन-निर्धन व्यक्ति के सदृश हो जाती है, जिसे घर-परिवार-समाज और संसार में भी कोई आदर सम्मान नहीं देता। मेरी भी आज ऐसी ही दशा हो रही है। मुझ दुखिया की विनती कोई नहीं सुन रहा है। अब तो खम्भे के ऊपर से कड़ी भी हट गई है। (अर्थात् मैं आश्रयहीन हो गई हूँ।) और चारों तरफ मेघ बरस रहे हैं, जिससे घर की छत चू रही है जिसके कारण पानी की आवाज हो रही है। अब तो घर के छप्पर में नया ढाँचा बनाना है परंतु प्रिय तुम्हारे बिना यह कार्य कौन करेगा। (अर्थात प्रिय घर की स्थिति बहुत दयनीय है जिसे आकर तुम ही ठीक कर सकते हो)।

हे निष्ठुर प्रियतम! अब तो आप मेरी तरफ ध्यान दीजिए और घर वापस आ जाइए। आपका घर रूपी मन्दिर उजड़ने ही वाला है अत: आप आकर पुन: इसे संभाल कर बसा दीजिए।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कवि ने नागमती को एक साधारण पत्नी के रूप में प्रदर्शित कर उसके संसार को बचाने की प्रार्थना की है। **(2) भाषा–** अवधी। **(3) शैली–** प्रबन्ध काव्य की मसनवी शैली। **(4) छन्द–** चौपाई और दोहा। **(5) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(6) अलंकार–** पुनरूक्तिप्रकाश अनुप्रास, उपमा।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) तपनि मृगसिरा जै सहैं, ते अद्रा पलुहंत॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य—पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'मलिक मुहम्मद जायसी' द्वारा रचित 'नागमती-वियोग-वर्णन' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– विरह व्यथिता नागमती को उसकी सखियाँ समझाती हैं कि जो लोग पहले कष्ट उठाते हैं, वे ही बाद में सुख पाते हैं।

व्याख्या– मृगशिरा नक्षत्र (ज्येष्ठ शुक्लपक्ष के पन्द्रह दिन) में जो भीषण ग्रीष्मताप सहन करते हैं, वे ही आर्द्रा नक्षत्र (आषाढ़ कृष्णपक्ष के पन्द्रह दिन) में वर्षा से शीतलता पाकर पल्लवित होते हैं, फलते-फूलते हैं। भाव यह है कि जीवन में जो साधना करते हैं और कष्ट भोगते हैं, उन्हें ही आगे सुख मिलता है; क्योकि दु:ख सहकर ही सुख की प्राप्ति होती है। अत: आप (नागमती) यदि आज विरह से सन्तप्त हैं तो कल को निश्चय ही प्रियागम से अत्यधिक हर्षित होगी। विरह के बाद मिलन अत्यधिक अनुरागवर्द्धक होता है।

(ख) जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ पर विरहिणी नागमती के मुख से नारी-जीवन में पति की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– संयोगकाल की रूपगर्विता नागमती विरह में अत्यन्त सामान्य नारी के रूप में दिखाई देती है। उसके पति राजा रत्नसेन पद्मावती को पाने के लिए योगी बनकर सिंहलगढ़ की ओर चले गए हैं। लंबे समय तक न लौटने पर रानी नागमती शंकित होती है तथा विरह की अग्नि में जलने लगती है। आर्द्रा नक्षत्र के उदय होने पर घनघोर वर्षा होती है। ऐसे वातावरण में उसकी विरह-वेदना और भी बढ़ जाती है। वह अनुभव करती है कि जिन स्त्रियों के पति घर पर होते हैं, वे ही सुखी होती हैं। उन्हीं को पत्नी होने का गौरव प्राप्त होता है। विरहिणियों को तो दु:खी जीवन ही बिताना पड़ता है।

(ग) कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– विरह व्यथिता नागमती के मुख से नारी-जीवन में पति की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– राजा रत्नसेन पद्मावती को पाने के लिए योगी बनकर सिंहलगढ़ की ओर चले गए हैं। लंबे समय तक न लौटने पर रानी नागमती शंकित होती है तथा विरह की अग्नि में जलने लगती है। वर्षा होने पर उसकी विरह-वेदना और बढ़ जाती है। वह अनुभव करती है कि जिन स्त्रियों के पति घर पर होते हैं। वे ही सुखी होती है। उन्हीं को पत्नी होने का गौरव प्राप्त होता है। मेरे पति बाहर है तो मैं तो सभी सुख भूल गई हूँ।

(घ) पिउ सौ कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– विरहिणी नागमती अपनी विराहावस्था का संदेश अपने प्रियतम तक पहुँचाने के लिए भौंरे और कौए को अपना दूत बनाती हुई उनसे ये पंक्तियाँ कहती है।

व्याख्या– अपने प्रियतम से विरह के कारण नागमती अत्यन्त दुर्बल हो गई है। प्रियतम के विदेश में रहने के कारण उसने शृंगार करना भी छोड़ दिया है। इसी शारीरिक दुर्बलता और शृंगारहीनता के कारण उसका रंग काला हो गया है। अपनी इसी अवस्था का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करती हुई नागमती भौंरे और कौए से कहती है कि हे भौंरे! हे कौए! तुम मेरे प्रियतम को जाकर यह संदेश देना कि तुम्हारी प्रियतमा नागमती तुम्हारी विरहाग्नि में सुलग-सुलगकर जल मरी है। उसके सुलगने से उठे धुएँ की कालिमा के लगने से ही हमारा रंग काला हो गया है।

(ङ) कबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचै आइ॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पंक्ति में वैशाख के महीने में विरहिणी नागमती की वियोग दशा का मर्मस्पर्शी अंकन हुआ है।

व्याख्या– मानसरोवर में जो कमल खिला था, वह जल के अभाव में सूख गया। आपके संपर्क में आकर मुझे जो प्रेम मिला था अब वही विरह के कारण नष्ट होता जा रहा है। वह बेल फिर हरी-भरी हो सकती है, यदि प्रिय उसे स्वयं आकर सींचे।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'नागमती-वियोग-वर्णन' अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'नागमती-वियोग-वर्णन' मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित एक भावात्मक एवं हृदयस्पर्शी काव्यांश है। जिसमें कवि ने चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की रानी नागमति की अपने पति के वियोग के कारण विरह वेदना का वर्णन किया है। जिसमें रानी अपनी सखियों से कहती है कि जिस प्रकार विष्णु ने राजा बलि को, इन्द्र ने कर्ण को, राजा गोपीचंद को योगी जलन्धरनाथ ने, तथा अक्रूर ने कृष्ण को मथुरा ले जाकर गोपियों को छला था उसी प्रकार हीरामन नाम के तोते ने मुझे छल लिया है। यह तोता मेरे लिए कालरूप बनकर आया था, जो प्रियतम को साथ ले गया। नागमती कहती है कि जब से मेरे प्रियतम गए है मेरा मन बस प्रियतम-प्रियतम की रट लगाए हुए है। नागमती वर्ष के बारह महीनों में अपनी विरह-वेदना का वर्णन करती हुई कहती है आषाढ मास में आकाश में मेघ गरज रहे है, जो ऐसे प्रतीत हो रहे जैसे कामदेव ने विरहणियों पर अपनी सेना द्वारा आक्रमण कर दिया है। भादों मास की अंधियारी रात्रि में मुझे तो सेज भी नागिन के समान डस रही है। नागमती कहती है कि हे प्रियतम! आपके वियोग के कारण कार्तिक मास में आने वाली दीपावली के त्योहार पर भी मुझे शोक हो रहा है। इस प्रकार कवि ने नागमती के माध्यम से हृदय को स्पर्श करने वाली अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।

2. कवि ने नागमती के सावन मास के वियोग का वर्णन किस प्रकार किया है?

उ०– कवि ने सावन के महीने में नागमती के वियोग का वर्णन करते हुए कहा है कि सावन में घनघोर वर्षा के कारण पानी बरस रहा है। परन्तु यह वर्षा भी मुझे विरह के कारण कष्ट प्रदान कर रही है। अब तो पुर्नबसु नक्षत्र भी लग गया है परन्तु मैं अपने प्रियतम के दर्शन नहीं कर पाई हूँ। अपने पति के वियोग में मैं बावली हो गई हूँ। मेरी आँखों से आँसू टूट-टूटकर बह रहे हैं, मेरे आँसू ऐसे बह रहे हैं जैसे-रेंग-रेंगकर इन्द्रवधू नामक कीट चलता हैं। मेरी सखियों ने अपने प्रियतमों के साथ झूलने के लिए हिंडोले की रचना की है। अब भूमि पर भी ललछौंही लिए पीली हरियाली फैली हुई है। अब हिंडोले के समान मेरा मन भी डोल रहा है जो मुझे विरह को भुलाने के लिए झकझोर रहा है। मुझे अपने प्रियतम की राह देखते-देखते बहुत दिन हो गए है, मेरा मन अब भंभीरी के समान (एक कीट, जो वर्षाकाल में भन-भन करता है।) इधर-उधर घूम रहा है। प्रियतम मुझे तो जग ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे इसमें आग लग गई है। और मेरी जीवन रूपी नाव बिना नाविक के (अर्थात आपके वियोग में) थक कर समाप्त होने वाली है।

3. 'नागमती-वियोग-वर्णन' के आधार पर मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यगत विशेषताएँ निम्न हैं-

भावपक्ष की विशेषताएँ–

रस योजना– 'नागमती-वियोग-वर्णन' जायसी जी के महाकाव्य 'पद्मावत' का एक अंश है। इस महाकाव्य में कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। परन्तु 'नागमती-वियोग-वर्णन' में कवि ने शृंगार के विप्रलम्भ रूप का वर्णन किया है।

विरह-वर्णन– जायसी का विरह वर्णन अद्वितीय है। नागमती के विरह का वर्णन करने में यद्यपि उन्होंने अत्युक्तियों का सहारा भी लिया है, पर उसमें जो वेदना की तीव्रता है, वह हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। पति के प्रवासी होने पर नागमती बहुत दु:खी है। वह सोचती है कि वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जिनके पति उनके पास हैं-

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भुला सर्ब॥

रहस्यवाद– कविवर जायसी ने अपने महाकाव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से आलौकिक प्रेम का चित्रण किया है। नागमती का हृदयद्रावक संदेश निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

पिउ सौ कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।।

प्रकृति चित्रण– 'नागमती–वियोग–वर्णन' में बारहमासा रचकर कवि ने प्रकृति का बहुत ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। भावपक्ष के उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि जायसी वास्तव में रससिद्ध कवि हैं।

कलापक्ष की विशेषताएँ– भावपक्ष के साथ जायसी का कलापक्ष भी पुष्ट, परिमार्जित और प्रांजल है, जिसका विवेचन निम्नवत् है–

छन्दोविधान– जायसी जी ने 'नागमती–वियोग–वर्णन' में दोहा–चौपाई पद्धति अपनाई है। इसमें कवि ने चौपाई की सात पंक्तियों के बाद एक दोहा रखा है।

भाषा– जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। इसमें बोलचाल की अवधी का माधुर्य पाया जाता है। कहीं–कहीं शब्दों को तोड़–मरोड़ दिया गया है और कहीं एक ही भाव या वाक्य के कई स्थानों पर प्रयुक्त होने के कारण पुनरुक्ति दोष भी आ गया है।

शैली– जायसी ने प्रबन्ध काव्य की मसनवी शैली को अपनाया है। इन्होंने चौपाई और दोहा छन्दों में भाषा–शैली का सुंदर निर्वाह किया है।

अलंकार– अलंकारों का प्रयोग जायसी ने काव्य–प्रभाव एवं सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिए ही किया है, चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। आषाढ़ के महीने के घन गर्जन को विरहरूपी राजा के युद्धघोष के रूप में प्रस्तुत करते हुए बिजली में तलवार का और वर्षा की बूँदों में बाणों की कल्पना कर सुंदर रूपक का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

4. ''प्रकृति में बदलाव के साथ नागमती की विरह–व्यंजना का स्वरूप भी बदलता रहा है।''इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०– प्रकृति में बदलाव के साथ–साथ नागमती की विरह–व्यंजना का स्वरूप भी बदलता रहा है यह कथन सत्य है। कवि जायसी ने नागमती के विरह के बारह मासों का वर्णन किया है जिसमें प्रकृति में आए बदलावों के साथ–साथ नागमती की विरह की पीड़ा भी बदलती रही है। जैसे आषाढ़ मास में बरसते बादलों के बीच चमकने वाली बिजली उसे अपने शत्रु कामदेव की तलवार जैसी दिखाई देती है। भादों मास की अंधियारी रात में सेज उसे नागिन के समान डसती है आदि।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''सारस–जोरी ..... मोहि दीन्ह।।''पंक्तियों में निहित रस तथा उसका स्थाई भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में विप्रलम्भ शृंगार रस है जिसका स्थाई भाव रति है।

2. ''यह तन ..... जहँ पाव।।''पंक्तियाँ किस छंद पर आधारित है?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियाँ दोहा छन्द पर आधारित है।

3. ''कवँल जो बिगसा ..... सींचै आइ।।''पंक्तियों में निहित अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अतिशयोक्ति तथा उपमा अलंकार निहित है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

3 विनय, वात्सल्य, भ्रमर–गीत
(सूरदास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य–पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 112 का अध्ययन करें।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. सूरदास जी का जीवन–परिचय देते हुए उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– कवि परिचय– वात्सल्य रस के महान् सम्राट एवं हिन्दी साहित्य–प्रकाश के सूर्य महात्मा सूरदास जी का जन्म सन् 1478 ई० में हुआ था। इनके जन्मस्थान के बारे में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इनका जन्मस्थान आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रूनकता नामक ग्राम को मानते हैं, जबकि कुछ इनका जन्मस्थान दिल्ली के निकट 'सीही' ग्राम को मानते हैं।

सूरदास के माता-पिता एवं कुल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रवरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट मानते हैं। सूरदास ने बालक कृष्ण की विभिन्न बाल-क्रीड़ाओं, प्रकृति तथा विभिन्न प्रकार के रंगों का जितना सूक्ष्म, यथार्थ और मार्मिक वर्णन किया है, उससे इनके जन्मांध होने पर भी संदेह होता है।

सूरदास जी को वल्लभाचार्य के शिष्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त था। इनकी मृत्यु सन् 1583 ई० में परसौली नामक स्थान पर हुई। कहा जाता है कि सूरदास ने सवा लाख पदों की रचना की। इनके पदों में संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

सूरदास जी हिन्दी की कृष्ण-भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जिस प्रकार राम-भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

रचनाएँ– 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' की खोज तथा पुस्तकालय में सुरक्षित नामावली के आधार पर सूरदास जी के ग्रन्थों की संख्या 25 मानी जाती है, किन्तु इनके तीन ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं –

सूरसागर– 'सूरसागर' एकमात्र ऐसी कृति है, जिसे सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है। इसके सवा लाख पदों में से लगभग 10 हजार पद ही उपलब्ध हुए हैं। 'सूरसागर' पर 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव है। सम्पूर्ण 'सूरसागर' एक गीतिकाव्य है। इसके पद तन्मयता के साथ गाए जाते हैं।

सूरसारावला– यह ग्रन्थ अभी तक विवादास्पद स्थिति में है किन्तु कथावस्तु, भाव, शैली और रचना की दृष्टि से निस्सन्देह यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमें 1,107 छन्द हैं। इसमें श्रीकृष्ण की संयोगलीलाओं का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है।

सूरसारावली– यह ग्रन्थ अभी तक विवादास्पद स्थिति में है किन्तु कथावस्तु, भाव, शैली और रचना की दृष्टि से निस्सन्देह यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमें 1,107 छन्द हैं। इसमें श्रीकृष्ण की संयोगलीलाओं का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है।

साहित्यलहरी– 'साहित्यलहरी' में सूरदास जी के 118 दृष्टकूट-पदों का संग्रह है। 'साहित्यलहरी' में किसी एक विषय की विवेचना नहीं हुई है। इसमें मुख्य रूप से नायिकाओं एवं अलंकारों की विवेचना की गई है। कहीं-कहीं पर श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन हुआ है तथा एक-दो स्थानों पर 'महाभारत' की कथा के अंशों की झलक भी मिलती है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त सूरदास जी द्वारा रचित 'गोवर्धन-लीला', 'नाग-लीला', 'पद-संग्रह', 'सू-पचीसी' आदि ग्रन्थ भी प्रकाश में आए हैं, परन्तु सूरदास की ख्याति 'सूरसागर' से ही हुई है।

2. सूरदास जी की भाषा-शैली की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– भाषा-शैली– सूरदास जी की भाषा में कहीं-कहीं अवधी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के प्रयोग भी मिलते हैं, परन्तु भाषा सर्वत्र सरस, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। ब्रजभाषा में जो निखार सूरदास जी के हाथों आया है, वैसा निखार कदाचित् कोई अन्य कवि नहीं दे सका। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन करते समय जन्म से लेकर किशोरावस्था तक का श्रीकृष्ण का चरित्र तो किसी को भी ईर्ष्यालु बनाने की क्षमता रखता है। बाल-हठ, गोचारण, वन से प्रत्यागमन, माखन-चोरी आदि के पदों का लालित्य सूरदास के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

सूरदास ने मुक्तक काव्य-शैली को अपनाया है। कथा-वर्णन में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। अलंकारों की दृष्टि से सूरदास जी के काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, रूपक, दृष्टान्त तथा अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों के प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुए हैं। छन्दों में रोला, छप्पय, सवैया, घनाक्षरी आदि प्रमुख हैं।

भावविभोर और आत्मविस्मृत गोपियों के 'दही ले' के स्थान पर 'कृष्ण ले' की पुकार लगाना, गोपियों का तीर-कमान लिए वनों-उपवनों में 'पिक-चातकों' को बसेरा न ले पाने के हेतु मारा-मारा फिरना, प्रेम की तल्लीनता के ऐसे सजीव उदाहरण सूर-साहित्य के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) अब कैं राखि ..... कृपानिधान।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूरदास जी' द्वारा रचित 'सूरसागर' ग्रन्थ से 'विनय' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में सूरदास जी ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को अत्यधिक कृपालु बताया है। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण अपने भक्त को विकट परिस्थिति में भी मृत्यु से मुक्ति दिलाने में समर्थ हैं। इसीलिए वे उनसे मुक्ति की प्रार्थना करते हैं।

व्याख्या– भक्त(पक्षी के रूप में) भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे भगवान्! इस बार मेरी रक्षा कीजिए। मैं अनाथ (संसाररूपी) वृक्ष की डाल पर बैठा हूँ। नीचे से (मायारूपी) शिकारी ने मेरे ऊपर बाण साध रखा है। उसके डर से मैं भागना चाहता हूँ तो ऊपर मुझ पर झपट पड़ने के लिए (विषय-वासनारूपी) बाज मँडरा रहा है। अब दोनों ओर से मेरे ऊपर यह संकट उपस्थित हुआ है। ऐसे समय में मेरे प्राणों की रक्षा कौन कर सकता है? तब (पक्षीरूपी) भक्त ने भगवान् का स्मरण किया। तत्काल उन्होंने (ज्ञानरूपी) सर्प को भेज दिया। जिसने आकर शिकारी को डस लिया, जिससे उसके हाथ से धनुष की डोरी पर चढ़ा बाण छूट गया, जो जाकर बाज को

लगा। इस प्रकार शिकारी और बाज दोनों मर गए (अर्थात् ज्ञान के द्वारा माया-मोह और समस्त विषय-विकार नष्ट हो गए), जिससे भक्त दोनों ओर से संकट से बच गया। हे दया के भण्डार भगवान्! आपकी जय हो।

काव्य-सौन्दर्य– (1) भक्तप्रवर सूरदास जी जीव की दुरावस्था दर्शाते हुए भगवत्-स्मरण को उससे उबरने का एकमात्र उपाय बताते हैं, जिससे भगवान् कृपा करके उसे ज्ञान प्रदान करते हैं। इस ज्ञान के द्वारा ही माया और विषय-वासनाओं पर विजय पाकर जीव भगवान के निकट पहुँच सकता है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक-गीति। **(4) रस–** शान्त। **(5) छन्द–** गेय-पद। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा, व्यंजना। **(8) अलंकार–** सांगरूप व अन्योक्ति।

(ख) हरि जू की बाल ..... लरखरनि।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूरदास जी' द्वारा रचित 'सूरसागर' ग्रन्थ से 'वात्सल्य' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पद में सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की मनोहारी बाल-शोभा का सुन्दर एवं सरस वर्णन किया है।

व्याख्या– सूरदास जी कहते है कि मैं कृष्ण की बाल-शोभा का वर्णन करता हूँ। वह शोभा करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को भी हरने वाली (अर्थात् उससे भी बढ़कर) है और समस्त सुखों की सीमा है (अर्थात् सुखों की जो ऊँची-से-ऊँची कल्पना की जा सकती है, वह उस सौन्दर्य को देखकर प्राप्त होती है)। उनकी भुजाओं (बाँहों) ने सर्प को, नेत्रों ने कमलों को तथा मुख ने चन्द्रमा को सौन्दर्य की लड़ाई में जीत लिया है; अर्थात् उनकी भुजाओं को सर्प के समान नहीं कहा जा सकता है, वे सर्प से भी अधिक सुन्दर हैं। नेत्र कमल से अधिक सुन्दर हैं। मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर हैं। इसी कारण सर्प विवर (बिलों) में, कमल जल में और चन्द्रमा आकाश में जा छिपे हैं। दूसरे उपमान भी डरकर छिप गए हैं। उनका शरीर बड़ा सुन्दर, कोमल, श्याम वर्ण है, जो अपने अनुरूप आभूषणों से सुशोभित है। उनका शरीर ऐसा लगता है, मानो वह कोई शृंगाररूपी वृक्ष ही हो। सुन्दर शरीर पर आभूषण ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे उस पौधे पर अद्भुत फल लगे हुए हों। आशय यह है कि वे आभूषण सुन्दर शरीर की शोभा को और अधिक बढ़ा रहे हैं। जब शिशु कृष्ण मणिमय आँगन में घुटनों के बल चलते हैं तो उनके पैरों का प्रतिबिम्ब आँगन में झलकने लगता है, जो ऐसा प्रतीत होता है, मानो पृथ्वी कमलों के दोनों में कृष्ण की सुन्दर शोभा को भरकर हृदय में धारण किए है। नन्द-पत्नी यशोदा अपने पुत्र कृष्ण को देखकर अनुभव करती हैं कि उनके अनन्त पुण्यों के फलस्वरूप ही ऐसा बालक उन्हें मिला है। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे हृदय में तो प्रभु की मोहक किलकारियाँ और उनका लड़खड़ाकर चलना बस गया है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कृष्ण का बालरूप ही सूरदास का ईष्ट था, इसलिए वे उनकी शोभा को हृदय में धारण करने की बात कहते हैं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक-गीति। **(4) रस–** वात्सल्य। **(5) छन्द–** गेय-पद। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) अलंकार–** हेतूत्प्रेक्षा (सर्प, कमल और चन्द्रमा का बिल, जल और आकाश में छिप जाना प्रतीत), उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

(ग) ऊधौ मोहि ब्रज ..... पछिताहीं।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूरदास जी' द्वारा रचित 'सूरसागर' ग्रन्थ से 'भ्रमर-गीत' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– उद्धव गोपियों को ज्ञान और योग का सन्देश देने के लिए गए थे, किन्तु वे स्वयं प्रेम और भक्ति के रंग में रँगकर मथुरा पहुँचे। उन्होंने श्रीकृष्ण को ब्रज की सम्पूर्ण स्थिति समझाई और माता यशोदा का समाचार दिया। इस पर श्रीकृष्ण को ब्रज की याद बहुत सताने लगी। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा-

व्याख्या– हे उद्धव! मैं अनेक प्रकार से ब्रज को भुलाने का प्रयत्न करता हूँ, किन्तु ब्रज को किसी भी प्रकार भुला नहीं पाता। यमुना का सुन्दर किनारा, कुंजों की (अलौकिक) छाँव, गायें, उनके बच्चे, दूध दुहने की मटकी और गोशाला में गाय को दुहने के लिए जाना भी मुझसे भुलाया नहीं जाता। बचपन में हम सब ग्वाल-बाल मिलकर कोलाहल करते थे और बाँहों में बाँहें डालकर नाचते थे। यह मथुरा स्वर्णिम नगरी है, यहाँ मणियों और मोतियों की कोई कमी नहीं है, किन्तु ब्रज के सुखों की याद आते ही हृदय उमड़ने लगता है; अर्थात् मेरा मन व्याकुल और उद्वेलित हो उठता है। परिणामस्वरूप मुझे अपने शरीर की सुध-बुध भी नहीं रह जाती। ब्रज में रहकर मैंने अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ कीं। यशोदा और नन्दजी ने मेरी उन सभी नटखट- क्रीड़ाओं को सब प्रकार से सहन किया। सूरदास जी कहते हैं कि इतना कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गए और (ब्रज को छोड़कर मथुरा चले आने पर) पछताने लगे।

काव्य-सौन्दर्य– (1) श्रीकृष्ण के भावुक हृदय के सात्विक भावों की व्यंजना हुई है। (2) ब्रज की स्मृतियों ने श्रीकृष्ण को व्याकुल कर दिया है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** 'यह मथुरा ..... तनु नाहीं' में विरोधाभास; 'कहि-कहि' में वीप्सा; अनुप्रास। **(5) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(6) शब्द-शक्ति–** अभिधा तथा व्यंजन। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) छन्द–** गेयपद। **(9) भावसाम्य–** 'उद्धव-शतक' में रत्नाकरजी ने ब्रज के स्मरण-प्रसंग को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

जमुना कछारनि की, रंग रस-रासनि की,
बिपिन बिहारिनि की, हौंस हुमसावतीं।
सुधि ब्रजबासिनि, दिवैया सुखरासिनि की,
ऊधौ नित हमकौं, बलावन कौं आवतीं।

(घ) हमारैं हरि हारिल ..... मन चकरी।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोपियाँ भ्रमर को सम्बोधित करती हुई, उद्धव को कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का स्वरूप समझाती हैं।

व्याख्या– गोपियाँ कहती हैं कि हे भ्रमर (उद्धव)! श्रीकृष्ण हमारे लिए हरियल पक्षी की लकड़ी (आधार) के समान हैं। जिस प्रकार हरियल पक्षी अपने पंजों में हर समय लकड़ी दबाए रहता है; अर्थात् उसका साथ नहीं छोड़ता है; उसी प्रकार नन्दजी के पुत्र अर्थात् श्रीकृष्ण को हमने अपने हृदय में मन, वचन और कर्म से धारण कर लिया है। अब तो हम जागते-सोते, स्वप्न में, दिन-रात कान्हा-कान्हा की हठ पकड़े रहती है; अर्थात् अब हम हर चेतन-अचेतन अवस्था में कृष्ण-कृष्ण जपती रहती हैं और हम खेदपूर्वक (यहाँ उद्धव पर कटाक्ष है) कहती है कि आपकी (उद्धव की) योग की चर्चा हमें कड़वी ककड़ी के समान लगती है; अर्थात् जिस प्रकार कड़वी ककड़ी चखते ही मुँह कड़वा हो जाता है, उसे और खाने की इच्छा रहती ही नहीं, उसी प्रकार आपका योग सम्बन्धी पहला शब्द सुनते ही हम विरक्त हो उठती हैं, तब पूरी चर्चा सुनना तो हमारे लिए असह्य ही है। सूरदासजी कहते हैं- गोपियाँ उद्धव को और भी छकाते हुए कहती हैं कि हे उद्धव! आप तो हमारे लिए एक ऐसी बीमारी (योग) ले आए हैं जो न तो हमने कभी देखी, न कभी सुनी और न ही यह बीमारी हमें कभी हुई। यह योगरूपी बीमारी तो आप उन्हें ही ले जाकर सौंपिए, जिनके मन चलायमान् हैं। गोपियों के कहने का तात्पर्य यह है कि योग-साधना उनके लिए आवश्यक होती, जिनका चित्त चंचल है। हमने तो प्रभु कृष्ण के स्मरण में चित्त को स्थिर कर लिया है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) सूरदास जी ने ज्ञानयोग की प्रधानता का वर्णन किया है। (2) सूरदास जी के 'भ्रमर-गीत' की यही अनुपम विशेषता है कि गोपियाँ अपनी भीषण प्रहारक परन्तु सुहासपूर्ण तर्क प्रस्तुति से एक ओर योग को अपने लिए अनुपयोगी सिद्ध करती हैं तो लगे हाथों उद्धव को बगलें झाँकने पर मजबूर भी कर देती है। **(3) हारिल–** पक्षी-विशेष, जो हर समय अपने पंजों में सूखी लकड़ी दबाए रहता है। **(4) भाषा–** ब्रजभाषा। **(5) अलंकार–** अनुप्रास एवं उपमा। **(6) रस–** वियोग श्रृंगार। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(8) छन्द–** गेयपद।

(ङ) ऊधौ जोग जोग ..... परछाहीं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद में ब्रज की गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण की भक्ति में निष्ठा व्यक्त करती हैं और योग-साधना के लिए स्वयं को असमर्थ बताती है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव कहती हैं कि हम स्त्रियाँ योग-साधना के योग्य नहीं हैं। हम ज्ञान का सार (तत्व) कैसे जान सकती हैं और उस परम ब्रह्म के ध्यान में भी कैसे जा सकती हैं, जिसका कोई रूप-रंग नहीं है? फिर तुम हमसे उन्हीं नेत्रों को मूँदने के लिए कहते हो, जिनमें हमारे प्यारे श्यामसुन्दर की छवि समायी हुई है। हे भ्रमर (उद्धव)! हमें ऐसी कपटभरी बातें न सुनाओ। हम उन्हें सहन नहीं कर सकतीं। (क्योंकि हमें पता है कि तुम हमारे सरस, सुन्दर श्याम को हमसे चालाकी से लेकर उसके बदले में अपना यह रूखा-सूखा ब्रह्मज्ञान हमारे पल्ले बाँध देना चाहते हो।) तुम हमारे कान चिरवाकर सिर पर जटाजुट बँधवाना चाहते हो। भला यह दु:ख कौन सह सकेगा? हम तो कृष्ण के वियोग की अग्नि में वैसे ही जल रही हैं और तुम हमें शरीर पर चन्दन-लेप लगाने के लिए कहने के स्थान पर भस्म रमाने का उपदेश दे रहे हो और फिर योगीजन जिस ब्रह्म को पाने के लिए भटकते फिरते हैं, वह तो अपने भीतर ही है (जहाँ तक हमारा प्रश्न है, हमें तो योग-साधना की कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि हमें जिनसे मिलना है, वे कृष्ण तो हर क्षण, हर पल हमारे पास ही रहते हैं।) वे उसी प्रकार हमसे अलग नहीं होते, जिस प्रकार परछाईं शरीर से अलग नहीं होती।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गोपियों की सीधी-सादी दलीलें बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी असमंजस में डाल निरुत्तर कर देने वाली हैं। **(2) शैली–** मुक्तक-गीति। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) रस–** वियोग श्रृंगार। **(5) छन्द–** गेय-पद। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) अलंकार–** यमक (जोग योग), उपमा (ज्यौं घटतैं परछाही), रूपक (बिरह-अनल) तथा अनुप्रास।

(च) लरिकाई कौ प्रेम ..... सोवत जागत।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– एक गोपी उद्धव से कहती है कि श्रीकृष्ण से हमारा स्नेह बड़ा पुराना है, वह यूँ ही नहीं छूट सकता।

व्याख्या– हे उद्धव! श्रीकृष्ण से हमारा प्रेम कोई एक-दो दिन का नहीं है, बल्कि वर्षों पुराना है। हमारा और उनका यह प्रेम बचपन से चला आ रहा है, भला यह इतनी आसानी से कैसे छूट सकता है? हम तुम्हें उस ब्रजनाथ कृष्ण के चरित्र के विषय में कहाँ तक बताएँ और कितना बताएँ, उनके साथ बिताया गया एक-एक पल अन्तरात्मा को परमानन्द लुटाने जैसा है। उनकी वह तिरछी भौंहे, वह मनोमुग्धकारी चाल, वह मुस्कान और बाँसुरी के गाने की वह मधुर मन्द ध्वनि, उनका लीलाकारी वेश, उन नन्द के बेटे का वह हँसी-मजाक करते हुए वन से लौटने की छटा आदि मन को परमानन्द की प्राप्ति कराते हैं। मैं उन श्रीकृष्ण के चरण-कमल की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि हमें तुम्हारा निर्गुण की उपासना का संदेश विष के समान लगता है। सूरदास कहते हैं कि मुझे उनकी मोहनी-मूर्ति, सोते अथवा जागते एक क्षण के लिए भी नहीं भूलती है, फिर उसको सदैव के लिए कैसे भूला जा सकता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यहाँ गोपियों के श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को अभिव्यक्ति किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) अलंकार–** अनुप्रास एवं प्रश्न। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्दशक्ति–** अभिधा एवं व्यंजना। **(6) छन्द–** गेयपद।

(छ) निसि दिन बरषत ..... काहैं बिसारे।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों की विरह-दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! श्री कृष्ण के विरह में हमारे नेत्रों से रात-दिन आँसू बरसते रहते हैं। श्याम के जाने के बाद से हम पर तो पूरे साल वर्षा ऋतु ही छाई रहती है (अन्य किसी ऋतु को हम जानती ही नहीं)। (भाव यह है कि श्याम मेघों के चले जाने पर संसार में वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है, किन्तु यहाँ उल्टी बात हुई कि श्यामघन के चले जाने से हर समय वर्षा ऋतु बनी रहती है।) दिन या रात किसी समय हमारी आँखों में काजल नहीं रुक पाता; क्योंकि निरन्तर अश्रुप्रवाह के कारण बहकर वह हमारे गालों को काला कर जाता है और उसे पोंछते-पोंछते हमारे हाथ काले पड़ जाते हैं। आँसुओं की धाराएँ हमारे वक्ष:स्थल पर हर समय बहती रहती है, जिससे हमारी चोली का वस्त्र कभी सूख नहीं पाता। अब तो लगता है कि हमारा सारा शरीर ही अश्रुमय हो गया है और एक पल को भी हमारा क्रोध दूर नहीं होता। वह हमें सताता रहता है। हमको तो इस बात का बड़ा पश्चात्ताप है कि आखिर किस कारण कृष्ण ने गोकुल को बिलकुल भुला दिया।

काव्य-सौंदर्य– (1) यहाँ गोपियों की विरह-व्यथा की अत्यन्त सहज और मार्मिक व्यंजना हुई है। प्रेम के मार्ग के हर पथिक को विरह का दंश झेलने ही पड़ते हैं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक-गीति। **(4) रस–** वियोग शृंगार। **(5) छन्द–** गेयपद। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) अलंकार–** बिना कारण के कार्य होना (बिना मेघों के वर्षा होने) में यहाँ विभावना का चमत्कार है। **(9) भावसाम्य–** इस क्षेत्र में भक्त रवि सूरदास जी से लेकर उर्दू शायरों तक सभी के अनुभव समान है-

कुछ याद करके आँख से आँसू निकल पड़े
मुद्दत के बाद गुजरे जो उनकी गली से हम।

(ज) अखियाँ हरि दरसन ..... सरिता है सूखीं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– सूरदास जी ने इस पद में गोपियों की कृष्ण-भक्ति का भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। उद्धव निर्गुण भक्ति एवं योग की बातें करते हैं, जिन्हें सुनकर गोपियाँ कहती हैं कि उनकी योग की नीरस चर्चा वे नहीं सुनना चाहती; क्योंकि उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा है, जिनके बिना उनके नेत्र प्यासे हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हमारी आँखें श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए व्याकुल हैं। ये श्रीकृष्ण के रूप और प्रेम में पगी हुई हैं। योग की तुम्हारी नीरस बातें सुनकर ये धैर्य कैसे धारण करें? जब ये आँखें श्रीकृष्ण के लौटकर आने की अवधि का एक-एक दिन गिनते हुए टकटकी बाँधे मार्ग की ओर देखकर प्रतीक्षा करती थी, उस समय भी इतनी अधिक दु:खी नहीं हुई थीं, परन्तु अब तुम्हारे इन योग के संदेशों को सुनकर ये अत्यन्त व्याकुल और दु:खी हो उठी हैं। हे उद्धव! हमारी यही प्रार्थना है कि हमें श्रीकृष्ण के उस मुख के एक बार दर्शन करा दो, जिस मुख से वह पत्ते के दोने में दूध दुहकर पिया करते थे। सूरदास जी कहते हैं— गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! हमें योग का उपदेश देकर तुम वैसा ही असंभव कार्य कर रहे हो, जैसे कोई व्यक्ति सूखी नदी की बालू में हठपूर्वक नाव चलाने का प्रयत्न करे, अर्थात् कृष्ण-प्रेम में अनुरक्त हमारे हृदय पर तुम्हारे योग सम्बन्धी उपदेश का प्रभाव पड़ना असंभव है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गोपियाँ श्रीकृष्ण का प्रेम और रूप-रस चाहती हैं, इसलिए वे योग के उपदेश को व्यर्थ मानती हैं। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा **(3) अलंकार–** 'बारक ..... पतूखीं' में स्मरण; 'सूर ..... सूखीं' में निदर्शना; 'ये सरिता हैं सुखी' में रूपकातिश्यायोक्ति। **(4) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(5) शब्दशक्ति–** लक्षणा एवं व्यंजना। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) छन्द–** गेयपद।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूरदास जी' द्वारा रचित 'विनय' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है।

व्याख्या– सूरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार समुद्र के बीच तैरते जहाज पर बैठा कोई पक्षी, कुछ समय के लिए इधर-उधर उड़ता है और पुन: जहाज पर ही आकर बैठ जाता है, वही स्थिति मेरी भी है। मेरा मन भी कुछ समय के लिए इधर-उधर की विभिन्न विषय-वासनाओं में भटकता है, परन्तु पुन: श्रीकृष्ण की भक्ति में ही लीन हो जाता है। उसे केवल श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचकर ही शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती हैं।

(ख) परम गंग को छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य को सांसारिकता में आनन्द की खोज करने के स्थान पर श्रीकृष्ण की भक्ति से प्राप्त आनन्द में ही तृप्त होने का प्रयास करना चाहिए।

व्याख्या– सूरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार कोई प्यास से पीड़ित और बुद्धिहीन व्यक्ति गंगा की धारा के जल से अपनी प्यास बुझाने के स्थान पर, कोई नया कुआँ खोदकर उसके जल से अपनी प्यास बुझाने का प्रयास करता है, उसी प्रकार कुछ बुद्धिहीन व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो श्रीकृष्ण की पावन-भक्ति में तृप्त होने के स्थान पर सांसारिक विषय-वासनाओं से तृप्त होने का प्रयास करते हैं।

(ग) जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि बड़ी उपलब्धि के बाद छोटी उपलब्धि का कोई महत्व नहीं रह जाता।

व्याख्या– सूरदास जी कहते हैं कि जिस भौंरे ने कमल का रस पान किया है, अर्थात् कमल के मकरन्द का स्वाद लिया है; वह भला करील के कसैले फल को क्यों पसंद करेगा। इसी प्रकार जिसे इस बार भगवत् -प्रेम का अमृतरूपी रस चखने का अवसर प्राप्त हो गया है, वह सांसारिक विषय-वासनाओं की पंक (कीचड़) में फँसने का प्रयास कभी नहीं करेगा।

(घ) हमारैं हरि हारिल की लकरी।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूरदास जी' द्वारा रचित 'भ्रमर गीत' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम-भाव प्रदर्शित हुआ है।

व्याख्या– सूरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार हारिल पक्षी को वह लकड़ी अत्यधिक प्रिय होती है, जिसे वह दृढ़ता से पकड़े रहता है, उसी प्रकार गोपियों को भी श्रीकृष्ण हारिल की लकड़ी के समान प्रिय हैं। गोपियों रूपी हारिल पक्षियों ने श्रीकृष्णरूपी लकड़ी को अपने तन-मन में बसा रखा है। वे एक क्षण के लिए श्री कृष्ण को अपने मन से दूर करना नहीं चाहती।

(ङ) सूर स्याम तैं न्यारी न पल-छिन, ज्यौं घट तैं परछाहीं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अत्यधिक अनुराग-भाव व्यक्त हुआ है।

व्याख्या– सूरदास जी का भ्रमर-गीत प्रसंग श्रेष्ठ संकेतात्मक व्यंग्य काव्य है। इस सूक्तिपरक पंक्ति में विरहिणी गोपियाँ श्रीकृष्ण के दूत ज्ञानी उद्धव से कहती हैं कि जिस प्रकार शरीर से उसकी परछाई को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार वे भी श्रीकृष्ण से क्षण भर को भी अलग नहीं हो सकतीं। वे हर घड़ी प्रियतम कृष्ण की ही स्मृति में तल्लीन रहती है, इसलिए वे किसी प्रकार भी निराकार की उपासना को तैयार नहीं हैं।

(च) लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटत?

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में राधा ने उद्धव से कृष्ण के प्रति अपने असीम अनुराग व प्रगाढ़ प्रेम को व्यक्त किया है।

व्याख्या– राधा जी उद्धव से कहती हैं कि श्रीकृष्ण से हमारा बचपन से ही असीम अनुराग रहा है। हम दोनों बहुत दिनों तक परस्पर मिलते रहे हैं और इस दीर्घकालिक सम्पर्क के कारण हमारा प्रेम और भी अधिक प्रगाढ़ हो गया है। हमारा यह प्रेम रूपासक्ति पर आधारित नहीं है, जो केवल रूप का आकर्षण रहने तक ही बना रहता है। हमारा प्रेम तो अत्यन्त प्रगाढ़ एवं स्थायी है, जिस पर पद, धन, रूप आदि का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। फिर आप ही बताइए कि यह अटूट प्रेम किस प्रकार छूट सकता है; अर्थात् यह तो किसी भी दशा में कम नहीं हो सकता।

(छ) कहत कत परदेसी की बात।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद में गोपियों ने उद्धव के समक्ष, मथुरा गए कृष्ण के माध्यम से, परदेशियों की अविश्वसनीयता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– यह पंक्ति सूरदास जी द्वारा रचित एक कूट-पद की पंक्ति है। कृष्ण जब ब्रज से मथुरा (कंस के आमंत्रण पर) जा रहे थे तो उन्होंने गोपियों से पन्द्रह दिनों में ही लौट कर आने का वादा किया था। लेकिन जब कृष्ण ने एक बार ब्रज को छोड़ा तो पुन: कभी वापस नहीं आए। इसी बात की सूचना रूप में यह पंक्ति सूरदास जी द्वारा गोपियों से कहलवाई गई है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमसे उस परदेसी अर्थात् कृष्ण की बात ही क्यों करते हो, क्योंकि परदेसियों की बात पर तो कोई भी विश्वास नहीं करता है।

(ज) मंदिर अरध अवधि बदि हमसौं, हरि आहार चलि जात।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'भ्रमर-गीत' की प्रस्तुत पंक्ति सूर-साहित्य की एक क्लिष्ट-कूट पंक्ति है, जिसमें गोपियाँ उद्धव से कहती है कि—

व्याख्या– श्रीकृष्ण ने हम से वादा किया था कि वे एक पखवाड़े के अन्दर (अर्द्ध मंदिर) अर्थात् आधे महीने में (15 दिन के अन्दर) ही लौटकर आएँगे। परन्तु हरि अर्थात् सिंह, सिंह आहार = सिंह का भोजन = माँस = एक महीना बीत गया है परन्तु वे नहीं लौटे। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने वचन देकर उसे निभाया नहीं है, क्योंकि ये परदेसी विश्वास के योग्य नहीं होते। उनकी कथनी और करनी में अन्तर होता है। इसलिए परदेसियों की बात ही हमसे मत करो।

(झ) मघ पंचक लै गयौ साँवरौ, तातैं अति अकुलात।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति सूरदास जी के भ्रमर-गीत की एक क्लिष्ट कूट पंक्ति है। इसमें गोपियाँ उद्धव के सम्मुख कृष्ण के प्रति अपना रोष प्रकट कर रही हैं।

व्याख्या– 'मघ पंचक' का अर्थ है- मघा से पाँचवाँ नक्षत्र (मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा) अर्थात् चित्रा। यहाँ पर चित्रा का अर्थ चित्त अर्थात् हृदय से है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम हमसे साँवले-सलोने व परदेसी कृष्ण की बात ही मत करो, जो हमारे एकमात्र चित्त को हमसे चुराकर ले गया है। इस चोरी से हम अत्यन्त व्याकुल हैं। अब तुम्हीं बताओ कि क्या बिना चित्त के हम तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की उपासना कर सकती है? यदि ऐसा नहीं हो सकता है तो तुम भूल से भी उस कृष्ण का नाम हमारे सम्मुख मत लो।

(ञ) सूर सुकत हठि नाव चलावत, ये सरिता हैं सूखीं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सूर की गोपियाँ उद्धव के निर्गुण की उपासना के उपदेश को व्यर्थ बताती हुई कहती हैं-

व्याख्या– हे उद्धव आप ज्ञानी पुरुष हैं, फिर भी हमसे अज्ञानियों जैसी बातें कर रहे हैं। संसार का प्रत्येक व्यक्ति यह साधारण-सी बात जानता है कि नाव सदैव ही जल से परिपूर्ण नदियों में चलाई जा सकती है, किन्तु आप हमें निर्गुण की उपासना का उपदेश देकर सूखी नदी में ही नाव चलाने का निरर्थक प्रयास कर रहे हैं। हमारे मन में प्रेम की जो नदियाँ बहती थी, कृष्ण की विरहाग्नि ने उनके प्रेमजल को सुखा दिया है, फिर उन सूखी नदियों में आपकी यह निर्गुणरूपी नाव कैसे चल सकती है। हमें तो यही लगता है कि आप निरा मूर्ख हैं।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न—

1. 'विनय' शीर्षक के अन्तर्गत सूरदास जी ने किस प्रकार भगवान की भक्ति की है?

उ०– 'विनय' शीर्षक के अन्तर्गत सूरदास जी ने अपने अराध्य श्रीकृष्ण को अत्यधिक कृपालु बताया है। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण अपने भक्त को विकट परिस्थितियों में भी मुक्ति दिलाने में समर्थ हैं। इसलिए वे उनकी भक्ति करते हुए मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करते हैं। कवि कहते हैं कि हे भगवन! इस बार आप मेरी रक्षा कीजिए। मुझ पर (जीवात्मारूपी पक्षी) शिकारी ने अपना अविद्यारूपी बाण तान लिया है। उस अविद्यारूपी बाण के भय से मैं ऊपर उड़ जाना चाहता हूँ परंतु ऊपर अहंकाररूपी बाज मँडरा रहा है। मेरे लिए दोनों परिस्थितियाँ दु:खदाई है अब मुझे कौन बचा सकता है? परन्तु जब जीवात्मारूपी पक्षी ने भगवान का स्मरण किया तब मायारूपी शिकारी को ज्ञानरूपी सर्प ने डस लिया तथा उसके हाथ अविद्यारूपी बाण छूटकर अहंकाररूपी बाज को लग गया। कवि सूरदास जी ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति भाव व्यक्त किया है और उन्हें संसाररूपी सागर से पार उतारने वाला जहाज बताया है जो भक्तों को दु:खों से उबारते हैं तथा उनकी समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

2. सूरदास के वात्सल्य वर्णन की विशेषताएँ लिखिए।

उ०– सूरदास जी के वात्सल्य वर्णन की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) इसमें सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की मनोहारी बाल-शोभा का बहुत ही सुंदर एवं सरस वर्णन किया है।

(ii) सूरदास जी ने वात्सल्य के संयोग व वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है।

(iii) सूरदास जी ने वात्सल्यपूर्वक श्रीकृष्ण का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण के शारीरिक अंगों को अनेक उपमाएँ देकर उनका अत्यन्त सजीव व सुंदर वर्णन किया है।

(iv) सूरदास जी ने वात्सल्य वर्णन में प्रतीप, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है।

(v) इसमें सूरदास जी ने गेयपद छन्द का प्रयोग किया है।

(vi) उनकी भाषा ब्रजभाषा थी। सूर की भाषा ब्रज की ठेठ बोली न होकर कुछ साहित्यिकता लिए हुए है।

3. 'भ्रमर-गीत' का सारांश अपने शब्दों मे लिखिए।

उ०– 'भ्रमर-गीत' शीर्षक कवि सूरदास जी के काव्य ग्रन्थ 'सूरसागर' से लिया गया है। जिसमें सूरदास जी ने श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों को समझाने के लिए उद्धव को वृन्दावन भेजने का वर्णन किया है। उद्धव वहाँ से वापस आकर कृष्ण से गोपियों की मार्मिक अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसे सुनकर कृष्ण को भी ब्रज की मधुर स्मृति हो जाती है। वे उद्धव से कहते है कि मुझसे ब्रज की स्मृति नहीं भुलाई जाती। यमुना का किनारा, कुंजों की छाँव, गायें, उनके बच्चे, दूध दुहने की मटकी आदि मुझसे भुला नहीं जाता। बचपन में हम सब ग्वाल-बाल मिलकर कोलाहल करते थे और बाँहों में बाँहें डालकर नाचते थे। यह मथुरा सोने की नगरी है, जिसमें रत्नों और मोतियों के ढेर लगे हैं, किन्तु ब्रज के सुखों की याद आते ही हृदय उमड़ने लगता है। मैंने वहाँ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ की। यशोदा और नंदजी ने मेरी उन सभी नटखट क्रीड़ाओं को सब प्रकार से सहन किया। सूरदास जी कहते हैं कि इतना कहकर प्रभु मौन हो गए और मथुरा आने पर पछताने लगे।

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि गोपाल के बिना ये कुंजे हमारी बैरिन हो गई है। जब श्रीकृष्ण यहाँ थे तब ये लताएँ शीतल लगती थी परंतु अब अग्नि की ज्वाला की तरह हमारे शरीर को जला रही है। यमुना का बहना, पक्षियों की ध्वनि, कमल के फूलों पर भौंरों का गूंजना सब व्यर्थ है। हे उद्धव तुम जाकर श्रीकृष्ण से कहना कि उनके विरह में कामदेव ने हमें मारकर अशक्त कर दिया है और उनकी राह देखते-देखते हमारी आँखों की दृष्टि शक्ति भी क्षीण हो गई है।

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हमारे लिए श्रीकृष्ण हरियल पक्षी की लकड़ी के समान है जिसे हमने मन, वचन और कर्म से दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा है। हम रात-दिन, जागते-सोते सपने में भी बस कृष्ण-कृष्ण की रट लगाते रहते हैं। तुम्हारी योग चर्चा हमें कड़वी ककड़ी के समान अप्रिय लगती है। योग के रूप में तुम हमारे लिए ऐसा रोग ले आए हो जिसके बारे में हमने कभी नहीं सुना है। यह बीमारी तो आप उन्हें ले जाकर सौंपिए जिनके मन चलायमान् हैं।

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हम योग-साधना के योग्य नहीं है। हम ज्ञान का सार कैसे जान सकती हैं और उस परम ब्रह्म को ध्यान में भी कैसे ला सकती है। तुम हमसे उन नेत्रों को बंद करने को कह रहे हो, जिनमें भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति समाई हुई है। हम छल-प्रपंच से भरी हुई योग की ऐसी कहानी सुनने में असमर्थ हैं। तुम शीतल चंदन का त्याग करके अंगों पर भस्म लगाने को कह रहे हो। योगीजन जिस ब्रह्म को पाने की आशा में भ्रमित हो रहे हैं, वह वृक्ष तो हमारे भीतर ही निवास करता है।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि श्रीकृष्ण से हमारा प्रेम कोई एक-दो दिन का नहीं है, बल्कि वर्षों पुराना है, भला यह इतनी आसानी से कैसे छूट सकता है। हम तुमसे ब्रज के स्वामी श्रीकृष्ण का क्या वर्णन करे? वे तो अपनी दृष्टिमात्र से ही दूसरों का चित्त लूट लेते थे। उनका नटवर भेष धारण करके हँसना, क्रीडा करना हमारे मन में बस गया है। हम उन श्रीकृष्ण के चरणों की सौगन्ध खाकर कहती है कि यह (योग का) संदेश मुझे विष के समान लगता है। कृष्ण की यह मोहनी सूरत सोते-जागते हमसें किसी भी क्षण भुलाई नहीं जाती। गोपियाँ उद्धव को उलाहना देती हुई कहती है कि तुम हमसे उस परदेशी (कृष्ण) की बात क्या करते हो? वो हमसे पन्द्रह दिनों में आने का वादा करके गए थे परंतु अब महीने बीते जा रहे हैं। उनके वियोग में दिन-रात हमें युगों के समान लंबे लग रहे हैं। श्याम चुपके से हमारा चित्त भी अपने साथ चुराकर ले गया है। अब तो विष खाकर मरने के अतिरिक्त हमारे पास कोई उपाय नहीं है।

श्रीकृष्ण के वियोग में हमारे नेत्रों से दिन-रात अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। उनके जाने के बाद हम पर वर्षभर वर्षा ऋतु छाई रहती है। हमारी आँखों में काजल नहीं रुक पाता, क्योंकि निरन्तर अश्रुप्रवाह से वह हमारे मुख को काला कर देता है। अश्रुओं की धारा के कारण हमारी चोली का वस्त्र भी नहीं सूखता। अब तो हमारा शरीर की अश्रुमय हो गया है। हमको इस बात का बड़ा दु:ख है कि कृष्ण ने गोकुल को क्यों भुला दिया। गोपियाँ उद्धव से कहती है कि तुमने ब्रज आकर बहुत अच्छा किया। क्योंकि विधाता ने जिन हृदयरूपी घड़ों को कच्चा बनाया था उनको तुमने पका दिया। श्रीकृष्ण के मथुरा से जाने के बाद भी ये शरीररूपी घड़े हमारे अश्रुओं के वर्षा जल से भी नहीं गल पाए थे। अब तुमने ब्रज आकर सारे ब्रज को आँवा बना दिया, जिसमे हमारे शरीररूपी सारे घड़े पक गए। सूरदास जी कहते हैं-गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! ये तो उन्हीं नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण के लिए सुरक्षित है, जब भी वे लौटेंगे, उन्हें ये घड़े पूर्णत: सुरक्षित मिलेंगे।

हमारी आँखें कृष्ण के दर्शन को आतुर है। जो कृष्ण के लौटने की बाट देख रही है। ये आँखें कभी इतनी पीड़ित नहीं हुई जितनी तुम्हारी योग-संदेशों को सुनकर व्याकुल और दु:खी हुई हैं। हे उद्धव! हमें एक बार उन कृष्ण के दर्शन करवा दो, जो दोने में गाय का दूध दुहकर पिया करते थे। जिस प्रकार सूखी नदी की बालू में नाव नहीं चल सकती उसी प्रकार हमारे हृदय पर तुम्हारे शुष्क उपदेशों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता सकता।

4. 'भ्रमर-गीत के' आधार पर सूरदास जी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– सूरदास जी की काव्यगत विशेषताएँ निम्न हैं-

भावपक्ष की विशेषताएँ–

भगवान के लोकरंजक रूप का चित्रण– सूरदास जी ने भगवान के लोकरंजक रूप को लेकर उनकी लीलाओं का गान किया है। सूरदास जी ने कृष्ण की बाल्यावस्था और किशोरावस्था की लीलाओं का बड़ा हृदयकारी गायन किया है।

शृंगार के वियोग पक्ष का चित्रण– सूरदास जी ने मार्मिकतापूर्वक वियोग के चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनमें गोपिकाओं के अन्य (एकनिष्ठ) विरह-वेदना के चित्र दिखाई पड़ते है। प्रेम की प्रगाढ़ता से ऐसा विरह उत्पन्न होता है जिसका अनुभव कोई संवेदनशील रसमग्न हृदय ही कर सकता है।

प्रकृति चित्रण– सूरदास जी ने गोपियों के विरह-वर्णन में प्रकृति का प्रयोग सर्वाधिक मात्रा में किया है। 'भ्रमर-गीत' शीर्षक में भी गोपियाँ प्रकृति के माध्यम से उद्धव को अपनी मनोस्थिति बताती है।

प्रेम की आलौकिकता– 'भ्रमर-गीत' में उद्धव गोपियों को निराकार ब्रह्म का उपदेश देते हैं, परंतु वे किसी भी प्रकार उद्धव के दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती। गोपियाँ अपने तर्कों से उद्धव को परास्त कर देती है और श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम का परिचय देती है।

कलापक्ष की विशेषताएँ–

भाषा– सूरदास जी का संपूर्ण काव्य ब्रजभाषा में है। भ्रमर-गीत में भी उन्होंने इसी भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में सरसता, कोमलता, और प्रवाहमयता सर्वत्र विद्यमान है। सूरदास जी की भाषा ब्रज की ठेठ चलती बोली न होकर कुछ साहित्यिक है, जिसमें दूसरे प्रदेशों के कुछ प्रचलित शब्दों के साथ-साथ अपभ्रंश के शब्द भी मिश्रित है।

शैली– सूरदास जी की शैली गीति-शैली है। भ्रमर-गीत में भी इन्होंने इसी शैली को अपनाया है। इनके गेय पदों में असाधारण संगीतात्मकता है, जो उनकी भाषा के माधुर्य के साथ मिलकर हृदय को मोह लेती है।

अलंकार-विधान– भ्रमर-गीत में सूरदास जी ने स्मरण, विरोधाभास, वीप्सा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति, उपमा, यमक, रूपक, श्लेष, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

छन्द-विधान– सूरदास जी ने भ्रमर-गीत में गेयपद छन्द का प्रयोग किया है।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''अब कैं राखि ..... कृपानिधान।।'' पंक्तियों में निहित रस तथा अलंकार लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने शांत एवं भक्ति रस तथा अन्योक्ति, सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति तथा पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार का प्रयोग किया है।

2. ''हरि जू की ..... लखरनि।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द तथा अलंकार का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में गेयपद छन्द तथा प्रतीप, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. ''ऊधौ मोहिं ..... पछिताहीं।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द तथा रस का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में गेयपद छन्द तथा विप्रलम्भ शृंगार रस प्रयुक्त हुआ है।

4. ''ऊधौ जोग ..... परछाहीं।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार, रस तथा छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में यमक, रूपक, उपमा, अनुप्रास अलंकार, वियोग शृंगार रस तथा गेयपद छन्द का प्रयोग हुआ है।

5. ''लरिकाई कौ ..... जागत।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा छन्द लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वियोग शृंगार रस तथा गेयपद छन्द है।

6. ''ऊधौ भली ..... कर लाए।।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– (1) कच्चे घड़ों को पकाने की क्रिया का सांगरूपक द्वारा चित्रण किया गया है। (2) महाकवि सूर ने इस पद में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम के महत्व का निरूपण किया है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) शैली–** मुक्तक-गीति। **(5) रस–** वियोग शृंगार। **(6) छन्द–** गेय-पद। **(7) अलंकार–** सांगरूपक और श्लेष। **(8) गुण–** प्रसाद और माधुर्य।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

4 भरत-महिमा, कवितावली, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका
(गोस्वामी तुलसीदास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—123 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न—

1. तुलसीदास जी का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में सन् 1497 ई० में माना गया है। इनके जन्म स्थान एवं जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

अन्ततः साक्ष्यों के आधार पर इनका जन्म संवत् 1554 वि० (सन् 1497 ई०) सही प्रतीत होता है। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद हैं। 'मूल गोसाईंचरित' एवं 'तुलसीचरित' में इनका जन्म-स्थान राजापुर बताया गया है। शिवसिंह सेंगर और रामगुलाम द्विवेदी भी गोस्वामी जी का जन्म-स्थान राजापुर ग्राम को मानते हैं। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान 'सोरों' नामक स्थान को मानते हैं, जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि 'सूकरछेत' को भ्रमवश 'सोरों' मान लिया गया है। ('सूकरछेत्र' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है)।

इनका जन्म श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। जन्म के समय ही इनके मुख में दाँत थे। जन्म के समय ये रोये नहीं, बल्कि इनके मुख से 'राम' शब्द उच्चरित हुआ, जिससे इनका नाम 'रामबोला' पड़ गया। जन्म के दूसरे ही दिन इनकी माँ 'हुलसी' का निधन हो गया। अकल्याण का सूचक मानकर इनके पिता (आत्माराम दूबे) ने इन्हें त्याग दिया था। इनका पालन-पोषण 'चुनियाँ नामक दासी ने किया। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई, जिससे बालक तुलसीदास अनाथ हो गए। अनाथ तुलसी को स्वामी नरहरिदास जैसे गुरु का वरदहस्त प्राप्त हो गया। तुलसीदास गुरु जी से जो भी सुन लेते थे, वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाता था।

'रत्नावली' नामक रूपवती कन्या से इनका विवाह हुआ। एक बार वह मायके गई हुई थी। तुलसीदास भी वहीं जा पहुँचे। उनकी पत्नी ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा- जितनी आसक्ति तुम्हें मेरे इस शरीर के प्रति है, उससे आधी भी यदि ईश्वर के प्रति होती, तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाता। ये शब्द तुलसीदास को लग गए। वे तुरन्त वहाँ से चल दिए और प्रयाग जाकर गृहस्थ वेश का परित्याग करके साधु बन गए।

काशी में प्रहलाद घाट पर ये एक ब्राह्मण के घर रहने लगे, जहाँ उनमें कवित्व शक्ति उत्पन्न हुई। वे संस्कृत में पद्य रचना करने लगे, परन्तु उनके लिखे सभी पद्य रात्रि में लुप्त हो जाते थे। एक दिन तुलसीदास को स्वप्न में शिवजी ने कहा- 'तुम अयोध्या जाकर हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' तब ये काशी से अयोध्या आ गए। संवत् 1631 ई० में रामनवमी के दिन तुलसीदास जी ने अवधी भाषा में 'श्रीरामचरितमानस' की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात माह और छब्बीस दिन में यह महाकाव्य पूर्ण हुआ। जनश्रुतियों के आधार पर तुलसीदास जी अब असीघाट पर रहते थे, तब एक दिन 'कलियुग' मूर्त रूप धारण करके उनके पास आया व उन्हें डराने लगा। तुलसीदास ने हनुमान जी का ध्यान किया तो हनुमान जी ने इन्हें विनय के पद रचने के लिए कहा; तब इन्होंने 'विनय-पत्रिका' की रचना की। संवत् 1680 वि० (सन् 1623 ई०) में श्रावण मास की कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को असीघाट पर 'राम' नाम का जाप करते हुए तुलसीदास जी परम तत्त्व में विलीन हो गए। इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

इनके निधन की तिथि अधिकतर विद्वानों द्वारा 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्रावण कृष्णा तीज शनि' मानी गई है।

रचनाएँ– श्रीरामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली, दोहावली, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, वैराग्य-संदीपनी, बरवै रामायण, रामाज्ञा-प्रश्नावली, हनुमानबाहुक तथा रामललानहछू आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

2. तुलसीदास जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– तुलसी ने ब्रज एवं अवधी दोनों ही भाषाओं में रचनाएँ कीं। उनका महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' अवधी भाषा में लिखा गया है। विनय-पत्रिका, गीतावली और कवितावली में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा के प्रभाव में विशेष वृद्धि हुई है। तुलसी ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। 'श्रीरामचरितमानस' में प्रबन्ध शैली, 'विनय-पत्रिका' में मुक्तक शैली तथा 'दोहावली' में कबीर के समान प्रयुक्त की गई साखी

शैली स्पष्ट देखी जा सकती है। यत्र-तत्र अन्य शैलियों का प्रयोग भी किया गया है। तुलसी ने चौपाई, दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, बरवै, छप्पय आदि अनेक छन्दों का प्रयोग किया है।

तुलसी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज-स्वाभाविक रूप में किया गया है। इन्होंने अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिपेक, अनन्वय, श्लेष, सन्देह, असंगति एवं दृष्टान्त अलंकारों के प्रयोग सर्वाधिक मात्रा में किए हैं। तुलसी जी के काव्य में विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। यद्यपि उनके काव्य में शान्त रस प्रमुख है, परन्तु शृंगार रस की अद्भुत छटा भी दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त करुण, रौद्र, वीभत्स, भयानक, वीर, अद्भुत एवं हास्य रसों का भी प्रयोग किया गया है। तुलसी का काव्य गेय है। इसमें संगीतात्मकता के गुण सर्वत्र विद्यमान है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ कीजिए-

(क) चलत पयादें ..... कलपतरू जामा।।

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य से 'भरत महिमा' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– भरत जी छोटे भाई शत्रुघ्न और अयोध्यावासियों के साथ रामचंद्र जी को वन से वापस लौटा लाने के लिए पैदल ही चले जा रहे हैं। मार्ग की वनवासिनी स्त्रियाँ जब उनको देखती हैं तो वे अपने भाग्य को सराहने लगती है, जो कि उन्हें भरत जैसे पवित्र और पावन भाई के दर्शन हुए। इन पद्यों में इसी का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या– वनवासिनी स्त्रियाँ परस्पर चर्चा करती हुई कहती हैं कि भरत जी अपने पिता द्वारा दिए गए राज्य को त्यागकर पैदल ही कन्द-मूल फल खाते हुए श्रीरामचंद्र जी को मनाने के लिए जा रहे हैं। उन भरत जी के समान भला आज कौन है? अर्थात् उनके समान त्यागी, अनुरागी, विरागी और भगवान् का भक्त और कौन हो सकता है?

स्त्रियाँ कहती हैं कि भरत जी का भ्रातृत्व-भक्ति से परिपूर्ण आचरण बड़ा पावन है, उसको कहने और सुनने से व्यक्ति के समस्त दु:ख और दोष दूर हो जाते हैं। हे साख! उनके विषय में जो कुछ और जितना भी कहा जाए, वह थोड़ा ही है। श्रीराम के भाई भरत के जैसा भाई भला कोई अन्य कैसे हो सकता है? अर्थात् उनके जैसा इस संसार में कोई नहीं है। छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी को देखकर हम सब भी उन सौभाग्यशाली स्त्रियों में सम्मिलित हो गई हैं, जिन्होंने उनके दर्शन करके स्वयं को धन्य कर लिया है। इस प्रकार भरत जी के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर वे सब स्त्रियाँ अपने मन में पछताती हैं और कहती हैं कि कैकेयी जैसी माता भरत जैसे पुत्र योग्य नहीं है। कोई स्त्री कहती है कि इसमें रानी कैकेयी का कोई दोष नहीं है, यह सब तो विधाता का किया हुआ है, जो कि हमारे भी अनुकूल है, तभी तो हमें उनके दर्शन हो पाए हैं। अन्यथा कहाँ हम लोक और वेद की मर्यादा से हीन, निम्न-कुल तथा कर्म दोनों से मलिन एवं तुच्छ स्त्रियाँ हैं, जो कि वन्य प्रान्त के बुरे गाँवों में निवास करती हैं और कहाँ यह महान् पुण्यों के परिणामस्वरूप उनके पावन दर्शन। ऐसा ही आनन्द और आश्चर्य उस वन्य प्रान्त के प्रत्येक गाँव में हो रहा है, मानो रेगिस्तान में कल्पतरु उग आया है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) भरत जी की भ्रातृत्व-भक्ति की पावनता को व्यक्त करने में तुलसीदास जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। **(2) भाषा–** अवधी। **(3) शैली–** गेय प्रबंधात्मक। **(4) अलंकार–** अनुप्रास और उत्प्रेक्षा। **(5) रस–** शान्त। **(6) छन्द–** दोहा एवं चौपाई।

(ख) सनमानि सुर ..... स्नेह जला।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में भरत के आगमन से वन्य-जीवन में मची व्याकुलता का सुन्दर वर्णन किया गया है।

व्याख्या– श्रीराम प्रात:स्नान के पश्चात् देवताओं और मुनियों की वन्दना करके बैठ गए और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि उत्तर दिशा के आकाश में धूल छाई है तथा उस दिशा से पक्षी और हिरन आदि जीव अत्यधिक व्याकुल होकर प्रभु के आश्रम में भागे चले आ रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह सब देखकर प्रभु राम इसका कारण जानने के लिए अपने स्थान से उठ खड़े हुए और उनका मन आश्चर्यचकित हो गया। उसी समय कोल-भीलों आदि ने आकर सब समाचार कहे कि भरत जी सेना सहित उनसे मिलने आ रहे हैं।

कोल-भीलों के ये सुन्दर वचन सुनकर श्रीराम जी का मन आनन्द से भर गया तथा तन पुलकित हो गया। साथ ही श्रीराम जी के शरद्- ऋतु के कमल के समान सुन्दर नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए।

काव्य-सौन्दर्य– (1) वन्य जीवन की व्याकुलता का स्वाभाविक और चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है। (2) श्रीराम जी के भ्रातृ-प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** गेय प्रबन्धात्मक। **(5) अलंकार–** अनुप्रास। **(6) रस–** शान्त। **(7) छन्द–** हरिगीतिका एवं सोरठा।

(ग) भरतहि होइ ..... बिनसाइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ भरत जी के निर्लिप्त स्वभाव के विषय में श्रीराम जी का दृढ़ विश्वास व्यक्त हुआ है।

व्याख्या– अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने वाला। क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसागर नष्ट हो सकता (फट सकता) है? अर्थात् अयोध्या का राज्य भरत जी के लिए तुच्छ वस्तु है। उसे प्राप्त करके भरत को अहंकार नहीं हो सकता।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रस्तुत अंश में भरत का महिमामय चरित्र दर्शाया गया है। (2) श्रीराम जी का भरत पर अविचल विश्वास व्यक्त हुआ है। **(3) भाषा–** अवधी। **(4) शैली–** प्रबन्ध-काव्य की वर्णनात्मक शैली। **(5) छन्द–** दोहा। **(6) रस–** शान्त। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) अलंकार–** अनुप्रास और दृष्टान्त।

(घ) मिलि सपेम ..... प्रनामु करि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लक्ष्मण एवं सीता से भरत, शत्रुघ्न, केवट और गुरुओं के मिलने का मनोरम चित्रण किया गया है।

व्याख्या– श्रीराम अत्यन्त प्रेम के साथ अनुज शत्रुघ्न से मिलकर फिर केवट से प्रेमसहित मिले। साथ ही भरत जी प्रणाम करते हुए लक्ष्मण जी से अत्यधिक प्रेम के साथ मिले।

भरत जी से गले मिलने के उपरान्त लक्ष्मण जी अपने छोटे भाई शत्रुघ्न से अत्यन्त उमंग के साथ मिले और फिर उन्होंने बहुत सम्मान से निषादराज को अपने गले से लगाया। तदुपरान्त दोनों भाइयों भरत और शत्रुघ्न ने वहाँ उपस्थित मुनिगणों की वन्दना की और अभीप्सित आशीर्वाद प्राप्त करके अत्यधिक आनन्द प्राप्त किया। फिर भरत जी ने छोटे भाई शत्रुघ्न के साथ प्रेम में उमगकर अत्यधिक अनुराग और श्रद्धा के साथ सीता जी के चरण-कमलों की धूल को अपने सिर पर धारण करके उन्हें बार-बार प्रणाम किया। तब सीता जी ने प्रणाम करते दोनों भाइयों को उठाकर अपने कर-कमलों से उनके सिर का स्पर्श करके अपने पास बैठाया और उन दोनों को उनके मन के अनुरूप आशीष प्रदान किया। उनके स्नेह में मग्न दोनों भाइयों को अपने शरीर की सुध-बुध ही नहीं रही। सीता जी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर उनके मन की शंकाएँ और भय समाप्त हो गए और वे सब प्रकार से निश्चित हो गए कि राम-सीता तथा लक्ष्मण उनसे क्रुद्ध नहीं है। उस समय न तो किसी ने कुछ कहा और न ही किसी ने कुछ पूछा। सबके मन केवल प्रेम से परिपूर्ण थे एवं अपनी गति से रहित थे। उसी समय केवट ने धीरज धारण करते हुए अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके श्रीराम जी से विनती की।

काव्य सौन्दर्य– (1) 'प्रेम भरा मन निज गति छूँछा' के द्वारा तुलसीदास जी ने मनों को अपनी गति से रहित दिखाकर चित्रकूट में उपस्थित लोगों को प्रेम-भावना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। **(2) भाषा–** अवधी। **(3) शैली–** गेय प्रबन्धात्मक शैली। **(4) अलंकार–** 'पद पदुम परागा', 'कर कमल परसि' में रूपक तथा सम्पूर्ण पद्य में अनुप्रास। **(5) रस–** संयोग-शृंगार। **(6) छन्द–** दोहा एवं चौपाई।

(ङ) नाथ-नाथ ..... को जग माहीं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में उस समय का मनोहारी वर्णन हुआ है, जब केवट से श्रीराम ने यह सुना कि उनसे मिलने के लिए माताएँ, गुरुजन और अन्य नगर-निवासी भी आए हैं तो श्रीराम यह सुनकर उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ते हैं।

व्याख्या– केवट ने श्रीराम से विनती की कि हे प्रभु! मुनियों के स्वामी मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी के साथ माताएँ, नगर-निवासी, सेवक, सेनापति और सभी मंत्री आपके वियोग से व्याकुल होकर आपसे मिलने आए हैं।

केवट के मुख से गुरुओं के आगमन की बात सुनकर शील के समुद्र श्रीराम शत्रुघ्न को सीता जी के पास छोड़कर, धीरता और धर्म की धुरी एवं दीनदयालु श्रीराम उसी समय अत्यधिक वेग के साथ उनसे मिलने के लिए चल पड़े। गुरु वशिष्ठ जी को देखकर छोटे भाई लक्ष्मण सहित प्रभु श्रीराम प्रेम से भरकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने लगे। तब मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दौड़कर उन्हें गले से लगा लिया। इस प्रकार वे अत्यधिक प्रेम से उमंगकर दोनों भाइयों से मिले। उनके प्रेम से पुलकित केवट ने अपना नाम लेकर दूर से ही उन्हें दण्डवत प्रणाम किया। केवट को राम का मित्र जानकर महर्षि वशिष्ठ जी उससे बरबस ऐसे मिले, मानो उन्होंने भूमि पर लोटते हुए प्रेम को उठाकर अपनी भुजाओं से समेट लिया हो। भगवान राम की भक्ति समस्त मंगलों की मूल (जड़) है, इस प्रकार से सराहना करते हुए देवता लोग आकाश से फूलों की वर्षा करने लगे और कहने लगे कि इस केवट के समान नीच कोई नहीं है और इन मुनि वशिष्ठजी के समान इस संसार में कोई श्रेष्ठ नहीं है, फिर भी प्रभु की भक्ति के परिणामस्वरूप वह नीच केवट वशिष्ठजी के प्रेम का कृपामात्र बन गया।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रभु राम की भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि उनकी भक्ति के द्वारा कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है। उनकी भक्ति में ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है। **(2) भाषा–** अवधी। **(3) शैली–** गेय प्रबन्धात्मक शैली। **(4) अलंकार–** रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास। **(5) रस–** शान्त एवं भक्ति। **(6) छन्द–** दोहा एवं चौपाई। **(7) गुण–** प्रसाद।

(च) बालधी बिसाल ..... नगर प्रजारी है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'कवितावली' ग्रन्थ से 'कवितावली' 'लंका दहन' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस अवतरण में तुलसीदास जी ने हनुमान जी द्वारा किए गए लंका-दहन के भयानक दृश्य का सजीव वर्णन किया है।

व्याख्या– हनुमान जी की विशाल पूँछ से निकलती हुई भयंकर अग्नि की लपटों का समूह ऐसा होता था, मानो लंका को निगलने के लिए काल ने अपनी जिह्वा फैला दी हो अथवा आकाश-गंगा में अनेक पुच्छल तारे भरे हुए हों अथवा वीर रस ने स्वयं वीर का रूप धारण करके अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली हो। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह इन्द्र का धनुष है या बिजलियों का समूह है या सुमेरु पर्वत से अग्नि की भयंकर नदी प्रवाहित हो चली है। हनुमान जी के उस विकराल रूप को देखकर निशाचर और निशाचरियाँ व्याकुल होकर कहने लगीं कि पहले तो इस वानर ने अशोक-वाटिका को उजाड़ा था और अब नगर को जला रहा है। अब भगवान् ही हमारा रक्षक है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) हनुमान जी पूँछ से निकलती हुई आग की लपटों का सुन्दर चित्रण किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** भयानक। इस पद में जितने अप्रस्तुत लाए गए हैं, उन सबमें सुरेस चाप को छोड़कर रूप-सादृश्य के साथ-साथ संहारक-धर्म भी विद्यमान है, जिससे भयानक रस और भी पुष्ट हो जाता है। **(5) छन्द–** घनाक्षरी। **(6) गुण–** ओज। **(7) अलंकार–** उत्प्रेक्षा से पुष्ट सन्देह अलंकार, मानवीकरण (बीररस बीर तरवारि-सी उधारी है) तथा अनुप्रास।

(छ) हाट, बाट, कोट ..... न लागिहैं''।।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने लंका-दहन के समय लंका में मचे हा-हाकार का मनोरम वर्णन किया है।

व्याख्या– हनुमान् जी ने बाजार, मार्ग, किले, अटारी, घर, दरवाजे एवं गली-गली में दौड़-दौड़कर भयंकर आग प्रज्जवलित कर दी। उस आग से पीड़ित होकर सब दु:खभरी आवाज से एक-दूसरे को सहायता के लिए पुकारते हैं, किन्तु वहाँ कोई किसी को नहीं सँभाल रहा, सब अपनी-अपनी रक्षा करने में लगे हैं। जो जहाँ है वह वहीं व्याकुल होकर अपनी जान बचाने के लिए भाग चला है। हनुमान जी बार-बार अपनी पूँछ को घुमाकर झाड़ते हैं, जिससे चिंगारियाँ बूँदों के समान झड़ रही हैं, मानो वे लंका को पिघलाकर उसकी चाशनी बनाकर उन बूँदियों को उसमें पागेंगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि लंका की ऐसी दशा को देखकर राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहने लगीं कि अब लंका में कोई भी राक्षस चित्र के भी वानर से छेड़छाड़ नहीं करेगा।

काव्य-सौन्दर्य– (1) लंका-दहन के समय की व्याकुलता का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** पद और स्वर मैत्री के साथ-साथ अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति। **(5) रस–** भयानक। **(6) छन्द–** घनाक्षरी। **(7) गुण–** ओज।

(ज) बीथिका बाजार प्रति ..... जाहि रोकिए''।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद में लंकावासियों के मन में व्याप्त भय का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– गलियों, बाजारों, अटारियों, घरों, दरवाजों तथा दीवारों पर सर्वत्र वानर-ही-वानर दृष्टिगोचर हो रहे है। नीचे-ऊपर और दिशा-विदिशा में सर्वत्र वानर-ही-वानर दिखाई पड़ते हैं, मानो तीनों लोक वानरों से भर गए हों। भयवश जब आँखें बन्द करते हैं तब हृदय में वानर दिखाई देते हैं और जब हृदय में वानर को देखकर आँखें खोलते हैं तो सामने भी वानर ही खड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। भयभीत होकर जहाँ कहीं दौड़ जाते हैं, वहाँ वानर के अतिरिक्त और कुछ भी होगा, यह कौन कह सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि तब तो हमारा कहना किसी ने नहीं माना; जिस-जिसको रोकते थे, वही चिढ़ जाता था; अर्थात् जब हम यह कहते थे कि यह कोई साधारण वानर नहीं, अपितु रामदूत है, तो कोई सुनता ही नहीं था। अब यह विपत्ति उसी मूर्खता का दुष्परिणाम है।

काव्य सौन्दर्य– (1) लंका में हनुमान जी का आतंक इतने भयंकर रूप में फैला हुआ था कि निशाचरों को सर्वत्र वानर-ही-वानर दृष्टिगत होते थे। कवि को हनुमान जी द्वारा फैलाए गए आतंक के चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** भयानक। **(5) गुण–** ओज। **(6) छन्द–** घनाक्षरी। **(7) अलंकार–** अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा, वीप्सा और अतिशयोक्ति।

(झ) मेरो सब पुरुषारथ ..... जानि प्रचारे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'गीतावली' ग्रन्थ से 'गीतावली' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में लंका-युद्ध के समय लक्ष्मण के मेघनाद-शक्ति लग जाने पर श्रीराम के विलाप और उनकी मार्मिक दशा का चित्रण हुआ है।

व्याख्या– श्रीराम एक सामान्य व्यक्ति के समान विलाप करते हुए उपस्थित जनों के समक्ष कहते हैं कि मेरा संपूर्ण पुरुषार्थ

थक चुका है। विपत्ति को बाँटनेवाली भाईरूपी भुजा (लक्ष्मण) के बिना अब मैं किसका विश्वास करूँ? वे सुग्रीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे सुग्रीव! सुनो। मैं सच कहता हूँ कि मुझसे विधाता ने मुँह फेर लिया है। इसीलिए इस विपरीत समय में, जबकि युद्ध का संकट उपस्थित है, मैंने लक्ष्मण जैसे भाई को खो दिया है। अब क्या होगा? सब वानर तो वनों और पर्वतों पर चले जाएँगे और मैं अपने भाई का साथी बन जाऊँगा; अर्थात् मेरी भी मृत्यु हो जाएगी। यह सोचकर मेरी छाती भर आती है कि अब उस विभीषण का क्या होगा, जिसे मैंने राजा बनाने का वचन दिया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीराम के करुण वचनों को सुनकर सारे भालू और वानर हृदय से दु:खी हो गए। तब जाम्बवान् ने अवसर को पहचानकर हनुमान जी को बुलाया और उनसे विचार-विमर्श किया।

काव्य-सौन्दर्य– (1) श्रीराम के भ्रातृ-प्रेम और उनकी विरहजनित दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। (2) श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप और उनकी वचनबद्धता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई हैं। **(3) भाषा–** शुद्ध, साहित्यिक, मधुर व प्रसादयुक्त ब्रजभाषा। **(4) रस–** करुणा। **(5) अलंकार–** अनुप्रास व रूपक। **(6) गुण–** माधुर्य। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(8) छन्द–** गेयपद।

(ञ) हृदय-घाउ ..... खीरै-नीरै।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– संजीवनी बूटी के प्रभाव से चेतना प्राप्त करके उठे लक्ष्मण जी अपने स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता प्रकट करने वालों से कहते हैं कि मुझे अपने तन के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं है और न ही किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव हो रहा है। यह सभी प्रकार का अनुभव श्रीराम को हो रहा होगा। आप लोग उन्हें से पूछें।

व्याख्या– संजीवनी बूटी के प्रयोग से सचेत होने पर जब लक्ष्मण जी से उनकी पीड़ा आदि के विषय में पूछा गया तो उन्होंने प्रेम से पुलकित हो शरीर के कष्ट को भूलकर कहा कि मेरे हृदय में तो केवल घाव ही हैं, उनकी पीड़ा तो रघुनाथ जी को है। जैसे तोते से कोई पाठ के अर्थ की चर्चा करे, वैसे ही आप लोग बार-बार मुझसे क्या पूछते हैं? हीरे के द्वारा शोभा, सुख, हानि और लाभ— ये सब तो राजा को ही होते हैं, हीरे की तो केवल कान्ति और कीमत ही होती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि लक्ष्मण जी के ये वचन सुनकर बड़े-बड़े धैर्यवान भी धैर्य धारण नहीं कर सकते। श्रीराम और लक्ष्मण के प्रेम की उपमा दूध और पानी से भी कैसे दी जाए जो मिलकर एकमेक हो जाते है; अर्थात यह उपमान भी हलका ही बैठता है।

काव्य-सौन्दर्य- (1) लक्ष्मण जी की आदर्श भ्रातृ-भक्ति एवं श्रीराम के प्रति सच्चा सेवाभाव ध्वनित होता है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक-गीति। **(4) छन्द–** गेयपद। **(5) रस–** संयोग शृंगार। **(6) शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्ष्मणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) अलंकार–** रूपक, उपमा, अनुप्रास और व्यतिरेक (अन्तिम पंक्ति में)। **(9) भावसाम्य–** जिस प्रकार भक्त में भगवान झलकते हैं, उसी प्रकार श्रीराम में लक्ष्मण के ही प्राण है; यथा-

निराकार की आरसी, साधो ही की देहि।
लखा जो चाहै अलख को, इनही में लखि लेहि।।

(ट) हरो चरहिं ..... रघुनाथ।।

सन्दर्भ- प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'दोहावली' से 'दोहावली' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग- इस नीति-विषयक दोहे में कवि ने संसार के प्राणियों की स्वार्थपरता का वर्णन किया है।

व्याख्या- गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि इस संसार में जब वृक्ष हरे-भरे होते हैं, तब पशु-पक्षी इन्हें चर लेते हैं। वे ही वृक्ष जब सूख जाते हैं तो लोग उन्हें जलाकर तापने लगते हैं और उन वृक्षों पर जब फल लगते है तो लोग हाथ फैलाकर उनसे फल ले लेते हैं। इस प्रकार प्राणी सब प्रकार से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि परमार्थ के मित्र तो केवल श्रीरघुनाथ जी ही हैं, जो हर समय प्रेम करते है और दीन-स्थिति में तो विशेष रूप से प्रेम करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गोस्वामी जी ने वृक्षों के माध्यम से संसार के प्राणियों की स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्र अंकित किया है। (2) यहाँ जगत् के प्रति वैराग्य तथा भगवान राम के प्रति अनुराग की प्रेरणा दी गई है। (3) राम की अहेतुकी कृपा की ओर संकेत है। **(4) भाषा–** ब्रजभाषा। **(5) शैली–** मुक्तक। **(6) अलंकार–** अन्योक्ति। **(7) रस–** शान्त। **(8) शब्द-शक्ति–** लक्षणा तथा व्यंजना। **(9) गुण–** प्रसाद। **(10) छन्द–** दोहा। **(11) भावसाम्यं–** स्वार्थपरता के सम्बंध में तुलसीदास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' में भी कहा है—

सुर-नर मुनि सबकी यहु रीति। स्वारथ लाभ करहिं सब प्रीति।।

(ठ) चरन चोंच ..... तेहि काल।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में कवि ने बगुले और हंस के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि बनावट न तो कभी छिप सकती है और न ही वह वास्तविकता का स्थान ले सकती है।

व्याख्या– तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि बगुला हंस बनने के लिए अपनी चोंच, अपने पैरों और अपनी आँखों को रँगकर लाल कर ले तथा हंस जैसी चाल चलने लगे तो भी वह हंस नहीं हो सकता। दूध और पानी को अलग-अलग करते समय उसका बगुला होना प्रकट हो जाएगा; क्योंकि वह हंस का 'नीर-क्षीर-विवेकी' गुण धारण नहीं कर सकता।

अन्योक्ति से इसका अर्थ यह होगा कि दृष्ट व्यक्ति यदि सज्जन व्यक्ति के रूप, रंग, वेषभूषा आदि को धारण कर भी ले तो वह सज्जन नहीं हो सकता; क्योंकि एक ओर तो दुष्ट अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता और दूसरी ओर वह सज्जनों के गुणों को भी ग्रहण नहीं कर सकता।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्पष्ट किया है कि दुष्ट व्यक्ति ऊपर से चाहे कितना भी प्रयास करे कि वह सज्जन दिखाई दे, किन्तु दुष्टता प्रकट हो ही जाती है। (2) तुलसीदास जी ने ढोंगी और पाखंडी व्यक्तियों पर गहरा व्यंग्य किया है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) अलंकार–** अन्योक्ति एवं अनुप्रास। **(6) रस–** शान्त। **(7) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(8) छन्द–** दोहा। **(9) भावसाम्य–** कबीर ने भी कपट वेशधारी और स्वयं को सज्जन सिद्ध करने वाले व्यक्तियों का उपहास करते हुए लिखा है-

साधु भया तो क्या भया, माला महिरी चार।
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भंगार।।

(ड) जो सुनि समुझि ..... उचित न होइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत दोहे में यह स्पष्ट किया गया है कि जान-बूझकर कुमार्ग पर लगे हुए व्यक्ति को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा करना निरर्थक है।

व्याख्या– जो सही मार्ग के बारे में सुनकर और समझकर भी अनीतिपूर्ण कार्यों में लगा रहता है, जो जान बूझकर भी अनुचित कार्य करता रहता है और जो जागते हुए भी सोता रहता है; अर्थात् जो अपने ज्ञान चक्षुओं को खोलने का प्रयास ही नहीं करता; तुलसीदास जी के मतानुसार ऐसे व्यक्ति को उपदेश देकर जगाने का प्रयास करना व्यर्थ ही सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्तियों को कितना ही उपदेश दे दीजिए, वे सन्मार्ग पर नहीं आते।

काव्य-सौन्दर्य– (1) सबकुछ जानकर भी जो अनुचित मार्ग पर लगा हुआ है, ऐसा व्यक्ति किसी गंभीर हानि के पश्चात् ही सही मार्ग पर आ पाता है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के समक्ष सदाचारपूर्ण उपदेशों का कोई महत्व नहीं होता है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) अलंकार–** अनुप्रास। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) छन्द–** दोहा।

(ढ) मंत्री, गुरु अरु ..... बेगिही नास।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कवि कहता है कि मंत्री, वैद्य और गुरु कटु होने पर भी हित की बात कहें, तभी मनुष्य का भला होता है।

व्याख्या– यदि मंत्री, वैद्य और गुरु अप्रसन्नता के भय से या स्वार्थ- साधन की आशा से हित की बात न कहकर हाँ में हाँ। मिलाने लगते हैं तो राज्य, शरीर और धर्म इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यह एक सामाजिक सत्य है कि मंत्री, गुरु और वैद्य को किसी भी दबाव में न आकर सही परामर्श देना चाहिए। यदि मंत्री चापलूसी करेगा तो राज्य का, गुरु करेगा तो धर्म का और वैद्य करेगा तो शरीर का नाश हो जाएगा। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** दोहा। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) अलंकार–** यथाक्रम। **(8) शैली–** मुक्तक।

(ण) तुलसी पावस ..... पूछिहैं कौन।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में अन्योक्ति के माध्यम से तुलसीदास जी ने यह व्यक्त किया है कि जब समाज में ढोगियों का सम्मान तथा गुणवानों की अवमानना होती हैं तो गुणवान् मौन धारण कर लेते हैं अथवा तटस्थ हो जाते हैं।

व्याख्या– तुलसीदास जी कहते हैं कि वर्षा-ऋतु में कोयल यह समझकर चुप हो जाती है कि अब तो मेंढक टर्राएँगे और उनकी टर्र-टर्र के आगे हमारी मधुर वाणी कौन सुनेगा; अर्थात् बुरा समय आने पर ढोंगियों और गुणहीनों की ही चलेगी, गुणवानों का सम्मान नहीं होगा। इसीलिए वे तटस्थ भाव से चुप ही हो जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) दुष्टों की शक्ति बढ़ जाने पर सज्जनों की बात कोई नहीं सुनता, यह बात सर्वसत्य है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** अन्योक्ति। **(5) रस–** शान्त। **(6) शब्द-शक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) छन्द–** दोहा।

(त) ऐसी मूढ़ता या ..... निज पन की।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थ 'विनय-पत्रिका' से 'विनय-पत्रिका' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– तुलसी यहाँ अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए श्रीराम से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हैं।

व्याख्या– तुलसीदास जी कहते हैं कि यह मन कुछ ऐसी मूर्खता कर रहा है कि यह श्रीराम की भक्तिरूपी गंगा को त्यागकर विषयरूपी ओस की बूँदों के द्वारा अपनी प्यास बुझाना चाहता है। इसका यह व्यवहार ऐसा ही है जैसे प्यासा पपीहा धुँएं के गुब्बार को देखकर उसे मेघ समझ लेता है और पानी के लिए उसी की ओर टकटकी लगाकर देखने लगता है, परन्तु उसको निराश ही होना पड़ता है; क्योंकि वहाँ से उसे न पानी मिलता है और न उसकी प्यास ही तृप्त हो पाती है। इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण व्यवहार से आँखों को भी उसी प्रकार व्यर्थ ही अपार कष्ट होता है, जिस प्रकार मूर्ख बाज भूमि पर पड़े काँच अथवा दीवार में अपनी परछाई देखकर उस प्रतिबिम्ब को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है और भूख से व्याकुल होने के कारण उस पर टूट पड़ता है। ऐसा करते हुए उसको ध्यान ही नहीं रहता है कि वहाँ टक्कर मारने पर उसके मुख (चोंच) की ही हानि हो जाएगी। हे कृपा के सागर प्रभु! मैं अपने इस मन के दोषपूर्ण एवं तुच्छ कर्मों का वर्णन कहाँ तक करूँ? आप अन्तर्यामी हैं, इसलिए आप मुझ सेवक के मन की बात को भली प्रकार जानते हैं। अन्त में तुलसीदास जी श्रीराम से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु! शरणागत का उद्धार करने की अपनी प्रतिज्ञा पर विचार करते हुए आप इस भयंकर दु:ख से मेरा उद्धार कीजिए।

काव्य-सौन्दर्य– (1) इस पद में गोस्वामी जी ने जीव के अज्ञानपूर्ण व्यवहार का वर्णन करके यह बताने का प्रयत्न किया है कि हम लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए जो भी कार्य करते हैं, उसमें प्राय: हानि ही उठानी पड़ती है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** रूपक, उदाहरण, भ्रान्तिमान, अनुप्रास और रूपकातिशयोक्ति। **(5) रस–** शान्त। **(6) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) छन्द–** गेयपद। **(9) भावसाम्य–** यह बहुत ही प्रसिद्ध पद है। इस प्रकार के व्यवहारों का वर्णन सूरदास जी ने भी किया है; यथा—

(i) परम गंग को छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।

(ii) अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ।
जैसे स्वान काँच मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूँकि मर्‌यो।।

(थ) अब लौं नसानी ..... पद-कमल बसैहों।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– तुलसीदास जी 'विनय-पत्रिका' के इस पद में प्रतिज्ञा करते हैं कि अब तक तो मैंने अपना जीवन सांसारिक विषय-भोगों में नष्ट किया है, किन्तु अब आगे से भगवद्‌भक्ति को छोड़ अन्य कोई कार्य नहीं करूँगा।

व्याख्या– अब तक तो मेरी करनी बिगड़ चुकी, पर अब आगे से सँभल जाऊँगा। अब तक तो मैंने अपने जीवन को नष्ट कर लिया, परन्तु अब नष्ट नहीं करूँगा, मैं संभल गया हूँ। रघुनाथ जी की कृपा से संसाररूपी रात्रि बीत चुकी है; अर्थात् सांसारिक प्रवृत्तियाँ दूर हो रही हैं। अब जागने पर (विरक्ति उत्पन्न होने पर) फिर कभी बिछौना न बिछाऊँगा; अर्थात् सोने की तैयारी न करूंगा, सांसारिक मोह-माया में न फँसूंगा मुझे राम-नामरूपी सुन्दर चिन्तामणि प्राप्त हो गई है, उसे सदा हृदय में रखूँगा, रघुनाथ जी का जो श्याम-सुन्दर पवित्र रूप है, उसकी कसौटी बनाकर उस पर अपने चित्तरूपी सोने को कसूँगा; अर्थात् यह देखूँगा कि भगवत्स्वरूप के ध्यान पर मेरा मन कहाँ तक ठीक-ठीक जमता है। जब तक मैं मन का गुलाम रहा, तब तक इन्द्रियों ने मेरा खूब उपहास किया, पर अब मन तथा इन्द्रियों को अपने वश में कर लूँगा, जिससे आगे मेरी हँसी न हो। मैं अपने मन को रघुनाथ जी के चरणों में इस प्रकार लगा दूँगा जैसे भौंरा इधर-उधर फूलों पर न जाकर प्रणपूर्वक अपने को कमल-कोश में बसा लेता है। भाव यह है कि इस मन को सब ओर से मोड़कर केवल श्रीरघुनाथ जी के ही चरणों का सेवक बनाऊँगा।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गोस्वामी तुलसीदास जी की जगत् के प्रति विरक्ति और श्रीराम जी के प्रति अनुराग मुखर हुआ है। (2) राम-नामरूपी 'चिन्तामणि' वह दिव्य मणि है, जो समस्त कामनाओं को पूरा करने वाली है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** गेय-पद। **(5) रस–** शान्त। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) अलंकार–** रूपक और अनुप्रास। **(9) शैली-** मुक्तक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषण हरनू।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'भरत महिमा' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में भरत के आचरण का वर्णन हुआ है।

व्याख्या– गोस्वामी तुलसीदास जी का कहना है कि भरत का आचरण प्रेम, भक्ति और भ्रातृत्व (भाईचारे) का आचरण है। इसका वर्णन करने और सुनने से सभी दु:ख दूर हो जाते हैं। आशय यह है कि भरत का राम के प्रति भ्रातृ प्रेम तो है ही साथ ही, उनकी राम के प्रति भक्ति भी है। भरत और राम का संबंध ऐसा है जैसा भक्त और भगवान का होता है। साथ ही उनमें भाईचारा भी हैं ये तीनों ही मिल-जुलकर कुछ ऐसे हो जाते हैं, जिसका यदि व्यक्ति एक-दूसरे से वर्णन करते हैं या हो रहा वर्णन सुनते हैं, तो वर्णन करने और सुनने वाले दोनों के ही समस्त दु:ख दूर हो जाते हैं।

(ख) भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हर-हर पद पाइ॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रीराम द्वारा भरत की महानता का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– श्रीराम लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं कि भरत इतने महान् हैं कि उन्हें यदि ब्रह्मा, हरि और शिव का पद भी प्राप्त हो जाए तो भी उन्हें राज-मद नहीं हो सकता है। श्रीराम भरत जी की महिमा को उजागर करते हुए कहते हैं कि जब इतने उच्चपद को प्राप्त करके भी भरत में अभिमान नहीं आ सकता तो अयोध्या का राज्य प्राप्त कर उनके अभिमान से ग्रस्त हो जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

(ग) कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में क्षीरसागर और काँजी के उद्धरण द्वारा श्रीराम ने भरत की महिमा वर्णित की है।

व्याख्या– तुलसीदास जी ने भरत के चरित्र का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार काँजी के छींटे मारने से क्षीरसागर अर्थात् दूध का समुद्र नहीं फट सकता, उसी प्रकार भरत को राजमद प्रभावित नहीं कर सकता। इस उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि कुछ लोग अपनी तुच्छ प्रकृति के कारण, दोषारोपण द्वारा किसी महान् और शीलवान् व्यक्ति के चरित्र का हनन नहीं कर सकते।

(घ) मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहिं भाई॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति में तुलसीदास जी ने भरत के चरित्र की सुदृढ़ता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– श्रीराम लक्ष्मण को भरत के सच्चाव्रि से परिचित कराते हुए कहते हैं कि हे लक्ष्मण! भले ही मच्छर फूँक मारकर सुमेरु पर्वत को उड़ा दे, किन्तु यह किसी भी स्थिति में संभव नहीं कि भाई भरत को राजसत्ता का अहंकार हो जाए और जिसमें चूर होकर वह हम पर ससैन्य आक्रमण कर दे।

(ङ) जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में तुलसीदास जी भरत की महिमा का गान कर रहे हैं।

व्याख्या– श्रीराम के वनवास के समय उनसे मिलने के लिए जाते समय भरत जी के मन में अनेकानेक शंकाएँ उत्पन्न होती हैं कि कहीं प्रभु श्रीराम मुझसे नाराज होकर चले न जाएँ। इसीलिए कवि शिरोमणि तुलसीदास जी कहते हैं कि इस संसार में यदि भरत का जन्म न होता तो पृथ्वी पर संपूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता; अर्थात् जितनी सूक्ष्म दृष्टि से भरत अपने धर्म का पालन करते हैं, उतनी सूक्ष्म दृष्टि से धर्म का पालन कौन कर सकता है? तात्पर्य यह है कि कोई नहीं।

(च) जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– चित्रकूट जाते भरत जी रामप्रेम को चातक और मछली के प्रेम की अपेक्षा हलका बताते हैं।

व्याख्या– संसार में चातक और मछली ही यश के पात्र हैं; क्योंकि वे अपने प्रेम के नियम को नित्य नया बनाए रखने में निपुण हैं। चातक स्वाति की बूँद को छोड़कर दूसरा जल नहीं पीता, चाहे प्यास से उसके प्राण ही क्यों न निकल जाएं और मछली जल से बिछुड़ते ही प्राण त्याग देती है। ऐसा ही एकनिष्ठ और सतत रहने वाला प्रेम आदर्श प्रेम है।

(छ) ''चित्रहूँ के कपि सौं निसाचर न लागिहैं॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'कवितावली' शीर्षक के लंका दहन से अवतरित है।

प्रसंग– हनुमान् जी ने अपनी पूँछ में लगी आग से संपूर्ण लंका में आग लगा दी है। सभी राक्षस-राक्षसी अत्यन्त घबराए हुए और परेशान हैं। उनकी इसी घबराहट और व्याकुलता का वर्णन इस पंक्ति में हुआ है।

व्याख्या– हनुमान् जी ने अपनी पूँछ में लगी आग से लंका के प्रत्येक बाजार, घर, मार्ग, अटारी, किला, दरवाजे आदि में भयंकर आग लगा दी। राक्षस-राक्षसियों को अपनी जान बचाने के लिए न कोई मार्ग दिख रहा है और न उपाय सूझ रहा है। अब उन्हें अपनी गलती का अहसास हो रहा है कि उन्होंने हनुमान की पूँछ में आग लगाकर कितना बड़ा अनर्थ किया है। वे पछताते हुए कहते हैं कि आगे फिर कभी कोई लंका में ऐसी गलती नहीं करेगा। आगे से कोई सचमुच के वानर से तो क्या चित्र में बने वानर से भी किसी प्रकार की कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ज) ''लेहि दससीस अब बीख चख चाहि रे''॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में हनुमान जी के द्वारा संपूर्ण लंका में आग लगा देने के बाद लंकानिवासी राक्षसगणों के व्याकुल हो उठने और अपने राजा रावण को कोसने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– लंकानिवासी राजा रावण को कोसते हुए कह रहे हैं कि हे दस मुखों वाले रावण! अब तुम अपने सभी मुखों से लंकानगरी के विनाश का यह स्वाद स्वयं चखकर देखो। इस विनाश को को अपनी बीस आँखों से भलीभाँति देखो और अपने मस्तिष्क से विचार करो कि तुम्हारे द्वारा बलपूर्वक किसी दूसरे की स्त्री का हरण करके कितना अनुचित कार्य किया गया है। अब तो तुम्हारी आँखें अवश्य ही खुल जानी चाहिए; क्योंकि तुमने उसके पक्ष के एक सामान्य से वानर के द्वारा की गई विनाश-लीला का दृश्य अपनी बीस आँखों से स्वयं देख लिया है।

(झ) हृदय-घाउ मेरे, पीर रघुबीरै॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'गीतावली' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में लक्ष्मण अपने तथा राम के अटूट प्रेम-सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं।

व्याख्या– लक्ष्मण जी शक्ति लगने के बाद मूर्च्छित हो जाते हैं, तब उनका संजीवनी द्वारा उपचार किया जाता है और उनकी चेतना लौट आती है। जब वहाँ उपस्थित लोग उनसे उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछते हैं, तब वह उनसे कहते हैं कि मुझे हुआ ही क्या था? शक्ति-प्रहार से मेरे हृदय में घाव अवश्य हुआ था, किन्तु उसकी पीड़ा मुझे नहीं हुई, शक्ति-प्रहार की वास्तविक पीड़ा तो रघुवर श्रीराम को हुई; क्योंकि हम दोनों के शरीर पृथक-पृथक अवश्य हैं, किन्तु उनमें हृदय एक ही धड़कता है। मेरे घाव की पीड़ा का अनुभव तो श्रीराम को हुआ है; अत: आप उन्हीं से इसके विषय में पूछिए।

(ञ) तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'दोहावली' से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में सांसारिक सम्बन्धों को स्वार्थमय बताते हुए केवल श्रीराम की भक्ति को ही परमार्थ का सर्वोपरि साधन सिद्ध किया गया है।

व्याख्या– तुलसीदास जी कहते हैं कि संसार में सभी मित्र और सम्बन्धी स्वार्थ के कारण ही सबसे सम्बन्ध रखते हैं। जिस दिन हम उनके स्वार्थ की पूर्ति में असमर्थ हो जाते हैं, उसी दिन सभी व्यक्ति हमें त्यागने में देर नहीं लगाते। इसी प्रसंग में तुलसी ने कहा है कि श्रीराम की भक्ति ही परमार्थ का सबसे बड़ा साधन है और श्रीराम ही बिना किसी स्वार्थ के द्वारा के हमारा हित-साधन करते हैं।

(ट) क्षीर-नीर बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बगुले व हंस के उदाहरण द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मूर्ख व्यक्ति कितना ही आडम्बर क्यों न रच ले, परन्तु अवसर आने पर मूर्ख और विद्वान् की पहचान हो ही जाती है।

व्याख्या– बगुले नामक पक्षी के पैर, चोंच और आँख हंस के समान होते हैं तथा बगुले की चाल भी हंस जैसी होती है। इसलिए दोनों के रंग-रूप तथा हाव-भाव देखकर यह पहचानना कठिन हो जाता है कि इनमें कौन बगुला है तथा कौन हंस, लेकिन जब दूध और पानी को अलग करने का अवसर आता है तो बगुले का भेद खुल जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मूर्ख और विद्वान दोनों के रंग-रूप, वेशभूषा तथा हावभाव एक-से हो तो उनकी पहचान करना कठिन होता है। लेकिन जब गुणों के प्रदर्शन अथवा बोलने का अवसर आता है तो मूर्ख और विद्वान की पहचान हो ही जाती है।

(ठ) होइ कुबस्तु-सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में कवि ने संगति के प्रभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या– तुलसीदास जी कहते हैं कि चन्द्र-सूर्यादि ग्रह, औषध जल, वायु और वस्त्र ये चीजें कुयोग (अर्थात् अनुचित योग) पाकर कुवस्तु (अर्थात् बुरी-हानिकारक व वस्तु) तथा सुयोग (अर्थात् उचित योग) प्राप्त कर सुवस्तु (अर्थात् अच्छी-लाभदायक) वस्तु बन जाती है। उदाहरण के लिए शुभग्रह तीसरी, छठी, ग्यारहवीं राशियों में शुभफलदायक तथा चौथी, आठवीं, बारहवीं, राशियों पर अशुभ फलदायक हो जाते हैं। औषध मधु आदि का ठीक योग पाकर लाभदायक और खट्टे आदि के योग से हानिकारक हो जाती है। जल सुगन्ध, शीतलता आदि के योग से सुस्वादु और दुर्गन्धादि के योग से कुस्वादु हो जाता है। हवा भी सुगन्ध के योग से अच्छी और दुर्गन्ध के योग से बुरी हो जाती है। इसी प्रकार वस्त्र भी सुन्दर रंग आदि के संयोग से सुन्दर और गन्दगी, मैल आदि के योग से भद्दे हो जाते हैं। आशय यह है कि संगति ही मनुष्य को बिगाड़ती और सुधारती है तथा मनुष्य अच्छी संगति पाकर अच्छा और बुरी संगति पाकर बुरा बन जाता है।

(ङ) अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहैं कौन॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में तुलसीदास जी कहते हैं कि दुर्जनों का बोलबाला हो जाने पर सज्जन मौन धारण कर लेते हैं।

व्याख्या– वर्षाकाल में कोयल यह सोचकर मौन हो जाती है कि अब तो अनेक मेढ़क इकट्ठे होकर टर्राएँगे, जिससे उसके मधुर स्वर को कोई नहीं सुन पाएगा। इसी प्रकार बुरा समय आने पर दुर्जनों की ही चलती है, उस समय सज्जन की बात कोई नहीं सुनता। साथ ही दुष्टजन बहुत जल्दी संगठित हो जाते हैं, जिनकी संगठन-शक्ति के आगे शिष्टजन अकेले पड़ जाते हैं।

(ढ) परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित 'विनय पत्रिका' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस सूक्ति में गोस्वामी तुलसीदास जी मानव-मन की मूर्खता का वर्णन करते हैं।

व्याख्या– यह मन इतना मूर्ख है कि वह श्रीराम जी की कृपारूपी गंगा को त्यागकर ओस की बूँदों की इच्छा करता फिरता है; अर्थात् वह भगवदानन्द को छोड़कर क्षणिक विषयानन्द की ओर दौड़ता है। तात्पर्य यह है कि जीव अपने अज्ञानपूर्ण व्यवहार से अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए भी कार्य करते हैं, उनमें प्राय: उन्हें हानि ही उठानी पड़ती है।

(ण) अब लौं नसानी अब न नसैहों।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में सद्ज्ञान होने पर अपनी आयु व्यर्थ में व्यतीत न करने और उसे ईश्वर-भक्ति में लगाने का भाव व्यक्त किया गया है।

व्याख्या– गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने अब तक अपनी आयु को व्यर्थ के कार्यों में ही नष्ट किया है, परन्तु अब मैं अपनी आयु को इस प्रकार नष्ट नहीं होने दूँगा। भाव यह है कि अब उनके अज्ञानान्धकार की रात्रि समाप्त हो चुकी है और उन्हें सद्ज्ञान प्राप्त हो चुका है; अत: वे मोह-माया में लिप्त होने के स्थान पर ईश्वर की भक्ति में ही अपना समय व्यतीत करेंगे और ईश्वर से साक्षात्कार करेंगे।

(त) मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद-कमल बसै हौं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोस्वामी तुलसीदास जी अपने आराध्य श्रीराम के परम और अनन्य भक्त हैं वे उनके दास और सेवक है। विविध देवी-देवताओं की स्तुति करने के बाद उन्होंने अन्त में यही कहा है कि '**माँगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।।**' अर्थात् मैं यह वरदान माँगता हूँ कि श्रीराम और सीता जी मेरे हृदय में निवास करें।

व्याख्या– प्रस्तुत पंक्ति में भी उन्होंने श्रीराम के प्रति अपने इसी दीनतापूर्ण समर्पण-भावना को स्वर दिया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि उनके मनरूपी भ्रमर ने यह प्रण कर लिया है कि वह श्रीराम के चरण-कमलों में ही निवास करेगा। अपनी इस अनन्यता का चित्रण तुलसी ने इस दोहे में भी किया है-

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास।।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'भरत-महिमा' के आधार पर भरत की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– 'भरत-महिमा' के आधार पर भरत के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(i) भातृत्व प्रेमी– भरत का अपने बड़े भाई राम से अटूट प्रेम है। जिसके कारण वे श्रीराम को मनाने पैदल ही फलाहार करते हुए चित्रकूट की ओर जाते हैं। उन्हें श्रीराम के दर्शन की लालसा थी जिसके कारण वे तीव्र गति से चले जाते थे।

(ii) त्यागी– भरत जी उच्च कोटि के त्यागी है। राज्य प्राप्त होने के बाद भी वे उसे त्यागकर अपने बड़े भाई श्रीराम और लक्ष्मण को मनाने के लिए चल देते हैं।

(iii) निराभिमानी– भरत जी में लेशमात्र भी अभिमान नहीं है। जब लक्ष्मण जी भरत को सेना के साथ देखकर यह आशंका व्यक्त करते है कि सम्भवत: भरत राम को मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहते है तब राम उनके इस गुण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का पद पाकर भी भरत को अभिमान नहीं हो सकता।

(iv) धर्मानुरागी– भरत एक धर्मानुरागी व्यक्ति थे। समस्त देवता भी परस्पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि यदि इस संसार में भरत का जन्म न हुआ होता तो इस धरती पर सम्पूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता? अर्थात् इतनी निष्ठा और श्रद्धा से अन्य कोई धर्म का पालन नहीं कर सकता।

(v) शंकामग्न– 'भरत-महिमा' में श्रीराम से मिलने जाते समय भरत के हृदय में अनेकों शंकाएँ उठती है कि कहीं श्रीराम मुझे माता कैकेयी से मिला हुआ न मान लें या मेरा आगमन जानकर श्रीराम, लक्ष्मण व सीता जी सहित इस स्थान को छोड़कर उठकर कहीं अन्यत्र न चले जाएँ।

2. 'कवितावली' (लंका दहन) का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत शीर्षक तुलसीदास जी द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'कवितावली' से लिया गया है। जिसमें कवि ने हनुमान जी द्वारा जलाई जा

रही लंका का और लंकावासियों की व्याकुलता का अद्‌भुत वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि हनुमान जी की विशाल पूँछ से भयंकर अग्नि की लपटें उठ रही थी। जिसे देखकर ऐसा लग रहा था, मानों लंका को निगलने के लिए काल ने अपने जिह्वा फैला दी हो अथवा आकाश गंगा में पुच्छल तारे भर गए हों या वीर रस ने स्वयं वीर के रूप में परिवर्तित होकर अपनी तलवार बाहर खींच ली हो। आग की लपटों से परिपूर्ण वह लाल-नीली पूँछ ऐसी लग रही थी जैसे इन्द्र धनुष चमक रहा हो, अथवा बिजलियों का समूह हो अथवा सुमेरु पर्वत से आग की नदी प्रवाहित हो गई हो। हनुमान जी के इस रूप को देखकर राक्षस-राक्षसी व्याकुल होकर कह रहे थे अभी तक तो इस बन्दर ने अशोक वाटिका उजाड़ी थी, अब नगर को जला रहा है।

हनुमान जी ने बाजार, मार्ग, किले, अटारी, घर, दरवाजे एवं गली-गली में दौड़कर भयंकर आग लगा दी। सभी लोग व्याकुल होकर चिल्लाने-पुकारने लगे। हनुमान जी बार-बार अपनी पूँछ को घुमाकर छाड़ते जिससे आग की चिनगारियाँ बूँदों की तरह झड़ती। लंका की ऐसी दशा को देखकर राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहने लगी कि अब लंका में कोई भी राक्षस चित्र में बने वानर से भी छेड़छाड़ नहीं करेगा। लंका की दसों दिशाओं में भयंकर अग्नि की लपटें दहकने लगी। चारों ओर धुएँ से सब लोग बेचैन हो गए। उस धुएँ के कारण कौन किसे पहचाने? आग के कारण सबके शरीर जल रहे थे और सभी व्याकुल होकर पानी के लिए लालायित थे। सब नष्ट हुए जाते हैं और पुकारते हैं कि हे भाई! हमें बचाओ। पति स्त्री से कहता है कि तुम भाग जाओ, स्त्री पति से कहती है कि स्वामी आप भागिए पिता पुत्र से तथा पुत्र पिता से भागने के लिए कहता है। लोग व्याकुल होकर कहते हैं कि रावण! अब अपनी करतूत का फल दसों शीशों की बीसों आँखों से भली-भाँति देख लो।

लंकावासियों को गलियों, बाजारों, अटारियों, दरवाजों, घरों तथा दीवारों पर सब जगह बन्दर ही दिखाई पड़ते हैं। जैसे ऊपर-नीचे तीनों लोकों में बन्दर ही बन्दर है। यदि लोग आँख बंद करते हैं तो अपने हृदय में, और आँख खोलते हैं तो सामने बन्दर दिखाई देते हैं। वे कहते हैं कि जब समझाते थे कि इसे मत छेड़ों तो किसी ने कहा नही माना, बल्कि जिसे छेड़ने से रोकते थे, वही चिढ़ जाता था। यह विपत्ति उसी कहना न मानने का दुष्परिणाम है।

3. तुलसीदास द्वारा रचित 'गीतावली' के आधार पर श्रीराम-लक्ष्मण के अपूर्व प्रेम का चित्रण कीजिए।

उ०– तुलसीदास जी ने श्रीराम एवं लक्ष्मण के प्रेम का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। लक्ष्मण को लंका-युद्ध के समय मेघनाद की शक्ति लग जाने पर श्रीराम विलाप करते हुए कहते हैं कि मेरा सारा पुरुषार्थ थक गया है। विपत्तियों को बाँटने वाला अपने भाईरूपी भुजा (लक्ष्मण) के बिना अब मैं किसका विश्वास करूँ। वे सुग्रीव को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे सुग्रीव! सुनो विधाता ने सचमुच मेरी ओर से मुँह मोड़ लिया है। इसलिए युद्ध के इस विपत्तिकाल में मुझे मेरे भाई लक्ष्मण ने छोड़ दिया है। जिस कारण युद्ध में मेरी हार होगी। अब मैं भी अपने भाई का साथी बन जाऊँगा अर्थात् मेरी भी मृत्यु हो जाएगी।

संजीवनी बूटी के प्रभाव से सचेत होने पर जब लक्ष्मण जी से सब उनकी पीड़ा के विषय में पूछने लगते हैं तो वे कहते हैं कि आप लोग मुझसे पीड़ा के बारे में क्या पूछते हैं पूछना है तो श्रीराम से पूछिए, क्योंकि मेरे हृदय में तो केवल घाव ही हैं उसकी पीड़ा तो श्रीराम को ही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि लक्ष्मण की बात सुनकर स्वयं धैर्य भी धैर्य धारण नहीं कर पाता। श्रीराम और लक्ष्मण का प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि उनको दूध और पानी की उपमा भी नहीं दी जा सकती। क्योंकि दूध और पानी को हंस अलग-अलग कर सकता है। परंतु राम-लक्ष्मण कभी अलग-अलग नहीं हो सकते।

4. 'दोहावली' में संकलित दोहों से जो नीति संबंधी शिक्षा मिलती है, उस पर प्रकाश डालिए।

उ०– तुलसीदास जी कहते हैं कि प्राणी सब प्रकार से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते हैं, परमार्थ के मित्र तो केवल श्रीराम ही हैं, जो हर समय प्रेम करते हैं और दीन-स्थिति में तो विशेष रूप से प्रेम करते हैं। आत्मसम्मान की रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतम से प्रेम का नित्य नवीन होना- ये तीनों बातें तभी शोभा देती हें, जब चातक की प्रेम पद्धति को अपनाया जाए। जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र के मेघ का दिया जल चोंच उठाकर पीता है और यदि मेघ जल न भी दे तो उसका प्रेम नहीं घटता, उसी प्रकार माँगते हुए भी आत्मसम्मान की रक्षा करना और नित्य प्रेम बढ़ाते जाना— ये तीनों बातें एक साथ मिलनी दुर्लभ हैं।

दुष्ट व्यक्ति यदि सज्जन व्यक्ति के रूप, रंग, वेशभूषा आदि को धारण कर भी ले तो भी वह सज्जन नहीं हो सकता; क्योंकि एक ओर तो वह दुष्टता नहीं छोड़ता और दूसरी ओर सज्जनों के गुणों को भी ग्रहण नहीं कर सकता। तुलसीदास जी कहते हैं सब लोग अपने लिए भले होते हैं और अपनी भलाई करना चाहते हैं परंतु इनमें श्रेष्ठ वे व्यक्ति होते हैं जो सभी को भला मानकर, उनकी भलाई करने में लगे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की ही सज्जन व्यक्तियों के द्वारा सराहना की जाती है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो व्यक्ति सब बात सुन समझकर भी (जान-बूझकर) अनीति में लगा रहता है उसको उपदेश देना या जगाने का प्रयास करना व्यर्थ है। ऐसे व्यक्तियों को कितना ही उपदेश दे लीजिए, वे सन्मार्ग पर नहीं आते।

तुलसीदास जी के अनुसार राजा ऐसा होना चाहिए कि जब वह प्रजा से कर वसूले तो प्रजा को पता तक न चले किन्तु जब वह उस धन से प्रजा के लिए हितकर काम करे तो सबको पता चले। तुलसीदास जी कहते हैं कि राजा को गुरु, मंत्री, चिकित्सक के परामर्श का सम्मान करना चाहिए। उनसे बलपूर्वक अपनी इच्छानुसार कार्य कभी भी नहीं करना चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि जब बुरा समय आता है तब ढ़ोंगियों और दुर्जनों की ही चलती है, गुणवानों का सम्मान नहीं होता। इसलिए वे तटस्थ भाव से चुप हो जाते हैं।

5. 'विनय-पत्रिका' तुलसीदास जी के हृदय का प्रत्यक्ष दर्शन है। इस आधार पर तुलसीदास जी की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'विनय-पत्रिका' के माध्यम से तुलसीदास जी ने अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है। तुलसीदास जी कहते हैं कि क्या कृपालु रघुनाथ जी की कृपा से मैं कभी संतों जैसा स्वभाव प्राप्त कर सकूँगा या जो कुछ मिल जाए, उसी में संतुष्ट रहूँगा। सदा दूसरों की भलाई में तत्पर रहूँगा। अपना अपमान होने पर भी कभी क्रोध नहीं करूँगा। किसी से सम्मान प्राप्त करने की इच्छा न करूँगा। दूसरों के गुणों का तो बखान करूँगा परंतु उनके दोष नहीं कहूँगा अर्थात् क्या कभी हरि-भक्ति प्राप्ति का मेरा मनोरथ पूरा होगा।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरा यह मन कुछ ऐसी मूर्खता कर रहा है कि यह श्रीराम की भक्तिरूपी गंगा को त्यागकर विषयरूपी ओस की बूँदों के द्वारा अपनी प्यास बुझाना चाहता है। हे कृपा के सागर प्रभु श्रीराम! मैं अपने मन के दोषपूर्ण एवं तुच्छ कर्मों का वर्णन कहाँ तक करूँ? आप अर्न्तयामी हैं, इसलिए आप मुझ सेवक के मन की बात को भली प्रकार जानते हैं।

तुलसीदास श्रीराम से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु! शरण में आए भक्त का उद्धार करने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए आप इस दु:ख से मेरा उद्धार कीजिए।

तुलसीदास जी श्रीराम से प्रार्थना करते हैं कि हे हरि! आप मेरे भारी भ्रम को दूर कीजिए। यह संसार मिथ्या, असत्य है, जब तक आपकी कृपा नहीं होती यह सत्य नहीं प्रतीत होता है। मैं जानता हूँ इन्द्रियों के विषय नाशवान् है विषय-सुख क्षणिक है। इतने पर भी इस संसार में छुटकारा नहीं मिल पाता। इसी प्रकार माया में पड़कर लोग अनेक यातनाएँ भोग रहे हैं, साथ ही उन्हें दूर करने के उपाय भी करते हैं, परंतु बिना आत्मज्ञान के इससे छुटकारा पाना संभव नहीं। वेद, गुरु संत सभी ने एक स्वर में कहा है कि यह दृश्यमान जगत सदा दु:ख-रूप है। जब तक कि इसे त्यागकर रघुनाथ का भजन नहीं किया जाता, तब तक कौन समर्थ है, जो आवागमन के चक्र से मुक्त हो सके।

तुलसीदास जी अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि रघुनाथ जी की कृपा से संसाररूपी रात्रि समाप्त हो गई है। अब जागने पर (विरक्ति भाव उत्पन्न होने पर) मैं दोबारा सांसारिक मोह में नहीं फसूँगा। मुझे तो समस्त चिन्ताओं का विनाश करने वाली रामनामरूपी चिन्तामणि प्राप्त हो गई है। उसे सदैव हृदय में रखूँगा। अब मैंने प्रण कर लिया है कि मेरा मनरूपी भ्रमर श्रीरघुनाथ जी के चरणरूपी कमल कोश के भीतर ही निवास करें, जिससे वह उड़कर कही अन्यत्र न जाने पाए।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''चलत पयादें ..... को आजु॥'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द, रस तथा उसका स्थायी भाव बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में दोहा छन्द, शान्त रस है जिसका स्थायी भाव निर्वेद है।

2. ''भेंटेउ लखन ..... प्रनामु करि॥'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस, अलंकार तथा छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में श्रृंगार रस, अनुप्रास अलंकार तथा चौपाई छन्द है।

3. ''बालधी बिसाल ..... पुजारी है॥'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द तथा रस का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में घनाक्षरी छन्द तथा भयानक रस प्रयुक्त हुआ है।

4. ''लपट कराल ..... चाहि रे॥'' पंक्तियों का काव्य- सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य- (1) गोस्वामी जी ने चारों ओर लगी आग के कारण उत्पन्न घबराहट का स्वाभाविक चित्रोपम वर्णन किया है। अंतिम पंक्ति में रावण के प्रति लंकावासियों की खीझ दर्शनीय है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) रस–** भयानक। **(5) गुण–** ओज। **(6) छन्द–** घनाक्षरी। **(7) अलंकार–** अनुप्रास की छटा, पुनरुक्ति प्रकाश, वीप्सा और प्रश्न।

5. ''मान राखिबो ..... मत लेहु॥'' पंक्तियों में निहित अलंकार तथा छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अन्योक्ति और अनुप्रास अलंकार तथा दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है।

6. ''ग्रह भेषज ..... सुलच्छन लोग॥'' पंक्तियों में निहित अलंकार तथा रस का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार तथा शान्त रस है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

5 स्वयंवर-कथा, विश्वामित्र और जनक की भेंट
(केशवदास)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—131 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न—

1. केशवदास जी का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– महाकवि केशवदास का जन्म अनुमानत: मध्य भारत के ओरछा राज्य (वर्तमान मध्य प्रदेश का ओरछा जिला) में सन् 1546 ई० में हुआ था। इनके पिता पं० काशीनाथ मिश्र तथा पितामह कृष्णदत्त मिश्र संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इनके परिवार में दैनिक जीवन में लोकभाषा हिन्दी का प्रयोग नहीं किया जाता था। वे बोलचाल में भी संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते थे। केशवदास ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के राजकवि थे। ओरछा नरेश के अनुज इन्द्रजीत सिंह केशवदास जी को अपना गुरु मानते थे। काशी-यात्रा के अवसर पर ये तुलसीदास जी के सम्पर्क में आए। ओरछा नरेश के अनुज इन्द्रजीत सिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे, जिन्होंने इन्हें इक्कीस गाँव भेंट में दिए थे। केशवदास जी ऐसे पहले महाकवि हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत में आचार्यों की परम्परा का हिन्दी में सूत्रपात किया था। इन्होंने साहित्य, धर्मशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, वैद्यक व संगीत आदि विषयों का गहन अध्ययन किया। ये संस्कृत के विद्वान व अलंकारवादी थे; अत: इन्होंने काव्य-क्षेत्र में शास्त्रानुमोदित रीति पर ही साहित्य का प्रचार करना उचित माना। कुछ साहित्यकारों ने इन्हें तुलसीदास का समकालीन माना है। सन् 1618 ई० में केशवदास का देहावसान हो गया।

रचनाएँ– केशवदास द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या सोलह मानी गई है; जिनमें से आठ ग्रन्थों की प्रामाणिकता अभी सन्दिग्ध है। शेष आठ ग्रन्थ असन्दिग्ध रूप से इन्हीं के द्वारा रचित माने जाते हैं। इनकी प्रामाणिक आठ कृतियाँ इस प्रकार हैं—

रामचन्द्रिका– यह ग्रन्थ श्रीराम-सीता को इष्टदेव मानकर पाण्डित्यपूर्ण भाषा-शैली एवं छन्द में लिखा गया है, जो कि इनके छन्द-शास्त्र व काव्यात्मक प्रतिभा का परिचायक है।

वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, रतन-बावनी– ये तीनों ग्रन्थ ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों की कोटि में आते हैं।

विज्ञान-गीता– यह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

नख-शिख– इसमें नख-शिख वर्णन किया गया है।

कविप्रिया– इसमें कवि-कर्त्तव्य एवं अलंकार-वर्णन है।

रसिक-प्रिया– इसमें रस-विवेचन किया गया है।

2. केशवदास जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– भाषा पर केशवदास जी का असाधारण अधिकार था। इन्होंने प्रसंगों ने अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में विषय के अनुरूप प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण विद्यमान है। ओजस्विता, लाक्षणिकता तथा प्रवाह इनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। केशवदास जी की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें बुन्देलखण्डी का पुट है। इसलिए अधिकांश आलोचकों ने इनकी भाषा को बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा कहना अधिक उचित समझा है। केशवदास जी ने पाण्डित्य प्रदर्शन और चमत्कार दिखाने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। वस्तुत: केशवदास जी में भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की पूर्ण क्षमता है।

शैली की दृष्टि से इन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया है। 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध शैली है तो 'कविप्रिया' और 'रसिक-प्रिया' में मुक्तक शैली।

केशवदास जी का दृष्टिकोण था— ''भूषण बिनु न बिराजई, कबिता बनिता मित्त'' अर्थात् आभूषण के अभाव में कविता और नारी का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। अपने काव्य में केशवदास जी ने अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि इन्हें अलंकारवादी कहा जाता है। इनके काव्य में रूपक, यमक, श्लेष, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, सन्देह एवं अनुप्रास आदि अलंकारों के बहुत अधिक प्रयोग हुए हैं।

हिन्दी के किसी अन्य कवि ने इतना अधिक छन्दों का प्रयोग नहीं किया, जितना कि केशव ने किया है। केशवदास जी ने रामचन्द्रिका में लगभग 82 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है; जिनमें 24 मात्रिक और 58 वर्णिक हैं।

काव्य को काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप ढालने एवं उसके वस्तु-निरूपण, शब्द-योजना, अलंकार-योजना एवं छन्द-

विधान आदि को नियमबद्धता प्रदान करने के लिए महाकवि आचार्य केशवदास जी को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) सोभित मंचन ..... देखन आई।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के कवि 'केशवदास' द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य से 'स्वयंवर-कथा' नामक शीर्षक से उद्घृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने सीता जी की स्वयंवर सभा का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि सीता जी की स्वयंवर सभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मंच पर हाथियों के दाँतों से बने हुए सिंहासन पर बैठे हुए राजाओं तथा राजकुमारों की पंक्ति की आभा चारों ओर छाई हुई है। मानों ब्रह्मा जी ने स्वयं पृथ्वी पर आकर चन्द्रमा के मंडल की ज्योति चारों ओर फैला दी हो अर्थात सिंहासन पर बैठे हुए राजागण तथा राजकुमार की शोभा देखते ही बनती है। सिंहासन पर सभी राजकुमार सुखपूर्वक विराजमान है तथा सीता से स्वयंवर को लेकर उत्सुक है। सीता के शुभ स्वयंवर का अवलोकन करने के लिए देवताओं सहित अपार जनों का समूह भी इस सभा में आया है।

काव्य-सौन्दर्य- (1) कवि ने सीता जी की स्वयंवर सभा का उद्भुत वर्णन किया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** प्रबन्ध। **(4) रस–** संयोग श्रृंगार। **(5) अलंकार–** अनुप्रास। **(6) छन्द–** सवैया।

(ख) पावक पवन ..... आए हैं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में स्वयंवर में उपस्थित होने वाले समुदाय का वर्णन किया जा रहा है।

व्याख्या– सीता जी के स्वयंवर का दृश्य देखने के लिए समस्त संसार के सभी चर-अचर रूपवान राजाओं का आकार धारण करके आए हैं। इन प्राणियों में अग्नि, वायु, मणियों वाले शेष, वासुकि आदि सर्प, पक्षी, पितृगण (मनुष्यों के पितृलोकवासी पितर) आदि जितने भी ज्योतियुक्त प्राणियों का उल्लेख ज्योतिषियों ने किया है; राक्षस (असुर), विख्यात सिद्धगण, समस्त तीर्थोंसहित सागर आदि सारे चर (सजीव) और अचर (जड़) जीव जिनका उल्लेख वेदों में मिलता है तथा अजर (कभी वृद्ध न होने वाले), अमर (कभी न मरने वाले), अजन्मा, शरीरधारी (अंगी) और शरीररहित (अनंगी) उस स्वयंवर में उपस्थित थे। वे इतने अगणित थे कि उनका पूरा वर्णन कर सकने की क्षमता किसी भी कवि में नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) इसमें सीताजी के असीम रूप गुण की अप्रत्यक्ष रूप से व्यंजना की गई है जिसके कारण समस्त चराचर विश्व उनको पाना चाहता था। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** घनाक्षरी। **(4) अलंकार–** अतिशयोक्ति।

(ग) केशव ये ..... योगमयी है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के कवि 'केशवदास' द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य से 'विश्वामित्र और जनक की भेंट' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद्यांश में विश्वामित्र जी श्रीराम जी को महाराज जनक का परिचय दे रहे हैं।

व्याख्या– हे रामचन्द्र! देखो ये मिथिला-नरेश (जनक) हैं, जिन्होंने संसार में अपनी कीर्ति की बेल लगाई है; अर्थात संसार भर में इनका यश फैला हुआ है। जैसे- बेल की सुगन्धि चारों ओर फैलती है, वैसे ही इनका यश भी चारों ओर फैल रहा है। दानवीरता और युद्धवीरता द्वारा इन्होंने सारी पृथ्वी को अपने वश में में कर लिया है। वेद के छ: राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न सिद्धि द्वारा इन्होंने तीनों लोकों में अपना कार्य सिद्ध कर लिया है; अर्थात् तीनों लोकों के भोग प्राप्त किए हैं। इनमें वेदत्रयी और राजश्री की परिपूर्णता का अच्छा योग जुड़ा है; (अर्थात् महाराजा जनम महान् वेदज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ राजोचित ऐश्वर्य से भी संपन्न है। इस प्रकार इनमें विद्या और ऐश्वर्य— सरस्वती और लक्ष्मी दोनों का पूर्ण योग हैं। अस्तु, राजा में जितने गुण होने चाहिए, वे सब इनमें हें, वरन् कुछ अधिक ही हैं (अर्थात् ये राजा होते हुए भी पूरे योगी हैं)।

काव्य-सौन्दर्य– (1) राजा जनक के वैभव और वैराग्य का सुन्दर समन्वय किया गया है। (2) वेद के छह अंग हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द। राज्य के सात अंग हैं-राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग और सेना। योग के आठ अंग हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। **(3) वेदत्रयी–** ऋक, यजु: और साम। **(4) भाषा–** ब्रज। **(5) छन्द–** सवैया। **(6) रस–** शांत। **(7) अलंकार–** रूपक (कीर्ति-बेलि में) और श्लेष।

(घ) आपने आपने ..... तनया उपजाई।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस पद्यांश में मुनि विश्वामित्र राजा जनक की प्रशंसा कर रहे हैं।

व्याख्या– हे जनक! अपने-अपने स्थानों पर तो सभी राजा सर्दव ही भूमि का पालन करते हैं, पर वे केवल नाम ही के भूमिपाल हैं, वास्तव में वे नृपति नहीं; क्योंकि उनसे भूमि का पालन यथार्थ (पतिवत्) नहीं हो पाता। केवल आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं,

जो शरीर तो राजाओं का धारण किए हुए हैं, पर हैं ऐसे कि विदेहों (जीवनमुक्त लोगों) में आपकी निर्मल कीर्ति पाई जाती है। ऐवे विदेह होकर भी आप सच्चे भूपति हैं; क्योंकि आपने पृथ्वी के गर्भ से अत्यन्त सुन्दर कन्या पैदा की है (पति वहीं है, जो स्त्री से सन्तान पैदा करे)। सीता जैसी पुत्री का जन्म पृथ्वी से होना ही आपके 'भूपति' (राजा) होने को सार्थक करता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) विश्वामित्र ने राजा जनक की प्रशंसा करते हुए उन्हें सच्चा भूपति दर्शाया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** विजय। **(4) रस–** शांत। **(5) अलंकार–** विधि और विरोधाभास।

(ङ) दानिन के ..... दशरथ राय के।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में मुनि विश्वामित्र राजा जनक को राम-लक्ष्मण का परिचय दे रहे हैं।

व्याख्या– ये राम और लक्ष्मण बड़े-बड़े दानियों (शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्रादि) के से स्वाभाव वाले हैं सदैव शत्रुओं से दंडस्वरूप धन-दान लेने वाले हैं, शत्रुओं का दान(मद) नष्ट करने वाले हैं तथा युद्धवीर हैं और अन्ततः (विचारपूर्वक देखने से) विष्णु के-से स्वभाव वाले हैं। ये समस्त द्वीपों के राजाओं के भी राजा हैं, राजा पृथु के समान चक्रवर्ती हैं, फिर भी ब्राह्माण और गाय के दास हैं (सेवक हैं)। ये बालक आनन्द-वारि बरसाने वाले बादल हैं, देवताओं के पालक- से (इन्द्रसम) हैं, लक्ष्मी के वल्लभ हैं, पर मन, वचन, कर्म से शुद्ध हैं। देहधारी हैं, पर विदेह समान हैं। हे राजन्! ऐसे गुण वाले ये बालक अयोध्या— नरेश राजा दशरथ के पुत्र हैं (ध्वनि से विश्वमित्र ने यह बतला दिया कि ये विष्णु के अवतार हैं)।

काव्य-सौन्दर्य– (1) श्रीराम और लक्ष्मण दोनों के दिव्य गुणों की झाँकी प्रस्तुत की गई है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** घनाक्षरी। **(4) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(5) अलंकार–** विरोधाभास। **(6) 'देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से'** का आशय यह है कि यद्यपि ये साधारण मानवों का सा शरीर धारण किए हैं, परंतु वस्तुतः निराकार और जीवनमुक्त हैं।

(च) ब्रज तें कठोर ..... कैसे ल्यावई।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ राजा जनक ने शिव-धनुष की कठोरता तथा विशालता एवं राम की सुकुमारता का वर्णन किया है।

व्याख्या– राजा जनक राम के आदर्श गुरु विश्वामित्र से परिचय प्राप्त करने के बाद कहते हैं कि शिव-धनुष ब्रज के समान कठोर है, यह धनुष कैलाश पर्वत के समान विशाल है अर्थात् बहुत विशाल है तथा मृत्यु के समान भयानक है, जो केवल मृत्यु-मृत्यु शब्द उच्चारित करता है। कवि केशवदास जी कहते हैं कि तीनों लोकों के सब देव इसकी प्रत्यंचा चढ़ाने में हार चुके हैं अर्थात तीनों लोकों में कोई भी इसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा पाया है। महादेव को छोड़कर केवल एक व्यक्ति अर्थात परशुराम जी ही इसकी प्रत्यंचा चढ़ा सके हैं। बड़े-बड़े सर्पों के राजा अर्थात् राजा वासुकि स्वयं इस धनुष की प्रत्यंचा में विराजमान है। इन्द्र एवं दैत्यगण भी इसकी प्रत्यंचा चढ़ाने का मान नहीं प्राप्त कर सके है। यहाँ तक कि स्वयं गणेश जी भी इस धनुष को नहीं उठा पाए हैं तब कमल के सदृश कोमल हाथ वाले (राम) इस धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यंचा किस प्रकार चढ़ा सकते हैं? अर्थात् इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाना एक दुष्कर कार्य है जिसे कोमल गात वाले राम कैसे करेंगे?

काव्य-सौन्दर्य– (1) यहाँ कवि ने राजा जनक के माध्यम से शिव-धनुष के महत्व का वर्णन किया है तथा राम की कोमलता का भी वर्णन किया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** प्रबंध। **(4) रस–** वीर। **(5) अलंकार–** अनुप्रास, उपमा। **(6) छन्द–** दंडक।

(छ) उत्तम गाथ ..... शरासन कीनो।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में श्रीराम द्वारा शिव-धनुष तोड़े जाने की घटना का सुन्दर वर्णन हुआ है।

व्याख्या– (आज तक जिस धनुष को हाथ में लेकर किसी ने शरसन्धान नहीं किया था) उस अति प्रशंसित धनुष को जब राम ने उठा लिया, तब वह सनाथ (स्वामीवाला) हो गया; अर्थात् धनुष को धारण करने वाला ही उसका स्वामी होता है और शिव-धनुष को क्योंकि अभी तक कोई धारण नहीं कर सकता था; अतः वह अभी तक अनाथ (बिना स्वामी के) था। राम के धारण करते ही वह सनाथ (स्वामीयुक्त) हो गया। उस धनुष से उत्तम गाथाएँ जुड़ी हुई थी।

श्रीराम ने जब धनुष को उठाया तो उसमें प्रत्यंचा नहीं चढ़ी थी, जब उन्होंने प्रत्यंचा चढ़ा दी, तब असंख्य सन्तों (जिनमें विश्वामित्र, मुनि-मण्डली, जनक, शतानन्दादि भी थे) को सुख हुआ। जब श्रीराम ने उसे ताना, तब अपना नवीन तीक्ष्ण-कटाक्षरूपी बाण उस पर रख दिया। (धनुष की प्रत्यंचा खींचते समय स्वाभाविक रूप से दृष्टि भी तीर की तरह उस पर पड़ती है)। इसके बाद राजकुमार श्रीराम ने राजकुमारी सीता को प्रेमदृष्टि से देखकर उस शम्भु-धनुष को सच्चा शरासन बना दिया, अर्थात् आज उसका शरासन नाम सार्थक हुआ; क्योंकि श्रीराम ने कटाक्षरूपी बाण का उस पर सन्धान किया और उसे सीता जी की ओर छोड़ दिया।

काव्य-सौन्दर्य– (1) धनुर्भंग के समय की श्रीराम की ओजपूर्ण मुद्रा का बहुत ही मनोहारी और सजीव चित्रण किया गया है। (2) यहाँ केशवदास जी की काव्य-कलात्मकता का सौन्दर्य अत्यन्त दर्शनीय है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** सवैया। **(5) अलंकार–** रूपक, श्लेष और विधि।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सुक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के कवि 'केशवदास' द्वारा रचित 'स्वयंवर कथा' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में जनक की निराशा एवं श्रीराम का आगमन वर्णित है।

व्याख्या– सीता स्वयंवर के अवसर पर सातो द्वीपों के राजकुमार जब शिवजी का धनुष उठा तक न सके, तब राजा जनक का हृदय शोकाग्नि में जलने लगा, परन्तु उनके शोक की आग बुझाने प्रात: के बादलों के समान श्यामवर्ण वाले श्रीराम मंच पर आ विराजे। तब ऐसा लगा, मानो सीता और जनक के साथ सबके पूर्वजन्म के पुण्यरूपी वृक्षों पर फूल खिल गए हैं।

(ख) आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालै सदाई।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'कवि केशवदास' द्वारा रचित 'विश्वामित्र और जनक की भेंट' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में विश्वामित्र जी ने महाराजा जनक जी की प्रशंसा की है।

व्याख्या– महाराजा जनक जी की सराहना करते हुए विश्वामित्र जी कहते हैं कि अपने-अपने स्थान पर तो सभी राजा भूमि का पालन करते ही हैं, लेकिन हैं वे सभी नाममात्र के ही राजा। तात्पर्य यह है कि राजा को भूपति अर्थात् भूमि का पति कहा जाता है और यथार्थ रूप में केवल राजा जनक ने ही अपने को सच्चा भूपति सिद्ध किया है, क्योंकि उन्होंने ही पृथ्वी के गर्भ से एक कन्या का उत्पन्न किया है।

(ग) ऋषिहिं देखि हरष्यो हियो, राम देखि कुम्हलाइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ कवि ने स्वयंवर में उपस्थित सीता जी को मनोस्थिति का अति सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि मुनि विश्वामित्र जब राम को शिव धनुष उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ाने की आज्ञा देते हैं तब राम अपने स्थान से उठकर जब शिव-धनुष के पास पहुँचते है तब मुनि विश्वामित्र तो राम को देखकर मन में आनन्दित होते है परन्तु सीता जी राम को देखकर चिन्तित होती है कि जिस शिव-धनुष को बड़े-बड़े महान् योद्धा तक नहीं उठा पाए, उसे कमल के समान कोमल शरीर वाले श्रीराम किस प्रकार उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा पाएँगे।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'स्वयंवर कथा' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'स्वयंवर कथा' महाकवि केशवदास द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचंद्रिका' से लिया गया है। इसमें कवि ने सीता स्वयंवर में उपस्थित होने वाले समुदाय का वर्णन किया है, जिसमें समस्त संसार के समस्त चर-अचर उपस्थित थे। कवि कहते हैं कि महादेव जी का धनुष सभा के बीच विराजमान है जैसे वह समस्त चर-अचरों को धारण करने वाला प्रबल धारणकर्ता हो। सभा के मंच पर राजकुमारों की पंक्ति शोभित है जिनकी शोभा चारों ओर फैल रही है। जैसे ब्रह्मा स्वयं पृथ्वी पर आकर चंद्रमंडल की ज्योति बिखेर रहे हो। सभी राजकुमार मंच पर सुखपूर्वक विराजमान है। सीता का स्वयंवर देखने के लिए देवताओं सहित समस्त चर-अचरों का अपार जन समूह सभा में उपस्थित हुआ है। सीता जी के स्वयंवर में सभी चर-अचर सुंदर राजाओं का रूप धारण कर उपस्थित हुए हैं। इनमें अग्नि, वायु, मणियों वाले सर्प, पक्षी, पितृलोक निवासी आदि जितने भी ज्योतियुक्त प्राणियों का उल्लेख ज्योतिषों ने किया है; राक्षस (असुर), विख्यात सिद्धगण, समस्त तीर्थों सहित सागर आदि सभी जड़, चेतन जिनका वर्णन वेदों में मिलता है तथा अजर, अमर, अजन्मा, शरीरधारी और शरीर रहित उस सभा में उपस्थित थे। वे इतने अगणित थे उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सातों द्वीपों के राजकुमार जब महादेव जी का धनुष उठाने में विफल हो गए, तब राजा जनक का हृदय शोकाग्नि में जलने लगा, परंतु उनके शोक की आग बुझाने प्रात: के बादलों के समान श्यामवर्ण वाले राम, सीता जी से विवाह करने के लिए मंच पर आकर विराजमान हो गए। तब ऐसा लगा मानो सीता और जनक के साथ सबके पूर्व जन्मों के पुण्यरूपी तरु (वृक्ष) पर फूल खिल गए हैं।

2. गुरु विश्वामित्र ने राजा जनक का परिचय किस प्रकार दिया है?

उ०– गुरु विश्वामित्र राम से कहते हैं राम! देखो ये मिथिला नरेश राजा जनक है जिनका यशोगान चारों तरफ फैला हुआ है। इन्होंने दानवीरता तथा युद्धवीरता द्वारा सारी पृथ्वी को अपने वश में कर लिया है। वेद के छ:, राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न सिद्धि के द्वारा इन्होंने तीनों लोकों के भोग प्राप्त कर लिए हैं। ये महाराज जनक महान् वेद विद्वान होने के साथ-साथ राजोचित ऐश्वर्य से भी संपन्न है। इनमें विद्या और ऐश्वर्य का पूर्ण योग है। अस्तु, राजा में जितने गुण होने चाहिए, वे सब इनमें हैं, अपितु अधिक ही हैं अर्थात् ये राजा होते हुए भी पूर्ण रूप से योगी हैं।

3. गुरु विश्वामित्र ने राजा जनक को भूपति क्यों कहा?

उ०– गुरु विश्वामित्र ने राजा जनक जी को इसलिए भूपति कहा है क्योंकि केवल उन्होंने ही इस नाम को यथार्थ रूप में सार्थक किया

है। उन्होंने ही पृथ्वी के गर्भ से एक कन्या (सीता) उत्पन्न किया है। पति वही है, जो स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे। सीता जैसी पुत्री का जन्म पृथ्वी से होने के कारण ही वह भूपति कहलाएँ।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न—

1. ''सोभित मंचन .... देखन आई।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में सवैया छन्द प्रयोग हुआ है।

2. ''केशव ये मिथिलाधिप .... योगमयी है।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा अलंकार का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शान्त रस तथा रूपक और श्लेष अलंकार है।

3. ''सब छत्रिन .... ज्योति जगै।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में विजय छन्द प्रयुक्त हुआ है।

4. ''ब्रज तें कठोर .... कैसे ल्यावई।।'' पंक्तियों में निहित छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में दंडक छन्द निहित है।

5. ''प्रथम टंकोर .... ब्रह्मांड को।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य सौन्दर्य-** (1) यहाँ धनुष की टंकार के व्यापक प्रभाव का वर्णन हुआ है। **(2) भाषा–** ब्रज, **(3) छन्द–** दंडक, **(4) गुण–** ओज, **(5) अलंकार–** अनुप्रास, विरोधाभाष और सहोक्ति।

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

6

भक्ति और श्रृंगार

(कविवर बिहारी)

<u>**अभ्यास प्रश्न**</u>

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—135 का अध्ययन करें।

कवि पर आधारित प्रश्न—

1. कवि बिहारी का जीवन परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि बिहारी का जन्म ग्वालियर राज्य के वसुआ गोविन्दपुर ग्राम में सन् 1595 ई० के आस-पास हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था। इन्होंने आचार्य केशवदास से काव्य-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। इनका बचपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ तथा विवाह के बाद इनका समय अपनी ससुराल मथुरा में व्यतीत हुआ।

ये जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। राजा जयसिंह दूसरे विवाह के बाद अपनी नई पत्नी के प्रेम के कारण भोग-विलास में लिप्त रहने लगे और इसी कारण राजकार्यों से उनका ध्यान विमुख हो गया, तब बिहारी जी ने यह दोहा लिखकर उनके पास भेजा —

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बिंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे को पढ़कर राजा जयसिंह बहुत प्रभावित हुए तथा पुन: राजकार्य में संलग्न हो गए। राजा जयसिंह कवि बिहारी को प्रत्येक दोहे के पुरस्कारस्वरूप एक स्वर्ण-मुद्रा देते थे। उन्हीं की प्रेरणा से बिहारी ने 'सतसई' की रचना की। इनका जीवन विषम-परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। पत्नी की मृत्यु के बाद ये संसार से विरक्त हो गए। सन् 1663 ई० में यह महान् कवि इस संसार से सदैव के लिए विदा हो गया।

बिहारी जी कम शब्दों में अत्यधिक गहन बात कह देते थे, इसीलिए ये 'गागर में सागर' भरने वाले कवि कहे जाते हैं। अपने भक्ति व नीति संबंधी दोहों में इन्होंने श्रृंगार के संयोग व वियोग दोनों ही पक्षों का भावपूर्ण चित्रण किया है। इनके दोहों के गहन भाव से युक्त होने के संबंध में कहा गया है—

सतसैया के दोहरे, ज्यौं नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।।

रचना– बिहारी जी की एकमात्र कृति 'बिहारी सतसई' है, जिसमें 719 दोहे हैं।

2. कवि बिहारी की भाषा-शैली की विवेचना कीजिए।

उ०– भाषा-शैली– बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें पूर्वी-हिन्दी, बुन्देलखण्डी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। शब्द-चयन की दृष्टि से बिहारी अद्वितीय हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों की दृष्टि से भी इनका भाषा-प्रयोग अद्वितीय है। बिहारी ने मुक्तक काव्य-शैली को स्वीकार किया है, जिसमें समास-शैली का अनूठा योगदान है। इसीलिए 'दोहा' जैसे छोटे छन्दों में भी इन्होंने अनेक भावों को भर दिया है। बिहारी को 'दोहा' छन्द सर्वाधिक प्रिय है। इनका सम्पूर्ण काव्य इसी छन्द में रचा गया है। अलंकारों के प्रयोग में बिहारी दक्ष थे। इन्होंने छोटे-छोटे दोहों में अनेक अलंकारों को भर दिया है। इनके काव्य में श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति और अतिशयोक्ति अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) करौ कुबत ..... त्रिभंगी लाल।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'कविवर बिहारी' द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' काव्यसंग्रह के जगन्नाथदास द्वारा संपादित भाग 'बिहारी-रत्नाकर' से 'भक्ति एवं शृंगार' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस दोहे में बिहारी ने अपने और श्रीकृष्ण की त्रिभंगी छवि में साम्य स्थापित करते हुए कहा है-

व्याख्या– हे प्रभु! चाहे संसार मेरी कितनी भी निन्दा करे, परन्तु मैं अपनी कुटिलता (बुराइयों) को नहीं छोडूँगा; क्योंकि हे दीनों पर दया करने वाले प्रभु! आप त्रिभंगीलाल है; अर्थात् वंशी बजाते समय आप अपने पैर, कमर और गर्दन तीन जगह से टेढ़े हो जाते हैं। यदि मैं अपनी कुटिलता (बुराइयों या टेढ़ेपन) को छोड़कर सीधा और सरल हो गया तो आपको मेरे सरल हृदय में बसने में कष्ट होगा; क्योंकि टेढ़ी वस्तु टेढ़े स्थान में ही समा सकती है, सीधे स्थान में सुविधापूर्वक नहीं समा सकती। कविवर बिहारी श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति को ही अपने हृदय में बसाना चाहते हैं। इसीलिए वे सरल न बनकर कुटिल (टेढ़े) ही बने रहना चाहते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) बिहारी की कल्पना पर आधारित समाहार-शक्ति एवं वाक-चातुर्य प्रशंसनीय है। (2) श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप को हृदय में बसाने की छवि की अभिलाषा और अपनी कुटिलता न छोड़ने हेतु प्रस्तुत किया गया तर्क उनकी सूक्ष्म बुद्धि का परिचायक है। **(3) भाषा-** ब्रजभाषा। **(4) शैली-** मुक्तक। **(5) अलंकार-** 'त्रिभंगीलाल' में परिकरांकुर एवं अनुप्रास। **(6) रस-** भक्ति। **(7) छन्द**-दोहा।

(ख) मकर कृति ..... लसत निसान।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– एक सखी नायक के पास होकर आई है और नायिका का वर्णन सुनकर नायक पर कामदेव का जो प्रभाव पड़ा है, उसका वर्णन करती है कि उसके हृदय को कामदेव ने वशीभूत कर लिया है, जिसका प्रमाण यह है कि 'कम्प' नामक सात्विक भाव के कारण उसके कुण्डल हिल रहे हैं।

व्याख्या– हे सखी! गोपाल के कानों में मकराकृति-कुण्डल ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो हृदयरूपी देश को कामदेव ने विजित कर लिया हो। इसलिए उसकी ध्वजा ड्योढ़ी पर फहरा रही है। हिलते हुए कुण्डलों को देखकर यह आभास होता है कि कामदेव का प्रवेश कान से हुआ है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यहाँ कवि ने श्रीकृष्ण के काममय रूप का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। (2) कान की उत्प्रेक्षा ड्यौढ़ी से करने में यह ध्वनित होता है कि कामदेव के हृदय-देश में प्रवेश करने के मार्ग कान ही हैं अर्थात् नायक पर कामदेव का प्रभाव गुण-श्रवण के द्वारा ही हुआ है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** दोहा। **(5) रस–** शृंगार। **(6) शैली–** मुक्तक। **(7) अलंकार–** उत्प्रेक्षा और रूपक।

(ग) बतरस-लालच ..... कहैं नटि जाइ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में बिहारी राधा की प्रेमपूर्ण मुद्राओं का वर्णन करते हुए कहते हैं-

व्याख्या– राधाजी ने श्रीकृष्ण से बात करने के आनन्द के लालच से उनकी मुरली छिपाकर रख दी। श्रीकृष्ण ने पूछा कि क्या मुरली तुम्हारे पास है तो राधा कसम खाने लगीं (कि हमारे पास मुरली नहीं है); परन्तु भौंहों में हँसने लगीं अर्थात् उनके नेत्र हँस रहे थे (जिससे स्पष्ट होता है कि मुरली इन्हीं के पास है)। जब श्रीकृष्ण ने उनसे मुरली देने के लिए कहा तो राधा ने अपने पास मुरली होने की बात से ही इनकार कर दिया (इस प्रकार यह क्रम देर तक चलता रहा)।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रथम पंक्ति में राधा की मुरली के प्रति ईर्ष्या का संकेत भी मिला है; क्योंकि श्रीकृष्ण मुरली बजाने के कारण उनसे बात नहीं करते थे और वे श्रीकृष्ण से बातों का आनन्द लेना चाहती थी। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–**

मुक्तक। **(4) अलंकार–** कारक, दीपक और अनुप्रास। **(5) रस–** संयोग श्रृंगार। **(6) छन्द–** दोहा।

(घ) कर लै, चूमि ..... धरति समेटि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में कविवर बिहारी ने प्रोषितपतिका नायिका की दशा का मनोरम वर्णन किया है।

व्याख्या– नायक ने नायिका को पाति (पत्र) भेजी है। इस पाति को पाकर नायिका की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने पाति को हाथ में लेकर सबसे पहले उसे चूमा, फिर उसे पवित्र मानकर सिर अर्थात् माथे से लगाया। इसके पश्चात उसने उसे अपनी भुजाओं में भरकर अपनी छाती से ऐसे लिपटाया, मानो वह साक्षात् नायक हो। अपने प्रियतम की उस पाति को वह नायिका कभी तो अत्यन्त स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखती है, कभी उसे पढ़ती है और कभी उसे सँभालकर बन्द करके अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर रख देती है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रियतम के प्रति नायिका की उत्कण्ठा को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया है। (2) नायिका की चेष्टाओं से प्रियतम के प्रति उसके स्नेह, आस्था और मिलन की उत्कण्ठा की सफल अभिव्यक्ति बिहारी ने इस दोहे में की है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) अलंकार–** अनुप्रास। **(6) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(7) छन्द–** दोहा।

(ङ) सहत सेत ..... तन जोति।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत दोहे में नायिका के शारीरिक सौन्दर्य और उसकी कान्ति का चित्रण इस उद्देश्य से किया गया है कि उसे सुनकर नायक उसकी ओर आकर्षित हो जाए।

व्याख्या– स्वाभाविक रूप से श्वेत और रेशम की हल्की साड़ी पहने हुए उस नायिका की सुन्दरता अत्यधिक बढ़ जाती है। इस वेश में उसकी अंग-क्रांति का आलोक ऐसा प्रतीत होता है जैसे जल-चादर के पीछे दीपकों की पंक्ति प्रज्वलित हो रही हो।

काव्य-सौन्दर्य- (1) कवि ने नायिका के शरीर की आभा और चमक का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। **(2) जल चादर–** महाराजाओं के भवनों में प्राय: जल-चादर बनाई जाती थी। रात्रि के समय गिरते हुए पानी के पीछे दीपक जलाए जाते थे। इन दीपकों को प्रकाश जब पानी पर पड़ता था, तब ऐसा होता था, मानो स्वर्ण की कोई चादर धरती पर गिर रही हो। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** 'सहज सेत' में छेकानुप्रास, सम्पूर्ण दोहे में उपमा। **(5) रस–** श्रृंगार। **(6) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) छन्द–** दोहा।

(च) करी बिरह ..... लहै न मीचु।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कोई सखी नायक से नायिका की विरह-दशा निवेदित करती हुई कहती है कि-

व्याख्या– यद्यपि विरह ने उस नायिका को इतना दुबला कर दिया है कि मृत्यु आँखों पर चश्मा लगाने पर भी उसे नहीं देख (पहचान) पाती, तथापि इतने पर भी वह नीच विरह उसका पीछा नहीं छोड़ता (अर्थात् दूर नहीं होता)। यह जानकर भी क्या तुमको (नायक को) दया नहीं आती कि जाकर उसका विरह-दु:ख मिटा दो।

काव्य-सौन्दर्य– (1) विरह ने नायिका को इतना दुर्बल कर दिया है कि मृत्यु को भी उसे ढूँढ़ पाना मुश्किल हो गया। यहाँ मृत्यु का अति सुन्दर मानवीकरण किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** दोहा। **(4) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(5) शैली–** मुक्तक। **(6) अलंकार–** अनुप्रास, अतिशयोक्ति।

(छ) मूड़ चढ़ाएऊ ..... हियैं पर हारु।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अयोग्य पुरुष का चाहे कितना ही सम्मान किया जाए वह श्रेष्ठ पद का अधिकारी नहीं होता और गुणी पुरुष यदि गले पड़कर भी रहे तो भी उसे श्रेष्ठ पद देना उचित है। इसी बात को कवि ने बाल एवं हार के माध्यम से यहाँ व्यक्त किया है।

व्याख्या– कच-भार (बालों का समूह) सिर चढ़ने पर भी पीठ ही पर पड़ा रहता है; अर्थात् आगे नहीं बढ़ सकता और हार चाहे गले पड़कर रहता हो, तो भी उसे हृदय पर रखना ही उचित है। गले में पड़ा हुआ हार हमेशा चमकता रहता है। गुणवान् व्यक्ति साथ रहकर हमेशा अपने गुणों से देदीप्यमान होता रहता है; जैसे- अकबर के साथ बीरबल; परन्तु नीच मनुष्य को आवश्यकता से अधिक सम्मान देकर भी उसे कोई नहीं जान पाता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यहाँ पर कवि ने नीति की बात कहते हुए इस तथ्य को प्रस्तुत किया है कि योग्य पुरुष सदा सम्मान का अधिकारी होता है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** दोहा। **(4) रस–** शान्त। **(5) शैली–** मुक्तक। **(6) अलंकार–** अन्योक्ति।

(ज) कर मुँदरी की ..... डीठि लगाई।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नायक को बेधड़क होकर देखने की नायिका की चातुरी का वर्णन करती हुई एक सखी दूसरी से कहती है।

व्याख्या– हाथ की अँगूठी के दर्पण (नग) में प्रियतम का प्रतिबिम्ब देखकर, नायक की ओर पीठ किए बैठी नायिका एकटक दृष्टि से बेखटके उसको देख रही है। कहने का आशय यह है कि उसे इस बात की कोई शंका नहीं है कि मुझे प्रियतम को देखते हुए कोई देख रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) शास्त्रीय दृष्टि से बिहारी की नायिका मुग्धा नायिका की श्रेणी में आती है। (2) नायिका की क्रिया-चातुरी प्रशंसनीय है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) अलंकार–** विभावना एवं अनुप्रास। **(6) रस–** शृंगार। **(7) छन्द–** दोहा।

(झ) ललन सलोने ..... मुँह लागि।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ खण्डिता नायिका, नायक पर व्यंग्य करती हुई कहती है।

व्याख्या– हे प्रिय! यद्यपि आप सलोने (1. सुन्दर लावण्य युक्त तथा 2. लवणयुक्त) है और स्नेह (1. प्रीति तथा 2. चिकनाई अर्थात् तेल अथवा घी) से भली-भाँति पग रहे हैं, तथापि तनिक कचाई से (कचाई के कारण) मुँह लगकर (1. धृष्टपूर्वक झूठी बातें कहकर तथा 2. मुँह में कनकनाहट उपजाकर) जमीकन्द की भाँति दु:ख देते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) आशय यह है कि यद्यपि प्रियतम सुन्दर और प्रीति करने वाला है, तथापि स्वभाव का बचकाना होने के कारण झूठी-सच्ची बातें लगाकर मन में विरक्ति उत्पन्न करता है; जैसे- नमकीन और घी में तला होने पर भी थोड़ा कच्चा रह जाने से जमीकन्द मुँह में लगकर विरक्ति उपजाता है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** दोहा। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** शृंगार। **(6) अलंकार–** श्लेष एवं पूर्णोपमा।

(ज) दृग उरझत ..... नई यह रीति।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस दोहे में कवि ने प्रेम के परिणाम का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि बिहारी कहते हैं कि जब नायक-नायिका के नेत्र उलझते हैं; अर्थात् उनमें परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है तब उनके कुटुम्ब टूट जाते हैं; अर्थात् नायक-नायिका का अपने-अपने कुटुम्ब से सम्बन्ध टूट जाता है और वे दोनों एक-दूसरे को ही अपना सब कुछ समझने लगते हैं। इस प्रकार चतुर प्रेमी-प्रेमिका के चित्त में गहरा प्रेम जुड़ जाता है। यह देखकर दुष्टों के हृदय में गाँठ पड़ जाती है; अर्थात् दुष्ट उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं। कवि कहते है कि हे दैव (विधाता, प्रभु)! यह तो प्रेम की नई और विचित्र रीति है।

असंगति प्रदर्शित करते हुए कवि ने सिद्ध किया है कि उलझता कोई है, टूटता कोई और है। चित्त किसी का जुड़ता है और मन में गाँठ किसी और के पड़ जाती है; अर्थात् नेत्र प्रेमियों के उलझते हैं, परन्तु टूट कुटुम्ब जाते हैं। चित्त तो प्रेमियों के जुड़ते हैं और गाँठ दुर्जनों के हृदय में पड़ जाती है। प्रेम की यह रीति बहुत ही विचित्र है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रेम की विचित्र रीति का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** असंगति, श्लेष और अनुप्रास। **(5) रस–** शृंगार। **(6) छन्द–** दोहा। **(7) भावसाम्य–** प्रेमीजनों के प्रति दुष्टों की ईर्ष्या और निंदा की प्रवृत्ति का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। बिहारी ने प्रेम की ऐसी ही आश्चर्यपूर्ण स्थिति का वर्णन अन्यत्र भी किया है—

अद्‌भुत गति यह प्रेम की, लखौ सनेही आइ।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ, कहूँ गाँठ परि जाइ।।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) अजौ तरयौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतनु के संग।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'कविवर बिहारी' द्वारा रचित 'भक्ति एवं शृंगार' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में कवि ने नाक व कान के आभूषण के माध्यम से सत्संगति की महिमा का वर्णन किया है।

व्याख्या– निरन्तर कानों का सेवन करने पर भी कान का आभूषण, निम्न स्थान पर ही रहा; अर्थात् उसका आज तक उद्धार न हो सका, जब कि नाक के आभूषण ने मोतियों के साथ बसकर, नाक के उच्च स्थान को प्राप्त कर लिया। तात्पर्य यह है कि निरन्तर वेदों की वाणी सुनकर भी एक व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त न कर सका, जबकि निम्न समझे जाने वाले अन्य व्यक्ति ने सत्संगति के माध्यम से उच्चावस्था अथवा मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

(ख) भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सौं बात।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति पंक्ति में कवि ने नायक-नायिका की वाक-चातुरी का वर्णन किया है।

व्याख्या– नायक और नायिका दोनों अपने परिजनों से घिरे हुए भवन में बैठे हुए हैं, तब दोनों आपस में बातें कैसे करें? उन्होंने इस समस्या का समाधान कर लिया है और वे अब आँखों एवं मुख- भंगिमाओं के द्वारा एक-दूसरे से अपने मन की बात संकेतों में कह रहे हैं। इससे न तो उनके किसी परिजन को कुछ पता चला और उनकी बात भी हो गई। यह वार्तालाप कुछ इस प्रकार हुआ- नायक ने आँख के इशारे से नायिका को एकान्त में आने के लिए कहा, मगर नायिका ने आँख के इशारे से ही मना कर दिया। नायिका की इस अदा पर नायक रीझ गया, इससे नायिका खीझ उठी। इसी बीच दोनों के नेत्र मिले और दोनों के चेहरे खिल उठे; किन्तु परिजनों की उपस्थिति के कारण दोनों लजा गए।

(ग) जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन-जोति॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इसमें झीनी साड़ी पहने नायिका की उज्जल देह का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– नायिका ने झीनी पारदर्शक सफेद रंग की साड़ी पहनी है। उस पारदर्शक साड़ी के अंदर से नायिका की गोरी-उजली देहयष्टि उसी प्रकार जगमगाती हुई दिखाई देती है, जिस प्रकार किसी दीपक का प्रतिबिम्ब पानी के अन्दर दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि नायिका के सौन्दर्य को ढकने में वस्त्र सक्षम नहीं हैं।

(घ) तनक कचाई देत दुःख, सूरन लौं मुँह लागि॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में यह दर्शाया गया है कि प्रेम की अपरिपक्वता मन के लिए दु:खदायी होती है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि जिस प्रकार पर्याप्त घी और लवण में तला हुआ होने पर भी थोड़ा कच्चा रह जाने से जमीकन्द मुँह में लगता है, उसी प्रकार अपार स्नेह और सौन्दर्य से युक्त होने पर भी प्रेम में स्वभाव का बचकानापन कष्टकर होता है। इस प्रकार कवि के अनुसार प्रेम में परिपक्वता अपेक्षित है, क्योंकि कच्चेपन से निरन्तर कष्ट का भय बना रहता है।

(ङ) लगालगी लोइन करैं, नाहक मन बाँधि जाँहि॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में प्रेम की विचित्र रीति का अत्यन्त आकर्षक चित्रण किया गया हैं।

व्याख्या– प्रेम की रीति बड़ी विचित्र है। इसमें अपराध कोई करता है और सजा किसी और को भुगतनी पड़ती है। उदाहरण के रूप में कविवर बिहारी कहते हैं कि प्रेम में लगा-लगी अर्थात् मिलने-मिलाने का कार्य तो नेत्र करते हैं; किन्तु बँधना बेचारे मन को पड़ता है, जबकि उसका दोष कोई नहीं होता।

(च) वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में किसी स्त्री की आसक्त करने वाली विशेष प्रकार की चितवन, अर्थात् प्रेमपूर्ण दृष्टि के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– बिहारी कहते हैं कि यद्यपि नुकीली और बड़े नेत्रों वाली अनेक स्त्रियाँ संसार में हैं और उन सभी का नेत्र-सौन्दर्य भी एक-सा प्रतीत होता है, तथापि सौन्दर्य के पारखी अथवा रसिकजन ऐसी सभी दृष्टियों पर अनुरक्त नहीं होते। वे तो उस विशेष प्रकार की दृष्टि के ही वशीभूत होते हैं, जो प्रेमपूर्ण और किसी-किसी की ही होती हैं। इस सूक्ति की व्याख्या इस रूप में भी की जा सकती है कि ऐसी अनेक स्त्रियाँ होती हैं जिनकी आँखें नुकीली और विशेष प्रकार की होती हैं, परन्तु विशिष्ट और कटाक्षपूर्ण दृष्टि रखने वाली ऐसी कम ही स्त्रियाँ होती हैं, जिनकी निगाहों के वश में अत्यधिक चतुर और समझदार लोग भी हो जाते हैं।

(छ) परति गाँठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कविवर बिहारी द्वारा रचित प्रस्तुत सूक्ति में नायिका अपने हृदय के तर्क-वितर्क को अपनी अन्तरंग सखी से कहती है।

व्याख्या– बिहारी वाग्वैदग्ध्य के धनी साहित्यकार हैं। यहाँ उन्होंने प्रेम के नगर में कुछ विचित्र प्रकार की रीति-नीति देखी तो नगर छोड़कर बाहर जाने की बात करने लगे। उनका कहना है कि अपराध कोई और करता है, पर दण्ड किसी अन्य को भुगतना पड़ता है। कार्य कहीं होता है तो उसका असर कहीं और दीखने लगता है। प्रेम में उलझती तो आँखें हैं और टूटते कुटुम्ब हैं; क्योंकि नायक-नायिका के प्रेम में असहमति के कारण उनके परिवारों का विघटन हो जाता है और उन्हें अलग-अलग रहने पर विवश होना पड़ता है। जुड़ते नायक-नायिका के हृदय हैं और गाँठ उनसे ईर्ष्या करने वाले दुर्जनों के हृदय में पड़ती है। ऐसे प्रेमनगर में रहना सम्भव नहीं है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. बिहारी के स्वपठित दोहों के आधार पर उनकी भक्ति-भावना का विवरण दीजिए।

उ०– 'भक्ति एवं शृंगार' में कवि बिहारी ने अपने अराध्य भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रस्तुत किए हैं। कवि अपने प्रभु की

भक्ति के कारण कुटिल (टेढ़े) बने रहना चाहते हैं क्योंकि उनके प्रभु त्रिभंगीलाल है जो, तीन स्थानों से टेढ़े है और यदि कवि सीधा और सरल हो जाएगा तो उनके प्रभु को उनके हृदय में वास करने में कठिनाई होगी। इसलिए वह अपने प्रभु को मन में धारण करने के लिए कुटिल ही बना रहना चाहते हैं। अपने प्रभु के प्रति भक्ति के कारण संसार की निंदा सहने को भी तैयार है। कवि बिहारी की भक्ति सखा भाव की है। कवि ने श्रीकृष्ण के अभूतपूर्व सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। कवि ने श्रीकृष्ण को अपना मित्र माना है तथा उनके प्रति भक्ति करते हुए राधा व श्रीकृष्ण की प्रेमपूर्ण मुद्राओं का चित्रण किया है।

2. बिहारी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सरस वर्णन किया है। स्वपठित अंश के आधार पर विवेचना कीजिए।

उ०– कवि बिहारी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अद्‌भुत वर्णन किया है। कवि ने श्रृंगार के संयोग रूप का वर्णन करते हुए राधा-कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं के द्वारा श्रृंगार के संयोग पक्ष का चित्रण किया है। उन्होंने अपने दोहों में प्रेमिका तथा प्रेमी के विभिन्न भावों को प्रदर्शित किया है जैसे-

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥
कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत है नैननु ही सौं बात॥

उक्त दोहों में कवि ने प्रेमी-प्रेमिका के विभिन्न प्रेमपूर्ण क्रीड़ाओं का वर्णन करके संयोग पक्ष को जीवन्त कर दिया है। कवि बिहारी ने श्रृंगार के संयोग पक्ष का जितनी कुशलतापूर्वक वर्णन किया है, उतनी ही कुशलता पूर्वक वर्णन उन्होंने वियोग श्रृंगार का भी किया है। उन्होंने प्रेमिका की विरहावस्था का मार्मिक वर्णन किया है। जिसमें उन्होंने प्रेमिका (नायिका) को विरह की अग्नि में जलते हुए बताया है— जैसे—

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह-बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाबु गौ, छींटौ छुई न गात।

कवि ने विरह में व्याकुल प्रेमिका को इतना दुर्बल बताया है कि मृत्यु भी उसे आँखों पर चश्मा लगाकर खोजती फिरती हैं। जैसे-

करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं, हूँ चसमा चखनु, चाहै लहै न मीचु॥

3. बिहारी ने अपनी कुटिलता न त्यागने को क्यों कहा है?

उ०– बिहारी ने अपनी कुटिलता न त्यागने को इसलिए कहा है क्योंकि वह अपने प्रभु श्रीकृष्ण को अपने हृदय में बसाना चाहते हैं। उनके प्रभु श्रीकृष्ण त्रिभंगीलाल है जो बाँसुरी बजाते हुए गर्दन, कमर व पैर तीनों स्थानों से टेढ़े हो जाते हैं और यदि वह (बिहारी) कुटिलता छोड़कर सीधा व सरल हो गया तो उनको उसके हृदय में बसने में कष्ट होगा, क्योंकि टेढी वस्तु टेढ़े स्थान में ही समा सकती है, सीधे-सरल स्थान में नहीं। इसलिए कवि अपनी कुटिलता नहीं त्यागना चाहता।

4. बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्द में समस्त रस सामग्री का समावेश कर 'गागर में सागर' भर दिया है। इस कथन को सत्यापित कीजिए।

उ०– बिहारी ने अपनी काव्य रचना में दोहा छन्द का प्रयोग किया है। जिसमें उन्होंने मुक्तक काव्य शैली को अपनाया है जिसमें समास-शैली का अनूठा योगदान है, जिसके कारण इन्होंने दोहे जैसे छोटे छन्द में भी अनेक भाव भर दिए हैं। अलंकारों के प्रयोग में बिहारी दक्ष थे। इन्होंने छोटे-छोटे दोहों में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके काव्य में श्लेष, उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। जिनके द्वारा इन्होंने दोहे जैसे छोटे छन्द में भी 'गागर में सागर' भर दिया है जैसे—

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतनु के संग॥
जोग् जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता, काननु सेवत नैन।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न—

1. ''करौ कुबत ..... त्रिभंगी ला॥'' पंक्तियों में निहित रस तथा छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में भक्ति रस तथा दोहा छन्द है।

2. ''अंग-अंग नग..... उज्यारौ गेह॥'' पंक्तियों में निहित अलंकार तथा छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में पुनरुक्तिप्रकाश तथा उपमा अलंकार तथा दोहा छन्द निहित है।

3. ''कंज-नयनि ..... नंदकुमार॥'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य– (1) नायिका की क्रिया चातुरी दर्शनीय है। **(2) भाषा–** ब्रज, **(3) शैली–** मुक्तक, **(4) रस–** श्रृंगार, **(5)**

छन्द– दोहा, **(6) अलंकार–** अनुप्रास, **(7) शब्दशक्ति–** लक्षणा, **(8) गुण–** माधुर्य।

4. ''रहौ, गुही ..... सुखाए बार।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य– (1) बिहारी ने इस दोहे में इस बात का संकेत किया है कि वह नायिका स्वाधीनपतिका है; क्योंकि उसे अपने काले, घने, लंबे बालों पर गर्व है; तभी तो वह 'नीठि सुखाए बार' कहती है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** मुक्तक, **(4) रस–** संयोग शृंगार, **(5) छन्द–** दोहा, **(6) अलंकार–** व्याजोक्ति।

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

7 शिवा-शक्ति, छत्रसाल-प्रशस्ति
(महाकवि भूषण)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—140 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न—

1. महाकवि भूषण का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– रीतिकालीन कवि भूषण का जन्म तिकवाँपुर ग्राम (कानपुर) में सन् 1613 ई० में हुआ था। इनके पिता पं० रत्नाकर त्रिपाठी सिद्धिदात्री माँ दुर्गा के अनन्य भक्त थे तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध रससिद्ध कविद्वय 'चिन्तामणि' और 'मतिराम' इनके भाई थे। कुछ साहित्यकार 'भूषण' का वास्तविक नाम 'पतिराम' तथा कुछ 'मनीराम' मानते हैं। चित्रकूट के राजा रुद्रदेव ने इनकी प्रखर बुद्धि से प्रभावित होकर इन्हें 'भूषण' उपाधि प्रदान की; तभी से ये भूषण नाम से प्रसिद्ध हुए। ये अनुकूल आश्रय की खोज में घूमते रहे। इन्हें शिवाजी तथा महाराजा छत्रसाल के दरबार में मनोनुकूल आश्रय प्राप्त हुआ। इन्होंने दोनों राजाओं के शौर्य एवं पराक्रम का गुणगान अपनी कविताओं के माध्यम से किया। भूषण अपने समय में वीर रस की कविता लिखने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं। जब ये महाराजा छत्रसाल के दरबार से विदा ले रहे थे, तब महाराजा छत्रसाल ने भी इनकी पालकी में कन्धा लगाया था, तब इसी विषय में भूषण की उक्ति है— ''सिवा को बखानौं कि बखानौं छत्रसाल कौं।'' इसके बाद ये शिवाजी के दरबार में गए और जीवन के अन्तिम समय तक वहीं जीवन-यापन किया। माना जाता है कि राजा शिवाजी इनके एक-एक छन्द पर इन्हें सहस्त्राधिक राशि प्रदान करते थे। सन् 1715 ई० में काव्य-साहित्य का यह दैदीप्यमान नक्षत्र सदैव के लिए विलुप्त हो गया।

रचनाएँ– भूषण द्वारा रचित छ: रचनाओं में से कुल तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं— शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी और छत्रसाल-दशक।

2. महाकवि भूषण की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– यद्यपि भूषण की कविता ब्रजभाषा में है, तथापि इसमें ब्रजभाषा के माधुर्य की नहीं, वरन् ओज की प्रधानता है। इनकी ब्रजभाषा में अरबी, फारसी, प्राकृत, बुन्देलखण्डी और खड़ीबोली आदि के शब्दों के भी प्रयोग किए है। भूषण के काव्य में ओजपूर्ण वर्णन शैली मिलती है, जिसमें ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता के गुण विद्यमान हैं। भूषण ने कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय आदि छन्दों को अपने काव्य का आधार बनाया है। इन्होंने अनुप्रास, रूपक, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति आदि प्रमुख अलंकारों का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में स्थानीय पुट भी अनायास आ गया है। इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का भी नि:संकोच प्रयोग किया है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न—

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) साजि चतुरंग .....यो हलत है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महाकवि भूषण' द्वारा रचित 'भूषण ग्रन्थावली' से 'शिवा-शौर्य' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि भूषण ने शिवाजी की चतुरंगिणी सेना के युद्ध हेतु प्रस्थान का वर्णन किया है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कहते हैं कि 'सरजा' उपाधि से विभूषित अत्यन्त श्रेष्ठ एवं वीर शिवाजी अपनी चतुरंगिणी सेना (पैदल, हाथी, घोड़े और रथ) को सजाकर तथा अपने अंग-अंग में उत्साह का संचार करके युद्ध जीतने के लिए जा रहे हैं। भूषण कहते हैं कि उस समय नगाड़ों का तेज स्वर हो रहा था। हाथियों की कनपटी से बहनेवाला मद (हाथी जब उन्मत्त होता है तो उसके कान से एक द्रव स्रावित होता है, जिसे 'मद' कहते हैं) नदी-नालों की तरह बह रहा था; अर्थात् शिवाजी की सेना में मदमत्त हाथियों की विशाल संख्या थी और युद्ध के लिए उत्तेजित होने के कारण हाथियों की कनपटी से अत्यधिक मद गिर रहा था, जो नदी-नालों की तरह बह रहा था। शिवाजी की विशाल सेना के चारों ओर फैल जाने के कारण संसार में एक-साथ खलबली मच गई। हाथियों की धक्का-मुक्की से पहाड़ भी उखड़ रहे थे और विशाल सेना के चलने से बहुत अधिक धूल उड़ रही थी। अधिक धूल उड़ने के कारण आकाश में चमकता हुआ सूर्य तारे के समान लग रहा था और (सेना के भार से पृथ्वी के काँप उठने से) समुद्र इस प्रकार हिल रहा था जैसे थाली में रखा हुआ पारा हिलता है।

काव्य-सौन्दर्य- (1) शिवाजी की चतुरंगिणी सेना के प्रस्थान का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया गया है। (2) सेना के चलने, हाथियों के मद गिरने और धूल के उठने से सूर्य और समुद्र के वर्णन में अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है। **(3) 'ऐलफैल ..... उसलत है'** में नाद-सौन्दर्य की सुन्दर योजना है। **(4) भाषा–** साहित्यिक ब्रजभाषा। **(5) शैली–** मुक्तक। **(6) अलंकार–** अनुप्रास, अतिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं पुनरुक्ति प्रकाश। **(7) रस–** वीर। **(8) गुण–** ओज। **(9) छन्द–** मनहरण कवित्त।

(ख) बाने फहराने ..... फन सेस के।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद में युद्ध के लिए शिवाजी के सेना के प्रयाण करते समय का वर्णन है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कहते हैं कि शिवाजी की सेना के झण्डे फहराने लगे। हाथियों के घण्टे घनघोर ध्वनि करते बज उठे। तब देश-देश के राव और राणा (राजा) उस सेना के सामने न टिक सके। महाराज शिवाजी के नगाड़ों की प्रचण्ड ध्वनि से पहाड़ भरभरा कर ढह पड़े और मार्ग में पड़ने वाले गाँव और नगरों के लोग भाग खड़े हुए। (हाथियों के तीव्र गति से चलने के कारण) हौदे ढीले होकर अपने स्थान से सरक गए और हाथियों के गण्डस्थल (कनपटियों) पर मदपान करने के लिए एकत्रित हुए भौंरे अपने घरों (वन प्रदेश) को भाग गए। उस समय वे (भौंरे) ऐसे लगे, मानो बालों की लटें खुलकर लहरा रही हों। आशय यह है कि मदपान करने के लिए इकट्ठे हुए दल के भौंरे तो केशपाश सदृश प्रतीत होते थे, पर जब वे घण्टों और नगाड़ों की प्रचण्ड ध्वनि एवं हाथियों की तेज चाल से घबराकर भागे तो बिखरी लटों जैसे लगे। सेना के चलने की धमक से कच्छप की कठोर पीठ भी विदीर्ण हो गई और शेषनाग के फन केले के पत्तों जैसे चिर गए।

काव्य-सौन्दर्य– (1) शिवाजी की सेना के आतंक का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। (2) पृथ्वी को भगवान् के कच्छपावतार एवं शेषनाग ने धारण कर रखा है, ऐसी पौराणिक मान्यता है। (3) फहराने, घहराने, ठहराने, भहराने, उकसाने, भजाने, बिहराने शब्दों की पदमैत्री से उत्पन्न नाद से सेना की त्वरित गति एवं व्यापक प्रभाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। **(4) भाषा–** ब्रज। **(5) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(6) शैली–** मुक्तक। **(7) रस–** वीर और भयानक। **(8) गुण–** ओज। **(9) अलंकार–** उपमा, अनुप्रास और अतिशयोक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश।

(ग) छूटत कमान ..... परैं कोट में।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि भूषण ने शिवाजी की सेना के शत्रु-सेना से हुए युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन किया गया है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कहते हैं कि शत्रुओं की ओर से भयंकर धनुष-बाणों, बन्दूकों तथा कोकबान नामक भयंकर शब्द वाले बाणों की निरन्तर हो रही भीषण बौछार में मोर्चे की ओट में भी अपनी रक्षा करना मुश्किल हो रहा है। ऐसे भीषण युद्ध के समय में महाराज शिवाजी ने अपनी सेना के चुने हुए वीरों को साथ लेकर शत्रु को ललकारते हुए गर्जना के साथ आक्रमण का आदेश दिया। कवि भूषण आगे कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी! तेरी उस हिम्मत का वर्णन कहाँ तक करूँ, जिसकी वीरों के समूह में कोई कीमत ही नहीं है। कहने का आशय यह है कि शिवाजी की हिम्मत अकथनीय और वीरों के समाज में अत्यधिक सम्मानीय है। हे शिवाजी! तेरी सेना के दुर्धर्ष वीर अपनी मूँछों पर ताव दे-देकर, शत्रु के किले के कँगूरों पर पैर रख-रखकर शत्रु सैनिकों को घायल करके अथवा मारकर किले के अंदर कूद पड़ते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) भूषण ने स्वयं युद्धों को अपनी आँखों से साक्षात् रूप में देखा था; इसीलिए वे युद्ध का ऐसा ओजपूर्ण और स्वाभाविक वर्णन करने में सफल रहे हैं। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** मुक्तक। **(4) अलंकार–** अनुप्रास, अतिशयोक्ति तथा पुनरुक्तिप्रकाश। **(5) रस–** वीर। **(6) गुण–** ओज। **(7) छन्द–** मनहरण कवित्त।

(घ) इन्द्र निज ..... गिरिजा गिरीस कों।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महाराज शिवाजी के शौर्य का यश समस्त लोक-लोकान्तरों में इतना फैल गया कि सर्वत्र सफेदी छा गई और देवताओं द्वारा धवल पदार्थों को ढूँढ़ना कठिन हो गया है। इसी का वर्णन इस पद में हुआ है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कहते हैं कि इन्द्र अपने हाथी ऐरावत को खोजते फिर रहे हैं और विष्णु क्षीरसागर को ढूँढ़ते घूम रहे हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हंस गंगा (मानसरोवर) को ढूँढ़ रहे हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी हंस को और चकोर चन्द्रमा को ढूँढ़ता फिरता है, परन्तु ये सभी सफेद रंग की चीजें शिवाजी के धवल यश में खो गई हैं। हे शाहजी के पुत्र सरजा शिवाजी तूने ऐसा शौर्य प्रदर्शित किया है कि तैंतीस करोड़ देवता तक चकित रह गए हैं। तेरे यश की धवलता में ये सब सफेद चीजें ऐसी विलीन हो गई हैं कि शिव अपने निवास कैलाश पर्वत को और पार्वती जी शिवजी को खोजती फिर रही है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कवि-रूढ़ि के अनुसार यश का रंग सफेद माना गया है। महाराज शिवाजी के यश से सर्वत्र ऐसी सफेदी छा गई है कि सारे श्वेत पदार्थ उसमें विलीन हो जाने से खो से गए हैं; अर्थात् देखने पर दिखते नहीं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** अद्‌भुत। **(6) अलंकार–** तद्‌गुण, अतिशयोक्ति और अनुप्रास।

(ङ) निकसत म्यान तें ..... देति काल को।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महाकवि भूषण' द्वारा रचित 'भूषण-ग्रन्थावली' से 'छत्रसाल-प्रशस्ति' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– इस छन्द में महाकवि भूषण ने परम यशस्वी, हिन्दू-धर्म-संरक्षक तथा महाप्रतापी महाराज छत्रसाल की तलवार का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया है।

व्याख्या– महाकवि भूषण कहते हैं कि छत्रसाल की तलवार म्यान से निकलते ही प्रलयकालीन सूर्य के समान प्रचण्ड और भयंकर रूप में चमकने लगती है और घने अन्धकार के समान काले और विशालकाय हाथियों के समूह को चीर देती है। वह तलवार सर्पिणी के समान शत्रुओं के कण्ठों से लिपटकर उनके प्राणों को हर लेती है और इस प्रकार मुण्डों की माला देकर शिवजी को प्रसन्न करती है। तात्पर्य यह है कि छत्रसाल की तलवार मुण्डों की माला पहनने वाले रुद्र (शिवजी के अवतार) को शत्रुओं के मुण्ड देकर प्रसन्न कर देती है। कवि भूषण कहते हैं कि 'हे महाप्रतापी पृथ्वीपति और चिरंजीवी छत्रसाल! आपकी इस तलवार की अद्‌भुत और चमत्कारिणी शक्ति का वर्णन कहाँ तक करूँ; अर्थात् शब्दों के माध्यम से आपकी इस तलवार की प्रशंसा करना संभव नहीं है। महाराज छत्रसाल की वह तलवार काँटेदार झाड़ियों के समान दु:खदायी शत्रुओं की सेना को काट-काटकर तथा काली देवी के समान किलकारी मारती हुई, यमराज को नाश्ता कराती है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) इस छन्द में महाराज छत्रसाल की वीरता का ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। छत्रसाल को युद्ध में निपुण महावीर के रूप में दिखाया गया है। **(2) भाषा–** गतिशील ब्रजभाषा **(3) अलंकार–** उपमा, अतिशयोक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास। **(4) रस–** वीर रस। **(5) गुण–** ओज। **(6) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(7) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(8) शैली–** मुक्तक।

(च) भुज भुजगेस ..... है खलन के।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्य में छत्रसाल की बरछी का कौशल वर्णित है।

व्याख्या– हे राजा चम्पतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल! आपके पराक्रम का बखान कौन कर सकता है? आपकी भुजा शेषनाग के समान है तो आपकी बरछी शेषनाग की जीवन-संगिनी नागिन की भाँति भयंकर और विषैली है। यह, नागिन के समान, प्रचण्ड शत्रुओं के विशाल दलों को खदेड़-खदेड़कर खा जाती है। वह कवचों और लोहे की झूलों में इस प्रकार सरलता से धँस जाती है, जैसे मछली जल-प्रवाह को तैरकर सरलता से पार कर जाती है। तेरे शत्रु तेरी बरछी की मार से कटकर इस प्रकार रणभूमि में पड़े हैं, जैसे पंखकटे पक्षी हों। इस प्रकार तेरी बरछी ने शत्रुओं के समस्त बल-पौरुष को छीनकर उन्हें सर्वथा बलहीन बना दिया है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) छत्रसाल की बरछी के माध्यम से उनके पराक्रम का बड़ा ही ओजस्वी वर्णन किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** वीर। **(6) शब्द शक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** ओज। **(8) अलंकार–** रूपक, उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश और यमक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महाकवि भूषण' द्वारा रचित 'शिवा-शौर्य' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस पंक्ति में शिवाजी के सेना के प्रस्थान के समय धरती पर मची खलबली का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कहते हैं कि शिवाजी की सेना के युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय बहुत अधिक धूल उड़ रही थी। उड़ती हुई धूल इतनी अधिक थी कि इस धूल में सूर्य एक तारे के समान प्रतीत हो रहा था। शिवाजी की विशाल सेना के भार से पृथ्वी भी काँप उठी थी। पृथ्वी के कम्पायमान हो जाने से समुद्र आदि भी हिलने लगे थे। समुद्र के हिलने से ऐसा प्रतीत होता

था मानो किसी थाली में रखा हुआ पारा हिल रहा हो। तात्पर्य यह है कि शिवाजी की सेना इतनी अधिक विशाल थी कि उसके युद्ध के लिए प्रयाण करते समय उस स्थान पर ही नहीं, वरन् संपूर्ण पृथ्वी पर ही खलबली मच गई थी और समस्त चराचर जगत् में अव्यवस्था का बोलबाला हो उठा था।

(ख) केरा के से पात बिहाराने फन सेस के।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति में शिवाजी की सेना के प्रस्थान के समय पृथ्वी पर मची खलबली और पृथ्वी को धारण करने वाले कछुआ और शेषनाग की स्थिति का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– महाकवि भूषण जी कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी की सेना के नगाड़ों की प्रचण्ड ध्वनि से पहाड़ भरभरा कर ढह गए और सेना के गमन मार्ग में पड़ने वाले गाँव और नगरों के लोग भाग खड़े हुए। हाथियों के हौदे ढीले होकर अपने स्थान से सरक गए। हाथियों के गण्डस्थल पर मदपान करने के लिए एकत्रित हुए भौंरे अपने घरों को भाग गए। उस समय वे ऐसे लगे मानों बालों की लटें खुलकर लहरा रही हों। आशय यह है कि मदपान करने के लिए इकट्ठे हुए दल के दल भौंरे तो केशपाश सदृश प्रतीत होते थे, पर जब वे घण्टों और नगाड़ों की प्रचण्ड ध्वनि एवं हाथियों की तेज चाल से घबराकर भागे तो बिखरी लटों जैसे लगने लगे। पौराणिक मान्यता के अनुसार विष्णु के 24 अवतारों में से एक अवतार कछुए का हुआ था, जिसने समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया था। अन्य मान्यता के अनुसार पृथ्वी को शेषनाग (सहस्त्र फन वाले सर्प) ने अपने फनों पर धारण कर रखा है। इसी कछुए की कठोर पीठ शिवाजी की सेना के चलने की धमक से विदीर्ण हो गई है और शेषनाग के फन केले के पत्तों के समान चिरकर अलग-अलग हो गए।

(ग) घाव दै दै अरि मुख कूदि परैं कोट में।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में महाकवि भूषण ने वीर शिवाजी के पराक्रम की प्रशंसा की है।

व्याख्या– न केवल शिवाजी, वरन् उनके वीर सिपाही भी उन्हीं की तरह अत्यन्त साहसी, उत्साही और वीर-योद्धा हैं। वे शत्रु-सैनिकों से तनिक भी भय नहीं खाते। उनके सिपाही शत्रु के किले के कँगूरों में पैर रखकर वहाँ नियुक्त सैनिकों को घायल करके किले के अन्दर कूद जाते हैं। इस प्रकार वे शत्रु के किलों को बड़ी सरलता से जीत लेते हैं। शिवाजी और उनके वीरों के युद्ध-कौशल के सम्मुख शत्रु अपना बचाव करने का अवसर भी प्राप्त नहीं कर पाते। वे जब तक बचाव की बात सोचते हैं तब तक शिवाजी और उनके सैनिकों का भरपूर वार उन्हें घायल कर डालता है।

(घ) पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीन वीर।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महाकवि भूषण' द्वारा रचित 'छत्रसाल-प्रशस्ति' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में महाकवि भूषण ने छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा की है।

व्याख्या– भूषण कवि छत्रसाल से उनकी तलवार की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी तलवार ने शत्रुओं की शक्ति को क्षीण करके धरती पर गिरा दिया है। धरती पर गिरे हुए, वीर ऐसे लगते हैं, मानो किसी ने आकाश में उड़ते पक्षियों के पंख काट दिए हैं और वे पक्षी धड़ाम से जमीन पर आ पड़े हों। इस प्रकार तुम्हारी तलवार ने शत्रुओं की विजय-प्राप्ति की इच्छा को उनसे छीन लिया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'शिवा-शौर्य' के आधार पर शिवाजी के युद्ध-अभियान का वर्णन अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– महाकवि भूषण जी ने 'शिवा-शौर्य' में शिवाजी की सेना के युद्ध का अद्भुत वर्णन किया है। सरजा की उपाधि से विभूषित महाराज शिवाजी अपनी चतुरंगिणी सेना (पैदल, हाथी, घोड़े और रथ) को सजाकर मन में उत्साह धारण करके युद्ध जीतने के लिए प्रस्थान पर रहे हैं। उस समय नगाड़ों का स्वर तेज हो रहा है और मदमस्त हाथियों की कनपटी से बहने वाला मद नदी-नालों की तरह बह रहा था। सेना के प्रस्थान के कारण होने वाले कोलाहल से संसार भर में खलबली मच गई थी। हाथियों की धक्का-मुक्की के कारण पहाड़ के पहाड़ उखड़ रहे थे और विशाल सेना के चलने से उड़ी धूल की विपुल राशि से सूर्य तारे जैसा लगने लगा था। सेना के भार के कारण पृथ्वी के काँपने से समुद्र थाली में रखे पारे की तरह हिलने लगा था। शिवाजी के सेना के झंडे फहराने लगे थे। हाथियों के गले में पड़े हुए घंटे बजने लगे। उनकी सेना के सामने विभिन्न देशों के राव और राणा (शासक) ठहर नहीं सके। शिवाजी के नगाड़ों की प्रचण्ड ध्वनि के कारण पहाड़ भरभरा कर ढह गए और मार्ग के लोग भी भाग खड़े हुए। हाथियों के हौदे ढीले होकर खिसक गए और हाथियों की कनपटियों पर मदपान करने के लिए एकत्रित हुए भौंरे अपने घरों को भाग गए। सेना के चलने से कच्छप की (कछुए की) कठोर पीठ भी टूट गई और शेषनाग के फन केले के पत्ते के समान चिर गए थे।

शत्रु की ओर से भयंकर धनुष-बाणों, बन्दूकों एवं कोकबान नामक प्रचण्ड शब्द वाले बाणों की निरन्तर झड़ी लगने के कारण शिवाजी की सेना को मोर्चे की ओट में भी अपनी रक्षा करना मुश्किल हो रहा था। ऐसे समय में महाराज शिवाजी ने अपने चुने हुए वीरों को ललकारते हुए उन्हें शत्रु पर आक्रमण का आदेश दिया और महाराज शिवाजी के वीर सिपाही मूँछों पर ताव देकर

शत्रु के किले के कँगूरों पर पाँव रखकर शत्रु का संहार करते हुए दुर्ग के अन्दर कूद गए थे।

2. महाकवि भूषण ने राजा छत्रसाल की प्रशंसा किस प्रकार की है?

उ०– महाकवि भूषण ने राजा छत्रसाल को परम यशस्वी, हिन्दू धर्म संरक्षक तथा महाप्रतापी बताया है। महाकवि भूषण कहते हैं कि जब राजा छत्रसाल की तलवार म्यान से बाहर आती हैं तो उससे प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य की किरणें जैसे प्रलयकारी किरणें निकलती हैं, जो घने अन्धकार के समान काले और विशालकाय हाथियों के समूह को चीर देती है। वह तलवार नागिन के समान शत्रुओं के कण्ठों में लिपटकर उन्हें काट डालती है और मुण्डों की माला बनाकर शिवजी को अर्पित कर उन्हें प्रसन्न करती है। राजा छत्रसाल की तलवार प्रचण्ड योद्धाओं के दल के दल काटकर कालिका के समान हर्षित होती हुई, काल को आहार प्रदान करती है। कवि कहते हैं राजा छत्रसाल की भुजा शेषनाग की तरह तथा इनकी बरछी शेषनाग की जीवन संगिनी के समान भयंकर और विषैली है। जो शत्रुओं के विशाल दलों का नाश कर देती है। यह कवच और लोहे की झूलों में इस प्रकार सरलता से घसती है जैसे मछली जल प्रवाह को सरलता से तैरकर पार करती है। इस प्रकार कवि ने राजा छत्रसाल की तलवार की विभिन्न रूपों से प्रशंसा उन्हें वीर तथा साहसी बताया है।

3. कविवर भूषण अपनी किस विशेषता के कारण अपने युग के कवियों से पृथक हो जाते हैं?

उ०– कविवर भूषण रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि थे। रीतिकाल के कवियों ने प्राय: श्रृंगारिक रचनाएँ ही की है। परंतु कवि भूषण ने इस श्रृंगारिक प्रवृत्ति का तिरस्कार कर वीर रस के काव्य का सृजन किया। यद्यपि कविवर भूषण रीतिकालीन युग की लक्षण-ग्रन्थ परम्परा एवं अन्य प्रवृत्तियों से सर्वथा मुक्त नहीं थे और इनके काव्य में भी रस, छन्द, अलंकार आदि का प्रयोग शास्त्रीय रूप में हुआ था, तथापि इन्होंने तत्कालीन विलासितापूर्ण श्रृंगारिकता को त्यागकर राष्ट्रप्रेम और वीरोचित भावों से युक्त रचना की। जातीय एवं राष्ट्रीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति एवं अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने वाले लोकनायकों शिवाजी एवं छत्रसाल के वीरोचित गुणों का प्रकाशन इनके काव्य का मुख्य विषय रहा है। सेना, युद्धस्थल, युद्ध तथा शत्रु-सेना में व्याप्त भय आदि का सजीव चित्रण भूषण की काव्य प्रतिभा की दूसरी विशिष्टता रही है। इन्होंने अपने काव्य में ओज-भाव पर आधारित तीव्र अनुभूति को स्थान दिया है। इस कारण कविवर भूषण अपने युग के कवियों से पृथक हो जाते हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''साजि चतुरंग ..... यों हलत है।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द तथा अलंकारों के नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मनहरण कवित्त छन्द तथा अनुप्रास, अतिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार हैं

2. ''बाने फहराने ..... फन सेस के।।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस एवं अलंकारों के नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वीर रस तथा उपमा, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

3. ''निकसत म्यान ..... देति काल कों।।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौंदर्य- (1) इस छन्द में महाराज छत्रसाल की वीरता का ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। (2) छत्रसाल को युद्ध में निपुण महावीर के रूप में दिखाया गया है। **(3) भाषा–** गतिशील ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** उपमा, अतिशयोक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास। **(5) रस–** वीर। **(6) गुण–** ओज। **(7) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(8) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(9) शैली–** मुक्तक।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

8

विविधा

(सेनापति, देव, घनानन्द)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—145 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. कवि सेनापति का जीवन परिचय दीजिए।

उ०– कवि परिचय– कविवर सेनापति के जन्म और मृत्यु के संबंध में प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा कुछ अन्य विद्वानों ने इनका जन्म सन् 1589 ई० में माना है। अपनी रचना 'कवित्त रत्नाकर' में सेनापति ने स्वयं को अनूपबस्ती का निवासी बताया है। कुछ विद्वान् अनूपबस्ती का अर्थ अनूपशहर, जनपद बुलन्दशहर (उ०प्र) मानते हैं। इनकी मृत्यु के विषय

में भी कोई निश्चित प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार सन् 1649 ई० में ये स्वर्गवासी हुए। इनके पिता का नाम गंगाधर दीक्षित, दादा का नाम परशुराम दीक्षित था। हीरामणि दीक्षित इनके गुरु थे।

रचनाएँ– अपनी एक ही रचना 'कवित्त रत्नाकर' के आधार पर सेनापति की गणना रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। रामचन्द्र शुक्ल व कुछ अन्य साहित्यकार इनकी दूसरी कृति 'काव्य-कल्प द्रुम' मानते हैं तथा कुछ इन दोनों कृतियों को एक ही मानते हैं। 'कवित्त रत्नाकर' के कुल 394 छन्द उपलब्ध हुए हैं।

हिन्दी-साहित्य में सेनापति की प्रसिद्धि उनके प्रकृति-वर्णन एवं श्लेष के उत्कृष्ट प्रयोग के कारण है। हिन्दी के किसी भी श्रृंगारी अथवा भक्त-कवि में सेनापति के जैसे प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की क्षमता नहीं मिलती है। इन्होंने ऋतुओं का बहुत ही मनोहारी, यथार्थ व सजीव चित्रण किया है। इन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप की अपेक्षा उसके उद्दीपन रूप को ही प्रधानता दी है। सेनापति ने प्रकृति को एक शहरी एवं दरबारी व्यक्ति की दृष्टि से देखा है। अत: इन्हें वह भोग और विलास की सामग्री ही अधिक प्रतीत हुई। इन्होंने नायिका के नख-शिख-सौन्दर्य का यथार्थ व सजीव चित्रण किया है। सेनापति की कविता हृदय स्पर्शी है। उसमें भावुकता एवं चमत्कार का बहुत सुन्दर समन्वय है। श्लेष के तो वे अनुपम कवि हैं। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, यमक, आदि अलंकारों का भी इनके काव्य में समावेश है। 'कवित्त रत्नाकर' की प्रथम तरंग पूर्णतया श्लेष अलंकार चमत्कारों से युक्त है। सेनापति की भाषा ब्रजभाषा है और यह अत्यन्त मधुर एवं चमत्कारपूर्ण है। इनकी रामभक्ति की कविताएँ भी अपूर्व एवं हृदयस्पर्शी है। ये 'कवित्त रत्नाकर' की पाँचवी तरंग में संगृहीत हैं।

अलंकार-विधान, प्रकृति-चित्रण एवं छन्द-विधान की दृष्टि से इन्हें केशवदास के समान प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। नि:सन्देह सेनापति की कविताओं में उनकी बहुमुखी प्रतिभा फूट पड़ती है।

2. कवि देव का जीवन-परिचय देते हुए इनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– रीतिकालीन काव्य को प्रतिष्ठा दिलाने वाले कवियों में कवि देव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में संवत् 1730 वि० (सन् 1673 ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम बिहारीलाल दूबे था। इनकी मृत्यु अनुमानत: संवत् 1824 वि० (सन् 1767 ई०) के आस-पास कुसमरा (मैनपुरी) में हुई थी।

रचनाएँ– कवि देव द्वारा रचित विपुल साहित्य का उल्लेख मिलता है। विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेखित तथ्यों के अनुसार इन्होंने लगभग 62 ग्रन्थों की रचना की; परन्तु इनमें से अब तक केवल निम्नलिखित 15 ग्रन्थ ही उपलब्ध हो सके हैं –

भाव-विलास, अष्टयाम, भवानी-विलास, प्रेम-तरंग, कुशल-विलास, जाति-विलास, देवचरित्र, रसविलास, प्रेमचन्द्रिका, सुजान-विनोद, शब्द-रसायन, सुखसागर तरंग, राग रत्नाकर, देवशतक तथा देवमाया-प्रपंच।

3. कवि घनानंद का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का भी उल्लेख कीजिए।

उ०– कवि परिचय– रीतिकाल में श्रृंगार रस काव्य के सर्जक 'घनानन्दजी' का जन्म संवत् 1746 वि० (सन् 1689 ई०) के आस-पास में बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश में माना जाता है। लेकिन इनके जीवन के संबंध में कोई भी प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। माना जाता है कि ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में मीरमुंशी थे, किन्तु वहाँ के दरबारी दाँव-पेंचों से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाए, अत: इन्होंने दरबार छोड़ दिया और वृन्दावन में रहने लगे। यहीं इन्होंने कृष्ण-भक्ति पर आधारित काव्य का सृजन किया। माना जाता है कि सुजान नाम की एक नर्तकी भी इनके साथ दरबार में रहती थी, जिससे ये प्रेम करते थे। बाद में वृन्दावन आकर कृष्ण को 'सुजान' सम्बोधन से पुकारते हुए काव्य-सृजन किया। संवत् 1796 वि० (सन् 1739 ई०) में ये परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ– घनानन्द द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या चालीस मानी जाती है। घनानन्द की प्रमुख काव्य-कृतियों में घनानन्द पदावली, घनानन्द कवित्त, सुजान-मति, वियोग-बेलि, सुजान हित, विरह-लीला, प्रीति-पावस, प्रेम-सरोवर, प्रेम-पहेली, कोक सागर, कृष्ण कौमुदी, भावना प्रकाश, घामचमत्कार, कृपाकंदनिबंध, रंग-बधाई तथा गिरि-गाथा' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) बृष कौं तरनि ..... बितवत है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' नामक पाठ में संकलित 'कविवर सेनापति' के पदों से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में ग्रीष्म ऋतु का बड़ा ही सजीव वर्णन किया गया है।

व्याख्या– वृष राशि का सूर्य अत्यधिक ताप से युक्त होकर अपनी हजारों किरणों से भयंकर ज्वालाओं का समूह बरसा रहा है। पृथ्वी अत्याधिक तप्त हो उठी है। सारा संसार (आकाश से बरसती) लपटों (आग) से जल रहा है। पथिक और पक्षी ठण्डी छाया को ढूँढ़कर विश्राम कर रहे हैं। कवि सेनापति कहते हैं कि जैसे ही दोपहर थोड़ा ढलती है, तब इतनी भयंकर उमस पैदा हो जाती है कि एक पत्ता तक नही खड़कता (हिलता) है। मुझे तो ऐसा लगता है कि स्वयं हवा भी (गर्मी से घबराकर) किसी ठण्डे स्थान को

खोजकर उसमें घड़ी भर को बैठकर धूप का समय बिता रही है और इसी कारण नहीं चल रही है, जिससे सर्व उमस व्याप्त हो गई हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) सेनापति का यह ग्रीष्म-वर्णन अपनी सजीवता के लिए विख्यात है। ये रीतिकाल के उन गिने चुने कवियों में हैं, जिन्होंने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। (2) उमस पैदा होने का बड़ा ही व्याख्यात्मक कारण देकर ग्रीष्म की प्रचण्ड़ता को प्रत्यक्ष कर दिया है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) शैली–** चित्रात्मक। **(5) रस–** शृंगार। **(6) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(8) गुण–** प्रसाद। **(9) अलंकार–** अनुप्रास, रूपक (ज्वालन के जाल), उत्प्रेक्षा (अंतिम चरण में)। **(10) भावसाम्य–** कविवर बिहारी ने भी ग्रीष्म का ऐसा ही वर्णन किया है—

देखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह॥

(ख) डार द्रुम पलना, ... चटकारी दै॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' नामक पाठ में संकलित 'महाकवि देव' के पदों से उद्धृत है।

प्रसंग– कवि ने वसन्त को कामदेव का पुत्र मानकर उसके सौन्दर्य की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की है।

व्याख्या– यह वसन्त एक सलोना-सा बालक है। वृक्षों की हरी-भरी डालियाँ इसका पालना है। उनमें निकले नये-नये कोमल पत्ते ही उसका बिछौना हैं। जैसे छोटे बच्चे के लिए बिछौना बिछाया जाता है, उसी प्रकार वसंतरूपी बालक के लिए वृक्षों के पत्ते ही बिछौना हैं। पुष्पों का रंग-बिरंगा झबला इसके शरीर की शोभा बढ़ा रहा है। वायु इस शिशु को झूला झुलाती है। मोर और तोते बोल-बोलकर इसे बहलाते हैं। कोयल इसे हिलाती-डुलाती है और ताली बजा-बजाकर मधुर कलरव ध्वनि करके इसे उल्लासित करती है। कमल की कलीरूपी नायिका लहराती लताओं की साड़ी अपने सिर पर ओढ़कर इस वसंतरूपी नवजात शिशु को दुष्ट नजर से बचाने के लिए पुष्प-पराग रूपी राई और नमक उतारती है और सवेरे-सवेरे मनोहर वेला में गुलाब अपनी कलियाँ चटकाकर (मानो जीभ की चटकारी दे-देकर) कामदेव के इस वसंतरूपी पुत्र को जगाता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) वसंत ऋतु काम-भाव को उद्दीप्त करने वाली ऋतु है, इसीलिए शिशु वसंत को कामदेव के पुत्र के रूप में दर्शाया गया है। (2) कवि का सौन्दर्य-चित्रण मनोरम है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** मनहरण कवित्त। **(5) अलंकार–** अनुप्रास और सांगरूपक।

(ग) झहरि झहरि ..... है दृगन में॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महाकवि देव ने इस पद में एक गोपिका के स्वप्न का वर्णन किया है। इसमें एक सखी अपनी दूसरी सखी से अपने रात के स्वप्न का वर्णन करती हुई कहती हैं-

व्याख्या– हे सखी! मैंने (स्वप्न में) देखा कि मानो रिमझिम-रिमझिम नन्हीं-नन्हीं फुहारें पड़ रही हैं और आकाश में मेघ घुमड़-घुमड़कर घिरते आ रहे हैं। ऐसे मादक वातावरण में श्याम (कृष्ण) ने आकर मुझसे झूला झूलने के लिए साथ चलने को कहा, जिससे मैं ऐसी हर्षित हुई कि फूली न समायी। मैं कृष्ण के साथ जाने को उठना ही चाहती थी कि निगोड़ी (कमबख्त) नींद मुझसे पहले ही उठ गई और मेरे उस जागने में मेरे जगे हुए भाग्य सो गए। आशय यह है कि मैं कृष्ण के साथ झूला झूलने के लिए उठने को ही थी कि अचानक मेरी आँखें खुल गई और कृष्ण के साथ झूलने जाने का जो सुख मुझे निद्रावस्था में मिलने वाला था, जागने पर नष्ट हो गया, जिससे मेरे भाग्य फूट गए। आँख खुलने पर देखा कि न तो कहीं मेघ हैं, न मेघ के समान श्यामवर्ण कृष्ण, वरन् कृष्ण के वियोग में रोते-रोते सोने के कारण मेरी आँखों में वे ही आँसू की बूँदें छायी हुई थी। कृष्ण के साथ वार्तालाप और झूला झूलने में तो स्वप्न में भी आनन्द ही है। वह स्वप्न का आनन्द भी छिन गया; क्योंकि नींद खुल गई।

काव्य-सौन्दर्य– (1) व्यक्ति जिस भाव या विचार में डूबा हुआ सोता है, वही उसे स्वप्न में भी दिखता है। यह मनोवैज्ञानिक विशेषता है। गोपिका कृष्ण के वियोग में रोते-रोते सो गई थीं उसके मन में कृष्ण से मिलने की इच्छा थी, इसलिए उसकी दमित वासना की स्वप्न में क्षति-पूर्ति हुई और कृष्ण ने उसके साथ चलकर झूला झूलने का प्रस्ताव रखा। महाकवियों की प्रतिभा उन्हें ऐसे गूढ़ मनोवैज्ञानिक रहस्यों का साक्षात्कार सहज ही करा देती है। (2) 'मेरे उठने से पहले ही मेरी नींद उठ गई और मेरे जागने में मेरे भाग्य सो गये' में लक्षणा का चमत्कार दृष्टव्य है। गोपिका का आशय यह है कि जब मैं सो रही थी तो भाग्य जग रहे थे। अब मैं जगी तो मेरे भाग्य सो गए। इसमें विरोधाभास का चमत्कार भी द्रष्टव्य है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** मनहरण कविता। **(5) अलंकार–** अनुप्रास, उत्प्रेक्षा एवं विरोधाभास।

(घ) अति सूधो ..... छटाँक नहीं॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' नामक पाठ से संकलित 'कविवर घनानन्द' के पदों से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में कवि सच्चे प्रेम की विशेषताओं का वर्णन करते हुए सच्चे और झूठे प्रेम का अन्तर बताते हैं। अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति कवि का यह कथन गोपियों द्वारा कृष्ण के प्रति कहा गया माना जा सकता है। गोपियाँ कृष्ण को उलाहना देती हुई कहती हैं-

व्याख्या– चे चतुर प्रिय (कृष्ण)! सुनो, प्रेम का मार्ग तो बड़ा सीधा-सादा होता है, जिसमें चालाकी या कुटिलता के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं। उस मार्ग पर सच्चे प्रेमी तो अपना अहंकार विसर्जित करके अर्थात् प्रिय के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव लेकर चलते हैं, किन्तु जो कपटी हैं; अर्थात् जो सच्चे प्रेमी न होकर प्रेम का दिखावा करते हैं। वे शंकारहित न होने (दिल में खोट रखने) के कारण चलने में झिझकते हैं। वे अपने मन की बातें अपने प्रिय से भी नहीं कहते हैं। हे प्रिय! जहाँ तक हमारी बात है, हमारे हृदय में तो एक तुमको छोड़कर दूसरे किसी का चिह्न तक नहीं है, किन्तु तुम न जाने कौन-सी पट्टी पढ़े हो अर्थात् न जाने कौन-सी सीखे सीखे हुए हो या किस नीति का अनुसरण कर रहे हो कि दूसरे से तो मन भर लेते हो, पर बदले में छटाँक भर भी नहीं देते। तात्पर्य यह है कि तुम हमारा मन तो छीने बैठे हो, पर अपनी झलक तक हमें नहीं दिखाते।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रेम के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराते हुए कवि कहता है कि सच्चा प्रेम हमें समर्पण और आत्म-बलिदान सिखाता है, सौदेबाजी नहीं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** सवैया। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(6) अलंकार–** श्लेष और छेकानुप्रास।

(ङ) परकाजहि ..... लै बरसो॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सवैये में कवि ने बादलों से प्रार्थना करते हुए अपने विरह का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। अपनी निष्ठुर प्रेयसी सुजान के पास मेघ के माध्यम से कविवर घनानंद द्वारा भेजा गया यह संदेश गोपिकाओं द्वारा कृष्ण को भेजा हुआ भी माना जा सकता है।

व्याख्या– कवि कहता है- हे मेघ! तुम तो दूसरों के हितार्थ ही देह धारण किए हुए हो, इसलिए तुम्हें जो 'पर्जन्य' (परजन्य = दूसरों का हितसाधक) कहा जाता है, यह सर्वथा यथार्थ (वास्तविक) है। तुम सागर का खारा पानी (भाप बनाकर और उसे वर्षा के रूप में बरसाकर) अमृत के सदृश सुस्वादु बना देते हो और इस प्रकार तुम हर दृष्टि से सज्जनता से सुशोभित हो। कवि घनानन्द कहते हैं कि हे आनन्दवर्षी मेघ! तुम जल के रूप में प्राणदाता हो, इसलिए कभी मेरी पीड़ा (विरह-वेदना) का भी अपने हृदय में अनुभव करो और उस निष्ठुर विश्वासघाती सुजान (या विश्वास भंग करने वाले कृष्ण) के घर के आँगन में मेरे अश्रुओं को ले जाकर बरसा दो, जिससे उसे पता चल जाए कि उसके विरह में मैं किस प्रकार निरन्तर अश्रुपात करता रहता हूँ। (गोपिका के पक्ष में– करती हूँ) मेरे आँसुओं को देखकर ही शायद उसे पता लग जाए कि उसके प्रेमजन्य विरह में मैं कितना दुःखी हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– (1) घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रँगीला के दरबार में मीर मुंशी थे और सुजान वहाँ की गायिका-नर्तकी थी। उस नर्तकी से ये अत्यधिक प्रेम करते थे। सुजान के कारण ही इनको बादशाह ने निर्वासन का दण्ड दिया था। उस समय घनानन्द ने सुजान से भी साथ चलने को कहा, पर उसने मना कर दिया। तब घनानन्द विरक्त होकर मथुरा में कृष्ण-भक्ति में डूब गए। इस प्रकार के कवित्तों की रचना इन्होंने उसी समय की। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** सवैया। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(6) अलंकार–** श्लेष और उपमा।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सनायप बाँक नहीं॥

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' नामक पाठ से 'कविवर घनानन्द' के पदों से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्तिपरक पंक्ति में कविवर घनानन्द जी ने प्रेममार्ग की सरलता (कुटिलतारहित) व्यक्त की है।

व्याख्या– कवि का कहना है कि प्रेम का पथ बहुत सीधा-साधा होता है। इसमें कहीं भी कुटिलता नहीं होती। इस पर वही चल सकता है,जो अहंकार से रहित हो और किसी प्रकार की चालाकी न दिखाता हो। छल-कपट तथा चालाकी दिखाने वाले प्रेम-पथ के पथिक नहीं बन सकते। वे प्रेम का झूठा प्रदर्शन करने में सफल तो हो सकते हैं, किन्तु सच्चे प्रेम की मधुरता, अलौकिक आनन्द व दिव्यता से वंचित ही रह जाते हैं।

(ख) तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग– पूर्ववत्।

व्याख्या– रीतिकाल के कवि घनानन्द प्रेम की पीर के अमर गायक थे। वे अपनी प्रेमिका सुजान अथवा श्रीकृष्ण की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि मैंने तुमसे एकनिष्ठ प्रेम किया है और अपना हृदय तक तुम्हें दे दिया है, पर तुमने न जाने कौन-सी पट्टी पढ़ी है या कौन-सी सीख सीखी है, जो मन भर तो ले लेते हो, पर बदले में छटाँक भर भी नहीं देते हो। तात्पर्य यह है कि हमारा मन तो तुमने ले लिया है, पर अपनी एक झलक तक नहीं दिखाई है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. कवि सेनापति ने शिशिर ऋतु का वर्णन किस प्रकार किया है।

उ०– कवि सेनापति शिशिर ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शिशिर ऋतु में सूर्य ने भी चन्द्रमा का रूप धारण कर लिया है। सूर्य के प्रकाश में भी चाँदनी की आभा (कांति) दिखाई पड़ती है। सेनापति कहते हैं कि यह शीतलता चन्द्रमा की शीतलता से हजारों गुणा अधिक है। इस ऋतु में रात्रि की छाया दिन में भी प्रतीत होती है अर्थात् दिन में भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे रात्रि हो गई है। चकवा नामक पक्षी आकाश की ओर देखता हुआ सूर्य दर्शन की अभिलाषा करता है (क्योंकि रात्रि में चकोर अपनी प्रिया

चकवी से वियोग सहन करता है इसलिए वह भोर होने की प्रतीक्षा करता है) सूर्य दर्शन न होने के कारण उसके मन में विभिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। सूर्य के होने पर भी चंद का भ्रम होने पर कमुंदनी मन में प्रसन्न होती है और कमल को शोक होता है क्योंकि कमल चन्द्रमा के साथ नहीं खिलता (अर्थात् कमल का फूल रात्रि में विकसित नहीं होता वह सूर्य के प्रकाश में विकसित होता है)।

2. कवि देव ने गोपिका के मनोभावों को किस प्रकार प्रदर्शित किया है?

उ०– कवि देव ने गोपिका के विरह के कारण अपने प्रियतम से मिलने की आशा में व्यथित मनोभावों को प्रदर्शित किया है। कवि कहते हैं कि अपने प्रियतम के विरह में व्याकुल गोपिका जब रात्रि में रोते-रोते सो जाती है तो वह स्वप्न में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को देखती है जो रिमझिम-रिमझिम वर्षा के मौसम में उससे झूला झूलने को कहते हैं, जिसे सुनकर गोपिका हर्षित हो जाती है और वह कृष्ण के साथ जाने को उठना ही चाहती है परंतु उसकी नींद खुल जाती है जिसके कारण उसका स्वप्न टूट जाता है और वह अपने प्रियतम (कृष्ण) के साथ जाने के सुख से वंचित हो जाती है। जिस पर गोपिका कहती है मेरे भाग्य ही फूट गए हैं जो नींद में भी मैं अपने प्रियतम (कृष्ण) से मिलन का सुख प्राप्त नहीं कर सकी।

3. कवि घनानन्द को 'साक्षात रसमूर्ति' क्यों कहा गया है?

उ०– कवि घनानन्द को 'साक्षात रसमूर्ति' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनकी रचनाओं में प्रेम का अत्यन्त गंभीर, निर्मल, आवेगमय और व्याकुल कर देने वाला रूप व्यक्त हुआ है। इनकी रचनाओं में श्रृंगार रस की प्रधानता है। इन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग व वियोग का चित्रण किया है। जिस कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें 'साक्षात् रसमूर्ति' कहा है।

4. कवि घनानन्द ने सच्चे व झूठे प्रेम में क्या अंतर बताया है?

उ०– कवि घनानन्द ने कहा हैं कि सच्चे प्रेम में प्रेमी अपना अहंकार विसर्जित करके अपने प्रिय के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होते हैं किन्तु जो कपटी (झूठे) हैं अर्थात् जो सच्चे प्रेमी न होकर केवल प्रेम का दिखावा करते हैं वे शंकारहित न होने के कारण चलने में झिझकते हैं। वे मन की बातें अपने प्रिय से भी नहीं कहते हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''बृषकौं तरनि ..... बितवत है॥'' पंक्तियों में निहित रस तथा छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में श्रृंगार रस तथा मनहरण कवित्त छन्द है।

2. ''डार द्रुम पलना ..... चटकारी दै॥'' पंक्तियों में निहित अलंकार तथा छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास और सांगरूपक अलंकार तथा मनहरण कवित्त छन्द है।

3. ''धार मैं धाइ ..... भई मेरी॥'' पंक्तियों में निहित छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मनहरण कवित्त छन्द है।

4. ''अति सूधो सनेह ..... छटाँक नही॥'' पंक्तियों का काव्य सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रेम के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराते हुए कवि कहता है कि सच्चा प्रेम, समर्पण और आत्म-बलिदान सिखाता है, सौदेबाजी नहीं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** सवैया। **(4) शैली–** मुक्तक। **(5) रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **(6) अलंकार–** श्लेष और छेकानुप्रास।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

9 प्रेम-माधुरी, यमुना-छवि

(भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–150 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनके योगदान पर प्रकाश डालिए।

उ०– कवि परिचय– प्रसिद्ध कवि होने के साथ ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कुशल पत्रकार, नाटककार, आलोचक, निबन्धकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। सेठ अमीचन्द के वंश में उत्पन्न हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 ई० में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र गिरिधरदास था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही ये माता की छत्रछाया से वंचित हो गए। सात वर्ष की

अवस्था में एक दोहा लिखकर इन्होंने अपने पिता को सुनाया, जिससे प्रसन्न होकर पिता ने इन्हें महान् कवि होने का आशीर्वाद दिया। जब इनकी आयु दस वर्ष थी तब इनके पिता इस संसार से विदा हो गये। इन्होंने घर पर रहकर मराठी, बंग्ला, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद इन्होंने क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश लिया, किन्तु काव्य-रचना में रुचि के कारण इनका मन अध्ययन में नहीं लगा। इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। 13 वर्ष की अवस्था में मन्नो देवी से इनका विवाह हुआ। भारतेन्दु जी युग प्रवर्त्तक साहित्यकार थे। सन् 1868 ई० से 1900 ई० तक की अवधि में साहित्य क्षेत्र में इनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस अवधि को 'भारतेन्दु युग' कहा गया। भारतेन्दु जी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों व विसंगतियों पर व्यंग्य बाणों का प्रहार किया। कविता व नाटक के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। अत्यधिक उदार व दानशील होने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी और ये ऋणग्रस्त हो गए। हर सम्भव प्रयास के बाद भी ये ऋण-मुक्त नहीं हो पाए। साथ ही इन्हें 'क्षय रोग' ने घेर लिया, जिसके चलते 6 जनवरी, सन् 1885 ई० को 34 वर्ष 4 मास की अल्पायु में इनका निधन हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– गद्यकार के रूप में भारतेन्दु जी को 'हिन्दी गद्य का जनक' माना जाता है तो काव्य के क्षेत्र में उनकी कृतियों को उनके युग का दर्पण। भारतेन्दु जी की विलक्षण प्रतिभा के कारण ही इनको 'युग-प्रवर्त्तक साहित्यकार' के रूप में जाना जाता है।

2. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– भारतेन्दु जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं–

काव्य कृतियाँ– भारत-वीणा, वैजयन्ती, प्रेम-सरोवर, दान-लीला, प्रेम-मालिका, कृष्ण-चरित्र, प्रेम-तरंग, प्रेम-माधुरी, प्रेमाश्रु-वर्षण, सतसई श्रृंगार, प्रेम-प्रलाप, प्रेम-फुलवारी।

नाटक– पाखण्ड विडम्बनम, प्रेमजोगिनी, धनंजय विजय, सत्य हरिश्चन्द्र, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, श्रीचन्द्रावली, भारत-दुर्दशा, अँधेर नगरी, नीलदेवी, विद्या-सुन्दर, रत्नावली, मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी, भारत-जननी, विषस्य विषमौषधम्, दुर्लभबन्धु, सती-प्रताप।

जीवनी– सूरदास, महात्मा मुहम्मद, जयदेव।

उपन्यास– पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ (सम्पादन)– हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र मैगजीन (हरिश्चन्द्र मैगजीन का नाम आठ अंकों के बाद हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका हो गया था), कवि-वचन-सुधा।

इतिहास व पुरातत्व सम्बन्धी कृतियाँ– रामायण का समय, कश्मीर-कुसुम, चरितावली महाराष्ट्र देश का इतिहास, बूँदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति।

यात्रा-वृत्तान्त– लखनऊ की यात्रा, सरयू पार की यात्रा।

निबन्ध संग्रह– परिहास-वंचक, दिल्ली दरबार दर्पण, लीलावती, सुलोचना, मदालसा।

3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की भाषा शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– भातरेन्दु हरिश्चन्द्र अनेक भारतीय भाषाओं में कविता करते थे, किन्तु ब्रजभाषा पर इनका विशेष अधिकार था। ब्रजभाषा में इन्होंने अधिकतर श्रृंगारिक रचनाएँ की हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य में प्रकृति के रमणीक चित्र उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु जी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।

भारतेन्दु जी ने अपने काव्य में शिष्ट, सरल एवं माधुर्य से परिपूर्ण ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। प्रचलित शब्दों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों आदि के यथास्थान प्रयोग से भाषा में प्रवाह उत्पन्न हो गया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कवित्त, सवैया, लावनी, चौपाई, दोहा, छप्पय तथा कुण्डलिया आदि छन्दों को अपनाया है। भारतेन्दु जी की शैली इनके भावों के अनुकूल है। इन्होंने मुख्य रूप से मुक्तक शैली को अपनाया है और उसमें अनेक नवीन प्रयोग करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। लोकगीतों की शैली में भी भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य की रचना की है और इसमें वे पूर्णतया सफल भी रहे हैं। भारतेन्दु जी के काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है। इन्होंने अलंकारों को अपने काव्य के साधन रूप में ही अपनाया है, साध्य-रूप में नहीं; अर्थात् अलंकारों की साधना करना इनका लक्ष्य नहीं था।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मारग प्रेम को ..... कौन बिथा है।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से 'प्रेम माधुरी' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में प्रेम के मार्ग पर चलने से होने वाली निन्दा और कष्टों का वर्णन करते हुए ब्रजबाला अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या– हे सखी! प्रेम के मार्ग को भला कौन समझ सकता है? यह तो जीवन के कटु यथार्थ (वास्तविकता) के सदृश ही

कठोर और कष्टकर है। बार-बार अपनी कथा लोगों को सुनाने से भी क्या लाभ; क्योंकि इससे तो बदनामी के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ आने वाला नहीं; अर्थात् जो यह प्रेम-कहानी सुनेगा, वह सहानुभूति दिखाना तो दूर, मुझे ही बुरा कहेगा और संसार में मेरी बदनामी भी करेगा। मैं इस बात को भली प्रकार समझ गयी हूँ कि इस प्रेम-व्यथा से छुटकारा पाने के सारे उपाय व्यर्थ हैं अत: चुपचाप इसे सहते जाना भी उत्तम है।) लगता है ब्रज के सारे लोग बावले हो गए हैं, जो मुझसे व्यर्थ ही बार-बार मेरी पीड़ा के विषय में पूछते हैं कि मुझे क्या कष्ट है (भला प्रेम-पीड़ा भी क्या किसी पर प्रकट करने की वस्तु है)। मैं अत्यन्त दु:खी हूँ। इस दु:ख को कह भी नहीं सकती हूँ और सहना भी मुश्किल हो रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) प्रेम-पीड़ा को भुक्तभोगी ही जान सकता है। अन्य लोग तो उसका उपहार ही करते हैं। इसलिए सच्चे प्रेमी उसे प्रकट न करके चुपचाप सहते हैं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** सवैया। **(4) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(5) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** माधुर्य। **(7) अलंकार–** अनुप्रास, रूपक। **(8) भावसाम्य–** किसी कवि ने कहा भी है—

कहिबौ को व्यथा, सुनिबै को हँसी।
को दया सुन कै डर आनतु है॥

(ख) रोकहिं जो तौ ..... हमै समुझाइए॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका (गोपिका) परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाले अपने पति से अपने हृदय के प्रेम-भाव की चतुरतापूर्ण अभिव्यक्ति करती है।

व्याख्या– गोपिका का पति परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाला है। गोपिका उससे कहती है कि यदि मैं आपको परदेश जाने से रोकती हूँ तो अमंगल होगा (यह मान्यता है कि प्रस्थान करने वाले व्यक्ति को रोकने-टोकने से उसका अमंगल होता है) और यदि मैं कहती हूँ कि प्रिय जाओ, तो मेरे प्रेम का नाश होगा; अर्थात् इससे आप यही समझेंगे कि आपके लिए मेरे हृदय में प्रेम नहीं है। यदि मैं इस समय कहती हूँ कि "प्रिय मत जाओ तो यह आप पर प्रभुता प्रदर्शित करने वाले आदेश के समान होगा; अर्थात् आप यह समझेंगे कि मैं आप पर अपनी प्रभुत्ता का प्रदर्शन कर रही हूँ और यदि मैं कुछ भी न कहूँ तो भी प्रेम का अन्त हो जाएगा; क्योंकि आप समझेंगे कि मेरे हृदय में आपके लिए कोई मोह या प्रेम-भावना नहीं है। हे प्रियतम! यदि मैं आपसे कहूँ कि मैं आपके बिना जी नहीं सकती तो आपको इस पर विश्वास कैसे होगा? अत: आप ही समझाइए कि आपके इस प्रस्थान के समय मैं आपसे क्या कहूँ?"

काव्य-सौन्दर्य– (1) नायिका का कथन कि 'मैं अपनी प्रभुता व्यक्त नहीं कर सकती।' से उसका समर्पण भाव व्यक्त हुआ है। (2) अन्तिम पंक्तियों में नायिका के भोलेपन की सुन्दर व्यंजना हुई हैं; क्योंकि वह जानेवाले से ही पूछती है कि वह ऐसे समय पर उससे क्या कहे। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** अनुप्रास। **(5) रस–** शृंगार। **(6) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) छन्द–** सवैया।

(ग) आजु लौं जौ ..... कंठ लगावैं॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत भावपूर्ण छन्द में गोपियों को श्रीकृष्ण के विरह में मरणासन्न दिखाया गया है। अपनी मृत्यु से पहले एक बार गोपियों को श्रीकृष्ण से मिलन की उनकी उत्कट अभिलाषा है।

व्याख्या– गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि प्रिय! जब से तुम यहाँ से गये हो, तब से आज तक नहीं मिले। किन्तु इससे क्या; हम तो हर प्रकार से तुम्हारी हैं। सब लोग तुम्हारी प्रेमिका के रूप में ही जानते हैं। तुम हमें नहीं मिल पाये, इसका हम तुम्हें कोई उलाहना नहीं दे रही हैं सब अपने-अपने भाग्य का फल भोगते हैं। आपसे भेंट होना हमारे भाग्य में ही नहीं था। आपका इसमें क्या दोष है? हमारे भाग्य में यह बिछोह ही लिखा था, फिर उलाहना काहे का। हे प्रिय! जो हुआ सो हुआ; किन्तु अब तो हमारे प्राण शरीर छोड़कर चल देने को तत्पर हैं। अन्त समय में हम तुमसे एक बात कहती हैं—हे प्रिय! दुनिया की यह परम्परा है कि जब कोई विदा होता है तो सब लोग उसे गले लगाकर विदा करते हैं (अर्थात् अब हम भी चलने वाली हैं, अब तुम भी हमें गले से लगा लो)। आशय यह है कि जीते जी तो आपने स्नेह नहीं किया, परन्तु मरते समय ही मिल जाइए।

काव्य सौन्दर्य– (1) गोपियों ने जग की रीति का स्मरण कराते हुए बड़ी चतुराई से श्रीकृष्ण से मिलने की प्रार्थना की है। (2) प्रस्तुत छन्द में गहन भावानुभूति की मार्मिक व्यंजना हुई है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) छन्द–** सवैया। **(5) रस–** शृंगार। **(6) अलंकार–** लोकोक्ति।

(घ) तरनि-तनूजा ..... सुख लहत।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से 'यमुना-छवि' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन काव्य पंक्तियों में यमुना नदी की शोभा का सुन्दर व आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– यमुना के किनारे तमाल के अनेक सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं। वे तट पर आगे को झुके हुए ऐसे लगते हैं, मानो यमुना के

पवित्र जल का स्पर्श करना चाहते हों अथवा जलरूपी दर्पण में अपनी शोभा देखने के लिए उचक-उचककर आगे झुक गये हैं; अथवा यमुना-जल को परम पवित्र जानकर उसे प्रणाम कर रहे हों, जिससे उन्हें उत्तम फल की प्राप्ति हो सके अथवा वे तट को धूप के ताप से बचाने के लिए साथ सिमटकर खड़े हो गए हैं, जिससे तट पर घनी छाया हो जाए अथवा ये भगवान् कृष्ण के प्रति नमन कर रहे हैं, उनकी सेवा में झुके हुए हैं, जिससे इन्हें देखकर नेत्रों को और मन को बड़ा सुख प्राप्त होता है। ये वृक्ष बहुत ही परोपकारी, सुखकारी और दु:खनाशक हैं, इन पंक्तियों में यह भाव ध्वनित हो रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यमुना के किनारे खड़े वृक्षों की शोभा का वर्णन किया गया है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** छप्पय (छ: पंक्तियों का छन्द, जिसके प्रथम चार चरण 'रोला' के और अन्तिम दो चरण 'उल्लास' के होते हैं) **(4) रस–** शृंगार। **(5) शब्द-शक्ति–**लक्षणा। **(6) गुण–** माधुर्य। **(7) अलंकार–** अनुप्रास, सन्देह और उत्प्रेक्षा।

(ङ) परत चन्द्र ..... प्रतिबिम्ब लखात है।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने यमुना के चंचल जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का सजीव सौन्दर्य बड़े कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– यमुना में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल के मध्य चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। वह जब कभी चंचलता के साथ नृत्य करने लगता है, तब वह बड़ा मनभावन लगता है; अर्थात् जब पानी की लहर चंचल होकर हिलती है, तब चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी हिलता हुआ और नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा के इस प्रतिबिम्ब की शोभा ऐसी लगती है, मानो विष्णु (जल में वास करने वाले नारायण) के दर्शन करने के लिए चन्द्रमा जल में वास करता हुआ शोभा पा रहा है अथवा चन्द्रमा इस भाव से आकाश से यमुना-जल में उतर आया है कि जब कृष्ण यमुना-तट पर विहार करने आएँगे, तब उनके दर्शन प्राप्त हो जाएँगे अथवा चन्द्रमा की छवि ऐसी शोभा पा रही है, जैसे लहरें अपने हाथ में चन्द्रमा का प्रतिबिम्बरूपी दर्पण लिये हुए हों अथवा रास-क्रीडा में रमे हुए श्रीकृष्ण के चमकते हुए मुकुट की कान्ति ही इस चन्द्र-बिम्ब के रूप में जल में दिखाई दे रही है अथवा चन्द्रमा के रूप में यमुना के हृदय में परम कान्तिवान् भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति बसी हुई है, यह उसी का प्रतिबिम्ब मालूम पड़ रहा है।

काव्य सौन्दर्य– (1) यहाँ कवि ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। **2.** जल में पड़ते चन्द्र-प्रतिबिम्ब की चंचल छवि विविध कल्पनाओं के द्वारा प्रस्तुत की गई है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** छप्पय। **(4) रस–** शृंगार। **(5) अलंकार–** अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा मानवीकरण।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा के समै सब कंठ लगावैं।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में भारतेन्दु जी ने विदाई-वेला के समय की लोक-परम्परा के माध्यम से नायक कृष्ण को उलाहना दिया है।

व्याख्या– विरहिणी नायिका विरहाग्नि से संतप्त होकर मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो गई है। अपनी इस अन्तिम अवस्था में वह अपने निष्ठुर प्रियतम का स्मरण करती हुई कहती है कि अब तो मैं इस संसार से विदा ले रही हूँ; अत: मुझे अपने गले से लगाकर यहाँ से विदा करो; क्योंकि यह लोक-परम्परा है कि लोग एक-दूसरे के गले मिलकर उसे विदाई देते हैं।

(ख) पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया दुखियाँ नहीं मानती हैं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रंसग– प्रस्तुत सूक्ति में गोपी अपने प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति कर रही है।

व्याख्या– गोपी उद्धव से कहती है कि हे उद्धव यह बात तो हम भी भली-भाँति जानती हैं, आपका निर्गुण ब्रह्म इस सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, किन्तु हम क्या करें, हमारी ये आँखें हमारा कहा नहीं मानती हैं। तुम प्रियतम श्रीकृष्ण से जाकर हमारा यह सन्देश कह दो कि हे प्यारे! तुम्हारी गोपियों की आँखें तुम्हें देखे बिना नहीं मानती हैं। तुम्हारे दर्शन के अभाव में वे प्रत्येक क्षण दु:खी रहती हैं।

(ग) मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित 'यमुना-छवि' शीर्षक से अवतरित हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने यमुना नदी के जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का अलंकारपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि यमुना के चंचल जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कभी तो दिखाई देता है और कभी नहीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो यमुना के जल में दोनों पक्ष (कृष्ण और शुक्ल) मिल गए हैं; और उनका भेद समाप्त हो गया है अर्थात् चन्द्रमा के छिप जाने पर लगता है कि कृष्ण पक्ष आ गया है और निकल आने पर लगता है कि कृष्ण पक्ष समाप्त हो गया है और शुक्ल पक्ष आ गया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न—

1. 'प्रेम-माधुरी' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'प्रेम-माधुरी' कविता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से संकलित है। इस शीर्षक में कवि ने कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों की विरह वेदना का वर्णन किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती हैं कि प्रेम के मार्ग एवं उसके वास्तविक रूप को संसार में कौन समझ पाया है बार-बार अपनी कथा दूसरों से कहने का भी कोई लाभ नहीं है क्योंकि इससे तो केवल बदमानी के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आने वाला। मेरा मन यह भली-भाँति जानता है कि इस प्रेम-व्यथा से छुटकारा पाने के सारे उपाय व्यर्थ है इसलिए इसे चुपचाप सहना ही उत्तम है। गोपी कहती है कि हे सखी मुझे तो लगता है कि ब्रज के सारे लोग बावले हो गए हैं, जो मुझसे व्यर्थ में ही मेरी पीड़ा का कारण पूछते रहते हैं कि मुझे क्या दु:ख है।

वह गोपी जिसका पति परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाला है वह अपने भावों को प्रदर्शित करते हुए उससे कहती है कि यदि मैं आपको परदेश जाने से रोकती हूँ तो अमंगल होगा क्योंकि यात्रा के लिए प्रस्थान करने वालो को टोकने से उसका अमंगल होता है ऐसी मान्यता है, परन्तु यदि मैं कहती हूँ कि प्रिय आप जाओ, तो मेरे प्रेम का नाश होगा। यदि मैं इस समय कहती हूँ कि 'प्रियतम मत जाओ' तो आप समझेंगे कि मैं आप पर अपनी प्रभुता प्रदर्शित कर रही हूँ, और यदि कुछ न कहूँ तो भी प्रेम का अन्त हो जाएगा। इसलिए हे प्रियतम! आप ही बताइए कि मैं आपसे कैसे कहूँ कि मैं आपके बिना जी नहीं सकती और आपके प्रस्थान के समय आपको क्या कहूँ?

गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि जब से तुम गोकुल से गए हो, तब से आज तक तुम हमसे मिलने नहीं आए परन्तु इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि हम तो पूर्ण रूप से तुम्हारी है। हम आपको उलाहना नहीं देते क्योंकि सब अपने-अपने भाग्य का फल भोगते हैं जब हमारे भाग्य में आपसे मिलना लिखा ही नहीं तो आपका क्या दोष। हे प्रिय, जो होना था हो चुका परन्तु अब तो हमारे प्राण हमारा शरीर छोड़कर जाने को तैयार है। इसलिए हम आपको सुनाते हुए कह रही हैं कि दुनिया की यह परम्परा है कि विदा होकर जाते हुए को गले से लगाकर विदा किया जाता है।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव हमें पता है कि परमात्मा जल-थल सभी जगह विद्यमान है परन्तु हमें तो नदंलाल श्रीकृष्ण के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसलिए हम तुम्हारे ज्ञानमार्ग को हम कोई महत्व नहीं देती है। हमारा हृदय श्रीकृष्ण के बिना कही भी अनुरक्त नहीं है इसलिए हे उद्धव तुम श्रीकृष्ण से जाकर कह देना कि गोपियाँ और कुछ नहीं जानती और हमारी ये दु:खी आँखे श्रीकृष्ण से मिलन अर्थात् दर्शन के बिना मानने वाली नहीं हैं।

2. 'यमुना-छवि' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'यमुना-छवि' कविता में कवि भारतेन्दु जी ने सूर्य-पुत्री यमुना नदी के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि यमुना नदी के तट पर तमाल के सुन्दर वृक्ष किनारे की ओर झुके हुए ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानों वे जल का स्पर्श करने के लिए झुक गए हो। ऐसा लग रहा है कि वे जल में झुक-झुककर अपनी शोभा देख रहे हो या जल को देखकर पवित्र जल के लोभ में उसे प्रणाम कर रहे हों, ऐसा लगता है जैसे वे अपने ताप को दूर करने के लिए सिमटकर किनारे पर एकत्र हो गए हैं। और भगवान की सेवा के लिए झुक गए है जिसे देखकर हमारे नेत्रों को सुख प्राप्त हो रहा है।

कवि कहते हैं कि पूर्णिमा की रात में जब चन्द्रमा की किरणें नदी के जल में पड़ती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन किरणों ने पृथ्वी से आकाश तक तम्बू लगा दिया हो। उस समय उनका उज्जवल प्रकाश दर्पण-सा प्रतीत होता है। यमुना की सुन्दरता को देखकर तन, मन और नेत्रों को आनन्द मिलता है। इस समय यमुना नदी के जल की सुन्दरता का वर्णन कोई कवि नहीं कर सकता। ऐसे समय नभ और पृथ्वी की आभा एक समान रहती है।

जब चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब यमुना के जल में पड़ता हैं तो यमुना की चंचल लहरें नृत्य करती हुई प्रतीत होती है उस समय ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा स्वयं जल में निवास करने वाले भगवान विष्णु के दर्शन करने के लिए जल में उतर गया हो। अथवा यह सोचकर यमुना के जल में उतर गया हो कि भगवान श्रीकृष्ण यमुना के किनारे रास रचाने, या स्नान करने के लिए आएँगे, तब वह उनके सौन्दर्य के दर्शन कर सकेगा। ऐसा लगता है कि तरंगों ने अपने हाथ में दर्पण ले लिया हो और यमुना के किनारे रास रचाने वाले श्रीकृष्ण के मुकुट की आभा ही चन्द्रबिम्ब के रूप में यमुना-जल में दिखाई पड़ रही है।

कवि कहते हैं कि हवा चलने के कारण यमुना नदी के जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कभी सैकड़ों की संख्या में दिखाई देता है और कभी छिप जाता है। हवा के कारण चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब ऐसा लग रहा है जैसे प्रेम से परिपूर्ण होकर यमुना जल में लोटता हुआ घूम रहा हों अथवा तरंगरूपी रस्सियों के कारण हिंडोले में झूलता लगता है या ऐसा लगता है कि किसी बालक की पतंग आकाश में इधर-उधर दौड़ रही है या ऐसा लगता है कि कोई ब्रजबाला जल-विहार कर रही है।

यमुना के जल पर पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा आभास होता है कि मानो चन्द्रमा दोनों पक्षों (कृष्ण व शुक्ल पक्ष दोनों) में उदित होकर यमुना के जल में विलीन हो गया है तथा चन्द्रमा तारों के समूहों को ठगने का प्रयास कर रहा है या यमुना अपने जल में जितनी अधिक लहरें उत्पन्न करती है चन्द्रमा उतने ही रूप धरकर उनसे मिलने को दौड़ रहा है अथवा जल में चाँदी की चकई चल रही है अथवा जल की फुहारें उठ रही है अथवा चन्द्रमारूपी पहलवान अनेक प्रकार से कसरत कर रहा है।

यमुना के जल में कहीं राजहंस कूजते हुए विहार कर रहे हैं तो कहीं कबूतरों का समूह स्नान कर रहा है, कहीं पर कारण्डव हंस उड रहे हैं तो कहीं पर जल मुर्गा दौड़ रहा है, कहीं पर चक्रवाकों के जोड़े विहार करते हैं तो कही बगुला ध्यान लगाए खड़ा है, कहीं पर तोते और कोयल जल पी रहे हैं कहीं भ्रमर गूँज रहे है कहीं तट पर मोर नाच रहे हैं। सब पक्षी सब प्रकार का सुख पाते हुए यमुना तट की शोभा को बढ़ा रहे हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न—

1. ''मारग प्रेम ..... बिथा है।'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पद में विप्रलम्भ श्रृंगार है जिसका स्थायी भाव रति है।

2. ''तरनि-तनूजा तट तमाल तरूवर बहु छाए।'' पंक्ति में निहित अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– इस पंक्ति में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. ''आजु लौं जौ..... कंठ लगावैं।'' पंक्तियाँ किस छन्द पर आधारित हैं?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियाँ सवैया छन्द पर आधारित हैं।

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

10 उद्धव प्रसंग, गंगावतरण
(जगन्नाथदास 'रत्नाकर')

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—157 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न—

1. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनके योगदान पर प्रकाश डालिए।

उ०– कवि परिचय– ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म सन् 1866 ई० में काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ था। रत्नाकर जी के पिता पुरुषोत्तमदास; भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्र और फारसी भाषा के साथ ही हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। रत्नाकर जी की शिक्षा का आरम्भ उर्दू एवं फारसी भाषा के ज्ञान से हुआ। इसके बाद इन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी का अध्ययन किया। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् इन्होंने क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया। सन् 1891 ई० में इन्होंने स्नातक की डिग्री प्राप्त की। सन् 1900 ई० में इनकी नियुक्ति अवागढ़ (एटा) के खजाने के निरीक्षक के पद पर हुई। दो वर्ष पश्चात् ये वहाँ से त्यागपत्र देकर चले आए तथा सन् 1902 ई० में अयोध्या-नरेश प्रतापनारायण सिंह के निजी सचिव नियुक्त हुए। अयोध्या-नरेश की मृत्यु के बाद ये उनकी महारानी के निजी सचिव के रूप में कार्यरत रहे और सन् 1928 ई० तक इसी पद पर आसीन रहे। हरिद्वार में 21 जून सन् 1932 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी साहित्य में योगदान– रत्नाकर जी के काव्य में भावुकता एवं आश्रयदाताओं की प्रशस्ति के साथ ही सहृदयता का भाव भी मुखरित हुआ। इन्होंने 'साहित्य-सुधानिधि' और 'सरस्वती' के सम्पादन में योगदान दिया। इन्होंने 'रसिक मण्ड' के संचालन तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना एवं विकास में भी अपना योगदान दिया। इनका काव्य-सौष्ठव एवं काव्य-संगठन नवीन तथा मौलिक है। रत्नाकर जी के काव्य में युगीन प्रभाव तथा आधुनिकता का समन्वय है, जो कि समकालीन कवियों अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त की भाँति उनकी कथा-काव्य रचना में भी दिखाई देता है। रत्नाकर जी द्वारा पौराणिक विषयों के साथ ही देशभक्ति की आधुनिक भावनाओं को भी वाणी प्रदान की गई।

रत्नाकर जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी रचनाओं में हमें प्राचीन और मध्ययुगीन समस्त भारतीय साहित्य का सौष्ठव बड़े स्वस्थ, समुज्ज्वल और मनोरम रूप में उपलब्ध होता है। जिस परिस्थिति और वातावरण में इनका व्यक्तित्व गठित हुआ था, उसकी स्पष्ट छाप इनकी साहित्यिक रचनाओं में झलकती है। निश्चित ही रत्नाकर जी हिन्दी साहित्यकोश के जगमगाते नक्षत्रों में से एक हैं। उनकी आभा चिरकाल तक बनी रहेगी। इनके अमूल्य योगदान के कारण हिन्दी काव्य-साहित्य सदैव इनका ऋणी रहेगा।

2. जगन्नाथ 'रत्नाकर' जी की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– रचनाएँ– रत्नाकर जी ने काव्य और गद्य दोनों ही विधाओं में साहित्य-रचना की है। ये मूल रूप से कवि थे; अत: इनकी काव्य-कृतियाँ ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

समालोचनादर्श– यह अंग्रेजी कवि पोप के समालोचना सम्बन्धी प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'एसेज ऑन क्रिटिसिज्म' का हिन्दी अनुवाद है।

हिंडोला– यह सौ रोला छन्दों का अध्यात्मपरक श्रृंगारिक काव्य है।

उद्धव शतक– घनाक्षरी छन्द में लिखित प्रबन्ध-मुक्तक-दूतकाव्य।

हरिश्चन्द्र– भारतेन्दु जी के 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक पर आधारित खण्डकाव्य है। इसमें चार सर्ग हैं।

कलकाशी– यह काशी से सम्बन्धित है। 142 रोला छन्दों का वर्णनात्मक प्रबन्ध-काव्य है, जो कि अपूर्ण है।

रत्नाष्टक– देवताओं, महापुरुषों और षड्ऋतुओं से सम्बन्धित 16 अष्टकों का संकलन हैं।

श्रृंगारलहरी– इसमें श्रृंगारपरक 168 कवित्त-सवैये हैं।

गंगालहरी और विष्णुलहरी– ये दोनों रचनाएँ 52-52 छन्दों के भक्ति-विषयक काव्य हैं।

वीराष्टक– यह ऐतिहासिक वीरों और वीरांगनाओं से सम्बन्धित 14 अष्टको का संग्रह है।

प्रकीर्ण पद्यावली– यह फुटकर छन्दों का संग्रह है।

गंगावतरण– यह 13 सर्गों का आख्यानक प्रबन्ध-काव्य है।

इनके अतिरिक्त रत्नाकर जी ने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है, जिनके नाम हैं– दीपप्रकाश, सुधाकर, कविकुलकण्ठाभरण, सुन्दर-श्रृंगार, हिम-तरंगिनी, हम्मीर हठ, नखशिख, रस-विनोद, समस्यापूर्ति, सुजानसागर, बिहारी-रत्नाकर, तथा सूरसागर (अपूर्ण)।

3. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– रत्नाकर जी की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें शब्द-सौन्दर्य और अर्थ-गाम्भीर्य अपने उत्कर्ष पर है। ब्रजभाषा में इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों को भी सहज रूप से प्रयोग किया है। इतना ही नहीं इन्होंने संस्कृत की पदावली के साथ-साथ काशी में बोली जाने वाली भाषा से भी शब्दों को लेकर ब्रजभाषा के साँचे में ढाल दिया है। इनकी भाषा की एक विशेषता उसकी चित्रोपमता भी है। ये अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि आँखों के सम्मुख एक सजीव और गत्यात्मक चित्र उपस्थित हो जाता है। भाषा का बिम्बमय प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है। अपनी काव्य-रचनाओं में रत्नाकर जी ने प्रबन्धात्मक और मुक्तक दोनों प्रकार की शैलियों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। चित्रात्मक, आलंकारिक और चमत्कृत शैली के प्रयोग ने इनके भावों को सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है।

रत्नाकर जी भावों के कुशल चितेरे हैं। इन्होंने मानव-हृदय के कोने-कोने में झाँककर भावों के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं कि हृदय गद्गद हो जाता है। अपनी काव्य-रचनाओं में रत्नाकर जी ने केवल श्रृंगार रस का ही चित्रण नहीं किया है; वरन् इनके काव्य में करुणा, उत्साह, क्रोध, घृणा, वीर, रौद्र, भयानक, अद्भुत आदि रसों का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। श्रृंगार के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष के चित्रण में इनकी मार्मिकता अधिक परिलक्षित होती है। इनका सर्वाधिक प्रिय छन्द कवित्त है। अपने काव्यों में इन्होंने प्राय: दो छन्दों– रोला तथा घनाक्षरी का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त छप्पय, सवैया, दोहा आदि छन्दों के प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं। रत्नाकर जी ने अनुप्रास के अतिरिक्त यमक, रूपक, वीप्सा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश, विभावना आदि अलंकारों के उत्कृष्ट प्रयोग किये है। अलंकार प्रयोग की दृष्टि से ये सांगरूपक के सम्राट हैं। इनकी मुक्तक रचनाओं के संग्रह श्रृंगारलहरी, गंगालहरी, विष्णुलहरी, रत्नाष्टक आदि में यह आलंकारिक शोभा और भी स्वच्छन्द रूप से दृष्टिगत होती है। रीतिकालीन अलंकारवादियों से इतर रत्नाकर जी की विशिष्टता यह है कि उनकी भाँति इनका सौन्दर्य-विधान बौद्धिक व्यायाम की सृष्टि नहीं करता, वरन् आन्तरिक प्रेरणा से सहज प्रसूत जान पड़ता है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) भेजे मनभावन ..... कहन सबै लगीं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जगन्नाथदास 'रत्नाकर'' द्वारा रचित 'उद्धव शतक' से 'उद्धव प्रसंग' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– गोपियों को जब यह ज्ञात हुआ कि उद्धव उनके प्रिय श्रीकृष्ण का कोई सन्देश लाए हैं तो उनके मन में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का सन्देश जानने की उत्कण्ठा इस रूप में जाग उठी–

व्याख्या– मनभावन श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे गए उद्धव के आगमन की सूचना ब्रज के गाँवों में जिस समय व्याप्त हुई, उसी समय गोपिकाओं के झुण्ड-के-झुण्ड दौड़-दौड़कर नन्द के द्वार पर आने लगे। अपने कमलरूपी चरणों के पंजों पर उचक-उचककर और श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गए पत्र को देखकर गोपियों का हृदय क्षोभ (विकलतामिश्रित उत्कण्ठा) से भर उठा और सभी 'हमको क्या लिखा है? हमारे लिए कृष्ण ने क्या लिखा है? हमारे लिए कृष्ण ने क्या सन्देश दिया है?' कहने लगीं।

काव्य सौन्दर्य– (1) जब व्यक्ति की उत्सुकता चरमसीमा पर पहुँच जाती है तो चुप नहीं रह पाता, वरन् पूछने के लिए विवश हो ही जाता है। इस छन्द में इसी उत्सुकता का अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन हुआ है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) अलंकार–** अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा एवं पदमैत्री। **(4) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(5) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** माधुर्य। **(7) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(ख) चाहत जो ..... बस्यौ रहै।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इन काव्य-पंक्तियों में उद्धव गोपियों को अपने ज्ञान और योग-मार्ग की साधना समझाते हैं।

व्याख्या– उद्धव गोपियों से कहते हैं कि यदि तुम श्यामसुन्दर के साथ इच्छानुसार संयोग चाहती हो तो सदैव योग की साधना में अपने हृदय को लीन रखो। तुम सदैव योग-साधना द्वारा वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अर्थात् सांसारिक विषयों से मन तथा इन्द्रियों को हटाकर हृदय में एकाग्रचित्त होकर ध्यान लगाओ। हृदय-तल में जाग्रत ब्रह्म ज्योति में ध्यान लगाओ; क्योंकि वह ब्रह्म हृदयरूपी सुन्दर कमल में स्थित है। तुम अपनी आत्मा को परमात्मा में इस प्रकार लीन कर दो कि जिससे जड़ और चेतन की क्रीड़ा को (तटस्थ भाव से) देखकर वह निरन्तर आनन्दित होती रहे। तुम मोह के वशीभूत होने से क्षुब्ध होकर अपने हृदय के अन्दर जिसके वियोग की अनुभूति कर रही हो, वह तो निरन्तर सभी के हृदय में निवास करता है।

काव्य सौन्दर्य– (1) उद्धव निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए की जाने वाली योग-साधना के उपदेश द्वारा गोपिकाओं का वियोगजनित दु:ख दूर करना चाहते हैं। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **(4) रस–** शान्त। **(5) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** प्रसाद। **(7) अलंकार–** 'हिय-कंज' में रूपक है। अनुप्रास की मंजुल छटा दर्शनीय है।

(ग) कान्ह-दूत ..... बिचारी की।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– उद्धव ने अपने उपदेश में ब्रह्मवाद और आत्मा तथा परमात्मा की अभेदता का प्रतिपादन किया। गोपिकाएँ उसका विरोध करती हुई उन्हें अपने अस्तित्व के विनाश का कारण मानती हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं कि हे उद्धव! आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लेकर तथा श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं अथवा ब्रह्म के दूत के रूप में आए हैं? कहने को तो आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं, फिर भी आप ब्रह्म की ही चर्चा कर रहे हैं। हे उद्धव! आप प्रेम की रीति को नहीं जानते, इसीलिए आप अनाड़ियों और बुद्धिहीनों जैसा व्यवहार करके अन्याय कर रहे हैं। आपके कहने के अनुसार यदि हमने श्रीकृष्ण और ब्रह्म को एक ही मान भी लिया तो भी हमें यह अभेदता (एकत्व) का विचार अच्छा नहीं लगता। आप तो स्वयं जानते हैं कि समुद्र में बूँद के मिल जाने पर समुद्र की असीमता में तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, परन्तु अशक्त और अकिंचन बूँद का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। समुद्र में कुछ बूँदे मिल जाएँ अथवा न मिलें, उससे समुद्र के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; किन्तु यदि बूँद समुद्र में मिल जाएगी तो उसका अस्तित्व निश्चय ही समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार यदि हम ब्रह्म की आराधना करती हैं तो उसमें लीन होकर अपना अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, जबकि श्रीकृष्ण की आराधना करते हुए हमारा अस्तित्व बना रहेगा।

काव्य-सौन्दर्य– (1) यहाँ गोपियों ने आत्मा तथा परमात्मा की अभेदता को अस्वीकार कर अद्वैतवाद का विरोध किया है। (2) गोपियों के हृदय की सरलता और कथन की व्यंग्यात्मकता द्रष्टव्य है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** अनुप्रास, यमक, श्लेष, पदमैत्री एवं दृष्टान्त। **(5) रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **(6) शब्दशक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **(7) गुण–** माधुर्य। **(8) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(घ) चिंता-मनि मंजुल ..... लखिबौ कहौ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में गोपियों द्वारा अपनी तर्कबुद्धि के आधार पर योग-साधना को निरर्थक सिद्ध किया गया है। वे कृष्णभक्ति को छोड़कर निराकार ब्रह्म की उपासना करने को तैयार नहीं है।

व्याख्या– गोपियाँ कहती हैं— हे उद्धव! आप सुन्दर चिन्तामणि (कृष्ण-भक्ति) को धूल की धाराओं (भस्म रमाने) में फेंककर मनरूपी काँच के दर्पण को सभाँलकर रखने के लिए कहते हैं। आप समस्त कामनाओं की पूर्ति करनेवाली कृष्णभक्ति का त्याग करके हमें भस्म रमाने का उपदेश दे रहे हैं। आप वियोग की अग्नि को बुझाने के लिए हमें वायु-भक्षण (प्राणायाम) करने को कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वायु के सम्पर्क से अग्नि नहीं बुझती अपितु और भी भड़क उठेगी। उसी प्रकार प्राणायाम करने से वियोग की आग शान्त नहीं होगी वरन् और अधिक भड़क उठेगी। जिस ब्रह्म को आप नितान्त रूपरहित तथा रसरहित सिद्ध कर चुके हैं, उसी के रूप का ध्यान करने तथा उसके रसास्वादन के लिए कहते हैं; अर्थात् एक ओर तो आप यह कहते हैं कि ब्रह्म निराकार तथा रसहीन है और दूसरी ओर आप उसके रूप का ध्यान करने तथा उसका रसास्वादन करने को कहते हैं। इन दोनों बातों में आखिर क्या साम्य है? इतने बड़े विश्व में खोजने पर भी नहीं पाया जा सकता, उसे आप नेत्र बन्द करके त्रिकूट चक्र में देखने के लिए कहते हैं। भाव यह है कि आँखे खोलकर खोजने पर भी जिसे नहीं देखा जा सकता, उसे

आँख बन्द करके कैसे देखा जा सकता है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कृष्णभक्ति के सामने योग-साधना को तुच्छ और निरर्थक सिद्ध किया गया है। (2) उद्धव की युक्तियों के आधार पर ही उनके कथनों का खण्डन किया गया है। इस खण्डन के माध्यम से गोपियों की तर्कबुद्धि प्रकट हुई है। **(3)** मुहावरों का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। **(4) भाषा–** ब्रजभाषा। **(5) अलंकार–** श्लेष, रूपक, अनुप्रास एवं विरोधाभास। **(6) रस–** शृंगार। **(7) शब्दशक्ति–** लक्षणा एवं व्यंजना। **(8) गुण–** माधुर्य। **(9) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(ङ) ऊधौ यहै सूधौ ..... तिहारी हैं।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गोपियों को कृष्ण के दर्शन के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं सुहाता। इसलिए वे उद्धव के हाथों कृष्ण को सन्देश भेजती हैं। इसी का वर्णन इस पद में हुआ है।

व्याख्या– हे उद्धव! हम ब्रज की भोली-भाली बालाएँ छल-कपट की बनावटी बातें नहीं जानती, इसलिए कृष्ण से हमारा सीधा-सा सन्देश कह देना कि आपकी कृपा तो असीम है (आप तो अपने भक्तों के अपराधों को हृदय में लाते ही नहीं) और हमारी अपराध करने की क्षमता (सामर्थ्य) बहुत अल्प है; अर्थात् हम कितने ही अपराध करें, आप अपनी असीम कृपा के कारण हमें क्षमा कर देंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। आप हमें अन्य जो चाहे दण्ड दें, किन्तु अपने दर्शनों के आनन्द से वंचित न करें, यही हम दीन-अबलाओं की प्रार्थना है; क्योंकि चाहे हम भली हैं या बुरी हैं, लज्जाशील है या निपट निर्लज्ज हैं, हमें जो चाहें वह समझें; परन्तु एक बात निश्चित है कि हम जैसी भी हैं आपकी सेविकाएँ हैं, जिसके कारण समस्त अपराधों के बावजूद हम आपकी कृपा की अधिकारिणी है।

काव्य सौन्दर्य– (1) गोपियों का कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम समर्पण की भावना के साथ व्यक्त हुआ है। (2) अभिलाषा और दैन्य संचारी भावों का चित्रण है। **(3) भाषा–** ब्रज। **(4) रस–** शृंगार। **(5) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **(6) गुण–** माधुर्य। **(7) शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **(8) अलंकार–** अनुप्रास (वर्णों की आवृत्ति होने से), -दरस-रस' में यमक; पदमैत्री।

(च) प्रेम-मद-छाके..... राधिका पठाई है।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– जब उद्धव गोकुल से मथुरा के लिए प्रस्थान करते है, तो वे अत्यन्त प्रेम-विह्वल है। प्रेमाधिक्य से उनकी दशा बड़ी विचित्र दिखाई गई है।

व्याख्या– जिस प्रकार शराबी के पैर ठीक से जमीन पर नहीं पड़ते, उसका शरीर शिथिल हो जाता है तथा नेत्रों में आलस्य-सा दिखाई देता है, उसी प्रकार प्रेम-रस का आकण्ठ पान किये हुए उद्धव के पैर कहीं-के-कहीं पड़ रहे थे। उनके सारे अंग शिथिल हो गये थे तथा नेत्रों में मादकता छा गयी थी। कविवर रत्नाकर कहते हैं कि उद्धव इस प्रकार भौंचक्के-से चले आ रहे थे, मानो किसी भूली बात को याद कर रहे हों। वे आए थे इस अभिमान के साथ कि मैं गोपियों को अपनी वाणी से सन्तुष्ट कर दूँगा, परन्तु गोपियों की बात सुनकर उनका सारा अहंकार दूर हो गया। कहने का आशय यह है कि ब्रज से आते हुए उद्धव की स्थिति बहुत विचित्र हो रही है। उद्धव के एक हाथ में माता यशोदा द्वारा दिया हुआ मक्खन सुशोभित हो रहा था तथा दूसरे हाथ में राधा द्वारा भेजी गयी बाँसुरी। वे इन उपहारों के प्रति अत्यधिक आदर-भाव के कारण उन्हें पृथ्वी पर नहीं रख रहे थे। प्रेमाधिक्य के कारण उनके नेत्रों से जो आँसू उमड़ रहे थे, उन्हें वे बार-बार अपने कुरते की बाँहों से पोछ रहे थे; क्योंकि हाथ तो घिरे थे और हाथों को खाली करने के लिए वे उपहारों को पृथ्वी पर रखना नहीं चाहते थे।

काव्य सौन्दर्य– (1) व्यक्ति की आस्था दृढ़ न हो तो उसकी पराजय निश्चित है। ज्ञानी उद्धव ब्रज-गोपिकाओं के असीम प्रेम से प्रभावित होकर ज्ञानी से पूर्णत: भक्त बन गये। इसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत छन्द में मिलता है। (2) कविवर रत्नाकर अनुभवी-योजना के कौशल के लिए विख्यात हैं। यहाँ अंग-शैथिल्य, पैरों का डगमगालना, अश्रु, भौंचक्कापन आदि से उद्धव का चित्र सजीव हो उठा है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **(5) रस–** शान्त। **(6) अलंकार–** उत्प्रेक्षा, रूपक तथा अनुप्रास।

(छ) छावते कुटीर ..... धरते नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने प्रेमोन्मत्त उद्धव पर गोपियों तथा ब्रजवासियों के प्रभाव एवं उनके प्रति असीम प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या– उद्धव ब्रजभूमि से लौटकर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे नाथ! हम तो यमुना नदी के रमणीक किनारे पर ही कहीं अपनी कुटिया बना लेते और उस अनुपम रेतीले किनारे को छोड़कर कभी भी कहीं किसी और स्थान को न जाते। हम उस गम्भीर प्रेम-कथा को छोड़कर न तो अपने कानों से किसी अन्य रसपूर्ण कथा को सुनते और न ही अपनी जिह्वा से किसी अन्य रस-भरी कथा सुनाते। गोपियों तथा ग्वाल-बालों के उमड़ते हुए अश्रुओं को देखकर तो हम प्रलय के आगमन से भी भयभीत नहीं होते। भाव यह है कि गोपियों का अश्रु-प्रवाह प्रलय से भी अधिक भयावह प्रतीत होता था। उद्धव कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण!

यदि हमारे मन में आपको सजग करने की अभिलाषा न होती तो हम ब्रजभूमि को छोड़कर इधर पैर नहीं रखते; अर्थात् यहाँ कभी लौटकर न आते।

काव्य सौन्दर्य– (1) ब्रजभूमि के प्रति कवि का असीम अनुराग व्यक्त हुआ है। (2) उद्धव पर ब्रज का अमिट प्रभाव दर्शाया है। (3) उद्धव ने ज्ञान के स्थान पर प्रेम को अधिक प्रभावी तत्त्व के रूप में स्वीकार लिया है। **(4) भाषा–** ब्रजभाषा। **(5) अलंकार–** अनुप्रास, प्रतीप एवं लोकोक्ति। **(6) शैली–** चित्रोपम। **(7) रस–** करुण एवं शान्त। **(8) शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा। **(9) गुण–** प्रसाद। **(10) छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **(11) भावसाम्य–** ब्रज में निवास करने की ऐसी ही कामना कवि रसखान ने भी व्यक्त की है– **'मनुष्य हौं तो वही रसखान, बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।'**

(ज) निकसि कमंडल ..... सब गरजे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जगन्नाथ-दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित आख्यानक प्रबन्ध काव्य 'गंगावतरण' से 'गंगावतरण' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में ब्रह्माजी के कमण्डल से पृथ्वी की ओर आती हुई गंगाजी की शोभा का वर्णन हुआ है।

व्याख्या– ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर गंगा की धारा उमड़कर आकाशमण्डल को भेदती तथा वायु को चीरती हुई प्रचण्ड वेग से नीचे को दौड़ पड़ी। उसकी धमक से अर्थात् वेगपूर्वक गिरने के धक्के से अतीव भयंकर शब्द हुआ, जिसने तीनों लोक डर गये। ऐसा लगा मानो प्रलयकालीन मेघ एक साथ मिलकर गरज उठे हों।

काव्य-सौन्दर्य– (1) कवि ने प्रचण्ड वेग से धरती की ओर आती गंगा का चित्र-सा खड़ा कर दिया है, जिसमें तदनुरूप कठोर ध्वनि वाली शब्दावली (खंडति, बिहंडति, तरजे, गरजे आदि का प्रयोग बड़ा उपयुक्त है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) रस–** वीर। **(4) शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **(5) गुण–** ओज। **(6) अलंकार–** अनुप्रास और उत्प्रेक्षा। **(7) छन्द–** रोला।

(झ) स्वाति-घटा ..... छबि छाई॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ कवि ने ब्रह्माजी के कमण्डल से अपार वेग के साथ निकलती गंगा का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– आकाश से धरती पर उतरती हुई गंगा की श्वेत धारा को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो मोतियों की आभा से परिपूर्ण स्वाति-नक्षत्र के मेघों का समूह घुमड़ रहा हो अथवा सुन्दर श्वेत ज्योति धरती की ओर झुकती हुई चली आ रही हो। गंगा के निर्मल जल में मछलियों, मगरमच्छों और जल-सर्पों की चंचल चमक ऐसे शोभा पा रही थी, मानो चंचलता से परिपूर्ण बिजली चमचमा रही हो।

काव्य सौन्दर्य– (1) गंगा की जलधारा का आलंकारिक चित्रण हुआ है। (2) कवि ने 'मुक्ति-पानिप' कहकर गंगा की मोक्षदायिनी शक्ति का भी संकेत किया है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** उत्प्रेक्षा, श्लेष, सन्देह एवं अनुप्रास। **(5) रस–** शान्त और वीर। **(6) गुण–** ओज। **(7) छन्द–** रोला।

(ञ) रुचिर रजतमय ..... आनंद-बधाए॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत काव्य-पंक्तियों में आकाश से पृथ्वी पर गिरती गंगा की पवित्र धारा की अनुपम शोभा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– आकाश से पृथ्वी पर अवतरित होती गंगा की पवित्र धारा ऐसी मनोहर लगती है, जैसे किसी ने आकाश में कोई अत्यन्त विशाल तम्बू तान दिया हो। उस धारा से झरती जल की बूँदे ऐसी शोभा पा रही हैं, जैसे उस तम्बू में लटकी मोतियों की झालरें (मालाएँ) झिलमिला रही हों। लगता है उस तम्बू के नीचे देवताओं की स्त्रियों के समूहों ने आनन्द-मनाने के लिए राग-रंग के सभी साजो-सामान जमाए हैं।

काव्य-सौन्दर्य– (1) चँदावे के रूप में गंगा की धारा के वर्णन की कल्पना में कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। **(2) भाषा–** ब्रजभाषा। **(3) शैली–** प्रबन्धात्मक। **(4) अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **(5) रस–** शान्त। **(6) छन्द–** रोला। **(7) गुण–** प्रसाद। **(8) शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ट) कुबहूँ सु-धार ..... रासि उसावत्॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ कवि ने ब्रह्माजी के कमण्डल से अपार वेग के साथ निकलती गंगा का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– गंगाजी की सुन्दर धारा बड़ी तेजी के साथ धरती की ओर दौड़ी और हर-हर शब्द की ध्वनि करती हुई हजार योजन तक लहराती चली गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो ब्रह्मारूपी चतुर किसान मन के अनुकूल वायु पाकर अपने पुण्य के खेत में उत्पन्न हीरे की फसल को हवा में उड़ाकर उसका कूड़ा-करकट अलग कर रहा हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. 'उसावत' शब्द का प्रयोग बड़ा सार्थक है। किसान अपनी फसल की ओसाई करके हवा में भूसे को उड़ाते

हैं, जिससे अनाज नीचे गिर जाता है। यहाँ हीरारूपी अन्न धरती पर गिर रहा है और भूसेरूपी फुहारें इधर-उधर छितरा रही हैं।
2. ब्रह्मारूपी किसान द्वारा हीरे की फसल उगाने की अपूर्व कल्पना प्रशंसनीय है। **(3) भाषा–** ब्रजभाषा। **(4) अलंकार–** रूपक, उत्प्रेक्षा एवं शब्दमैत्री। **(5) शब्दशक्ति–** लक्षणा। **(6) गुण–** ओज। **(7) छन्द–** रोला।

(ठ) कृपानिधान ..... सिमटि समानी।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ शिवजी द्वारा गंगा को पत्नी के रूप में स्वीकार करने तथा गंगा के स्त्री-सुलभ संकोच का सुन्दर वर्णन हुआ है।

व्याख्या– गंगा के हृदय की कोमल प्रेम-भावना को कृपालु शंकरजी तुरन्त जान गये। उन्होंने गंगा को पत्नी के रूप में स्वीकार कर उसे अपने सिर पर स्थान देकर सम्मानित किया। उधर गंगा को नारी-सुलभ संकोच की अनुभूति होती है और वह अपने शरीर को सिकोड़कर, सुख का अनुभव करती हुई लजाती है और शिव के जटा-जूटरूपी हिमालय पर्वत के घने वन में सिमटकर छिप जाती है।

काव्य-सौन्दर्य– (1) गंगा के नारी-सुलभ प्रेम, संकोच और लज्जा का सुन्दर निरूपण हुआ है। **(2) भाषा–** ब्रज। **(3) शैली–** प्रबन्ध। **(4) अलंकार–** मानवीकरण। **(5) छन्द–** रोला।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) कान्ह-दूत कैधों ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'उद्धव प्रसंग' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में उद्धव द्वारा गापियों को ब्रह्मवाद का उपदेश दिए जाने पर गोपियों की प्रतिक्रिया का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से कहती है कि आप प्रेम की रीति को जाने बिना हमें ब्रह्म का उपदेश दिए चले जा रहे हैं। हम तो एकमात्र श्रीकृष्ण के प्रेम में ही अनुरक्त है, वही हमारे सबकुछ हैं। वे उद्धवजी से व्यंग्यपूर्ण भाव में पूछती हैं कि आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लेकर और श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं अथवा ब्रह्म के दूत के रूप में आए हैं। कहने को तो आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर आए हैं, फिर भी आप निरन्तर केवल ब्रह्म की ही चर्चा किए जा रहे हैं।

(ख) जैहें बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि कौं
बूदँता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में गोपियों ने अद्वैतवाद का इसलिए खण्डन किया है कि इसे स्वीकार करने पर उनका अपना ही अस्तित्व, खतरे में पड़ जाएगा।

व्याख्या– गोपियाँ कहती हैं कि बूँद और समुद्र के आपस में मिलने से समुद्र के अस्तित्व पर कोई आँच नहीं आएगी, वह ज्यों का त्यों बना रहेगा, किन्तु समुद्र में मिल जाने से बेचारी बूँद का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। गोपियों के कथन का आशय यह है कि ब्रह्म तो विशाल समुद्र की भाँति है और हम हैं मात्र बूँद। ब्रह्म में हमारे मिल जाने से उसकी महत्ता में तो किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ेगा, किन्तु हमारा तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, जो हमें कदापि स्वीकार्य नहीं है। हम अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहती हैं, क्योंकि हमें अपना अस्तित्व बनाए रखने में ही लाभ है। यदि हमने स्वयं को ब्रह्म में मिला दिया तो हम कृष्ण के प्रेम की अनुभूति कैसे कर सकेंगी।

(ग) एवे बड़े बिस्तमाँहि हेरैं हूँ न पैये जाहि
ताहि त्रिकूटि में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में गोपियों द्वारा ब्रह्म की निस्सारता और उद्धव को अज्ञानी सिद्ध करने के तर्कपूर्ण प्रयास का अनुपम चित्रण किया गया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव की ब्रह्मवादिता और ज्ञानमार्ग पर चलने की सलाह पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि जो ब्रह्म रूप और रस से रहित है, उसके रूप का उपदेश आप हमें क्यों दे रहे हैं। साथ ही जिस ब्रह्म को इतने विशाल विश्व में खोजने पर भी नहीं पाया जा सकता, उसे त्रिकुटी जैसे छोटे-से स्थान में नेत्र मूँदकर प्राप्त करने का उपदेश देते हो। तुम्हारी ये सभी बातें तुम्हारे अज्ञानी होने का प्रमाण देती हैं।

(घ) भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हूँ हैं
जो कहौ सो हैं पै परिचालिका तिहारी हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ 'रत्नाकर' जी ने गोपियों की सरलता और प्रेम की अनन्यता का स्वाभाविक चित्रण किया है।

व्याख्या– प्रेम से वशीभूत गोपियाँ स्वयं को श्रीकृष्ण की दासी बताती हैं और समर्पित भाव से कहती हैं कि हम अच्छी हैं या बुरी, निर्लज्ज है या लज्जाशील; जैसा भी हैं आपकी ही हैं। हम आपकी सेविकाएँ हैं। सेविकाओं से भूल भी हो सकती है, परन्तु स्वामी उनकी भूलों को क्षमा कर ही देते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हमें विश्वास है कि इसी प्रकार आप भी हमारी भूलों को क्षमा कर देंगे।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'उद्धव-प्रसंग' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'उद्धव-प्रसंग' कविता जगन्नाथ 'रत्नाकर' जी के काव्य गन्थ 'उद्धव शतक' से लिया गया है, जिसमें कवि ने गोपिकाओं की विरह स्थिति तथा व्याकुलता का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि जब ब्रज में गोपियों ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गए उद्धव के आने का समाचार सुना तो वे दौड़कर नंद जी के द्वार पर पहुँच गई वे अपने पंजों पर उचक-उचककर कृष्ण द्वारा भेजे गए पत्र को देखकर व्याकुल हो उठी। सभी उत्सुकतावश उद्धव से पूछने लगी कि कृष्ण ने हमारे लिए क्या सन्देश लिखा है?

उद्धव गोपियों से कहते हैं कि यदि तुम श्रीकृष्ण का संयोग (मिलन) चाहती हो तो अपने हृदय में योग की साधना रखो। तुम अपनी आत्मा को ब्रह्म में इस प्रकार मग्न करो, जिससे जड़ और चेतन का आनन्द प्रकट होता रहे। अज्ञानवश तुम क्षुब्ध होकर जिसके वियोग का अनुभव करती हो वह तो सभी के हृदय में सदैव विद्यमान रहता है।

उद्धव द्वारा कृष्ण का योग सम्बन्धी कठोर सन्देश अपने कानों से सुनकर कोई गोपी काँपने लगी, कोई अपने स्थान पर ही जड़वत हो गई। कोई क्रुद्ध हो गई, कोई बड़बड़ाने लगी और कोई विलाप करने लगी, कोई व्याकुल व शिथिल हो गई, कोई पसीने से भीग गई, किसी की आँखों में पानी भर गया, तो कोई अपना कलेजा थामकर खड़ी रह गई। गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं कि आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर आए हैं या ब्रह्म के, जो आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लिए हुए हैं, परन्तु हे उद्धव! आप प्रीति की रीति को नहीं जानते, इसलिए आप अनाड़ियों और बुद्धिहीनों जैसा व्यवहार कर रहे हो। यदि हम आपके कहे अनुसार मान लें कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं तो भी हमें यह अभेदता का विचार अच्छा नहीं लगता क्योंकि बूँद और समुद्र के एकत्व से समुद्र की समुद्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, किन्तु समुद्र में मिलने से बूँद का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि आप हमें सुन्दर चिन्तामणि (कृष्ण) के प्रेम को फेंककर ब्रह्मज्ञानरूपी काँच को मनरूपी दर्पण में संभालकर रखने को कह रहे हो। आप वियोग की अग्नि को बुझाने के लिए हमें वायु-भक्षण (प्राणायाम) करने का कहते हैं, जिस निर्गुण ब्रह्म को आप स्वयं ही रूप और रस विहिन सिद्ध कर चुके हैं, उसी के रूप का ध्यान करने और उसका रस चखने को कहते हैं। इतने बड़े विश्व में खोजने पर भी जिसे नहीं पाया जा सकता, उसे आप नेत्र बंद करके त्रिकूट चक्र में देखने के लिए कह रहे हैं।

गोपियों उद्धव से कहती है कि यदि मथुरा से योग (मिलन) की शिक्षा देने आए हैं तो फिर वियोग की बातें मत कीजिए। यदि आपने हम पर दया करके हमारें दु:खों को दूर करने के लिए दर्शन दिए हैं तो वियोग की बातों से हमारे दु:खों को मत बढ़ाइए। ऐसी बातों से हमारा मन टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा इसलिए ऐसे कठोर वचनरूपी पत्थर मत चलाइए। एक मनमोहन (श्रीकृष्ण) ने तो हमारे मन में बसकर हमें उजाड़ दिया आप अनेक मनमोहनों को हमारे मन में मत बसाओ।

गोपियाँ कहती हैं– हे उद्धव! श्रीकृष्ण को हमारा सीधा सा सन्देश दे देना कि ब्रजबालाएँ छल-कपट की बनावटी बातें नहीं जानती हैं। उनसे कहना उनके अपराध क्षमा करने की सीमा असीम है और हमारे अपराध करने की सीमा अल्प। इसलिए हमें विश्वास है कि वे हमें क्षमा कर ही देंगे। जो भी ताडनाएँ (सजा) आपके (श्रीकृष्ण) मन को अच्छे लगे वे हमें दे दीजिए परंतु अपने दर्शनों से हमें वंचित न करे क्योंकि हम अच्छी हैं या बुरी, लज्जाशील है, या लज्जाहीन, परन्तु हम तो बस आपकी ही सेविकाएँ (दासी) हैं।

उद्धव को विदा देने के लिए सभी गोपियाँ इधर-उधर दौड़ने लगी। कोई श्रीकृष्ण के लिए मयूर पंख, प्रेम से रोते हुए कोई गुंजों की माला, कोई भावों से भरकर मलाईदार दही, कोई मट्ठा लाई। नंद ने पीताम्बर, यशोदा ने ताजा मक्खन तथा राधा ने बाँसुरी श्रीकृष्ण के लिए लाकर दी।

जब उद्धव ब्रज से मथुरा के लिए चले तो सभी ब्रजवासियों ने उन्हें भावपूर्ण विदाई दी, उनके प्रेम-रस का आकण्ठ पान किए हुए उद्धव के पैर कहीं-के-कहीं पड़ने लगे। उनके सभी अंग शिथिल हो गए। उस समय उद्धव इसी प्रकार चले आ रहे थे कि मानो किसी भूली हुई बात को याद कर रहे हो। उनके एक हाथ यशोदा माता का दिया हुआ मक्खन तथा दूसरे हाथ में राधा जी की बाँसुरी सुशोभित थी, जिसके कारण वे अपने नयनों में आने वाले आँसुओं को अपने कुरते की बाँहों से पोछ रहे थे।

मथुरा पहुँचने पर उद्धव के ब्रज की धूलि से धूसरित पवित्र शरीर को कृष्ण अत्यन्त आतुरता से लिपटाए जा रहे हैं। उद्धव को प्रेम-मद में मद देखकर कृष्ण उनकी काँपती हुई भुजा को पकड़ लेते हैं, और उन्हें स्थिर करते हैं। श्रीराधा के दर्शनरूपी रस का पान करने के कारण आँसुओं से उमड़ते उद्धव के नेत्रों को देखकर श्रीकृष्ण के नेत्र भी पुलकित हो उठते हैं और उन आँसुओं की एक बूँद पृथ्वी पर न पड़ने देकर वे अपने वस्त्र से पोंछ-पोंछकर अपने नेत्रों से लगाए जा रहे हैं।

उद्धव श्रीकृष्ण से कहते है कि यदि गोपियों की प्रेममायी दशा से अवगत कराकर आपको उनकी अपेक्षा न करके शीघ्र दर्शन देने की चेतावनी देने का विचार मेरे मन में न होता तो मैं इधर कभी न आता। वहीं यमुना किनारे कुटिया बनाकर निवास करने लगता।

2. 'रत्नाकर' जी ने 'उद्धव शतक' में ज्ञान और योग पर प्रेम और भक्ति की विजय दिखलाई है।'' अपने पठित अंश के आधार पर इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उ०– 'रत्नाकर' जी ने 'उद्धव शतक' काव्य ग्रन्थ में उद्धव के ज्ञान और योग पर गोपियों के प्रेम और भक्ति की विजय दिखलाई है। गोपियों की भक्ति से निर्गुण ब्रह्म के उपासक उद्धव भी सगुण ब्रह्म की उपासना करने लगे और उन्हें भी गोपियों के विरह में विरह की पीड़ा का अनुभव हुआ। इसलिए ही उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि वे गोपियों को अपने दर्शन अवश्य दें वरन् उनके अश्रु प्रवाह से प्रलय आ जाएगी।

3. 'गंगावतरण' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'गंगावतरण' कविता कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के काव्य ग्रन्थ 'गंगावतरण' से संकलित है। इसमें गंगा नदी के पृथ्वी पर पर्दापण का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहते हैं कि ब्रह्मा जी के कमण्डल से निकलकर गंगा की धारा बड़े उल्लास और वेग के साथ आकाशमण्डल को चीरती हुई, वायु को भेदती हुई तीव्र वेग के साथ दौड़ चली। उसके वेग पूर्ण गिरने की धमक से तीनों लोक डर गए। जैसे अनेक महामेघ एक साथ मिलकर गरज उठे हो। गंगा की धारा अपने वेग से पवनरूपी परदे को फाड़ती हुई तथा स्वर्गलोक के बादलों को घिसती हुई, शोर करती हुई राजा सगर के पुत्रों के दाह को शांत करने के लिए पृथ्वी की ओर वेगपूर्वक चली।

आकाश से धरती पर उतरती गंगा ऐसी प्रतीत होती है जैसे स्वाति-नक्षत्र के मेघों का समूह घुमड़ रहा हो। गंगा के निर्मल जल में मछलियों, मगरमच्छों एवं जलसर्पों की चंचल चमक ऐसी लग रही थी जैसे चंचलता से युक्त बिजली चमक रही हो।

आकाश से धरती की ओर आती गंगा चाँदी का तना हुआ तम्बू सा प्रतीत होती है। उस धारा से झरती पानी की बूँदें उस तम्बू की झालर दिखाई पड़ रही है। लगता है उस तम्बू के नीचे देवताओं की स्त्रियों ने आनन्द मनाने के लिए राग-रंग के सभी साजो-सामाना एकत्र किए हो।

गंगा की सुन्दर धारा हर-हर की ध्वनि करती हुई हजारों योजन तक लहराती हुई तीव्र गति से पृथ्वी की ओर दौड़ी। उस समय ऐसा प्रतीत हआ, मानो ब्रह्मारूपी चतुर किसान मन के अनुकूल वायु पाकर अपने पुण्य के खेत में उत्पन्न हीरे की फसल को हवा में उड़ाकर उसका कूड़ा-करकट अलग कर रहा हो।

इस प्रकार दौड़ती, धँसती, ढलती, ढुलकती और सुख प्रदान करती गंगा ऐसी प्रतीत हुई मानो वह पृथ्वी से स्वर्ग के लिए सीढ़ी का निर्माण कर रही हो। उसमें अत्यधिक वेग, शक्ति, पराक्रम तथा ओज की उमंग भरी है। और वह हर-हर करती हुई भगवान् शंकर के सामने पहुँच गई।

शिव के अनुरूप एवं तेजस्वी रूप का वर्णन पाकर गंगा धन्य हो गई। उसके शरीर के प्राण पराए हो गए अब वह शिव की धरोहर ही रह गए। गंगा का सारा क्रोध समाप्त हो गया तथा अब गंगा के मन में रुक्षता के स्थान पर प्रेम की स्निग्धता आ गई थी। भगवान् शिव ने भी गंगा के हृदय की भावना को पहचान लिया और उसे अपनी प्रियतमा स्वीकार करते हुए उसे अपने सिर पर स्थान दिया। ऐसी दशा में गंगा संकोचवश अपने अंगों को सिकोड़ती हुई-सी सुखपूर्वक प्रवाहित होने लगी तथा सिमटकर सघन हिमालय की चोटी के समान शिव की जटाओं में विलीन हो गई।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''आए हौ सिखावन ..... बसावौ ना।'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शृंगार रस का प्रयोग हुआ है जिसका स्थायी भाव रति है।

2. 'कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं।'' पंक्ति में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– अनुप्रास एवं यमक।

3. ''भेजे मनभावन ..... कहन सबै लगीं।'' पंक्तियों में किस छंद का प्रयोग हुआ है?

उ०– प्रस्तुत पद्यांश में मनहरण घनाक्षरी छंद का प्रयोग हुआ है।

4. ''निकसि कमंडल ..... सब गरजै।'' पंक्तियों में किस छंद का प्रयोग हुआ है?

उ०– प्रस्तुत पद्यांश में रोला छंद का प्रयोग हुआ है।

5. ''कृपानिधान ..... सिमटि समानी।'' पद्यांश का काव्य सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य सौन्दर्य– 1. गंगा के नारी सुलभ-प्रेम, संकोच और लज्जा का सुंदर निरूपण हुआ है। **2. भाषा–** ब्रज, **3. शैली–** प्रबन्ध, **4. अलंकार–** मानवीकरण, **5. छन्द–** रोला।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

1 बलिदान
(प्रेमचन्द)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—178-179 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. प्रेमचन्द का जीवन परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– उपन्यासकार एवं कहानीकार प्रेमचन्द का जन्म वाराणसी जिले के लमही नामक ग्राम में 31 जुलाई, सन् 1880 ई० को हुआ था। इनका बचपन का नाम धनपतराय था। इनके पिता का नाम 'अजायबराय' तथा माता का नाम 'आनन्दी देवी' था। इनके पिता एक कृषक थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता परलोक सिधार गई और कुछ समय बाद ये पिता की छत्र-छाया से भी वंचित हो गए। लेकिन फिर भी इन्होंने अध्ययन के प्रति रूझान को कम नहीं होने दिया। इण्टरमीडिएट की परीक्षा में सफल न हो पाने के कारण इन्होंने अध्ययन छोड़ दिया।

प्रारम्भ में इन्होंने एक स्कूल के अध्यापक पद को सुशोभित किया तथा कुछ समय शिक्षा विभाग में सब-डिप्टी इंस्पेक्टर भी रहे। देशभक्ति भावना इनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्होंने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और साहित्य-सृजन भी करते रहे।

प्रारम्भ में ये 'नवाबराय' के नाम से उर्दू भाषा में कहानियाँ लिखते थे। स्वतन्त्रता-संग्राम के समय इनकी 'सोजे वतन' नामक रचना ने अंग्रेजों की नींद उड़ा दी। यह रचना विद्रोहात्मक स्वर से परिपूर्ण बताते हुए ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। तब महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर उनकी प्रेरणा से इन्होंने अपना नाम 'प्रेमचन्द' रखा तथा हिन्दी साहित्य साधना में संलग्न हो गए। प्रारम्भ में इन्होने 'मर्यादा' तथा 'माधुरी' पत्रिकाओं का सम्पादन किया तथा 'हंस' व 'जागरण' पत्र का सम्पादन भी किया।

8 अक्तूबर, सन् 1936 ई० को हिन्दी साहित्याकाश का यह नक्षत्र सदैव के लिए विलुप्त हो गया।

प्रेमचन्द जी ने मुख्य रूप से कहानी व उपन्यास विद्या को ही अपनी लेखनी से समृद्ध किया। इनके द्वारा रचित 'गोदान' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जो कृषक वर्ग से सम्बन्धित है। उपन्यास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के कारण इन्हें 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है। ग्रामीण-जीवन के तो ये 'चतुर-चितेरे' हैं। कहानी की परिभाषा देते हुए प्रेमचन्द जी ने कहा है- ''कहानी ऐसा उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेल-बूटे सजे हुए हों, बल्कि वह एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप से दृष्टिगोचर होता है।''

कृतियाँ– प्रेमचन्द जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– नमक का दारोगा, बलिदान, कफन, मंत्र, पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, सवा सर गेहूँ, बड़े भाई साहब, माता का मन्दिर, शतरंज के खिलाड़ी, पूस की रात, ईदगाह आदि प्रमुख कहानियाँ हैं।

कहानी-संग्रह– प्रेम प्रतिमा, प्रेम पचीसी, प्रेम चतुर्थी, प्रेम द्वादशी, पञ्च प्रसून, सप्त-सुमन, समर-यात्रा, सप्त सरोज, प्रेरणा, मानसरोवर आदि।

प्रेमचन्द जी ने लगभग 300 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 ई० में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई तथा अन्तिम कहानी 'कफन' सन् 1936 ई० में लिखी गई है।

उपन्यास– निर्मला, कायाकल्प, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रेमाश्रम, सेवासदन, गबन, गोदान, वरदान तथा मंगलसूत्र (अपूर्ण) प्रमुख उपन्यास हैं।

नाटक– कर्बला, प्रेम की वेदी, संग्राम प्रेमचन्द जी के प्रमुख नाटक हैं।

तलवार और त्याग, कुछ विचार, कलम, दुर्गादास, गल्प-रत्न आदि इनकी अन्य कृतियाँ हैं। इनके साहित्य में समाज-सुधार का सन्देश समाहित है। तत्कालीन कृषक वर्ग, नारी-जीवन, हरिजन पीड़ा तथा वर्ण-व्यवस्था को इन्होंने साहित्य-सृजन का आधार बनाया है।

2. प्रेमचंद के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– प्रेमचन्द का विशाल कहानी-साहित्य मानव-प्रकृति, मानव-इतिहास तथा मानवीयता के हृदयस्पर्शी एवं कलापूर्ण चित्रों से परिपूर्ण है। सांस्कृतिक उन्नयन, राष्ट्र-सेवा, आत्मगौरव आदि का सजीव एवं रोचक चित्रण करने के

साथ-साथ इन्होंने मानव के वास्तविक स्वरूप को उभारने में अद्‌भुत कौशल दिखाया है। ये अपनी कहानियों में दमन, शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलन्द करते तथा सामाजिक विकृतियों पर व्यंग्य के माध्यम से चोट करते रहे हैं। रचना-विधान की दृष्टि से इनकी कहानियाँ सरल एवं सरस हैं तथा उनमें जीवन में नवचेतना भरने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

प्रेमचन्द की कहानी-रचना का केन्द्रबिन्दु मानव है। इनकी कहानियों में लोक-जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक प्रस्तुतीकरण हुआ है। कथावस्तु का गठन समाज के विभिन्न धरातलों को स्पर्श करते हुए यथार्थ जगत् की घटनाओं, भावनाओं, चिन्तन-मनन एवं जीवन-संघर्षों को लेकर हुआ है।

प्रेमचन्द ने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए मानव की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को महत्व दिया है। ये मानव-मन के सूक्ष्म भावों का यथातथ्य तथा आकर्षक चित्र उतारने में सफल हुए हैं।

प्रेमचन्द के कथोपकथन स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल हैं। ये पात्रों के मनोभावों के चित्रण में सक्षम, मौलिक, सजीव, रोचक एवं कलात्मक हैं। इनमें हास्य-व्यंग्य तथा वाक्‌पटुता का विशिष्ट सौन्दर्य है। प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सुधारवादी है। इनकी कहानियाँ यथार्थ का अनुसरण करती हुई आदर्शोन्मुख होती हैं। उनमें आदर्श की प्रतिष्ठा जीवन की व्यापकता लिए हुई होती है।

इनकी कहानियों के शीर्षक अनायास ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं; जैसे— ईदगाह, मंत्र, बूढ़ी काकी, नमक का दारोगा आदि। शीर्षक पढ़कर ही पाठक कहानी पढ़ने को आतुर हो जाता है।

प्रेमचन्द ने भाषा-शैली के क्षेत्र में भी व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों की लाक्षणिक तथा आकर्षक योजना ने अभिव्यक्ति को सशक्त बनाया है। वस्तुत: इनकी कहानियों के सौन्दर्य का मुख्य आधार उनके पात्रों की सहजता है, जिसके लिए जन-भाषा का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा में व्यावहारिकता एवं साहित्यकता का सजीव समन्वय है। भाषा-शैली रोचक, प्रवाहयुक्त एवं प्रभावपूर्ण है।

कहानी के विकास एवं सौन्दर्य के अनुकूल वातावरण तथा परिस्थितियों के कलात्मक चित्र पाठक पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों का लक्ष्य मानव-जीवन के स्वरूप, उसकी गति तथा उसके सत्य की व्याख्या करना रहा है।

प्रेमचन्द की कहानी-कला की मौलिकता, उसकी गतिशीलता एवं व्यापकता ने हिन्दी को केवल समृद्ध ही नहीं किया, वरन् उसके विकास के अगणित स्रोतों का उद्‌घाटन भी किया है।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

1. 'बलिदान' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– गिरधारी के पिता हरखू की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। उनका शक्कर का कारोबार था। देश में विदेशी शक्कर आने से उनका व्यापार चौपट हो गया था और वह हरखचन्द्र से हरखू बन गया था। ग्रामीण क्षेत्रों में धनवान व्यक्ति को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है।

गिरधारी के पिता हरखू की पाँच बीघा जमीन कुएँ के पास खाद-पाँस से लदी हुई, व मेड़-बाँध से ठीक थी। उसमें तीन-तीन फसलें पैदा होती थीं। समय परिवर्तित होता है। हरखू ने जीवन में कभी भी दवाई नहीं खाई। जबकि हर वर्ष क्वार के महीने में उसे मलेरिया होता था लेकिन बिना दवाई खाए ही दस-पाँच दिनों में ठीक हो जाता था। इस बार वह ऐसा बीमार हुआ कि ठीक नहीं हो पाया। बीमारी की दशा में ही पाँच महीने कष्ट झेलने के बाद ठीक होली के दिन उसकी मृत्यु हो जाती है। गिरधारी ने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार खूब शान-शौकत से किया।

कुछ समय बाद जमींदार ओंकारनाथ ने गिरधारी को बुलाकर कहा कि नजराना जमा करके जमीन अपने पास रखो, हम लगान नहीं बढ़ायेंगे। तुम्हारी इस जमीन को लेने के लिए इसी गाँव के कई लोग दो गुना नजराना व लगान देने के लिए भी तैयार हैं। नजराना सौ रुपये से कम न होगा। गिरधारी उदास व निराश होकर लौट गया। बहुत सोच-विचार करके भी वह नजराने के लिए सौ रुपये नहीं जुटा पाया और हताश व निराश होकर घर लौट आया। आठवें दिन उसे मालूम हुआ कि कालिकादीन ने सौ रुपये नजराना देकर दस रुपये बीघा लगान पर खेत ले लिए। ऐसा सुनकर उसका धैर्य टूट गया। वह बिलख-बिलखकर रोने लगा। उस दिन उसके घर में चूल्हा नहीं जला, ऐसा लगा जैसे उसका बाप हरखू आज ही मरा है। अब तक समाज में उसका मान था, प्रतिष्ठा थी, परन्तु आज वह अन्दर ही अन्दर टूट गया था। रात को गिरधारी ने कुछ नहीं खाया। चारपाई पर पड़ा रहा। सुबह उसकी पत्नी ने उसे बहुत ढूँढ़ा लेकिन गिरधारी का कहीं पता नहीं लगा। शाम को उसकी पत्नी सुभागी ने देखा कि गिरधारी बैलों की नाँद के पास सिर झुकाए खड़ा है। जैसे ही सुभागी उसकी ओर बढ़ी तो वह पीछे की ओर हटता हुआ गायब हो गया।

अगले दिन कालिकादीन हल व बैल लेकर सुबह अँधेरे-अँधेरे खेत पर पहुँचा। वह बैलों को हल में लगा रहा था। अचानक उसने देखा कि गिरधारी खेत की मेड़ पर खड़ा है। जैसे ही कालिकादीन उसकी ओर बढ़ा, गिरधारी पीछे हटते-हटते, पीछे वाले कुएँ में कूद गया। कालिकादीन चीख-पुकार करता हुआ, हल व बैल वहीं छोड़कर गाँव की तरफ भागा। पूरे गाँव में शोर मच गया। इसके बाद कभी भी कालिकादीन ने गिरधारी के खेतों पर जाने की हिम्मत नहीं की। उसने उन खेतों से इस्तीफा दे दिया था, क्योंकि गिरधारी अपने खेतों के चारों ओर मँडराता रहता था। वह प्रतिदिन अँधेरा होते ही खेत की मेड़ पर आकर बैठ जाता था। कभी-कभी रात में उसके रोने की आवाज भी सुनाई देती थी। वह न तो किसी से बोलता था, न किसी को कुछ कहता था। लाला ओंकारनाथ ने बहुत चाहा कि कोई इन खेतों को ले ले, लेकिन लोग उन खेतों के नाम लेने से भी डरने लगे। वास्तव

में गिरधारी ने खेतों के प्रति आत्म-बलिदान दे दिया था।

2. 'बलिदान' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

उ०– **'बलिदान' शीर्षक की सार्थकता–** प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'बलिदान' कथानक के अनुरूप है। यह शीर्षक कहानी के उद्देश्य और मूलभाव को सब प्रकार से व्यक्त करता है। गिरधारी का 'बलिदान' उसके परिवार को विपन्नता से मुक्ति दिलाकर संपन्नता का द्वार खोलता है। उसके खेत भी उसकी पत्नी को वापस मिल गए होंगे; क्योंकि जमींदार के लाख चाहने पर भी कोई उन खेतों को नहीं लेता। यद्यपि प्रेमचन्द ने उसके खेत वापस मिलने का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु कहानी का अन्त यही संकेत करता है। आशय यही है कि गिरधारी का 'बलिदान' व्यर्थ नहीं जाता और कहानी के शीर्षक की सार्थकता को सिद्ध करता है।

3. 'बलिदान' कहानी का उद्देश्य की दृष्टि से मूल्यांकन कीजिए।

उ०– **'बलिदान' कहानी का उद्देश्य–** प्रेमचन्द यथार्थवादी कथाकार रहे हैं। ग्राम्य समाज के तो वे अनुपम चितेरे हैं। गाँव को उन्होंने निकट से देखा है; अत: वहाँ की समस्याएँ, दुर्बलताएँ, अन्धविश्वास, रीति-रिवाज और मानवीय संवेदनाएँ उनकी कहानियों का मुख्य प्रतिपाद्य रही हैं। प्रस्तुत कहानी में झूठी मान-प्रतिष्ठा के लिए ग्रामीणों द्वारा अपनी हैसियत से अधिक खर्च करने, गरीब मजदूर-किसानों का जमींदार और बनिये-साहूकार द्वारा शोषण किए जाने की समस्या को मुख्य रूप से उठाया गया है। इस कहानी में न केवल समस्या को उठाया गया है, वरन् उसका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है कि झूठी शान-शौकत के लिए हैसियत से अधिक खर्च नहीं किया जाना चाहिए और न ही किसी एक खास व्यवसाय बाँधकर रहना चाहिए। इस बात को गिरधारी और उसके बेटे के माध्यम से व्यक्त किया गया है। किसानी में गिरधारी कर्जदार रहा, तन पर अच्छी कमीज और पैरों में जूता न आया। घर में कभी-कभी तरकारी पकती थी और जौ खाया जाता था, किन्तु उसका बेटा ईंट-भट्ठे पर मजदूरी करके 20 रुपए महीना घर में लाता है। अब वह कमीज और अंग्रेजी जूता पहनना है। घर में दोनों जून तरकारी पकती है और जौ के बदले गेहूँ खाया जाता है।

किसानों की सादगी और खेती तथा खेतों के प्रति उनकी निष्ठा का चित्रण करना भी प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा है। उद्देश्य के रूप में कहानीकार ने यह भी दिखाया है कि किस प्रकार धन समाज की मानसिकता को बदल देता है। धन का प्रभाव और अभाव केवल व्यक्ति के सामाजिक स्तर को ही प्रभावित नहीं करता है, अपितु सम्बोधिन शब्दों की रचना और प्रयोग-प्रक्रिया को भी बदल देता है। मंगलू सिपाही बनकर मंगलसिंह बन जाता है। कल्लू अहीर गाँव का मुखिया बनकर 'कालिकादीन' कहलाने लगता है। व्यापारी से कृषक बनकर हरखूचन्द्र केवल हरखू रह जाता है। इस प्रकार कहानीकार ने भाषा के सामाजिक सन्दर्भों को भी स्पष्ट किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कहानीकार ने इस कहानी में विभिन्न सामाजिक स्तर पर भेदों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लोकसंस्कृतिमूलक समाज को मानक संस्कृतिमूलक समाज की आधारशिला माना है।

4. कथानक की दृष्टि से 'बलिदान' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– प्रेमचन्द जी की इस सामाजिक कहानी में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण है। कथानक में मौलिकता, रोचकता, स्वाभाविकता, कौतूहलता इत्यादि विशेषताएँ विद्यमान हैं। कथानक सुगठित है जो कृषक परिवार के सेवा, त्याग और समर्पण की भावना का पोषक है। यह जमींदार, कृषक और श्रमिक के बीच के दारुण सम्बन्धों की महागाथा है। इस कहानी का कथानक (कथावस्तु) एक निश्चित उद्देश्य की दिशा में यथार्थ घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से विकसित होता है। यह कथानक तत्कालीन सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था का सजीव चित्रण करता है। कहानी के कथानक में घटना, चरित्र एवं भाव तीनों का श्रेष्ठ समन्वय हुआ है।

प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'बलिदान' कहानी एक ऐसे कृषक हरखू की कहानी है, जो पूर्णरूपेण गाँव के जमींदार पर आश्रित है और बहुत समय से जमींदार की जमीन जोतता आता है। उसकी मृत्यु हो जाती है। उसका पुत्र गिरधारी उसकी अन्त्येष्टि करता है। अर्थाभाव के कारण गिरधारी जमींदार की 20 वर्षों से जोती गई जमीन को नजराना देकर नहीं ले पाता है। अशिक्षा, निर्धनता और नियति ने उसको प्रेतात्मा बना दिया अर्थात् उस जमीन के लिए उसने अपना 'बलिदान' कर दिया। गिरधारी का बेटा श्रमिक बनकर अपने परिवार का भरण-पोषण करने लगा। उसकी पत्नी सुभागी अपमान से अपने जीवन के शेष दिनों को बिताने लगी। इस कहानी का सम्पूर्ण कथानक सामाजिक सच्चाई पर आधारित एवं किसान की बेबसी एवं दयनीय स्थिति का सजीव चित्र उद्घाटित करने में सक्षम है। अत: कहानी-कला के तत्वों की दृष्टि से कहानी का कथानक पूर्ण है।

5. 'बलिदान' कहानी के आधार पर उसके नायक गिरधारी की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'बलिदान' कहानी का प्रमुख पात्र गिरधारी है। उसके पिता हरखू शक्कर के व्यापारी से परिस्थितिवश किसान बन जाते हैं। हरखू दीर्घकाल तक अस्वस्थ रहकर परलोक सिधार जाता है और गिरधारी जमा पूँजी से उसकी अन्त्येष्टि करता है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) सेवा-भावना से युक्त– गिरधारी में सेवा-भावना विद्यमान है। अपने पिता के बीमारी होने पर वह उनकी हर प्रकार से तीमारदारी करता है। कभी नीम के सींके पिलाता, कभी गुर्च का सत, कभी गदापूरना की जड़। इन सभी बातों से स्पष्ट होता

है कि गिरधारी में सेवा-भावना विद्यमान थी।

(ii) आर्थिक अभास से ग्रस्त– गिरधारी ने समस्त जमा पूँजी से अपने पिता की विधिवत अन्तयेष्टि की थी, इस कारण से उसके सामने पर्याप्त आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। वह कई लोगों का कर्जदार हो गया और गाँव के लोग उससे कटने लगे।

(iii) परिश्रमी और सत्यवादी– 'बलिदान' कहानी का प्रमुख पात्र गिरधारी परिश्रमी और सत्यवादी है। उसके परिश्रमी होने का गुण लेखक के इस कथन से स्पष्ट होता है, ''खेत गिरधारी के जीवन के अंश हो गए थे। उनकी एक-एक अंगुल भूमि उसके रक्त से रँगी हुई थी। उनका एक-एक परमाणु उसके पसीने से तर हो गया था।'' सत्यवादिता का गुण उसकी इस बात से स्पष्ट झलकता है कि जब ओंकारनाथ के पास जाता है तो कहता है- ''सरकार मेरे घर में तो इस समय रोटियों का भी ठिकाना नहीं है। इतने रूपए कहाँ से लाऊँगा?''

(iv) भाग्यवादी– गिरधारी अपने पिता की अन्त्येष्टि में अपनी सारी जमा पूँजी व्यय कर देता है। इससे उसके सामने आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है। वह दो समय की रोटी के लिए भी परेशान हो जाता है। जब उसके पड़ोसी उससे कहते हैं कि तुमने अन्त्येष्टि में व्यर्थ पैसा खर्च किया, इतना पैसा खर्च नहीं करना चाहिए था तो वह कहता है- ''**मेरे भाग्य में जो लिखा है, वह होगा।**''

(v) अन्तर्द्वन्द्व का शिकार– गिरधारी खेत को अपनी माँ समझता है। उससे उसका अमिट लगाव है। उसके जाने का उसे बड़ा दु:ख होता है। जब उसके हाथ से उसकी जमीन खिसक जाती है, तो वह अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वह यह नहीं सोच पाता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं? इसी मानसिक स्थिति में वह अपने बैल भी बेच देता है। हालात से परेशान होकर वह रज्जू बढ़ई के पास जाता है और कहता है, ''**रज्जू, मेरे हल भी बिगड़े हुए हैं, चलो बना दो।**''

(vi) विनम्र– गिरधारी स्वाभाविक रूप से विनम्र है। विनम्रता का गुण उसकी नस-नस में व्याप्त है। क्रोध उसको छू तक नहीं गया है। तुलसी बनिया जब क्रोध में उससे तकादा करता है तो वह विनम्रतापूर्वक कहता है- ''**साह, जैसे इतने दिनों मानें हो, आज और मान जाओ। कल तुम्हारी एक-एक कौड़ी चुका दूँगा।**''

(vii) सरल हृदय– गिरधारी सरल हृदय व्यक्ति है। जब मंगल सिंह तुलसी के बारे में उससे कहता है कि यह बड़ा बदमाश है, कहीं नालिश न कर दे तो सरल हृदय गिरधारी मंगल सिंह के बहकावे में आ जाता है और मंगल को भी अच्छा सौदा बहुत सस्ते में मिल जाता है।

(viii) भावनात्मक– गिरधारी भावनात्मक रूप से अपने पशुओं से भी जुड़ा हुआ है। वह उन्हें अपने से अलग नहीं करना चाहता; क्योंकि वे उसकी खुशहाली के प्रतीक हैं। लेकिन कर्ज चुकाने व आर्थिक अभाव के कारण जब वह उन्हें बेच देता है तो उनके कन्धे पर अपना सिर रखकर फूट-फूटकर रोता है।

उपर्युक्त गुणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'बलिदान' कहानी के प्रमुख पात्र गिरधारी में सत्यता, विनम्रता, सरलहृदयता जैसे गुणों का समावेश है। गिरधारी 'बलिदान' कहानी का ऐसा पात्र है, जो तत्कालीन शोषक समाज में शोषित व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। समय से हारकर वह कुचक्र का शिकार हो जाता है और प्राणान्त कर लेता है। पूरी कहानी गिरधारी के ही इर्द-गिर्द घूमती रहती है। सम्पूर्ण कहानी में वह जीवित स्थिति में तो व्याप्त है ही,मृत्यु होने के बाद भी छाया हुआ है। इसलिए उसे ही कहानी का नायक मानना समीचीन होगा।

6. 'बलिदान' कहानी की एकमात्र नारी-पात्र सुभागी के चरित्र की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

उ०– सुभागी कहानी 'बलिदान' की एकमात्र व प्रमुख नारी पात्र है। वह गिरधारी की पत्नी है उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) क्रोधित स्त्री– सुभागी स्वभाव से क्रोधित स्त्री है। जब उसे पता चलता है कालिकादीन ने 100 रुपए नजराना देकर खेत ले लिए हैं तो वह कालिकादीन के घर जाकर उससे खूब झगड़ती है तथा कहती है-''**कल का बानी आज का सेठ, खेत जोतने चले हैं देखें, कौन मेरे खेत में हल ले जाता है?**''

(ii) स्नेही– सुभागी एक स्नेह करने वाली स्त्री थी। वह अपने बैलों से प्रेम करती थी। जब गिरधारी बैल मंगलसिंह को बेच देता है तब उनके जाते समय वह फूट-फूटकर रोती है।

(iii) चिन्तामग्न– सुभागी चिन्तामग्न स्त्री है। अपने पति द्वारा नजराने की रकम के बारे में बताए जाने पर वह चिन्तित हो जाती है। उसे खाना-पीना अच्छा न लगता तथा अपने पति के घर से गायब हो जाने पर वह उसे सारे गाँव में ढूँढ़ती फिरती है।

(iv) आशावादी– सुभागी आशावादी थी। जब गिरधारी नहीं मिलता तो वह उसके पलंग के सिरहाने दिया जलाकर रख देती है। उसे आशा होती है कि गिरधारी वापस आ जाएगा।

(v) पतिव्रता नारी– सुभागी एक पतिव्रता नारी है। वह अपने पति की चिंता में चितिंत होती है। उसके घर से जाने के बाद वह उसके वापस लौटने की आशा करती है। जब वह गिरधारी को बैलों की नाँद के पास खड़ा देखती है तो वह कहती है- ''**घर जाओ, वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, आज सारे दिन कहाँ रहे।**''

(i) **अस्तित्वविहीन स्त्री–** गिरधारी के जाने के बाद सुभागी अस्तित्वविहीन हो जाती है। उसका बड़ा लड़का ईंट के भट्ठे पर मजदूरी करने लगता है। वह मजदूर की माँ होने के कारण सबसे छिपती रहती है। वह पंचायत में नहीं बैठती। उसका गाँव में आदर नहीं होता है।

इस प्रकार सुभागी एक आदर्श परंतु क्रोधित स्त्री है जो परिस्थिति के कारण अपना सम्मान खो देती है।

7. कालिकादीन के चरित्र की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

उ०– कालिकादीन गाँव का मुखिया था, जिसकी मित्रता हलके के थानेदार साहब से हो जाती है, जिसके कारण वह कल्लू अहीर से कालिकादीन हो जाता है। उसके चरित्र में निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

(i) **अवसरवादी–** कालिकादीन एक अवसरवादी व्यक्ति है। जब गिरधारी नजराने के रुपए नहीं दे पाता तो वह जमींदार ओंकारनाथ को नजराने के 100 रुपए देकर 10 रुपए बीघे पर खेत ले लेता है।

(ii) **डरपोक व्यक्ति–** कालिकादीन एक डरपोक व्यक्ति है। जब वह गिरधारी के गायब होने के बाद खेतों पर जाता है और गिरधारी को कुँए में कूदते देखता है तो वह डरकर अपने बैलों को वहीं छोड़कर भाग जाता है।

(iii) **धनवान–** कालिकादीन एक धनवान व्यक्ति हैं पहले वह एक गरीब व्यक्ति था परंतु गाँव का मुखिया तथा थानेदार से मित्रता होने के कारण बाद वह धनवान हो जाता है।

(iv) **उपदेशक–** कालिकादीन एक उपदेश देने वाला व्यक्ति है। वह उपदेश तो देता है परंतु किसी की मदद नहीं करता वह हरखू से कहता है कि– ''**बाबा, दो-चार दिन कोई दवा खा लो। अब तुम्हारी जवानी की देह थोड़े है कि बिना दवा दर्वन के अच्छे हो जाओगे?**''

(v) **अमानवीय व्यक्ति–** कालिकादीन एक अमानवीय व्यक्ति है। वह गिरधारी की खेतों से जुड़ी भावनाओं का सम्मान नहीं करता और 20 वर्षों से जोते जा रहे उसके खेतों को अधिक नजराना देकर ले लेता है।

इस प्रकार कालिकादीन अवसरवादी व स्वार्थी व्यक्ति है जो गिरधारी की परिस्थितियों का लाभ उठाता हैं।

8. 'बलिदान' कहानी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी की भाषा सरल, सुबोध और स्वाभाविक है। भाषा पात्रानुकूल तथा प्रवाहपूर्ण है। लोकोक्तियों और मुहावरों ने भाषा में रोचकता ला दी है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य को जो नया रूप और शिल्प प्रदान किया है, 'बलिदान' कहानी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रस्तुत कहानी में भाषा एवं शैली का प्रयोग पात्र, विषय और परिस्थिति के अनुकूल हुआ है। कहानी की सफलता में उसकी भाषा का मुख्य स्थान होता है। इस कहानी की भाषा भी सहज, प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है तथा उसमें अद्‌भुत व्यंजना-शक्ति भी है।

प्रस्तुत कहानी में वर्णनात्मकता की प्रधानता है। चित्रात्मक वर्णन भी उपलब्ध है। संवादों की योजना से कथानक में नाटकीयता भी आ गई है। एक उदाहरण देखिए–

बेचारा टूटी खाट पर पड़ा राम-राम जप रहा था। मंगलसिंह ने कहा-बाबा, बिना दवा खाये अच्छे न होंगे; कुनैन क्यों नहीं खाते? हरखू ने उदासीन भाव से कहा- तो लेते आना।

अत: भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

9. देश-काल या वातावरण की दृष्टि से बलिदान कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– प्रस्तुत कथा की घटना एक निश्चित देश-काल और वातावरण में घटित हुई है। इस देश-काल और वातावरण की निश्चित सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ है। कहानी को रोचक, सहज और स्वाभाविक बनाने में देश-काल और वातावरण का निर्वाह सहायक रहा है। जमींदारी प्रथा का यथातथ्य वर्णन करने में सक्षम यह कहानी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का पूरा प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें तत्कालीन किसानों की दशा का मार्मिक चित्रण है। प्रेमचन्द इस कार्य में पूर्णत: सिद्धहस्त है; यथा–

गिरधारी उदास और निराश होकर घर आया। 100 रूपए का प्रबंध करना उसके काबू के बाहर था। सोचने लगा- अगर दोनों बैल बेच दूँ तो खेत ही लेकर क्या करूँगा? घर बेचूँ तो यहाँ लेने वाला कौन है? और फिर बाप-दादों का नाम डूबता है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

2

आकाशदीप
(जयशंकर प्रसाद)

अभ्यास प्रश्न

पाठ्येतर सक्रियता—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—187–188 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. जयशंकर प्रसाद का जीवन-परिचय देते हुए इनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– लेखक परिचय– छायावाद के आधार स्तम्भ जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी, सन् 1889 ई० को काशी के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम देवीप्रसाद तथा पितामह का नाम शिवरत्न साहू था। अल्प-आयु में ही ये माता-पिता की छत्र-छाया से वंचित हो गए। बड़े भाई शम्भूरत्न ने इनकी शिक्षा के लिए व्यवस्था की थी। पिता की मृत्यु के कुछ समय बाद इनके बड़े भाई शम्भूरत्न का भी देहान्त हो गया। परिवार का दायित्व अब इन्हीं के कन्धों पर आ गया। इनके पिता तम्बाकू के व्यापारी थे, उस व्यापार का दायित्व भी अब इन पर ही आ गया। प्रारम्भ में इनका प्रवेश क्वीन्स कॉलिज में हुआ लेकिन वहाँ इनका मन नहीं लगा। अत: इन्होंने घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत व हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्होंने वेदों, इतिहास, दर्शनशास्त्र व उपनिषदों का अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य में इनकी विशेष रुचि थी। पैतृक व्यवसाय के साथ ही ये ''साहित्य-सृजन'' भी करते रहे। इनके द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा इन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया। साहित्यरूपी मन्दिर में अपनी वाणी रूप पुष्प अर्पित करते हुए 'प्रसाद' जी जीवन के अन्तिम समय में क्षय-रोग से पीड़ित हो गए। 15 नवम्बर, सन् 1937 ई० में यह महान् विभूति पंच तत्त्वों में विलीन हो गई।

कृतियाँ– 'प्रसाद' जी ने साहित्य की विविध विधाओं (कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास व निबन्ध) में अपनी लेखनी चलाई। इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

कहानी– आकाशदीप, ममता, आँधी, प्रतिध्वनि, इन्द्रजाल, मछुआ, ग्राम, पुरस्कार आदि।

उपन्यास– प्रसाद जी के प्रमुख उपन्यास तितली, कंकाल और इरावती (अपूर्ण) हैं।

नाटक– स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, एक घूँट, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, कल्याणी, अजातशत्रु, राज्यश्री प्रसाद जी के प्रमुख नाटक हैं।

काव्य-कृतियाँ– कामायनी (महाकाव्य), आँसू, लहर, झरना, चित्राधार, कानन-कुसुम आदि प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

2. जयशंकर प्रसाद के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– प्रसाद जी की कहानियों का मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक चित्रण अत्यन्त उच्चकोटि का बन पड़ा है। इनकी कहानी-रचना का धरातल साहित्यिक एवं कलात्मक है। इनकी कहानियाँ मानवता की उद्‌बोधक हैं। प्रसाद जी की कहानियों में गहरी भावमयता एवं सूक्ष्मता देखने को मिलती है। इनकी कहानियों का आधार ऐतिहासिक हो अथवा काल्पनिक; काव्य तत्व एवं नाटकीयता इनकी अधिकांश कहानियों में समाहित है।

प्रसाद जी के कथानक प्रवाहपूर्ण एवं चित्ताकर्षक हैं। कथावस्तु में सांस्कृतिक चेतना, प्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा, चरित्रगत सौन्दर्य आदि तत्व उभरकर आते हैं। प्रकृति के काव्यात्मक चित्र भी कथावस्तु का सौन्दर्य बढ़ाने में अत्यधिक सफल हुए हैं।

प्रसाद जी ने चरित्र-चित्रण में मानवीय गरिमा को महत्व दिया है तथा पात्रों के व्यक्तित्व को मार्मिकता से उभारा है। पात्रों की भावुकता उनको सक्रिय बनाती है तथा मानसिक संघर्षों में विवेक ऊपर उठकर कर्त्तव्य का मार्ग निर्धारित करता है। इनके कथोपकथन मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली हैं, जिनसे कहानी की रोचकता बढ़ती है एवं उसका स्वाभाविक विकास होता है। साथ ही ये कथोपकथन संक्षिप्त, नाटकीय एवं मनोवैज्ञानिक हैं।

प्रसाद जी की भाषा परिष्कृत, कलात्मक एवं संस्कृतनिष्ठ है तथा शैली में लालित्य, नाटकीयता एवं काव्यमयता है। स्थिति एवं पात्रों की मनोदशा के कलापूर्ण चित्रण एवं कथावस्तु का सौन्दर्य उभारने में उपयुक्त एवं कवित्वपूर्ण वातावरण की सुयोजना प्रसाद जी की कहानी-कला की अपनी प्रमुख विशेषता है।

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपने महत्वपूर्ण योगदान के कारण जयशंकर प्रसाद जी सदैव अमर रहेंगे। हिन्दी साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

1. ' आकाशदीप ' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– चम्पा जाह्नवी नदी के तट पर बसी हुई चम्पा नगरी में रहने वाली एक क्षत्रिय बालिका है। चम्पा के पिता पोताध्यक्ष मणिभद्र के

यहाँ प्रहरी थे। माता की मृत्यु के बाद वह पिता के साथ पोत पर ही रह रही थी। आठ वर्ष से पोत ही उसका घर है। बुद्धगुप्त एक युवा जलदस्यु है। वह ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय है। बुद्धगुप्त के आक्रमण के समय चम्पा के पिता ने सात जलदस्युओं को मारकर जल-समाधि ली थी। अब वह अनाथ की भाँति खुले आकाश के नीचे जीवन बिता रही थी।

एक दिन मणिभद्र ने उससे घृणित प्रस्ताव रखा, चम्पा ने उसका विरोध किया। उसी दिन से वह बन्दी बना दी गई। कहानी का प्रारम्भ समुद्र की लहरों पर हिचकोले खाते पोत पर बन्दी बनाकर, रखे गए दो बन्दियों (चम्पा व बुद्धगुप्त) के वार्तालाप से होता है। वे दोनों ही एक-दूसरे से अपरिचित हैं। तूफान के कारण पोत की व्यवस्था भंग हो जाने पर जब वह डगमगाने लगा, तब वे दोनों रात्रि के गहन अन्धकार में लुढ़कते हुए एक-दूसरे से टकरा जाते हैं। टकराने पर ज्ञात होता है कि उनमें एक स्त्री है और दूसरा पुरुष है। दोनों ही बन्धनमुक्त होने के अपने प्रयास में सफल हो जाते हैं और तब चम्पा ने बुद्धगुप्त को (जो दुर्भाग्य से जलदस्यु बन गया था) अपनी आत्मकथा सुनाई। बुद्धगुप्त के आक्रमण के समय ही चम्पा के पिता की मृत्यु हुई थी। बाद में किसी आक्रमण के कारण बुद्धगुप्त भी बन्दी बना लिया गया था। गहन रात्रि में तूफान के कारण कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। चम्पा उसे स्वतन्त्र होने का अवसर बताते हुए नाविक की कृपाण लाकर देती है। वह लुढ़कते हुए उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत में संलग्न थी। उसने रज्जु काट दी, जिससे नाव स्वतन्त्र हो गई। प्रात:काल बुद्धगुप्त नाव का स्वामी बन बैठा। वे दोनों एक नए द्वीप पर पहुँचे।

वह द्वीप चम्पा व बुद्धगुप्त का स्थायी निवास-स्थान बन गया। बुद्धगुप्त ने उस द्वीप का नाम चम्पा-द्वीप रखा। चम्पा के सम्पर्क में रहने कारण बुद्धगुप्त के कठोर हृदय में कोमलता उत्पन्न हो गई। वह व्यापार करने लगा। उस द्वीपवासी सभी लोग बुद्धगुप्त को राजा और चम्पा को महारानी मानते थे। चम्पा प्रतिदिन समुद्र तट पर ऊँचे स्थान पर दीपक जलाकर उसे रस्सी की सहायता से ऊपर पहुँचाती थी। महानाविक के इस विषय में पूछने पर उसने बताया कि मैं अपने पिता के लिए, भूले-भटके लोगों को पथ दिखाने के लिए दीप जलाती हूँ। चम्पा कहती है— ''भगवान भी भटकते हैं, भूलते हैं, अन्यथा बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?'' बुद्धगुप्त ने कहा— ''तो इसमें बुरा क्या हुआ? इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी।'' चम्पा कहती है— ''मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता, वही अच्छा लगता था। खुले आकाश के नीचे थके-हारे, पालों से शरीर लपेटकर पड़े रहते थे।'' बुद्धगुप्त बोला— ''तो चम्पा अब हम अच्छी प्रकार से रह सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री, मेरी सर्वस्व हो।'' बुद्धगुप्त चम्पा से प्रणय-निवेदन करता है लेकिन अपने पिता का स्मरण करके क्रोध में आकर चम्पा उसे अस्वीकार कर देती है। बुद्धगुप्त पुन: उससे प्रणय-निवेदन करता है। चम्पा प्रतिशोध का कृपाण निकालकर समुद्र में फेंक देती है। बुद्धगुप्त कहता है कि आज से मैं समझूँ कि मुझे क्षमा कर दिया गया। चम्पा कहती है— ''कदापि नहीं बुद्धगुप्त, जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'' चम्पा रो पड़ी। बुद्धगुप्त कहता है— ''जीवन की इस पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा। चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है मेरे जीवन की धुँधली सँध्या उससे आलोकमय हो जाए।'' द्वीप-स्तम्भ बना। फूलों से सजी वन-बालाएँ नृत्य कर रही थीं। बाँसुरी व ढोल आदि बज रहे थे। चम्पा ने सहचरी जया से पूछा— ''यह क्या है जया?'' जया हँसकर कहती है— ''आज रानी का ब्याह है न?'' चम्पा को विश्वास नहीं होता है, वह उसे झकझोरकर पुन: पूछती है— ''क्या यह सच है?'' इस पर बुद्धगुप्त कहता है— ''तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा।'' चम्पा प्रतिप्रश्न करती है— ''मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने सब प्रतिशोध लेना चाहा।'' बुद्धगुप्त कहता है— ''मैं तुम्हारे पिता का हत्यारा नहीं हूँ चम्पा, वह एक-दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।'' अन्त में बुद्धगुप्त चम्पा से कहता है— ''मुझे अपने देश, भारतवर्ष की याद बहुत सताती है, मै वहाँ लौटना चाहता हूँ, चलोगी चम्पा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी-सी जन्मभूमि के अंक में?'' चैतन्य होकर (सँभलकर) चम्पा कहती है— ''मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, वैभवों का सुख भोगने के लिए मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दु:ख में सहानुभूति और सेवा के लिए।'' महानाविक स्वदेश लौट गया। चम्पा उसी द्वीप पर रहकर आजीवन 'द्वीप-स्तम्भ' पर दीप जलाती रही। वह भी जलती रही जैसे आकाशदीप।

2. 'आकाशदीप' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी 'आकाशदीप' का शीर्षक सारगर्भित व आकर्षक है। कहानी की मुख्य पात्र चम्पा आजीवन चम्पा-दीप में द्वीप-स्तम्भ पर दीप जलाती रही और इसके माध्यम से मानो स्वयं आकाशदीप के समान जलते हुए अपूर्व त्याग का प्रकाश फैलाकर विश्व का मार्ग दर्शन करती रही। कर्त्तव्य व प्रेम के संघर्ष के परिणामस्वरूप चम्पा की इस त्याग-भावना को दृष्टिगत रखते हुए ही इस कहानी का शीर्षक आकाशदीप रखा गया है। अत: स्पष्ट है कि कहानी का शीर्षक मूलभाव को स्वयं में समाहित किए हुए, आकर्षक, रोचक व सार्थक है।

3. 'आकाशदीप (कहानी में जयशंकर प्रसाद का क्या उद्देश्य रहा है? स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'आकाशदीप' कहानी में जयशंकर प्रसाद का उद्देश्य– प्रस्तुत कहानी 'आकाशदीप' में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रभाव का अतीतकाल में सुदूरपूर्वक विस्तार दिखाना ही मुख्य उद्देश्य है। साथ ही प्रेम और कर्त्तव्य के सुन्दर संघर्ष में अन्तत: प्रेम पर कर्त्तव्य की विजय की घोषणा के द्वारा कर्त्तव्यनिष्ठा की प्रेरणा देना भी इस कहानी का एक महान् उद्देश्य रहा है।

निष्कर्ष रूप में यही कह सकते हैं कि प्रसाद जी ने 'आकाशदीप' कहानी में अतिसाधारण एवं नगण्य मानवों (चम्पा और बुद्धगुप्त) में भी भावना और मानवता का उत्कृष्ट विकास दिखाकर मानव-जीवन की तात्विक एवं संवेदनशील एकता का उद्घोष किया है और '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' की भावना का प्रचार एवं प्रसार करके उल्लेखनीय कार्य किया है।

4. पात्र और चरित्र चित्रण की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– प्रसाद जी की पात्र-योजना बड़ी उदात्त होती है। उनके अधिकांश पात्रों का चयन भारत के उस प्राचीन गौरवमय अतीत से है, जिस पर वे आधुनिक समाज की नींव रखना चाहते हैं। प्रस्तुत कहानी में चम्पा और बुद्धगुप्त दो ही मुख्य पात्र हैं। अन्य सभी पात्र मात्र कथा-प्रसंग की समुचित पूर्ति के लिए ही सम्मिलित किए गए हैं। चम्पा के माध्यम से कहानीकार ने अन्तर्द्वन्द्व, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं उत्सर्ग की उदात्त भावनाओं को चित्रित किया है। चम्पा के चरित्र का ताना-बाना मानवीयता के चतुर्दिक उच्च आदर्श के धागों से बुना हुआ है। उसके आन्तरिक द्वन्द्व का सजीव चित्रण कर कहानीकार ने कर्तव्यनिष्ठा एवं उत्सर्ग की उदात्त भावनाओं को उजागर किया है। बुद्धगुप्त भी वीर, साहसी, सौन्दर्य का उपासक, कर्मठ, संयमी एवं आदर्श प्रेमी है। प्रसाद जी की इस कहानी के पात्र भी स्वाभाविक, सजीव तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी एक सफल कहानी है।

5. कथोपकथन की दृष्टि से 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– इस कहानी का कथोपकथन संक्षिप्त, नाटकीय एवं अर्थ-गाम्भीर्य से परिपूर्ण होने के कारण सजीव, मार्मिक एवं प्रभावशाली है। कहानी के पात्र स्वयं के संवादों द्वारा अपना परिचय प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद जी श्रेष्ठ नाटककार हैं, इसी कारण प्रस्तुत कहानी की संवाद-योजना नाटकीय है। इस कहानी के संवाद संक्षिप्त, सारगर्भित, कथानक को गति देने वाले, वातावरण की सृष्टि में सहायक तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने वाले हैं। इस कहानी के संवाद सार्थक, मार्मिक और प्रभावशाली हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'बन्दी।'

'क्या है? सोने दो।'

'मुक्त होना चाहते हो।'

'अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ी शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।'

'आँधी की संभावना है। यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।

'तो क्या तुम भी बन्दी हो?'

6. 'आकाशदीप' कहानी की प्रमुख नारी-पात्र चम्पा का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– हिन्दी कथा-साहित्य की कुछ अमर कृतियों में से जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी भी एक है। इस कहानी की नायिका चम्पा ही कहानी की मुख्य नारी पात्रा है। वह अपने वीर और बलिदानी पिता की एकमात्र सन्तान है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) सुन्दर बालिका– चम्पा अति सुन्दर बालिका है। वह सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। यह उसके अतीव सौन्दर्य का ही प्रभाव था कि बुद्धगुप्त जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, घुटनों के बल चम्पा के सामने; प्रणय-निवेदन करता, छलछलाई आँखों से बैठा था।

(ii) निडर, स्वाभिमानी और साहसी– चम्पा निडर, स्वाभिमानी और साहसी है। उनकी निडरता का पता तब चलता है जब मणिभद्र उसके समक्ष घृणित प्रस्ताव रखता है और वह उसके आश्रय में रहते हुए भी उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। उसके स्वाभिमानी होने का प्रमाण उसके बन्दी बनाए जाने पर मिलता है। उसे बन्दी होना स्वीकार है, लेकिन घृणित प्रस्ताव स्वीकार नहीं। उसके साहस का परिचय अनजाने द्वीप पर सबसे पहले उतरने पर मिलता है।

(iv) आदर्श प्रेमिका– चम्पा के हृदय में प्रेम का अथाह सागर हिलोरें लेता है, परन्तु वह इस प्रेम-सागर की लहरों को नियन्त्रण में रखना जानती है। बुद्धगुप्त जब भी उसके पास आता है, वह उस पर न्योछावर हो जाती है। उसके प्रेम का वर्णन स्वयं कहानीकार ने इन शब्दों में किया है- **'उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का।''**

(v) आदर्श सन्तान– चम्पा अपने माता-पिता की आदर्श सन्तान है। उसे अपनी माता के द्वारा पिता के पथ-प्रदर्शन के प्रतीक रूप में आकाशदीप जलाना सदैव याद रहता है। उसके पिता की मृत्यु का कारण एक जलदस्यु था, यह वह कभी नहीं भूल पाती। वह बुद्धगुप्त से कहती है कि ये आकाशदीप मेरी माँ की पुण्य स्मृति हैं। वह बुद्धगुप्त को जलदस्यु से सम्बोधित कर अपने सामने से हट जाने के लिए भी कहती है।

(vi) **अंतर्द्वन्द्व–** चम्पा का पूरा चरित्र अन्तर्द्वन्द्व की भावना से भरा हुआ है। द्वीपवासियों के प्रति उसका प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम का सहज अन्तर्द्वन्द्व उसको घेरे रहता है। एक ओर वह कर्त्तव्य-निर्वाह के लिए अपने प्रेम को न्योछावर कर देती है तो दूसरी ओर व्यक्तिगत प्रेम के गौरव की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग भी कर देती है। उसका अन्तर्द्वन्द्व इन शब्दों में व्यक्त हुआ है- ''**बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्जवलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। ..... और मुझे, छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।**''

इस प्रकार चम्पा के चरित्र का गौरवपूर्ण और सजीव चित्रण करते हुए प्रसाद जी ने उसको द्वीपवासियों के प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व में घिरा दिखाया है तथा व्यक्तिगत प्रेम के उत्सर्ग को चित्रित कर चम्पा के चरित्र को गरिमामय अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(vii) **धैर्यशालिनी–** चम्पा के जीवन में अनेक बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष आते हैं, परन्तु वह विचलित नहीं होती और धैर्यपूर्वक उनका सामना करती है। वह अनाथ है। माता की मृत्यु के बाद पिता के साथ जल-पोत पर रहती है। पिता की मृत्यु के बाद बन्दिनी हो जाती है। इसके बाद भी वह मुक्ति के लिए संघर्ष करती है। वह अपना धैर्य कभी नहीं छोड़ती।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चम्पा का चरित्र 'आकाशदीप' कहानी का प्राण है। वह एक आदर्श नायिका है, एक आदर्श प्रेमिका है और साथ ही प्रसाद जी के अन्य नारी पात्रों के समान वन्दनीय है। स्वयं प्रसाद जी लिखते हैं, ''**चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन तक, द्वीप निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि सदृश पूजा करते थे।**''

7. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर बुद्धगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– श्री जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा रचित कहानी 'आकाशदीप' की मुख्य पात्रा चम्पा ही है। कहानी के अन्य पात्रों का चित्रण चम्पा के चरित्र की विशेषताओं को ही स्पष्ट करने के लिए हुआ है। ऐसे ही एक पात्र के रूप में बुद्धगुप्त भी है। इस कहानी में बुद्धगुप्त के चरित्र की विशेषताएँ निम्नवत् दर्शाई गई है-

(i) **साहसी–** बुद्धगुप्त ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय कुमार है। साहस उसमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। नौका के स्वामित्व को लेकर नायक और बुद्धगुप्त में द्वन्द्वयुद्ध होता है। उस समय बुद्धगुप्त अपने साहस का परिचय देता है और द्वन्द्वयुद्ध में उसे हरा देता है।

(ii) **मानवतावादी–** बुद्धगुप्त मानवतावादी है। उसमें मानवीयता के गुण विद्यमान हैं। इसी कारण चम्पा के प्रति उसके मन में दया की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो बाद में प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। चम्पा के सानिध्य से उसकी दस्युगत मानसिकता और कठोरता समाप्त होकर मानवता और मृदुलता में परिवर्तित हो जाती है।

(iii) **संवेदनशील और प्रेमी व्यक्ति–** बुद्धगुप्त एक संवेदनशील व्यक्ति है। जब चम्पा कहती है कि उसके पिता की मृत्यु एक जलदस्यु के हाथों हुई थी तब वह स्पष्ट रूप से कहता है कि, ''**मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।**'' चम्पा के प्रति उसका प्रेम संवेदनशीलता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। वह चम्पा से कहता है, ''**इतना महत्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ। मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्तमणि की तरह द्रवित हुआ।**''

(iv) **वीर–** बुद्धगुप्त एक वीर युवक है। बन्धन मुक्त होने पर जब उससे पूछा जाता है कि तुम्हें किसने बन्धमुक्त किया तो वह कृपाण दिखाकर नायक को बताता है 'इसने'। नायक और बुद्धगुप्त के द्वन्द्वयुद्ध में विजयश्री बुद्धगुप्त को मिलती है। चम्पा भी उसकी वीरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। स्वयं प्रसाद जी कहते हैं, ''**चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया।**''

(v) **भारत के प्रति प्रेम–** बुद्धगुप्त भारतभूमि के ही एक स्थल ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय कुमार है। भारतभूमि के प्रति उसके मन में अगाध स्नेह है। वह चम्पा से कहता है, ''**स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है।**'' चम्पा के अस्वीकार कर देने पर वह स्वयं भारत लौट आता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इस कहानी का नायक होते हुए भी बुद्धगुप्त चम्पा के चरित्र की विशेषता को उजागर करने वाला मात्र एक सहायक पात्र है, तथापि उसके चरित्र की उपर्युक्त विशेषताएँ उसकी एक अलग छवि प्रस्तुत करती हैं।

8. 'आकाशदीप' कहानी में सजीव ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि किस प्रकार की गई है? भाषा-शैली के आधार पर बताइए।

उ०– प्रसाद जी ने 'आकाशदीप' कहानी के वातावरण-निर्माण में इतिहास और कल्पना का सहारा लेकर रचना को सजीव बना दिया है। इसको जीवन्त स्वरूप देने में उनकी कवित्वपूर्ण भाषा और नाटकीय शैली का अपूर्व सहयोग रहा है। इससे ऐतिहासिक वातावरण साकार हो उठा है। उन्होंने तत्कालीन वातावरण के अनुकूल ही संस्कृतबहुल शब्दावली का प्रयोग किया है। काव्यात्मक भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''**जाह्नवी के तट पर। चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी**

मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे।''.....

''मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ।''

प्रस्तुत कहानी में प्रसाद जी की नाटकीय शैली ने वातावरण को स्वाभाविक और सरल बना दिया है; जैसे-

'बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?'

'क्षीरनिधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊँ?'

'हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?'

'हाँ, वह कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो, बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?'

'तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पारानी!'

'मुझे इस बन्दीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे।'

इस प्रकार प्रसाद जी ने कहानी में देश-काल के अनुकूल भाषा-शैली का प्रयोग करके ऐतिहासिक वातावरण को सहज ही साकार कर दिया है।

9. कहानी के तत्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०- जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' कहानी ऐतिहासिक धरातल पर आधारित है। प्रसाद जी की कहानी-साहित्य भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से अद्वितीय है। इस कहानी की तात्विक समीक्षा निम्नवत् है-

(i) शीर्षक- 'आकाशदीप' कहानी का शीर्षक संक्षिप्त, सरल और कौतूहलवर्द्धक है। 'आकाशदीप' शब्द में ही कहानी का कथानक समाया हुआ है। यह वस्तु-व्यंजक होने के साथ-साथ सांकेतिक भी है। इसका सीधा सम्बन्ध कहानी की मूल चेतना से है और इसमें कहानी का केन्द्रबिन्दु स्वयं सिमट आया है। कहानी की सभी मूलघटनाओं का केन्द्र चम्पा द्वारा प्रज्जवलित 'आकाशदीप' ही है। कथा के अनेक वैशिष्ट्यों को अपने में समाविष्ट करने के कारण शीर्षक उपयुक्त एवं समीचीन है।

(ii) कथानक- जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'आकाशदीप' शीर्षक कहानी का कथानक चम्पा और बुद्धगुप्त के जीवन और कार्य के इतिवृत्त पर आधारित है। चम्पा मणिभद्र के दिवंगत प्रहरी की क्षत्रिय कन्या है और बुद्धगुप्त ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय कुमार। दोनों ही जलपोत पर बन्दी के रूप में रहते हैं। कहानीकार ने इस कहानी के कथानक को क्रमबद्धता देने के लिए एक, दो, तीन, चार जैसे उपविभागों में विभाजित किया है।

कहानी का आरम्भ चम्पा और बुद्धगुप्त; दोनों बन्दियों; के मुक्ति-सम्बन्धी संवादों से होता है। दूसरे उपविभाग में युद्ध में विजयी होकर बुद्धगुप्त चम्पा पर अपनी वीरता का प्रभाव छोड़ता है। तीसरे उपविभाग में चम्पा बुद्धगुप्त को अपनी व्यथा-कथा सुनाती है, जिससे यह पता चलता है कि वह वासना-लिप्त वणिक मणिभद्र के यहाँ बन्दी जीवन व्यतीत कर रही थी। इसी कथा-व्यापार में बुद्धगुप्त नये द्वीप पर पहुँचता है और उसका नाम चम्पा द्वीप रखता है। चम्पा के सानिध्य में आने से जलदस्यु बुद्धगुप्त के हृदय में प्रेम और संवेदना का अविर्भाव होता है। धीरे-धीरे पाँच वर्ष बीत जाते हैं। चम्पा आकाशदीप जलाकर द्वीपवासी जनता का मार्ग आलोकित करती है। वह अपनी माँ द्वारा जलाए गए आकाश-दीपक की परम्परा का निर्वाह करती है। चम्पा और बुद्धगुप्त के परस्पर सान्निध्य से प्रेम के आविर्भाव के साथ-साथ बुद्धगुप्त की दस्युगत नास्तिकता समाप्त होकर मानवता और मृदुलता के रूप में परिवर्तित होती है। उसका हृदय और मस्तिष्क दोनों ही परिवर्तित होकर संवेदनशील बन जाते हैं। बुद्धगुप्त के यह कहने पर कि वह उसके पिता का हत्यारा नहीं, चम्पा प्रेम और प्रतिशोध के अन्तर्द्वन्द्व से जन्मे संशय में बँधे जाती है। अनास्तिक और अनास्थावादी बुद्धगुप्त द्रवित होकर चम्पा के साथ जीवनयापन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होता है परन्तु प्रेम, आशा और उत्साह का संचार होते हुए भी चम्पा उस द्वीप के मूल निवासियों को छोड़कर महानाविक के साथ भारत नहीं लौटती है। चम्पा आजीवन उस दीपस्तम्भ में आलोक जलाती रही और एक दिन काल कवलित हो गई। इस कहानी का कथानक प्रतीकात्मक होते हुए भी सेवा, त्याग और प्रेम की भावना से कथानक को गतिशील बनाता है।

(iii) पात्र और चरित्र-चित्रण- प्रसाद जी का पात्र-योजना बड़ी उदात्त होती है। उनके अधिकांश पात्रों का चयन भारत के उस प्राचीन गौरवमय अतीत से है, जिस पर वे आधुनिक समाज की नींव रखना चाहते हैं। प्रस्तुत कहानी में चम्पा और बुद्धगुप्त दो ही मुख्य पात्र हैं। अन्य सभी पात्र मात्र कथा-प्रसंग की समुचित पूर्ति के लिए ही सम्मिलित किए गए हैं। चम्पा के माध्यम से कहानीकार ने अन्तर्द्वन्द्व, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं उत्सर्ग की उदात्त भावनाओं को चित्रित किया है। चम्पा के चरित्र का ताना-बाना मानवीयता के चतुर्दिक उच्च आदर्श के धागों से बना हुआ है। उसके आन्तरिक द्वन्द्व का सजीव चित्रण कर कहानीकार ने कर्त्तव्यनिष्ठा एवं उत्सर्ग की उदात्त भावनाओं को उजागर किया है। बुद्धगुप्त भी वीर, साहसी,सौन्दर्य का उपासक, कर्मठ, संयमी एवं आदर्श प्रेमी है। प्रसाद जी की इस कहानी के पात्र भी स्वाभाविक, सजीव तथा मनोवैज्ञानिक

आधार पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी एक सफल कहानी है।

(iv) कथोपकथन या संवाद– इस कहानी का कथोपकथन संक्षिप्त, नाटकीय एवं अर्थ- गाम्भीर्य से परिपूर्ण होने के कारण सजीव, मार्मिक एवं प्रभावशाली है। कहानी के पात्र स्वयं के संवादों द्वारा अपना परिचय प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद जी श्रेष्ठ नाटककार हैं, इसी कारण प्रस्तुत कहानी की संवाद-योजना नाटकीय है। इस कहानी के संवाद संक्षिप्त, सारगर्भित, कथानक को गति देने वाले, वातावरण की सृष्टि में सहायक तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने वाले हैं। इस कहानी के संवाद सार्थक, मार्मिक और प्रभावशाली हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'बन्दी।'

'क्या है? सोने दो।'

'मुक्त होना चाहते हो।'

'अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ी शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।'

'आँधी की संभावना है। यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।

'तो क्या तुम भी बन्दी हो?'

(v) भाषा-शैली– प्रसाद जी की भाषा कलात्मक, संस्कृतनिष्ठ और परिष्कृत है। प्रस्तुत कहानी की भाषा संस्कृत प्रधान है और उसमें तत्सम शब्दों की बहुलता है। प्रसाद जी की शब्दावली समृद्ध और व्यापक तथा शैली अलंकृत है। कहानी की भाषा-शैली कथावस्तु की गरिमा और पात्रों की भाव-व्यंजना के अनुकूल है। भाषा सरस और मार्मिक है। मोहक अलंकार-विधान और तत्समप्रधान ओजमयी भाषा के कारण 'आकाशदीप' को प्रसाद जी की प्रतिनिधि कहानी कहा जा सकता है। इस कहानी में नाटकीय शैली तो प्रधान है ही, चित्रात्मक, वर्णनात्मक और भावात्मक शैलियों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

चम्पा और बुद्धगुप्त के परस्पर सानिध्य में सौन्दर्यजन्य प्रेम के आविर्भाव के साथ-साथ बुद्धगुप्त की दस्युगत नास्तिकता समाप्त होकर मानवता ओर मृदुलता के रूप में परिवर्तित होती है।

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चन्द्र की उज्जवल विजय पर अन्तरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

(vi) देश-काल व वातावरण– प्रसाद जी ने अपनी कहानियों में देश-काल और वातावरण का यथोचित निर्वाह किया है। 'आकाशदीप' कहानी में वातावरण ऐतिहासिक तथा पात्र काल्पनिक हैं। द्वीप के आंचलिक वातावरण का सुन्दर चित्रण है। भाषा तथा घटनाएँ देश-काल के सर्वथा अनुरूप हैं। वातावरण को सजीव करने के लिए चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। दृश्य-वर्णन के साकार रूप का यह उदाहरण द्रष्टव्य है-

समुद्र में हिलोरें उठने लगी। दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गए।

वातावरण के निर्माण में प्रसाद जी कवित्वमयी, अलंकृत और साहित्यिक शैली से काम लेते हैं तथा प्रकृति के दृश्यों का वर्णन बड़ी कुशलता से करते हैं। अपनी बहुमुखी कल्पना के द्वारा प्रसाद जी सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखाओं को पाठकों के सामने उपस्थित कर देते हैं। इस प्रकार यह कहानी देश-काल और वातावरण की दृष्टि से एक सफल कहानी है।

(vii) उद्देश्य– प्रसाद जी का साहित्य आदर्शवादी हैं। प्रस्तुत कहानी में भावना की अपेक्षा कर्त्तव्यनिष्ठा का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। चम्पा एक आदर्श प्रेमिका है और इन सबसे ऊपर है उसका उत्सर्ग भाव। वह अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई अपने व्यक्तिगत प्रेम और जीवन को समर्पित कर देती है। उसका चरित्र एक आदर्श उदात्त नारी का चरित्र है। कहानीकार का उद्देश्य उसके चरित्र के माध्यम से समाज में प्रेम का आदर्श स्वरूप उपस्थित करना है, जिसमें कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है।

इस प्रकार 'आकाशदीप' कहानी की कथावस्तु जीवन्त तथा मार्मिक है। चम्पा प्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा और राष्ट्रभक्ति के प्रति सजग है। वह अपने प्रेम का बलिदान करती है तथा प्रेम के गौरव की रक्षा के लिए स्वयं का आत्मोत्सर्ग भी करती है। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कहानी; कहानी-कला की कसौटी पर खरी उतरती है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

3

प्रायश्चित
(भगवतीचरण वर्मा)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—194 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. भगवतीचरण वर्मा का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– सुप्रसिद्ध कथाकार भगवतीचरण वर्मा का जन्म उन्नाव जिले के शफीपुर नामक ग्राम में 30 अगस्त, सन् 1903 ई० को हुआ था। शिष्ट एवं व्यंग्यात्मक कथाकारों में भगवतीचरण वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होंने स्नातक तथा एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। साहित्य के क्षेत्र में इनका प्रवेश छायावादी कवि के रूप में हुआ। प्रगतिवादी कवियों में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने हिन्दी-साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। उपन्यासकार के रूप में भी इन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की। यथार्थता के धरातल पर इन्होंने, कृत्रिम शान-शौकत और समाज में व्याप्त पाखण्डों, झूठे दिखावे आदि पर तीखें व्यंग्य किए हैं।

'सिनेमा जगत' तथा 'आकाशवाणी' से भी ये संबंधित रहे हैं। इन्होंने इन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने जीवन का अधिकांश समय लखनऊ में व्यतीत किया। वहीं इन्होंने स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सृजन किया। 5 अक्तूबर, सन् 1981 ई० में यह महान् कथाकार हमेशा के लिए चिर-निद्रा में लीन हो गया।

कृतियाँ– सुप्रसिद्ध कथाकार भगवतीचरण वर्मा जी की प्रसिद्ध कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

कहानी-संग्रह– दो बाँके, राख और चिनगारी, मोर्चाबन्दी, इंस्टालमेण्ट।

कहानियाँ– विक्टोरिया क्रॉस, वसीयत, प्रायश्चित्त, मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, कायरता आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

उपन्यास– भूले-बिसरे चित्र, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, चित्ररेखा, सामर्थ्य और सीमा, सबहिं नचावत राम गुसाईं, तीन वर्ष, प्रश्न और मरीचिका, पतन, सीधी-सच्ची बातें।

रेखाचित्र– रेखाचित्र के अन्तर्गत— 'वे सात और हम' प्रमुख हैं।

2. भगवतीचरण वर्मा के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– वर्मा जी की कहानी-कला की सजीवता पाठक को मुग्ध कर देती है। सरलता, स्पष्टता, सहजता एवं व्यंग्यात्मक अभिव्यंजना इनकी कहानियों की अन्य प्रमुख विशेषताएँ हैं।

वर्मा जी ने अपनी कहानियों में अधिकतर सामाजिक परिवेशों तथा पारिवारिक प्रसंगों को कथानक के रूप में ग्रहण किया है। कथानक लघु, किन्तु कलापूर्ण हैं। सामान्य घटनाओं का मार्मिक एवं चुटीला प्रस्तुतीकरण इनकी कहानी-कला की एक निजी विशेषता हैं। कहानियों के शीर्षक आकर्षक एवं कुतूहलपूर्ण हैं।

इन्होंने मुख्यत: चरित्र-प्रधान, समस्या-प्रधान तथा विचार-प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। कहानियों के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों से चुने गए हैं। पात्रों के मनोगत भावों को स्पष्ट करने तथा उनकी मनोग्रन्थियों को खोलने में इनका कौशल देखते ही बनता है। वर्मा जी ने कहानियों में कथोपकथनों की योजना मनोरंजक ढंग से की है। कथोपकथन नाटकीय, संक्षिप्त एवं सार्थक है।

इनकी भाषा-शैली सरल, सहज एवं व्यावहारिक है। शैली में व्यंग्य के साथ-साथ प्रवाह भी दर्शनीय है। कहानियों की भाषा पात्रों एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलती है। इनकी अधिकतर कहानियों में शिष्ट हास्य एवं परिमार्जित व्यंग्य देखने को मिलता है। परिस्थिति एवं प्रसंगानुसार रोचक एवं प्रभावशाली वातावरण के चित्रण में ये सिद्धहस्त थे। इनकी कहानियाँ पाठकों के समक्ष जीवन की विकृतियों और विसंगतियों को उद्घाटित करते हुए यथार्थता का बोध कराती हैं।

साहित्य-क्षेत्र में अपने अद्वितीय योगदान के कारण भगवतीचरण वर्मा चिर स्मरणीय रहेंगे।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

1. 'प्रायश्चित' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– रामू की बहू की अवस्था केवल चौदह वर्ष है। वह अभी दो महीने पहले ही मायके से ससुराल आई है। सास ने चाभियाँ उसे सौंप दीं। पति की प्यारी, सास की दुलारी वह अपरिपक्वता के कारण सजग नहीं रह पाती थी। कभी-कभी उससे भण्डार-घर खुला रह जाता था, तो कभी वह भण्डार-घर में बैठे-बैठे ही सो जाती थी। उसकी इस अपरिपक्वता का लाभ उठाती थी कबरी बिल्ली। कबरी बिल्ली से परेशान रामू की बहू के लिए खाना-पीना भी दुश्वार हो गया था लेकिन कबरी बिल्ली पूरे घर में यदि किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से। वह रामू की बहू की असावधानी का लाभ उठाकर प्रतिदिन दूध, घी, मक्खन आदि सब चट कर जाती थी। इस कारण रामू की बहू को सास की मीठी-मीठी झिड़कियाँ सुनने को मिलती थीं और रामू को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

रामू की बहू ने निश्चय कर लिया कि या तो घर में वह रहेगी या कबरी बिल्ली। बिल्ली पकड़ने के लिए कटघरा मँगाया गया। उसमें दूध, मलाई, चूहे तथा बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध व्यंजन रखे गए लेकिन बिल्ली सतर्क रही, पकड़ में नहीं आई।
एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई और कटोरा भरकर बहुत ऊँचे ताक पर रख दिया, जहाँ बिल्ली न पहुँच पाए और स्वंय जाकर पान लगाने लगी। इस बीच बिल्ली ने वहाँ पहुँचकर ऊपर देखा, सूँघा और उछलकर कटोरा गिरा दिया। रामू की बहू ने देखा कि कटोरा टुकड़े-टुकड़े हो गया है और बिल्ली खीर खा रही है। उसे देखते ही बिल्ली भाग गई। रामू की बहू ने उसकी हत्या करने के लिए कमर कस ली। रात भर उसे नींद भी नहीं आई। सुबह उसने देखा कि बिल्ली देहरी पर आकर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है। उसने एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे पर रखा और पाटा लेकर लौटी। जैसे ही बिल्ली आकर दूध पीने लगी, रामू की बहू ने पाटा उस पर फेंक दिया। बिल्ली एकदम उलट गयी। महरी दौड़ी हुई आई, बोली— ''अरे राम, बिल्ली तो मर गई'' सासू आई, फिर गाँव की औरतें। पूरे गाँव में बिल्ली की हत्या की खबर फैल गई। पण्डित परमसुख को बुलाया गया। उन्होंने कहा— ''बिल्ली की हत्या ऐसा-वैसा पाप नहीं है रामू की माँ! बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है।''
प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने कहा कि कम से कम इक्कीस तोले सोने की बिल्ली बनवाकर दान कर दो, आगे आपकी श्रद्धा। बहुत-विचार विमर्श के बाद ग्यारह तोले की बिल्ली बनवाकर दान करना तय किया गया। पूजा की अन्य सामग्री में पण्डित जी ने दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ, पाँच मन चना, चार पंसेरी घी और मन-भर नमक बताया।
पण्डित जी ने कहा— ''ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ— दो घंटे में बनवाकर लौटूँगा, तब तक पूजा का प्रबन्ध कर रखो, और देखो पूजा के लिए.....''
पण्डित जी की बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुसी और सभी चौक गए। महरी ने बताया ''माँ जी, बिल्ली तो उठकर भाग गई।''

2. 'प्रायश्चित' कहानी के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'प्रायश्चित्त' पूरी कथा को स्वयं में समाहित किए हुए है। कहानी के सभी पात्र शीर्षक के इर्द-गिर्द मँडराते रहते हैं। कोई प्रायश्चित्त करना चाहता है, तो कोई प्रायश्चित्त करवाना चाहता है। शेष पात्र 'प्रायश्चित्त' के दर्शक, सहायक व प्रेरक के रूप में दिखाई देते हैं। शीर्षक आकर्षक, सारगर्भित, संक्षिप्त एवं रोचक है। अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'प्रायश्चित्त' सर्वदा उपयुक्त एवं सार्थक है।

3. 'प्रायश्चित' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'प्रायश्चित' कहानी का उद्देश्य–

वर्मा जी की 'प्रायश्चित' कहानी के उद्देश्य का अनुमान पाठक कथा के मध्य में ही कर लेता है। कहानी में वर्माजी ने तथाकथित सुसंस्कृत एवं शिक्षित वर्ग के प्रबल अर्थलोभ का यथार्थ चित्र अनूठी व्यंग्य-शैली में अंकित किया है। कहानीकार ने ''**सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति**'' इस प्राचीन उक्ति को कहानी में साकार किया है। व्यंग्य के माध्यम से अन्ध-विश्वास और रूढ़िवादिता पर कुठाराघात करना कहानीकार का मुख्य उद्देश्य रहा है। वह यह भी सन्देश देता है कि हमें अपने बीच रहते ऐसे धन-लोलुप लोगों की स्वार्थपूर्ति का साधन स्वयं तो बनना ही नहीं चाहिए, बल्कि उनके क्रिया-कलापों का भण्डाफोड़ करके समाज को जागरूक बनाने में भी अपनी भूमिका निभानी चाहिए।
इस प्रकार 'प्रायश्चित' एक मनोवैज्ञानिक तथा यथार्थवादी कथानक पर आधारित प्रभावशाली मनोरंजक कहानी है, जो कि कहानी-कला के तत्वों की कसौटी पर पूर्णतया खरी उतरती है।

4. कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'प्रायश्चित' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– कथानक या कथावस्तु– इस कहानी का कथानक मध्यमवर्गीय ग्रामीण समाज से लिया गया है तथा पुरोहितों में धर्म के नाम पर धन-हरण के प्रति बढ़ते हुए मोह को कहानी का आधार बनाया गया है। कहानी का प्रारंभ घर में नयी बहू के आगमन और बिल्ली द्वारा दूध के बने व्यंजनों के येन-केन-प्रकारेण चट कर जाने से है। बिल्ली के आए दिन के इस कार्य से नयी बहू परेशान हो जाती है और अन्ततः वह बिल्ली को मार देने का निर्णय करती है तथा उस पर पाटा चला देती हैं पण्डित परमसुख बुलाए जाते हैं और वह बिल्ली की हत्या का जो प्रायश्चित बताते हैं, वह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तो कई लाख का बैठेगा। परिवारीजन इस बारे में विचार करते ही रहते हैं कि पता चलता है कि बिल्ली भाग गई। इस कहानी का कथानक रोचक, सरल, मौलिक, स्वाभाविक, सजीव और प्रभावशाली है। इसमें प्रारंभ से अन्त तक कौतूहल बना रहता है। कहानी में कहानीकार ने तथाकथिक पुरोहित वर्ग और उनके पौरोहित्य कर्म की पोल खोलकर रख दी है और सामाजिक रूढ़ियों और धर्मभीरूता के नाम पर शोषण की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त किया है। कहानी का अन्त आकर्षक है जो पाठक पर अपना स्पष्ट प्रभाव छोड़ता है।
पात्र और चरित्र-चित्रण– यह कहानी एक मध्यमवर्गीय हिन्दू ग्रामीण-धर्मभीरु परिवार से सम्बन्धित है। कहानी में पात्रों की संख्या कम है। मुख्य पात्र रामू की बहू, कबरी बिल्ली, पण्डित परमसुख और रामू की माँ हैं। अन्य सभी पात्र-मिसरानी, छन्नू की दादी, महरी, किसनू की माँ आदि गौण पात्र हैं, जो केवल कथावस्तु को विस्तार देने के उद्देश्य से ही प्रयुक्त किए गए हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में सांकेतिक प्रणाली को अपनाते हुए उनका मूल्यांकन पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है। पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

5. भाषा-शैली की दृष्टि से 'प्रायश्चित' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– भाषा-शैली– इस कहानी की भाषा आम बोल-चाल की, सरल, सरस और स्वाभाविक है। लोकोक्तियों और मुहावरों का सटीक प्रयोग किया गया है। शैली पात्रों के अनुकूल है और उनके भावों को प्रकट करने वाली है, जिसमें व्यंग्यात्मकता का पुट सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

पण्डित परमसुख मुस्कराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा-''बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाए? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए, लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तोलभर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी। हाँ, कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा।''

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा-''अरे बाप रे, इक्कीस तोला सोना! पण्डित जी यह तो बहुत है, तोलाभर की बिल्ली से काम न निकलेगा?''

पण्डित परमसुख हँस पड़े-''रामू की माँ! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपया का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है, इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!''

वर्मा जी सफल कथाशिल्पी हैं और उनकी भाषा-शैली भावों तथा पात्रों के अनुकूल है।

6. देशकाल और वातावरण की दृष्टि से 'प्रायश्चित' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– देश-काल और वातावरण– प्रायश्चित कहानी का आधार ग्रामीण-सम्भ्रान्त एवं सम्पन्न परिवार है। 'प्रायश्चित' एक व्यंग्यमूलक कहानी है, जिसमें सामाजिक पात्रों की स्वार्थबद्धता पर लेखक ने विनोदपूर्ण एवं चुटीला व्यंग्य किया है तथा वातावरण को प्राणवान एवं प्रभावशाली बनाने के लिए विशेष सजगता का परिचय दिया है। रामू के घर का दृश्य ही पूरे घटनाक्रम के लिए पर्याप्त है। समाज में भ्रष्टाचार, पाखण्डवाद, रूढ़िवाद और धर्मभीरुता का लेखक ने 'व्यंग्यपूर्ण' वर्णन किया है। कहानी में आधुनिक समाज के वातावरण की सजीव दृष्टि मिलती है। आज के युग में व्यक्ति अत्यन्त स्वार्थी होता जा रहा हैं बेईमानी और भ्रष्टाचार चारों ओर व्याप्त हैं। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में देश-काल और वातावरण का सफलता के साथ चित्रण हुआ है।

7. 'प्रायश्चित' कहानी के एकमात्र पुरुष पात्र पण्डित परमसुख के चरित्र और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'प्रायश्चित' कहानी भगवतीचरण वर्मा की एक श्रेष्ठ व्यंग्यप्रधान सामाजिक रचना है, जिसमें मानव के स्वभाव का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। पण्डित परमसुख कहानी के प्रमुख पात्र हैं। कहानी के प्रारंभ में बिल्ली की मृत्यु होने के बाद वे सम्पूर्ण कहानी पर छाए हुए हैं। उनके कर्मकाण्ड और पाखण्ड के द्वारा वर्मा जी ने उनके चरित्र को उजागर किया है। कहानी के आधार पर उनकी चरित्रगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) कर्मकाण्डी ब्राह्मण– पण्डित परमसुख एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण हैं। वह कर्मकाण्ड के स्थान पर प्रकाण्ड पाखण्ड में अधिक विश्वास रखते हैं। नित्य पूजा पाठ करना उनका धर्म है। लोगों में उनके प्रति आस्था भी है। इसलिए बहू के द्वारा बिल्ली के मारे जाने पर रामू की माँ उन्हें ही बुलवाती है और प्रायश्चित का उपाय पूछती है।

(ii) लालची– पण्डित परमसुख परम लालची है। लालच के वशीभूत होकर ही वह रामू की माँ को प्रायश्चित के लिए पूजा और दान की इतनी अधिक सामग्री बनाते हैं, जिससे उनके घर के छ: महीनों के अनाज का खर्च आसानी से निकल जाए।

(iii) पाखण्डी– पण्डित परमसुख कर्मकाण्डी कम पाखण्डी अधिक है। वह पाखण्ड के सहारे धन एकत्र करना चाहते हैं। बिल्ली के मरने की खबर सुनकर उन्हें प्रसन्नता होती है। जब उन्हें यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े, पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले– **''भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।''**

(iv) व्यवहारकुशल और दूरदर्शी– पण्डित परमसुख को मानव-स्वभाव की अच्छी परख है। वे जानते हैं कि दान के रूप में किस व्यक्ति से कितना धन ऐंठा जा सकता है। इसीलिए वे पहले इक्कीस तोले सोने की बिल्ली के दान का प्रस्ताव रखते हैं, लेकिन बात कहीं बढ़ न जाए और यजमान कहीं हाथ से न निकल जाए, वे तुरंत ग्यारह तोले पर आ जाते हैं।

(v) परम पेटू– पण्डित परमसुख परम पेटू भी हैं। पाँच ब्राह्मणों को दोनों वक्त भोजन कराने के स्थान पर उन्हीं के द्वारा दोनों समय भोजन कर लेना उनके परम भोजनभट्ट होने का प्रमाण है।

(vi) साम-दाम-दण्ड-भेद में प्रवीण– पण्डित परमसुख साम-दाम-दण्ड-भेद में अत्यधिक प्रवीण हैं। पूजा के सामान की सूची के बारे में पहले तो उन्होंने प्रेम से रामू की माँ को समझाया परन्तु जब वह ना-नुकुर करने लगी तो तुरंत ही बिगड़कर अपना पोथी-पत्रा बटोरने लगे और पैर पकड़े जाने पर पुन: आसन जमाकर भोजनादि की बात करने लगे। इससे स्पष्ट होता है कि पण्डित जी इन चारों विद्याओं में निष्णात थे। स्पष्ट होता है कि पण्डित परमसुख उपर्युक्त वर्णित गुणों के मूर्तिमान स्वरूप थे।

8. कथोपकथन के आधार पर 'प्रायश्चित' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– कथोपकथन (संवाद-योजना)– कहानी की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण कथोपकथन की सार्थक योजना होती है। लेखक ने इस कहानी में सार्थक संवादों का प्रयोग किया है, जिसके आधार पर एक कुशल कहानीकार अपने पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है तथा कहानी की कथावस्तु का विकास करता है। प्रस्तुत कहानी के संवाद अत्यन्त संक्षिप्त और सार्थक हैं, उनमें नाटकीयता और सजीवता है। इस कहानी के संवाद सारगर्भित, संक्षिप्त, कहानी को गति देने वाले, वातावरण की सृष्टि तथा पात्रों की मन:स्थिति को स्पष्ट करने में सहायक है। कबरी के मरने पर जो प्रतिक्रिया पारिवारिक और अन्य लोगों के बीच हुई, वह भी स्वाभाविक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

महरी बोली–''अरे राम! बिल्ली तो मर गई, माँ जी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।''

मिसरानी बोली–''माँ जी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।''

सास जी बोलीं– ''हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए, तब तक न तो कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला?''

9. 'प्रायश्चित' कहानी में सामाजिक रूढ़ियों और धर्मान्धताओं पर कहाँ-कहाँ और किस प्रकार प्रहार किया गया है?

उ०– 'प्रायश्चित' कहानी में समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा लोगों में व्याप्त धार्मिक अन्धविश्वासों पर करारा प्रहार किया गया है। बिल्ली के मर जाने पर मिसरानी का धार्मिक अन्धविश्वास दृष्टिगोचर होता है कि–''बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।'' जिसमें रामू की माँ भी धार्मिक अन्धविश्वास के कारण उसका समर्थन करती है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रायश्चित करने से पाप कम हो जाता है, रामू की माँ पण्डित परमसुख को बुलवाती है। जिसमें महरी तथा मौहल्ले की औरतें उसका समर्थन करती है तथा बहू के सर लगे हत्या का पाप प्रायश्चित के द्वारा समाप्त करवाना चाहती है। वे पण्डित परमसुख से पूछती है कि बिल्ली की हत्या के कारण कौन-सा नरक मिलता है। जिसमें पण्डित परमसुख औरतों की धर्मान्धताओं का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं तथा प्रायश्चित का बहुत अधिक व्यय बताते हैं। इस कहानी में पण्डितों के स्वयं के स्वार्थ के कारण सामान्य लोगों को धार्मिक अन्धविश्वास का लाभ उठाने पर भी प्रहार किया गया है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

4 समय (यशपाल)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या–199-200 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. यशपाल का जीवन-परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– प्रेमचन्दोत्तर युग के सुप्रसिद्ध यथार्थवादी एवं प्रगतिशील कहानीकार यशपाल जी का जन्म 3 दिसम्बर, सन् 1903 ई० में पंजाब प्रान्त की फिरोजपुर छावनी में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई, जहाँ के देशभक्ति युक्त वातावरण के परिणामस्वरूप इनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना जागृत हुई। नेशनल कॉलेज, लाहौर (वर्तमान में पाकिस्तान में) से इन्होंने माध्यमिक व उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसी समय सुखदेव और भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों से इनका सम्पर्क हुआ। राजद्रोह का आरोप लगाते हुए अंग्रेजी शासकों द्वारा इन्हें कठोर कारावास का दण्ड दिया गया और कारागार में ही ये स्वाध्याय तथा साहित्य-सृजन का कार्य करते रहे। लखनऊ आकर इन्होंने 'विप्लव' नामक मासिक-पत्र सम्पादित व संचालित किया। ये आजीवन साहित्य साधना में लगे रहे। ये मार्क्सवाद से भी प्रभावित थे। साहित्य का यह साधक 26 दिसम्बर, सन् 1976 ई० में चिर-निद्रा में लीन हो गया।

यथार्थता यशपाल जी की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। सामाजिक कुरीतियों, कुसंस्कारों पर इन्होंने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि की इन्होंने कटु आलोचना की है।

कृतियाँ– यशपाल जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

कहानी-संग्रह– फूलो का कुर्ता, पिंजड़े की उड़ान, उत्तमी की माँ, तर्क का तूफान, भस्मावृत्त, मेरा चेहरा रौबीला है, बीवी जी

कहती हैं, अभिशप्त, तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ, चिनगारी आदि।

कहानियाँ– परदा, समय, चार आने, कर्मफल, फूल की चोरी, मक्रील, पाँव तले की डाल, वर्दी, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

उपन्यास– देशद्रोही, दादा कामरेड, अमिता, मनुष्य के रूप, दिव्या, तेरी–मेरी उसकी बात, झूठा सच आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

यात्रावृत्त– लोहे की दीवार के दोनों ओर, राहबीती।

निबन्ध, संस्मरण आदि साहित्यिक विधाओं की भी इन्होंने अपनी लेखनी से श्रीवृद्धि की है।

2. यशपाल के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **कथा-शिल्प एवं शैली–** यशपाल जी की कहानियों में जीवन–संघर्ष में रत एवं सन्तप्त मानव–स्तर जीवन्त रूप में मुखर हुआ है। इन पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहन प्रभाव देखने को मिलता है।

यशपाल जी ने समस्या–प्रधान, सरल एवं स्पष्ट कथानक वाली कहानियाँ लिखी हैं। कथानक अधिकतर मध्यमवर्गीय जीवन से चुने गए हैं। इन्होंने विविध वर्गों, स्थितियों एवं जातियों पर आधारित पात्रों से संबंधित जीवन–संघर्ष, विद्रोह एवं उत्साह के सजीव चित्रण को प्रस्तुत किया है। कहानियों में पात्रों का चरित्र–चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है।

इनकी कहानियों की भाषा–शैली व्यावहारिक एवं सरल है। इन्होंने जनसाधारण में प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। मुहावरों एवं लोकाक्तियों के प्रयोग से रोचकता में वृद्धि हुई है। उर्दू, फारसी के शब्द भी इनकी भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। सामाजिक विकृतियों पर इन्होंने तीखे व्यंग्य किए हैं। इनके कथोपकथन अकृत्रिम एवं स्वाभाविक हैं तथा वे पात्रों की मनोदशा का स्पष्ट चित्राकंन करने के साथ ही कथावस्तु को विकसित करने में पूर्ण रूप से सक्षम सिद्ध हुए हैं।

यशपाल जी को ही नई कहानी का प्रथम कहानीकार कहा गया है, क्योंकि इन्होंने एक सुनिश्चित जीवन–दर्शन और विचारधारा को लक्ष्य बनाकर अपनी कहानियाँ लिखीं। कुछ आलोचकों का यह कहना कि ''मार्क्सवाद यशपाल जी की दुर्बलता है'' यह सत्य नहीं है, बल्कि मार्क्सवाद ही उनकी शक्ति है। इसके बल पर ही इन्होंने मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक विसंगतियों पर अपनी लेखनी से घातक एवं निर्मम वार किए हैं। इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द की तरह यथार्थ पर आधारित होती हैं। इनके अधिकतर पात्र शहरी हैं।

हिन्दी–साहित्य जगत में 'यशपाल' जी का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

1. 'समय' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– कहानी के नायक लेखक के पापा को रिटायर होने से डेढ़–दो वर्ष पूर्व ही रिटायरमेंट के बाद की चिन्ता सताने लगी थी। उन्हें लगता था कि यह व्यवस्थित जीवन भविष्य में किस प्रकार व्यतीत होगा। इसलिए उन्होंने तभी से उस समय के लिए योजनाएँ बनाना शुरू कर दिया। उन्हें अपना खर्च कम करना पड़ेगा, इसके लिए उन्होंने तभी से मितव्ययिता की आदत अपनानी शुरू कर दी।

समय के साथ–साथ बच्चे बड़े हो जाते हैं। पीढ़ी का अन्तर, विचारों का अन्तर, सब अपने–अपने व्यक्तित्व के अनुसार गतिमान रहते हैं। पीढ़ी के इसी अन्तर का प्रभाव वृद्धावस्था पर होता है। पापा ऐसा अनुमान करते थे कि रिटायर होने के बाद दूसरों के आदेश से मुक्ति मिलेगी, अध्ययन के लिए समय मिलेगा। पापा कभी भी स्वयं को बूढ़ा या बुजुर्ग नहीं समझते थे। सर्विस के दौरान वे कभी–कभी हिल स्टेशनों पर चले जाते थे। पहाड़ों पर चढ़ाई के लिए वे छड़ी खरीदते अवश्य थे, परन्तु लौटने पर छड़ी का प्रयोग नहीं करते थे। उनके विचार से छड़ी टेककर चलना बुढ़ापे या बुजुर्गी का लक्षण था। वे स्वयं को स्वस्थ अनुभव करते थे। पहाड़ों पर घूमने जाना अब उन्होंने छोड़ दिया था। वे सुबह–शाम टहलने जाते, तो केवल अपनी पत्नी के साथ ही जाते थे। बच्चों को नौकरानी के साथ बाहर भेज देते थे। कभी–कभी बच्चे साथ होते, तो जरा सा ठुनकने से ही उन्हें मनचाही वस्तु मिल जाती थी। बच्चों को बाजार में वे कभी भी डाँटते–धमकते नहीं थे। रिटायरमेंट के बाद भी वे किसी न किसी कार्य में सदैव व्यस्त रहते थे। कुछ हल्की–फुल्की चीजें खरीदने के लिए वे पैदल ही सन्ध्या के समय हजरतगंज चले जाते थे। उनका स्वभाव व व्यवहार अब पहले की अपेक्षा परिवर्तित हो गया था। पहले उन्हें अच्छी पोशाक, अच्छी–अच्छी चीजें खरीदने का बहुत शौक था लेकिन अब वे पुराने कपड़ों से ही सन्तुष्ट रहते। पापा पहले बच्चों को साथ नहीं ले जाना चाहते थे परन्तु अब वे किसी न किसी को साथ ले जाना चाहते। सुबह–शाम टहलने जाते समय भी किसी को साथ ले जाना पसन्द करने लगे। उनकी नजर पर भी आयु का प्रभाव होने लगा। देर तक पढ़ने–लिखने से उन्हें धुँधलेपन का अनुभव होने लगा। चलते समय कम प्रकाश में ठोकर लगने तथा अधिक प्रकाश में चकाचौंध होने से वे परेशानी का अनुभव करने लगे। स्थिति ऐसी हो गई थी कि अब किसी को लिए बिना बाहर जाने में वे स्वयं को असमर्थ अनुभव करते थे।

एक दिन उन्होंने साथ चलने के लिए कहा, तो कोई भी साथ चलने के लिए तैयार नहीं हुआ। लेखक की बहन मन्टू ने भी मना कर दिया। उसने पुष्पा दीदी से कहा– ''तुम भी क्या दीदी..... बुड्ढों के साथ कौन बोर हो।'' पापा हैंगर से कोट उतारकर पहनने जा रहे थे। यह बात उन्हें चुभ गई। एक बुझी हुई सी मुस्कान के साथ कोट हाथ में लिए, वे कुर्सी पर बैठ गए। नजर फर्श की ओर झुक गई। उन्होंने अपनी छड़ी मँगाई, मूठ पर हाथ फेरा ओर छड़ी को टेककर समय को स्वीकार कर लिया।

2. 'समय' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'समय' कहानी का उद्देश्य– प्रगतिशील कहानीकार यशपाल की प्रस्तुत कहानी का एकमात्र उद्देश्य यही चित्रित करना है कि माता-पिता अपने बच्चों के लिए चाहे स्वयं को कितना ही बदल डालें, किन्तु वे बच्चों द्वारा की गई अपनी उपेक्षा से बच नहीं पाते। बच्चों की यह उपेक्षा माता-पिता को भीतर तक तोड़ देती है। यद्यपि वे अपने उपेक्षा की पीड़ा को किसी से व्यक्त नहीं कर पाते, किन्तु वे स्वयं को अकेला महसूस करते हुए किसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस कहानी के द्वारा कहानीकार बच्चों को यह सन्देश भी देना चाहता है कि उन्हें जीवन की सान्ध्य-बेला में अपने माता-पिता की उपेक्षा अथवा तिरस्कार नहीं करना चाहिए। कहानीकार को अपना सन्देश देने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

3. 'समय' कहानी के माध्यम से लेखक क्या संदेश देना चाहता हैं।

उ०– 'समय' कहानी के माध्मय से लेखक यशपाल यह सन्देश देना चाहते हैं कि जब बच्चे युवा हो जाएँ, अपना हित-अहित सोचने में सक्षम हो जाएँ, औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करने में समर्थ हो जाएँ तो बुजुर्गों को उनके व्यक्तिगत कार्यों या व्यस्तताओं में न तो हस्तक्षेप करना चाहिए, न ही उसे अपने अनुसार परिवर्तित करना चाहिए और न ही उनमें स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसी स्थिति अनावश्यक रूप से कटुता को जन्म देती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को समय के अनुसार अपने आचार-विचार व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए। यही विचार सुखी जीवन की आधारशिला है।

4. शीर्षक की दृष्टि से 'समय' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'समय' पूरी कथा को स्वयं में समाहित किए हुए है। कहानी में आरम्भ से अन्त तक कुछ भी नहीं बदला। यदि बदला है तो वह है 'समय', जिससे पापा यह सोचने के लिए विवश हो गए कि अब स्वयं या बच्चों के सहारे चलने का समय बीत चुका है। अब जीवन का शेष समय उन्हें अकेले ही छड़ी के साथ व्यतीत करना पड़ेगा। कहानी का शीर्षक 'समय' उद्देश्यपूर्ण, सारगर्भित, संक्षिप्त, रोचक एवं आकर्षक है। अत: कहा जा सकता है कि इस कहानी का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त एवं सार्थक है।

5. कथोपकथन के आधार पर 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– कथोपकथन या संवाद– 'समय' कहानी के संवाद जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। सम्पूर्ण कहानी लेखक द्वारा अपनी पूर्व स्मृति और बचपन की घटनाओं को समायोजित करते हुए लिखी गई है। कहानी में लेखक के स्वयं के कथन और उठाए गए प्रश्न हैं। इन प्रश्नों के उत्तर भी लेखक ने स्वयं ही दिए हैं। कहानी में संवाद-योजना अति अल्प है, लेकिन जहाँ कहीं भी है, पूर्णता के साथ मुखर हुई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

मण्टू ने मुझे रोककर कहा– ''सुनो, अम्मी पापा के साथ बाजार जा रही हैं। हम भी उनके साथ बाजार जाएँगे।'' मण्टू ने हुबिया को सम्बोधित किया, ''हुबिया, हमारी सैण्डल में कील लग रही है। हम दूसरी सैण्डल पहनकर आते हैं।'' हम दोनों घर की ओर भाग आए।

मण्टू का अनुमान ठीक था। हम लौटे तो ड्योढ़ी में पहुँचते ही अम्मी की पुकार सुनायी दी-''जी, आइए, मैं चल रही हूँ।'' अम्मी बाहर जाने के लिए साड़ी बदले और जूड़े में पिनें खोंसती हुई आ रही थी।

मण्टू अम्मी की कमर से लिपट गई और डबडबाई आँखें अम्मी के मुँह की ओर उठाकर ऑसू-भरे स्वर में हिचक-हिचककर गिड़गिड़ाने लगी– 'कभी.. कभी.... कभी बच्चों को भी..... तो ... साथ ले जाना चाहिए।''

तब तक पापा भी आ गए थे। उन्होंने पूछा– ''क्या है, क्या है? वे समझ गए थे, बोले– ''अच्छा बच्चो, एकदम तैयार हो जाओ।''

इस प्रकार 'समय' कहानी के संवाद पात्रों के मनोभावों को भली-भाँति अभिव्यक्त करते हैं। वे संक्षिप्त तथा प्रभावशाली हैं।

6. 'समय' कहानी में लेखक ने मध्यमवर्गीय नौकरी-पेशा लोगों के जीवन की किन परिस्थितियों को उजागर किया है?

उ०– 'समय' कहानी में लेखक ने मध्यमवर्गीय नौकरी-पेशा लोगों की रिटायर हो जाने के बाद की परिस्थिति को उजागर किया है। जिसमें रिटायर हो जाने के बाद उनके शौक, वेशभूषा में परिवर्तन हो जाता है तथा वे अपने बच्चों के साथ समय व्यतीत करना पसंद करने लगते हैं। रिटायर के बाद इन व्यक्तियों को अपना समय व्यतीत करने की भी चिन्ता रहती है और ये इस समय में कुछ कार्य करने की योजना बनाते हैं। रिटायर के बाद लोग मितव्ययिता करने लगते हैं।

7. 'समय' कहानी का प्रमुख पात्र कौन है? उसका चरित्र-चित्रण कीजिए अथवा उसकी चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'समय' कहानी का प्रमुख पात्र एक अवकाश प्राप्त अधिकारी है। कहानी में इन्हें 'पापा' की संज्ञा दी गई है। इनके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(i) सम्भावित भविष्य के प्रति चिन्तित– 'पापा' अपनी नौकरी से अवकाश प्राप्त करने से पूर्व से ही चिन्तित थे कि अवकाश का बोझ कैसे सँभलेगा और जीवन का अधिकांश समय कैसे व्यतीत होगा?

(ii) व्यवस्थित दिनचर्या के व्यक्ति– 'पापा' व्यवस्थित दिनचर्या वाले व्यक्ति हैं। अवकाश प्राप्त होने पर उन्हें कार्यालयीय

भार से मुक्ति मिल जाएगी। अत: उस समय का सदुपयोग करने के लिए उन्होंने पहले से ही योजना बना ली थी कि वे अपने शासन-कार्य के अनुभव पर एक पुस्तक लिखेंगे। अब वे इस पर अध्ययन करते हैं और नोट्स भी बनाते हैं। शाम को वे विभिन्न वस्तुओं को खरीदारी भी करते हैं।

(iii) शौकीन मिजाज– पापा बहुत ही शौकीन मिजाज के व्यक्ति थे। उनकी पोशाक हमेशा चुस्त-दुरुस्त रहती थी। अपने उपयोग में आने वाली अच्छी और स्तरीय वस्तुओं का शौक था। नौकरी के दौरान वे खर्चीले स्वभाव के थे। गरमियों के दिनों में पर्वतीय स्थानों पर घूमने व रहने का उन्हें बड़ा शौक था। घर में हमेशा दो-तीन नौकर रहा करते थे।

(iv) जीवन से सन्तुष्ट– पापा अपनी नौकरी के समय में अपने जीवन से सन्तुष्ट थे और अब अवकाश के समय में भी सन्तुष्ट हैं। अपने जिन शौक और रुचियों से उन्हें अब सन्तुष्टि नहीं होती, उन शौक और रुचियों को अपने बच्चों द्वारा पूरा होते देखकर वे सन्तुष्ट हो जाते हैं।

(v) युवा दिखने की चाहत– पापा को शुरु से ही युवा दीखने की चाहत थी। इसीलिए मम्मी के साथ घूमने जाते समय वे बच्चों को अपने साथ नहीं ले जाते थे; क्योंकि इससे उन्हें अपने बुजुर्ग होने का अनुभव होता था।

(vi) समय के साथ परिवर्तित– अवकाश प्राप्त होने के बाद पापा मितव्ययी हो गए। दूसरे वे बच्चों को भी अपने साथ ले चलना चाहते हैं; क्योंकि बच्चे भी अब कद में उनसे ऊँचे, जवान, स्वस्थ और सुडौल हो गये हैं। इससे उन्हें अब गर्व का अनुभव होता हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक पढ़े-लिखे, सभ्य और सुशिक्षित युवक और कालान्तर में परिवर्तित प्रौढ़ व्यक्ति के चरित्र में जो गुण होने चाहिए, वे सभी गुण पापा में निहित हैं। लेखक यशपाल जी ने कहानी में इनका चरित्र-चित्रण अत्यधिक गरिमापूर्ण और स्वाभाविक ढंग से ऐसे ही किया है, जैसे वे स्वयं अपने पिता का चरित्र-चित्रण कर रहे हों।

8. ''समय के साथ स्वयं को बदल लेने में ही बुद्धिमानी है।'' 'समय' कहानी के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– 'समय' कहानी यथार्थता पर आधारित है। समय किस प्रकार किसी व्यक्ति और उसके बच्चों की मानसिकता को परिवर्तित कर देता है। यह इस कहानी का मूलभाव है। इसलिए व्यक्ति को किसी की सोच के साथ सामंजस्य बिठाने के लिए स्वयं को समय के साथ बदल लेना चाहिए अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसे अपार पीड़ा सहन करनी पड़ती है। जब व्यक्ति वृद्ध होकर रिटायर हो जाता है तो वह बच्चों की उपेक्षा व अवहेलना से नहीं बच पाता। इसलिए व्यक्ति को समय के साथ स्वयं को बदल लेने में ही बुद्धिमानी हैं।

9. कहानी के तत्वों की दृष्टि से 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– यथार्थवादी प्रगतिशील कहानीकारों में यशपाल जी का विशिष्ट स्थान है। यशपाल जी समाजवादी विचारधारा के प्रबुद्ध कहानीकार हैं। उनकी प्रस्तुत कहानी का कथानक मध्यमवर्गीय जीवन से लिया गया है। उनकी यह कहानी सत्य और यथार्थ पर आधारित समाजवादी विचारधारा की सुन्दर रचना है। कहानी-शिल्प की दृष्टि से इस कहानी की विशेषताएँ निम्नवत् हैं-

(i) शीर्षक– प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'समय' एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सम्पूर्ण कहानी में समय की ही प्रमुखता को दर्शाया गया है। अपने जीवन के शीर्ष समय में शीर्ष पर स्थित व्यक्ति समय बदल जाने; अर्थात नौकरी से अवकाश प्राप्त कर लेने अथवा बुजुर्ग हो जाने; पर कितना बदल जाता है, उसके आस-पास की स्थितियों में कितना परिवर्तन हो जाता है, उसे इस कहानी में अच्छी तरह से दर्शाया गया है। शीर्षक में प्रतीकात्मकता, कौतूहल, सरलता और सजीवता है। 'समय' सम्पूर्ण कहानी के कथानक का प्राण है।

(ii) कथावस्तु– इस कहानी के माध्यम से एक ऐसे मध्यमवर्गीय परिवार का चित्र खींचा गया है, जिसका मुखिया उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी है। अपनी नौकरी के समय में कार्यालय से घर वापस आने पर इनका अधिकांश समय; चाहे वह बाजार जाने का हो या टहलने का; पत्नी के साथ ही व्यतीत होता था। इससे बच्चों की सहभागिता न्यूनतम होती थी। अवकाश प्राप्ति के बाद लखनऊ में स्थापित होने पर इन्हें बच्चों के साहचर्य की आवश्यकता महसूस होने लगी। पहले तो ये पत्नी के साथ ही घूमने चले जाया करते थे, लेकिन पत्नी के असमर्थ होने और कुछ अपनी भी कमजोरियों के कारण अब वे अपने युवा हो चुके बच्चों पर निर्भर होने लगे। लेकिन युवा मानसिकता का अपनी रुचि, अपनी व्यस्तता। एक दिन मण्टू ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया कि बुड्ढों के साथ जाने में बोरियत होती है। पापा ने यह सब कुछ सुना, समझा और छड़ी उठाकर अकेले ही टहलने के लिए चल दिये। सम्भवत: उन्होंने भी अन्तर्मन से इस सत्य को स्वीकार कर लिया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कहानी का कथानक संगठित है। लेखक ने यथार्थवादी दृष्टि से एक मध्यमवर्गीय तथाकथित शिक्षित परिवार की वास्तविक तसवीर प्रस्तुत की है। कथानक में संक्षिप्तता, सजीवना, रोचकता, कुतूहल आदि गुण विद्यमान हैं। कहानी मर्मस्पर्शी तो नहीं है, लेकिन विचारों को आन्दोलित अवश्य करती है।

(iii) पात्र और चरित्र-चित्रण– इस कहानी के सभी पात्र यथार्थवादी हैं। कहानी में पात्रों की संख्या कम है। सभी पात्र एक परिवार के सदस्य और भाई-बहन हैं। परिवार के मुखिया अर्थात् पापा ही कहानी के मुख्य पात्र है और शेष सभी पात्र;

जिसमें गृह-स्वामिनी भी सम्मिलित है; गौण हैं। ये सभी मुख्य पात्र पापा की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने के लिए ही कहानी में प्रयुक्त हुए हैं। कहानी में यशपाल ने पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यधिक स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिक के साथ किया है।

(iv) कथोपकथन या संवाद– 'समय' कहानी के संवाद जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। सम्पूर्ण कहानी लेखक द्वारा अपनी पूर्व स्मृति और बचपन की घटनाओं को समायोजित करते हुए लिखी गई है। कहानी में लेखक ने स्वयं के कथन और उठाए गए प्रश्न हैं। इन प्रश्नों के उत्तर भी लेखक ने स्वयं ही दिए हैं। कहानी में संवाद-योजना अति अल्प है, लेकिन जहाँ कहीं भी है, पूर्णता के साथ मुखर हुई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मण्टू ने मुझे रोककर कहा– ''सुनो, अम्मी पापा के साथ बाजार जा रही हैं। हम भी उनके साथ बाजार जाएँगे।'' मण्टू ने हुबिया को सम्बोधित किया, ''हुबिया, हमारी सैण्डल में कील लग रही है। हम दूसरी सैण्डल पहनकर आते हैं।'' हम दोनों घर की ओर भाग आए।

मण्टू का अनुमान ठीक था। हम लौटे तो ड्यूढ़ी में पहुँचते ही अम्मी की पुकार सुनाई दी– ''जी, आइए, मैं चल रही हूँ।'' अम्मी बाहर जाने के लिए साड़ी बदले और जुड़े में पिनें खोंसती हुई आ रही थीं।

मण्टू अम्मी की कमर से लिपट गई और डबडबाई आँखें अम्मी के मुँह की ओर उठाकर आँसू-भरे स्वर में हिचक-हिचककर गिड़गिड़ाने लगी– 'कभी.... कभी ..... कभी बच्चों को भी .....तो .... साथ ..... ले जाना चाहिए।''

तब तक पापा भी आ गए थे। उन्होंने पूछा– ''क्या है, क्या है?'' वे समझ गए थे, बोले– ''अच्छा बच्चों, एकदम तैयार हो जाओ।''

इस प्रकार 'समय' कहानी के संवाद पात्रों के मनोभावों को भली-भाँति अभिव्यक्त करते हैं। वे संक्षिप्त तथा प्रभावशाली हैं।

(v) देश-काल तथा वातावरण– यशपाल जी एक यथार्थवादी कहानीकार हैं और उनकी कहानी 'समय' एक यथार्थपरक कहानी है। इसमें देश-काल तथा वातावरण का वर्णन कहानी को पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से ही किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

हम लोग उनकी संगति के लिए बचपन के दिनों की तरह लालायित नहीं रह सकते। कारण यह है कि अठारह-बीस पार कर लेने पर हम लोग भी अपना व्यक्तित्व अनुभव करने लगे हैं। हम लोगों की अपनी वैयक्तिक रुझानें, अपने काम और अपने क्षेत्र भी हो गए हैं और उनके आकर्षण और आवश्यकताएँ भी रहती हैं। कभी-कभी पापा की आवश्यकता और हमारी संगति के लिए उनकी इच्छा और हमारी अपनी आवश्यकताओं और आकर्षणों में द्वन्द्व की स्थिति आ जाना अस्वाभाविक नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि देश-काल तथा वातावरण का वर्णन सीमित रूप से होते हुए भी कहानी की सफलता में अपना योगदान करता है।

(vi) भाषा-शैली– प्रस्तुत कहानी के पात्र समाज के शिक्षित और मध्यम वर्ग से सम्बन्धित हैं। इसलिए कहानी की भाषा, सरल, सुबोध और व्यावहारिक खड़ी बोली है) कहानी में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। सम्पूर्ण कहानी की भाषा कहीं पर भी स्तर से नीचे नहीं होने पायी है। आजकल का युवा वर्ग बात-चीत में अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग करता है। इसी उद्देश्य से लेखक ने अपनी भाषा में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बिना किसी संकोच के खुलकर किया है। इसके प्रयोग से कहीं भी भाषा की गतिमयता बाधित होती नहीं दीखती। कहीं-कहीं पर स्थानीय बोली में प्रयुक्त शब्द भी आए हैं। कहानी में विचारात्मक-विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण देखिए—

पापा की अवचेतना में रिटायर हो जाने के डेढ़-दो वर्ष पूर्व से ही चिन्ता सिर उठाने लगी थी- रिटायर हो जाने पर अवकाश का बोझ कैसे सँभलेगा? अपनी इस चिन्ता का निराकरण करने के लिए प्राय: ही कहने लगते- ''लोग बाग रिटायर होकर निरुत्साह क्यों हो जाते हैं? सोचिए नौकरी करते समय अवकाश के दिनों की प्रतीक्षा की जाती है। जब दीर्घ श्रम के पुरस्कार में पूर्ण अवकाश का अवसर आ जाए तो निरुत्साह होने का क्या कारण? इसे तो अपने श्रम का अर्जित फल मानकर, उससे पूरा लाभ उठाना और सन्तोष पाना चाहिए।

(vii) उद्देश्य– यशपाल प्रगतिशील साहित्यकार हैं। प्रस्तुत कहानी में यशपाल जी ने यह दर्शाया है कि प्रत्येक व्यक्ति को समय का महत्व समझना चाहिए और समय के परिवर्तन के साथ-साथ अपने में भी परिवर्तित ले आना चाहिए। यह सत्य है कि अधिक उम्र का व्यक्ति युवा के साथ रहकर स्वयं को भी युवावत अनुभव करता है। लेकिन उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि युवा स्वयं को उम्रदराज के साथ कैसा अनुभव करता होगा। अत: सभी को समय के साथ स्वयं में परिवर्तन ले आना चाहिए। लेखक ने इस बात को कहानी के अन्त में स्पष्ट भी कर दिया है-''हाँ, यह तो बहुत अच्छी बात है।'' पापा ने छड़ी की मूठ पर हाथ फेरकर कहा और छड़ी टेकते हुए किसी की ओर देखे बिना घूमने के लिए चले गए; मानो हाथ की छड़ी को टेककर उन्होंने समय को स्वीकार कर लिया।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

5

ध्रुवयात्रा
(जैनेन्द्र कुमार)

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न—

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—211 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न—

1. जैनेन्द्र कुमार का जीवन परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी सन् 1905 ई० को जिला अलीगढ़ के कोड़ियागंज गाँव में हुआ था। अल्पायु में ही ये पिता की छत्रछाया से वंचित हो गए; अत: इनकी माता तथा नाना ने इनका पालन-पोषण किया। बचपन में इनका नाम आनन्दी लाल था। हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल 'ऋषि ब्रह्मचर्य' से इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने उच्च शिक्षा के लिए 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में प्रवेश लिया। सन् 1921 ई० में महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए 'असहयोग-आन्दोलन' में इनका सकारात्मक योगदान रहा और इसी कारण इनकी शिक्षा का क्रम टूट गया।

इन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में इनको विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। गाँधी जी से प्रभावित होने के कारण ये अहिंसावादी व गाँधीवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने कुछ राजनीतिक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया, जिस कारण इनको जेल जाना पड़ा। जेल में ही स्वाध्याय करते हुए ये साहित्य-सृजन में संलग्न रहे। 24 दिसम्बर, सन् 1988 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

कृतियाँ– जैनेन्द्र जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– 'खेल' (सन् 1928 ई० में 'विशाल भारत' में प्रकाशित पहली कहानी)। फाँसी, नीलम देश की राजकन्या, जयसन्धि, वातायन, एक रात, दो चिड़ियाँ, पाजेब, ध्रुवयात्रा, जाह्नवी, अपना-अपना भाग्य, ग्रामोफोन का रिकार्ड, मास्टर साहब, पानवाला।

उपन्यास– त्यागपत्र, सुखदा, जहाज का पंछी, व्यतीत, सुनीता, कल्याणी, विवर्त,परख, मुक्तिबोध, जयवर्तन।

निबन्ध– सोच-विचार, पूर्वोदय, जड़ की बात, साहित्य का श्रेय और प्रेय, परिवार, प्रस्तुत प्रश्न, मन्थन, काम-क्रोध, विचार-वल्लरी, साहित्य-संचय।

संस्मरण– ये और वे।

अनुवाद– पाप और प्रकाश (नाटक), मन्दाकिनी(नाटक) तथा 'प्रेम में भगवान' कहानी-संग्रह का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया।

इनके प्रथम उपन्यास 'परख' पर साहित्य अकादमी द्वारा इन्हें पाँच सौ रुपये के पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

2. जैनेन्द्र कुमार को कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– जैनेन्द्र की कहानी-कला चरित्र की निष्ठा तथा संवेदना के व्यापक धरातल पर विकसित हुई है। इनकी कहानियाँ दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। कहानियों में इनके प्रौढ़ चिन्तन एवं बौद्धिक सघनता का समावेश हुआ है।

इनके कथानक मुख्य रूप से संवेदना पर आधारित हैं तथा पाठक के अन्त:स्थल को स्पर्श करते हुए गतिशील होते हैं। इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक तथा जीवन-दर्शनपरक हैं। फलत: उनमें विस्तार की अपेक्षा गहनता है। इनके अधिकतर कथानक स्पष्ट एवं सूक्ष्म हैं। इन्होंने कथावस्तु के विकास में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा तथा मानवीय आदर्शों की स्थापना को महत्व दिया है।

इन्होंने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तथा विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोविश्लेषण के माध्यम से इन्होंने पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों तथा उनकी मानसिक उलझनों को व्यक्त किया है। इनके पात्र प्राय: अन्तर्मुखी हैं। ये विशिष्ट पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व देने में सफल रहे हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं; जो प्राय: सामान्य कोटि में आते हैं।

जैनेन्द्र की शैली के विविध रूप हैं, जिनमें दृष्टान्त, वार्त्ता तथा कथा-शैली प्रमुख हैं। नाटकीय एवं स्वगत-भाषण शैलियों का प्रयोग भी अनेक कहानियों में हुआ है। कहानियों की भाषा भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित्त शब्द-रचना तथा भावानुकूल शब्द-चयन इनकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

जैनेन्द्र की कहानियों में संवादों की सीमित व्याख्या हुई है, तथापि उनके संवाद मानव-चरित्र का विश्लेषण करते हुए पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनकी मानसिक स्थितियों का उजागर करते हैं।

इनकी कहानियों में निश्चित लक्ष्य होता है तथा उनमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न रहता है। इन्होंने व्यक्ति के जीवन के आन्तरिक पक्षों, उसके रहस्यों एवं उसकी उत्कृष्टताओं को

दार्शनिक दृष्टिकोण के आधार पर उभारने का प्रयत्न किया है। प्रेमचन्दोत्तर युगीन इस कहानीकार का नाम हिन्दी साहित्य जगत में सदैव अमर रहेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

1. 'ध्रुवयात्रा' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– राजा रिपुदमन उत्तरी ध्रुव की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौटते समय यूरोप के नगरों में जहाँ-जहाँ रुके, वहाँ उनका भरपूर सम्मान हुआ। अखबार में यह खबर प्रकाशित हुई। उर्मिला ने अखबार में यह खबर पढ़ी और प्रसन्न मन से सोते हुए शिशु को प्यार किया। कई दिन तक ध्रुवयात्रा की खबर अखबारों में छपती रही और उर्मिला उसे पढ़ती रही। अब रिपुदमन मुम्बई पहुँचे, तब वहाँ भी उनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। शिष्ट मण्डल द्वारा अनुरोध किये जाने पर वे दिल्ली आए। सभी से प्रेमपूर्वक मिले। ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्हें प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है।

राजा रिपुदमन नींद कम आने के कारण परेशान हैं, इसलिए वे स्वयं को एकाग्र नहीं कर पाते हैं। एक संवाददाता ने उनके विषय में लिखा है कि जब मैं उनसे मिला तो ऐसा लगा कि वे यहाँ न हो, कहीं दूर हों। उर्मिला ने यह पढ़कर अखबार अलग रख दिया। रिपुदमन ने यूरोप में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी किन्तु वे उन्हें जानते नहीं थे। अवसर मिलने पर वे आचार्य मारुति के पास पहुँचे। मारुति ने कहा— ''वैद्य के पास रोगी आते हैं, विजेता नहीं।'' रिपुदमन ने कहा— ''मुझे नींद नहीं आती है, मन पर मेरा काबू नहीं रहता है।'' रिपुदमन आचार्य मारुति के साथ बातचीत करते हैं। रिपुदमन प्रेम से इन्कार नहीं करते हैं लेकिन विवाह को वह बन्धन मानते हैं। राजा रिपुदमन अपनी प्रेमिका उर्मिला (जो उसके बेटे की माँ है से सिनेमा हॉल में मिलते हैं। उर्मिला उनके बेटे की माँ है, यह बात उन दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई भी नहीं जानता है। बातचीत के दौरान रिपुदमन बच्चे का नाम माधवेन्द्र बहादुर रखता है। उर्मिला कहती है कि तुम अपना कार्य पूर्ण किये बिना ही क्यों लौट आए?) तुम्हें मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। राजा रिपुदमन कहते हैं— मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम जो कहोगी, वही करूँगा। क्या तुम अब भी नाराज हो। उर्मिला कहती है— मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हें दक्षिण ध्रुव पर विजय प्राप्त करनी है, तुम्हें जाना ही होगा। यदि मेरे कारण तुम नहीं जाओगे, तो मैं स्वयं को क्षमा नहीं कर पाऊँगी। वह आचार्य मारुति को ढोंगी मानती है लेकिन रिपुदमन के कहने पर वह उसके पास जाती है, परन्तु उसके कहने पर विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। मारुति रिपुदमन को बताते हैं कि उर्मिला उनकी सगी पुत्री है। उसे विवाह करके उसके साथ रहना चाहिये। रिपुदमन भी यही चाहते थे लेकिन उर्मिला के हठ के कारण वह तीसरे दिन दक्षिणी धुव्र जाने के लिए अमेरिका फोन पर बात करते हैं तो ज्ञात होता है कि परसो शाटलैण्ड द्वीप के लिए जहाज पूरा हो गया है। उर्मिला उन्हें कुछ दिन रुकने के लिए कहती है परन्तु वह नहीं मानते हैं। ध्रुवयात्रा के लिए चल देते हैं। उसकी खबरें अखबार में छपती हैं। उर्मिला अखबार पढ़ती रही। समय बीतता रहा। टेलीफोन भी उसने पास ही रख लिया था। पर अखबार के अतिरिक्त कोई बात उसे ज्ञात नहीं हुई। तीसरे दिन उर्मिला ने अखबार उठाया। सुर्खी है और बॉक्स में खबर है। राजा रिपुदमन सवेरे खून में भरे पाए गये। गोली का कनपटी के आर-आर निशान है। अखबार में दूसरी सूचनाएँ भी थीं। उर्मिला पढ़ती गई। रिपुदमन के सम्मान में सभाएँ हुई, राष्ट्रपति के भोज का भी पूरा विवरण था। उर्मिला एक भी अक्षर नहीं छोड़ सकी।

दोपहर बीत जाने पर नौकरानी ने कहा— खाना तैयार है। तब उर्मिला कहती है कि मैं भी तैयार हूँ, खाना यहीं ले आओ, प्लेट्स इसी अखबार पर रख दो। उसी दिन अखबारों के एक खास अंक में यह खबर प्रकाशित हुई कि मृत व्यक्ति के तकिये के नीचे से मिला उसका पत्र नीचे दिया जा रहा है। जिस पर आशय था— यह यात्रा निजी थी। किसी के वचन को पूरा करने जा रहा था। ध्रुव पर भी बचना नहीं था।, अब भी नहीं बचूँगा। मुझे संतोष है कि किसी की परिपूर्णता में काम आ रहा हूँ। मैं पूरे होश-हवाश में अपना काम तमाम कर रहा हूँ। भगवान मेरे प्रिय के अर्थ मेरी आत्मा की रक्षा करें।

2. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'ध्रुवयात्रा' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– जैनेन्द्र कुमार महान् कथाकार हैं। ये व्यक्तिवादी दृष्टि से पात्रों का मनोविश्लेषण करने में कुशल हैं। प्रेमचन्द की परम्परा के अग्रगामी लेखक होते हुए भी इन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को नवीन शिल्प प्रदान किया। 'ध्रुवयात्रा' जैनेन्द्र कुमार की सामाजिक, मनोविश्लेषणात्मक, यथार्थवादी रचना है। कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर इस कहानी की समीक्षा निम्नवत् है—

(i) शीर्षक– कहानी का शीर्षक आकर्षक और जिज्ञासापूर्ण है। सार्थकता तथा सरलता इस शीर्षक की विशेषता है। कहानी का शीर्षक अपने में कहानी के सम्पूर्ण भाव को समेटे हुए है तथा प्रारम्भ से अन्त तक कहानी इसी ध्रुवयात्रा पर ही टिकी है। कहानी का प्रारम्भ नायक के ध्रुवयात्रा से आगमन पर होता है और कहानी का समापन भी ध्रुवयात्रा के प्रारम्भ के पूर्व ही नायक के समापन के साथ होता है। अत: कहानी का शीर्षक स्वयं में पूर्ण समीचीन है।

(ii) कथानक– श्रेष्ठ कथाकार के रूप में स्थापित जैनेन्द्र कुमार जी ने अपनी कहानियों को कहानी-कला की दृष्टि से आधुनिक रूप प्रदान किया है। ये अपनी कहानियों में मानवीय गुणों; यथा— प्रेम, सत्य तथा करुणा को आदर्श रूप में स्थापित करते हैं।

इस कहानी की कथावस्तु का आरम्भ राजा रिपुदमन की ध्रुवयात्रा से वापस लौटने से प्रारम्भ होता है। कथानक का विकास रिपुदमन और आचार्य के वार्तालाप, तत्पश्चात् रिपुदमन और उसकी अविवाहिता प्रेमिका उर्मिला के वार्तालाप और उर्मिला तथा आचार्य मारुति के मध्य हुए वार्तालाप से होता है। कहानी के मध्य में ही यह स्पष्ट होता है कि उर्मिला ही मारुति की पुत्री है। कहानी का अन्त और चरमोत्कर्ष राजा रिपुदमन द्वारा आत्मघात किये जाने से होता है।

वस्तुत: कहानी में कहानीकार ने एक सुसंस्कारित युवती के उत्कृष्ट प्रेम की पराकाष्ठा को दर्शाया है तथा प्रेम को नारी से बिल्कुल अलग और सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। कहानी का प्रत्येक पात्र कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा एवं नैतिकता के प्रति पूर्णरूपेण सतर्क दिखाई पड़ता है। और जिसकी पूर्ण परिणति के लिए वह अपना जीवन अर्पण करने से भी नहीं डरता। कहानी मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ दार्शनिकता से भी ओत-प्रोत है और संवेदना प्रधान होने के कारण पाठक के अन्त:स्थल पर अपनी अमिट छाप छोड़ती हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ध्रुवयात्रा एक अत्युत्कृष्ट कहानी है।

(iii) पात्र तथा चरित्र-चित्रण– जैनेन्द्र कुमार जी की प्रस्तुत कहानी में मात्र तीन पात्र हैं– राजा रिपुदमन, रिपुदमन की प्रेमिका उर्मिला और उर्मिला के पिता आचार्य मारुति। तीनों ही एक-दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध और तीनों ही मुख्य एवं समस्तरीय हैं। जैनेन्द्र जी की कहानियों के पात्र हाड़-मांस से निर्मित सामान्य मनुष्य होते हैं, जिनमें बुराईयों के साथ-साथ अच्छाइयाँ भी विद्यमान होती हैं। इनके पात्र अन्तर्मुखी होते हैं, जो सामान्य एवं विशिष्ट दोनों ही परिस्थितियों में अपना विशिष्ट परिचय प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत कहानी के पात्र भी ऐसे ही हैं, जिनमें से एक जीवन की परिस्थितियों से असन्तुष्ट हो विद्रोही बन जाता है, दूसरा क्षणिक विद्रोही हो आत्म-त्यागी हो जाता है और तीसरा अन्ततोगत्वा समझौतावादी हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिकता से युक्त है।

(iv) कथोपकथन या सवांद-योजना– कहानी के संवाद छोटे, पात्रानुकूल तथा कथा के विकास में सहायक हैं। जैनेन्द्र जी अपने पात्रों के मनोभावों को सरलता से व्यक्त करने में सफल हुए हैं। लगभग पूरी कहानी ही संवादों पर आधारित है, अत: संवाद-योजना की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ कहानी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

दूर जमुना किनारे पहुँचकर राजा ने कहा, ''अब कहो, मुझे क्या कहती हो?''

''कहती हूँ कि तुम क्यों अपना काम बीच में छोड़कर आए?''

''मेरा काम क्या है?''

''मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता जरूर तुम्हारा काम नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे कहा, तुम उससे ज्यादा के लिए हो?''

''उर्मिला, अब भी मुझसे नाराज हो?''

''नहीं, तुम पर गर्वित हूँ।''

''मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला, मुझे जो कहा जाए, थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।''

(v) देश-काल तथा वातावरण– प्रस्तुत कहानी सन् 1960 के आस-पास की है। तत्कालीन सामाजिक वातावरण के अनुरूप ही जैनेन्द्र जी ने कहानी के पात्रों तथा उनके व्यवहार को प्रदर्शित किया है। कहानी का वातावरण सजीव है। प्रस्तुत कहानी में जीवन्त वातावरण की पृष्ठभूमि पर मानवीय प्रेम और संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे गये हैं, जिसमें कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है। एक उदाहरण देखिए–

समय सब पर बह जाता है और अखबार कल को पीछे छोड़ आज पर चलते हैं। राजा रिपु नएपन से जल्दी छूट गए। ऐसे समय सिनेमा के एक बॉक्स में उर्मिला से उन्होंने भेंट की। उर्मिला बच्चे को साथ लाई थी। राजा सिनेमा के द्वार पर उसे मिले और बच्चे को गोद में लेना चाहा। उर्मिला ने जैसे यह नहीं देखा और अपने कन्धे से उसे लगाए वह उनके साथ जीने पर चढ़ती चली गई बॉक्स में आकर सफलतापूर्वक उन्होंने बिजली का पंखा खोल दिया। पूछा, 'कुछ मँगाऊँ?''नहीं!'

(vi) भाषा शैली– अपनी कहानियों में जैनेन्द्र जी सरल, स्वाभाविक और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमे संस्कृत के तत्सम, उर्दू, अंग्रेजी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग करते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सहज, बोधगम्य एवं भावपूर्ण हो जाती है। इनके शब्द-चयन भावों के अनकूल होते हैं तथा शब्दों की रचना पात्रों की भूमिका को साकार कर देती है। प्रस्तुत कहानी की भाषा की भी ये ही विशेषताएँ हैं। इस कहानी में इन्होंने मुख्य रूप से कथा शैली को अपनाया है, जिसमें वार्ता शैली का प्राचुर्य तथा दुष्टान्त शैली का अल्पांश दृष्टिगोचर होता है। इनकी भाषा-शैली का एक उदाहरण निम्नवत् है–

प्रेम से तो नाराज नहीं हो? विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं। प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है। विवाह की बात तो दुकानदारी की है। सच्चाई की बात प्रेम है। इस बारे में तुम अपने से बात करके देखो। वह बात डायरी में दर्ज कीजिएगा। अब परसों मिलेंगे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

(vii) उद्देश्य– प्रस्तुत कहानी में कहानीकार जैनेन्द्र जी ने बताया है कि प्रेम एक पवित्र बन्धन है और विवाह एक सामाजिक बन्धन। प्रेम में पवित्रता होती है और विवाह में स्वार्थता। प्रेम की भावना व्यक्ति को उसके लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करती है। उर्मिला कहती है, **''हाँ, स्त्री रो रही है, प्रेमिका प्रसन्न है। स्त्री की मत सुनना, मैं भी पुरुष की नहीं सुनूँगी। दोनों जने प्रेम की सुनेंगे। प्रेम जो अपने सिवा किसी दया को, किसी कुछ को नहीं जानता।''**

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रेम को ही सर्वोच्च दर्शाना इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है, जिसमें कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है।

3. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' शीर्षक की दृष्टि से एक उच्चस्तरीय कथा है, जिसमें पात्रों का चयन भी जैनेन्द्र ने उच्चकुलीन वर्ग से किया है नि:सन्देह ध्रुवयात्रा जनसामान्य की सोच के परे की बात है। प्रत्येक पात्र ध्रुवयात्रा की पूर्णता में ही अपने जीवन को सफल मानता है। कहानी के कथानक का आरम्भ और अन्त ध्रुवयात्रा के सन्दर्भ के साथ ही होता है। कहानी के नायक और नायिका दोनों ही ध्रुवयात्रा को अपने प्रेम की पराकाष्ठा और कसौटी मानते हैं; जिस पर दोनों अपने को प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि शीर्षक प्रतीकात्मक है, तथापि सब प्रकार से सार्थक और कहानी के कथानक के उपयुक्त है।

4 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं–

(i) सुसंस्कारित युवती– प्रस्तुत कहानी की नायिका 'उर्मिला' एक सुसंस्कारित युवती है। उसे बचपन में अपनी माता द्वारा अच्छे संस्कार प्राप्त हुए हैं। इसीलिए वह राजा रिपुदमन को अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित करती रहती है।

(ii) सच्ची प्रेमिका– अपनी युवावस्था में उर्मिला रिपुदमन के प्रेमपाश में बद्ध हो जाती है। उस समय रिपुदमन किन्हीं सामाजिक कारणों से विवाह करने से मना कर देता है। बाद में जब उसे पता चलता है कि वह माँ बनने वाली है तो वह उससे विवाह के लिए कहता है, तब वह इनकार कर देती है और कहती है कि **''मुझे तुमसे प्रेम है। प्रेम और विवाह में अन्तर होता है। प्रेम पवित्रतायुक्त होता है और विवाह स्वार्थयुक्त।''** अत: वह उसकी सच्ची प्रेमिका ही बने रहना चाहती है, स्त्री नहीं।

(iii) स्वतन्त्र विचारों वाली– उर्मिला स्वतन्त्र और स्पष्ट विचारों वाली युवती है। रिपुदमन के पूछने पर कि क्या वह विवाह करना नहीं चाहती। वह विवाह के लिए स्पष्ट मना कर देती है। वह रिपुदमन से कहती है कि **''तुम्हारा शरीर स्वस्थ है और रक्त उष्ण है, तो स्त्रियों की कहीं कमी नहीं है। मैं तुम्हारे लिए स्त्री नहीं हूँ, प्रेमिका हूँ। इसलिए किसी स्त्री के प्रति मैं तुममें निषेध नहीं चाह सकती।''** निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वह वर्तमान युग में प्रचलित 'स्त्री-पुरुष के साथ-साथ रहने' की उत्कृष्ट विचारधारा की पोषक है।

(iv) दार्शनिक विचारों से युक्त– उर्मिला शिक्षित, स्वतन्त्र और स्पष्ट विचारों वाली युवती तो है ही, कहानी के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसके विचारों में दार्शनिकता की विद्यमानता भी है। उसके विचार कभी भी पिछले स्तर पर प्रकट नहीं होते, उनमें दार्शनिकता का गम्भीर स्वर गुंजित होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'उर्मिला, सिद्धि मृत्यु से पहले कहाँ है?'

'वह मृत्यु के भी पार है, राजा! इससे मुझ तक लौटने की आशा लेकर तुम नहीं आओगे। सौभाग्य का क्षण मेरे लिए शाश्वत है। उसका पुनरार्वतन कैसा?'

'उर्मिला, तो मुझे जाना ही होगा? तुम्हारा प्रेम दया नहीं जानेगा?'

'यह क्या कहते हो, राजा! मैं तुम्हें पाने के लिए भेजती हूँ, और तुम मुझे पाने के लिए जाते हो। यही तो मिलने की राह है। तुम भूलते क्यों हो?

(v) ज्ञानवान्– उर्मिला अच्छे संस्कारों में पालित-पोषित हुई ज्ञानवान् स्त्री है। उसके बोलने मात्र से ही उसका यह गुण स्पष्ट हो जाता है। वह प्रेमिका और स्त्री के कर्त्तव्य को अलग-अलग मानती है। वह कहती है कि **''शास्त्र से स्त्री को नहीं जाना जा सकता। स्त्री को मात्र प्रेम से जाना जा सकता है।''**

(vi) पितृ स्नेही– उर्मिला के मन में अपने पिता के प्रति अपार स्नेह है। वह नहीं जानती कि उसका पिता कौन है? कहानी के उत्तरार्द्ध में आचार्य मारुति यह स्पष्ट करते हैं कि वे ही उसके पिता है, तब वह स्तब्ध होकर उनको देखती रह जाती है और यह कहती हुई चली जाती है कि मुझ हतभागिन को भूल जाइएगा।

(vii) मातृभाव से युक्त– उर्मिला ने यद्यपि बिना वैवाहिक जीवन में प्रवेश किये ही पुत्र प्राप्त किया है, तथापि उसमें मातृभाव की कमी कदापि नहीं है। वह रिपुदमन से कहती है, **''मेरे लिए क्या यही गौरव कम है कि मैं तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ। ..... दुनिया को भी जताने की जरूरत नहीं है कि मेरा बालक तुम्हारा है। मेरा जानना मेरे गर्व को काफी है।''**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उर्मिला ही इस कहानी के सर्व प्रमुख पात्र और नायिका के रूप में नायक है।

कहानीकार को अपनी कल्पना में किसी स्त्री को जिन-जिन गुणों का होना अभीष्ट प्रतीत हुआ वे सभी गुण उसने प्रस्तुत कहानी की नायिका में समाविष्ट कर उसके चरित्र को अतीव गरिमा प्रदान की है।

5. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की सबसे मर्मान्तक घटना कौन-सी है?

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी की सबसे मर्मान्तक घटना राजा रिपुदमन की मृत्यु की घटना है। जब उर्मिला को अखबारों के माध्यम से रिपुदमन की मृत्यु की खबर मिलती है तो वह अखबार में लिखा पूर्ण वितरण पढ़ती है। जिसमें राजा रिपुदमन द्वारा लिखित पत्र भी छपा होता है, जिसमें वह ध्रुवयात्रा को अपनी निजी यात्रा बताते हैं तथा किसी से (उर्मिला) मिले आदेश और उसे दिए वचन को पूरा न कर पाने पर खेद व्यक्त करते है। वह यह भी लिखते हैं कि वे पूरे-होशो हवास में अपना जीवन समाप्त कर रहे है। दोपहर होने पर जब नौकरानी उर्मिला से कहती है कि भोजन तैयार है, तो वह कहती हैं कि मैं भी तैयार हूँ। प्लेटस इसी अखबार पर रख दो। राजा रिपुदमन की मृत्यु के बाद उर्मिला की मनोस्थिति का सशक्त चित्रण लेखक ने यहाँ किया है। जो प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार है।

6. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी का उद्देश्य– उद्देश्य कहानी 'ध्रुवयात्रा' का मूल-उद्देश्य प्रेम की पवित्रता और पराकाष्ठा की विवेचना एवं वचन-पालन के महत्त्व को प्रतिष्ठित करना है। कहानीकार के अनुसार वैयक्तिक सुखों की अपेक्षा सार्वभौमिक और अलौकिक उपलब्धि श्रेयस्कर है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 'ध्रुवयात्रा' कहानी तत्त्वों की दृष्टि से एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी है।

7. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर रिपुदमन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर रिपुदमन के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(i) ध्रुव विजेता– राजा रिपुदमन बहादुर ने उत्तरी ध्रुव को जीता था। उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर विजय प्राप्त करने जैसा मुश्किल कार्य किया था। यह कार्य उन्होंने उर्मिला की प्रेरणा से किया था। वह उर्मिला से कहता है **''उर्मिला, तुमने मुझे ध्रुव भेजा कहती थी– उसके बाद मुझे दक्षिणी ध्रुव जाना होगा। क्या सच मुझे वहीं जाना होगा?''**

(ii) उच्चवर्गीय व प्रतिष्ठित व्यक्ति– राजा रिपुदमन एक उच्चवर्गीय व्यक्ति थे। वह एक रियासत के राजा थे। ध्रुव पर विजय प्राप्त करने पर वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बन गए थे। प्रत्येक स्थान पर जहाँ भी वे गये थे उनका आदर-सत्कार किया गया था। उनके सम्मान में समारोह तथा भोज आयोजित किए गए थे।

(iii) सच्चा प्रेमी– रिपुदमन उर्मिला से सच्चा प्रेम करता है। उर्मिला के कहने पर ही वह उत्तरी ध्रुव पर जाता है। रिपुदमन ध्रुव, से आने के बाद उर्मिला से विवाह करना चाहता है। वह उर्मिला से कहता है, **''मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला मुझे जो कहो थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।''**

(iv) अप्रसन्न व्यक्तित्व– राजा रिपुदमन को स्वयं से बहुत-सी शिकायतें थी। वह स्वयं से अप्रसन्न था। उसे नींद कम आती थी। उसे अपने मन पर काबू नहीं था। इसलिए वह आचार्य मारुति के पास गया। जब आचार्य मारुति उसके आने का कारण पूछते है तो वह कहता है—

''रोगी ही आपके पास आया है। विजेता छल है और उस दुनिया के छल को दुनिया के लिए छोड़िए। पर आप तो जानते हैं।''

आचार्य–''हाँ चेहरे पर आपके विजय नहीं पराजय देखता हूँ। शिकायत क्या है?''

रिपु– ''मैं खुद नहीं जानता। मुझे नींद नहीं आती। और मन पर मेरा काबू नहीं जमता।''।

आचार्य–''हूँ, क्या होता है?''

रिपु–''जो नहीं चाहता, मन के अन्दर वह सब कुछ हुआ करता है।''

(v) हठधर्मी– राजा रिपुदमन हठधर्मी है। जब उर्मिला उसे दक्षिणी ध्रुव जाने को कहती है तो वह तुरंत जाने का विचार कर लेता है और उर्मिला के इतनी जल्दी जाने से रोकने पर भी वह नहीं मानता और उससे कहता है—

''मैं स्त्री की बात नहीं सुनूँगा; मुझे प्रेमिका के मन्त्र का वरदान है।''

आँखों में आँसू लाकर उर्मिला ने रिपु के दोनों हाथ पकड़कर कहा, ''परसो नहीं जाओगे तो कुछ हर्ज है? यह तो बहुत जल्दी है?''

रिपु हाथ झटककर खड़ा हो गया। बोला, ''मेरे लिए रुकना नहीं है। परसों तक इसी प्रायश्चित में रहना है कि तब तक क्यों रुक रहा हूँ।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रिपुदमन कहानी का प्रमुख पुरुष पात्र है। सम्पूर्ण कथानक उसी के चारों-तरफ घूमती है। कहानीकार ने एक श्रेष्ठ प्रेमी के सभी गुण उसमें समाहित किए हैं। जिससे उसका चरित्र गौरवमयी हो गया है।

8. ''कहानी का अन्त बिच्छु के डंक के समान होना चाहिए, जिसे पढ़कर पाठक तिलमिला जाए।'' कथन को दृष्टिगत रखते हुए 'ध्रुवयात्रा' कहानी के अन्त की समीक्षा कीजिए।

उ०– ध्रुवयात्रा कहानी का अन्त पाठकों के लिए अनापेक्षित है। कहानी में उर्मिला-रिपुदमन की वार्ता के बाद ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कहानी का अंत रिपुदमन की मृत्यु से होगा। रिपुदमन द्वारा गोली मारकर की गई आत्महत्या पाठकों के लिए एक आश्चर्य है। कहानीकार इस कहानी का अन्त दूसरी प्रकार से कर सकते थे, परन्तु इस प्रकार का अन्त करके उन्होंने पाठकों को आश्चर्यचकित कर दिया है। रिपुदमन जो एक रियासत का राजा तथा ध्रुव विजेता था वह अपनी-जीवन-लीला का अन्त इस प्रकार करेगा यह पाठकों ने नहीं सोचा होगा। पाठकों ने आशा की होगी की कहानी का अंत रिपुदमन के दक्षिणी ध्रुव विजय तथा उर्मिला और उसके विवाह से होगा। परंतु कहानी का अन्त वास्तव में बिच्छू के डंक से समान था जिसे पढ़कर पाठक तिलमिला गए।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

नाटक के लिए पाठ्य-पुस्तक की पृष्ठ संख्या 212 से 244 तक का अध्ययन करें।
खण्डकाव्य के लिए पाठ्य-पुस्तक की पृष्ठ संख्या 245 से 287 तक का अध्ययन करें।

संस्कृत दिग्दर्शिका

प्रथमः
पाठः **वन्दना**

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. विश्वानि ..... आसुव।

[**शब्दार्थ– विश्वानि** = सम्पूर्ण; समस्त, **देव सवितः** = हे सूर्यदेव, **दुरितानि** = पापों को, **परासुव** = नाश कीजिए, **यद् (यत्)** = जो कुछ, **भद्रं** = कल्याणकारी हो, **तन्नः** > **तत्** + **नः** = वह हमें, **आसुव** = प्रदान कीजिए]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'वन्दना' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– हे सूर्यदेव! हमारे समस्त पापों (बुराइयों) का नाश कीजिए (और) जो कल्याणकारी हो, वह हमें प्रदान कीजिए।

2. ईशावास्यमिदं ..... धनम्।

[**शब्दार्थ– ईशा** = ईश्वर से, **वास्यम्** = व्याप्त है, **इदम** = यह, **यत् किञ्च** = जो कुछ भी, **जगत्यां** = अखिल बह्मांड में; संसार में, **जगत्** = जड़-चेतनरूप जगत्, **तयक्तेन** = त्यागपूर्वक, **भुञ्जीथा** = भोग करो, **मा गृधः** = लोभ न करो, **कस्यस्विद्** = किसका; किसी के]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इस अखिल ब्राह्मण्ड में (स्थित) जो यह चराचर जगत् है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है, (इसलिए) उस ईश्वर को साथ रखते हुए (उसका सदा-सर्वदा स्मरण करते हुए) त्यागपूर्वक (इसे) भोगो, (इसमें) आसक्त मत होओ, (क्योंकि) धन (भोग्य पदार्थ) किसका है (अर्थात् किसी का भी नहीं है)? [अथवा, किसी के भी (कस्य स्वित्) धन पर (धनम्) ललचाओ मत-किसी के धन को मत ग्रहण करो (मा गृधः)]

विशेष- आशय यह है कि सांसारिक पदार्थ नाशवान् हैं, इसलिए उनमें आसक्त न होकर ईश्वर का सदा स्मरण करते हुए त्यागपूर्वक उनका भोग करो।

3. सह नाववतु ..... विद्विषावहै।

[**शब्दार्थ– सह** = साथ-साथ, **नाववतु** > **नौ** + **अवतु** = हम दोनों की रक्षा करें, **भुनक्तु** = पालन करें, **वीर्यम्** = शक्ति को, **करवावहै** = (हम दोनों) प्राप्त करें, **तेजस्वि** = तेजोमयी, **नावधीतमस्तु** > **नौ** + **अधीतम्** + **अस्तु** = हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या हो, **मा विद्विषावहै** = हम दोनों परस्पर द्वेष न करें]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हे ईश्वर! आप हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें, साथ-साथ पालन करें, हम दोनों साथ-साथ बल प्राप्त करें, हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजोयुक्त हो (हम कहीं किसी से विद्या में परास्त न हों), हम दोनों परस्पर

(कभी) द्वेष न करें।

4. **उत्तिष्ठत ..... वरान्निबोधत।**

[शब्दार्थ– उत्तिष्ठत = उठो, **जागृत** = जागो, **प्राप्य** = प्राप्त करो, **वरान्निबोधत** = श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करो]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– (हे मनुष्यो!) उठो (उद्यम करो), जागो (सावधान रहो), श्रेष्ठ मनुष्यों के समीप जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त करो (श्रेष्ठ अनुभवी विद्वानों के पास जाकर उनसे ज्ञान अर्जित करो)।

5. **यतो यतः ..... नः पशुभ्यः।**

[शब्दार्थ– यतो यतः = जहाँ जहाँ से, **समीहसे** = चाहते हो, **ततः** = वहाँ से; उससे, **अभय** = निर्भय, **कुरु** = करो, **शन्नः** > **श** + **नः** = हमारा (नः) कल्याण (शं), **प्रजाभ्योऽभयं** > **प्रजाभ्यः** + **अभयं** = प्रजा का; सन्तान का, **पशुभ्यः** = पशुओं से]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हे प्रभो! तुम जहाँ-जहाँ से उचित समझो (अर्थात् जहाँ-जहाँ से हम पर संकट आने वाला हो) वहाँ से हमें निर्भय करो (अर्थात् हमारी रक्षा करो), हमारी सन्तान का कल्याण करो और हमें पशुओं से निर्भय करो।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'वन्दना' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में सूर्य से प्रार्थना की गई है।

व्याख्या– प्रस्तुत वैदिक मन्त्र में वैदिक ऋषि ने सूर्य से अपने समस्त पापों को नष्ट करने और जो कल्याणकारी हो उसे प्रदान करने की प्रार्थना की है। भारतीय संस्कृति में अति प्राचीनकाल से ही सूर्य की उपासना की जाती रही है। भारतीय ज्योतिष में मान्य नवग्रहों में भी सूर्य को सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त है। योग में सूर्य-स्वर और आसनों में सूर्य-नमस्कार को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गायत्री मन्त्र के द्वारा जो गायत्री की उपासना प्रचलित है, उसका भी प्रादुर्भाव सूर्य से ही माना जाता है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता के रूप में मान्य हैं। यही कारण है कि आज भी प्रचलित अनेक पर्व, त्योहार सूर्य को प्रमुख मानकर ही मनाए जाते हैं। सूर्य को प्राचीन-काल से ही सभी धर्मों सम्प्रदायों के मध्य श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है; अतः अलौकिक शक्तियों से कुछ प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले सूर्य की ही उपासना किया करते हैं।

2. **ईशावास्यमिदं सर्वं।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में ईश्वर की सर्वव्यापकता समझाई गई है।

व्याख्या– इस सूक्ति में बताया गया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर से व्याप्त है। इसके कण-कण में भगवान समाए हुए हैं। इस दृश्यमान् जगत् के जड़ और चेतन सभी तत्वों में परमपिता परमात्मा का वास है। इन सभी वस्तुओं के विषय में जानो। धन किसी का नहीं है; अतः उसके प्रति मोह मत रखो। इस जगत् में जो भी सम्पत्ति है, उसका त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए।

3. **मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में धर्मपूर्वक धनोपार्जन करने का सन्देश दिया गया है।

व्याख्या– (संसार में) आसक्त मत हो, (क्योंकि) धन किसका है (अर्थात् किसी का नहीं है) (अथवा, किसी के भी धन का लोभ न करो)।

मनुष्य भाँति-भाँति के उद्यम करके, अन्याय और अत्याचार से धन-सम्पत्ति का अर्जन करता है, सुख-भोग की सामग्री एकत्रित करता है। ये सभी पदार्थ यहीं रह जाते हैं और मनुष्य को इस संसार में खाली हाथ ही जाना पड़ता है; क्योंकि ये सभी सांसारिक पदार्थ नाशवान् हैं। इन्हें यहीं पर नष्ट होना है। मनुष्य के साथ जाने वाला कोई नहीं। इसलिए मनुष्य को सांसारिक विषयभोगों में आसक्त न होकर धर्मपूर्वक धनार्जन करना चाहिए। इससे उसकी आत्मा उन्नत बनेगी और अन्त में वह सद्गति प्राप्त कर सकेगा।

4. **सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में गुरु और शिष्य परमात्मा से अपनी रक्षा, पालन और कार्य करने हेतु सहयोग की प्रार्थना कर रहे हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में गुरु एवं शिष्य के पारस्परिक सद्भाव पर आधारित प्राचीन भावना की अभिव्यक्ति हुई है। गुरु और शिष्य दोनों परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि वे उन दोनों की ही रक्षा और पालन करें। दोनों को ही बौद्धिक पराक्रम सम्बन्धी

कार्य करने का अवसर प्रदान करें। गुरु व शिष्य दोनों में से किसी की भी यह इच्छा नहीं है कि वह इस संसार में अकेला ही सुयश का भागी बने।

5. **मा विद्विषावहै।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में परमात्मा से प्रार्थना करते हुए गुरु और शिष्य कहते हैं कि हम दोनों का जीवन सामंजस्य और सामरस्यपूर्ण हो।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में एक मंगलमय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। तात्पर्य यह है कि यदि गुरु और शिष्य परस्पर द्वेषरहित होकर सरस्वती की साधना में लगे रहेंगे तो ज्ञान-विज्ञान की प्रगति होगी और अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकेंगे। यहाँ पर द्वेष के परित्याग की भावना को बल दिया गया है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि जीवन में सामंजस्य बहुत आवश्यक है। बिना वैचारिक सामंजस्य के गुरु और शिष्य भी सम्पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते।

6. **उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रेष्ठ पुरुषों की संगति से ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया गया है।

व्याख्या– वैदिक ऋषि मनुष्यों को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि उठकर कर्मशील बनो। आलस्य में अपना अमूल्य समय न गँवाओ। साथ ही हर क्षण सतर्क रहो, जागरूक रहो; जिससे तुम प्राप्त हुए अवसर का उपयोग कर सको, विपत्तियों से बच सको और अपना अभीष्ट पा सको। यदि तुम्हें अपने कर्त्तव्य के विषय में कभी शंका उत्पन्न हो, तो अपने से अधिक बुद्धिमान, ज्ञानवान् सत्पुरुषों के पास जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त करो। तात्पर्य यह है कि जीवन की सार्थकता ज्ञान सम्पन्न होने में ही निहित है।

7. **यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि परमेश्वर से सब प्रकार के कल्याण की कामना करता हुआ निर्भय करने की प्रार्थना करता है।

व्याख्या– कवि परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! आप हमें जहाँ-जहाँ से दुर्बल समझते हो, हमें वहाँ-वहाँ से सबल बनाकर विघ्नों और कष्टों से हमारी रक्षा करके हमें दु:खों के भय से छुटकारा दिलाओ।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **वन्दनायाः प्रथम मन्त्रे का प्रार्थना कृता?**

उ०– वन्दनायाः प्रथमे मन्त्रे पापानां विनाशाय कल्याणं प्रदानाय च प्रार्थना कृता।

2. **पञ्चमे मन्त्रे का प्रार्थना कृता?**

उ०– पञ्चमे मन्त्रे ''प्रभो! अस्मान् अभयान् कुरु। अस्माकं पुत्रपौत्रादीनां पशूनाञ्च कल्याणं कुरु'' इति प्रार्थना कृता।

3. **वयं कथं जीवनं यापयेम?**

उ०– वयं लोभं त्यक्त्वा ईश्वरञ्च स्मरन्तो जीवनं यापयेम।

4. **जगति मानवः कथं वसेत्?**

उ०– जगति मानवः जगतं वसेत् ।

5. **ईशः पशुभ्यः नः किम् ददातु?**

उ०– ईशः पशुभ्यः नः भय ददातु।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **हमें बड़ों का आदर करना चाहिए।**
   अनुवाद– वयं अग्रजस्य सम्मानं कुर्याम् ।
2. **हे देव! मेरे सभी पाप दूर करो।**
   अनुवाद– भो देव! मम समस्त पापं नष्ट कुरु।
3. **हे ईश्वर! मेरे पशुओं का कल्याण करो।**
   अनुवाद– भो ईश! मम पशुभ्य कल्याणं कुरु।
4. **गुलाब का फूल सफेद है।**
   अनुवाद– पाटलपुष्प श्वेतः अस्ति।

5. **तुम्हारा क्या नाम है?**
   अनुवाद– त्वं किम् नाम: अस्ति?
6. **अध्यापक छात्र को पुस्तक देता है।**
   अनुवाद– अध्यापक: छात्राम् पुस्तकं ददाति।
7. **तुम दिल्ली में कहाँ जाओगे?**
   अनुवाद– त्वं दिल्ले कुत्र गमिष्यति।
8. **राजा ने ब्राह्मण को गाय दी।**
   अनुवाद– राजा: ब्राह्मण: गौ: ददाति।
9. **तुम दोनों निबन्ध लिखोगे।**
   अनुवाद– यूयं निबन्ध लेखिष्याव:।
10. **हम सब गीत गाते हैं।**
    अनुवाद– वयं गीतं गायाम।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्दों में नियम-निर्देश करते हुए सन्धि-विच्छेद कीजिए–**
   तन्न:, नाववतु, ईशावास्यमिदम्, प्रजाभ्योऽभयम्, वरान्निबोधत, नावधीतमस्तु।

उ०–	सन्धि पद	सन्धि-विच्छेद	नियम	सन्धि का नाम
	तन्न:	तत् + न:	त् + न = न्न	परसवर्ण सन्धि
	नाववतु	नौ + अवतु	औ + अ = आव	अयादि सन्धि
	ईशावास्यमिदम्	ईशावास्यम् + इदम्	म् + ई = मि	अनुस्वार सन्धि
	प्रजाभ्योऽभयम्	प्रजाभ्य: + अभयम्	य: + अ = ओ + ऽ	उत्व सन्धि
	वरान्निबोधत	वरान् + निबोधत	न + ब = न्न	परसवर्ण सन्धि
	नावधीतमस्तु	नौ + अधीतम + अस्तु	औ + अ = आव म + अ = म	अयादि, दीर्घ सन्धि

2. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए-**
   विश्वानि, दुरितानि, तेन, जगत, पशुभ्य:, धनम्, कस्य, जगत्याम्, सर्वं

उ०–	शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
	विश्वानि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
	दुरितानि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
	तेन	तृतीया	एकवचन
	जगत्	प्रथमा/द्वितीया	एकवचन
	पशुभ्य:	चतुर्थी/पञ्चमी	बहुवचन
	धनम्	द्वितीया	एकवचन
	कस्य	षष्ठी	एकवचन
	जगत्याम्	सप्तमी	एकवचन
	सर्वं	द्वितीया	एकवचन

3. **दिए गए शब्दों के शब्द-रूप लिखिए–**
   सर्व, जगत।

उ०– **सर्व (सब) (पुल्लिङ्ग)**

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्व:	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वै:
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य:
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य:

षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयो:	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयो:	सर्वेष्

स्त्रीलिङ्ग

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वा:
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वा:
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभि:
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य:
पञ्चमी	सर्वस्या:	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य:
षष्ठी	सर्वस्या:	सर्वयो:	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयो:	सर्वासु

नपुंसकलिङ्ग

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वै:
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य:
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य:
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयो:	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयो:	सर्वेषु

जगत् (संसार) (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	जगत्	जगती	जगन्ति
द्वितीया	जगत्	जगती	जगन्ति
तृतीया	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भि:
चतुर्थी	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य:
पञ्चमी	जगत:	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य:
षष्ठी	जगत:	जगतो:	जगताम्
सप्तमी	जगति	जगतो:	जगत्सु
सम्बोधन	हे जगत्!	हे जगती!	हे जगन्ति!

4. निम्नलिखित शब्दों के संस्कृत में दो-दो पर्यायवाची शब्द लिखिए–

विश्वः, ईश्वरः, जगत्:

उ०– विश्वः = संसार:, ब्रह्माण्ड:। **ईश्वरः** = प्रभु:, परमेश्वर:। **जगत्** = लोक:, जग:।

5. रेखांकित पदों में प्रयुक्त विभक्ति तथा उससे संबंधित नियम का उल्लेख कीजिए-

(क) <u>गृहं</u> परितः वृक्षाः सन्ति।

उ०– रेखांकित पद गृहं में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। क्योंकि अभित: (चारों ओर या सभी ओर), परित:(सभी ओर), समया (समीप), निकषा(समीप), हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर, तरफ) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

(ख) सुरेशा <u>पादेन</u> खञ्जः अस्ति।

उ०– रेखांकित पद पादेन में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। क्योंकि जिस अंग में विकार होने से शरीर विकृत दिखाई दे, उस विकारयुक्त अंग में तृतीया विभक्ति होती है।

(ग) रामः <u>लक्ष्मणेन</u> सह वनम् अगच्छत्।

उ०– रेखांकित पद लक्ष्मणेन में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि सह के योग में अप्रधान (अर्थात् जो प्रधान क्रिया के कर्ता का साथ देता है) में तृतीया विभक्ति होती है।

(घ) श्री <u>गणेशाय</u> नमः।

उ०– रेखांकित पद श्रीगणेशाय में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि नम: (नमस्कार), स्वस्ति (कल्याण), स्वाहा

(आहुति), स्वधा (बलि), अलं(समर्थ, पर्याप्त), (आहुति) इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

(ङ) राज्ञः पुत्रः।

उ०– रेखांकित पद राज्ञ: में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जहाँ स्वामी तथा सेवक, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारक इत्यादि के मध्य कोई संबंध दिखाए जाते हैं, वहाँ षष्ठी विभक्ति होती है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

द्वितीयः पाठः

प्रयागः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. भारतवर्षस्य ..... प्रत्यगच्छत्।

[**शब्दार्थ– विशिष्टं स्थानम्** = विशेष स्थान, **ब्रह्मणः** = ब्रह्म के द्वारा, **प्रकृष्टयागकरणात्** = श्रेष्ठ यज्ञ करने के कारण, **सितासितजले > सित + असित + जले** = श्वेत और श्याम जल में अर्थात् गंगा और यमुना के जल में, **विगतकल्मषाः** = पापरहित्, **अमायाम्** = अमावस्या में, **पौर्णमास्याम्** = पूर्णमासी में, **सम्मर्दः** = भीड़, **उषित्वा** = रहकर, **आत्मानम्** = स्वयं को, **पावयन्ति** = पवित्र करते हैं, **प्रत्यगच्छत्** = वापस चला जाता या लौट जाता था]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'प्रयाग:' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश राज्य में प्रयाग का विशेष स्थान है। यहाँ ब्रह्मा द्वारा किए गए श्रेष्ठ यज्ञ के कारण इसका नाम प्रयाग (प्र + याग = प्रकृष्ट यज्ञ) पड़ा। गंगा-यमुना के संगम पर श्वेत-श्याम जल में स्नान करके मनुष्य पापरहित हो जाते हैं, ऐसा लोगों का विश्वास है। अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति पर यहाँ स्नान करने वालों की बड़ी भीड़ होती है। प्रति वर्ष माघ-मास में सूर्य के मकर राशि में स्थित होने पर यहाँ लाखों लोग आते हैं और एक महीने (तक) रहकर संगम के पवित्र जल से एवं विद्वानों-महात्माओं के उपदेशरूपी अमृत से अपने आपको पवित्र करते हैं। इसी पर्व (त्योहार) पर महाराज श्रीहर्ष (हर्षवर्द्धन) प्रत्येक पाँचवें वर्ष यहाँ आकर माँगने वालों को अपना सर्वस्व (सब कुछ) दान में देकर मेघ (बादल) के सदृश पुन: (धन) इकट्ठा करने के लिए अपनी राजधानी को लौट जाते थे।

2. ऋषेः भरद्वाजस्य ..... अगच्छत्।

[**शब्दार्थ– दशसहस्रमिताः** = दस हजार, **अधीतिनः** = अध्ययन करने वाले, **वस्तव्यम्** = बसना चाहिए; **निवास करना चाहिए, प्रष्टुम्** = पूछने के लिए, **अत्रैव > अत + एव** = यहीं, **त्वन्निवासयोग्यम् > त्वत् + निवास-योग्यम्** = तुम्हारे रहने योग्य, **तेनादिष्टः > तेन + आदिष्टः** = उनके आदेश पाकर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– भरद्वाज ऋषि का आश्रम भी यहीं है। यहाँ प्राचीनकाल में दस हजार विद्यार्थी पढ़ते थे। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए पुरुषोत्तम (पुरुषों में श्रेष्ठ) श्रीराम अयोध्या से वन को जा रहे थे तो 'मुझे कहाँ निवास करना चाहिए' यह पूछने के लिए (वे) यहीं भरद्वाज (ऋषि) के पास आए। 'चित्रकूट ही तुम्हारे रहने योग्य उपयुक्त स्थान है', ऐसी उनसे आज्ञा पाकर सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम चित्रकूट गए।

3. पुरा वत्सनामकमेकं ..... दुर्गेः सुरक्षितः।

[**शब्दार्थ– पुरा** = पुराने समय में, **वत्सनामकमेकम्** = वत्स नामक एक, **समृद्धं** = समृद्धिशाली, **इतः** = यहाँ से, **नातिदूरेऽवर्तत > न + अतिदूरे + अवर्तत** = बहुत दूर नहीं, **अप्रतिमसुन्दरः** = अद्वितीय सुन्दर, **ललितकलाभिज्ञश्चासीत् > ललितकला + अभिज्ञः + च + आसीत्** = और ललित कलाओं के जानकार थे, **ध्वंसावशेषाः** = खण्डहर, **ख्यापयन्ति** = प्रकट करते हैं, **कौशाम्ब्यामेव > कौशाम्बया + एव** = कौशाम्बी में ही, **स्वशिलालेखमकारयत् > स्व-शिलालेखम् + अकारयत्** = अपना शिलालेख बनवाया, **योऽधुना > यः + अधुना** = जो अब]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– प्राचीनकाल में वत्स का नाम एक समृद्ध (धन-धान्य सम्पन्न) राज्य था। इसकी राजधानी 'कौशाम्बी' यहाँ से थोड़ी ही दूर थी। इस राज्य के शासक महाराज उदयनवीर, अत्यधिक सुन्दर और ललित कलाओं के मर्मज्ञ (पारखी) थे। यमुना के किनारे आधुनिक 'सुजावन' (नामक) ग्राम में उनके -सुयामुन' (नामक) महल के खण्डहर उनके सौन्दर्य-प्रेम को प्रकट

करते हैं। प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने कौशाम्बी में ही अपना शिलालेख लिखवाया था, जो अब कौशाम्बी से लाकर प्रयाग के किले में सुरक्षित (रखा गया) है।

4. गङ्गाया ..... अतिमहत्त्वपूर्णमस्ति।

[**शब्दार्थ– पुरूरवसः** = पुरुरवा की, **अद्यापि** = आज भी, **विदुषाम्** = विद्वानों की, **स्थित्या** = रहने से; निवास से, **अक्षुण्णैव** > **अक्षुण्ण** + **एव** = अखण्डित ही है, **दुष्करम** = कठिन, **विज्ञाय** = जानकर, **दुर्गमकारयत्** > **दुर्गम्** + **अकारयत** = किला बनवाया, **गङ्गा-प्रवाहाच्चास्य** > **गङ्गाप्रवाहात्** + **च** + **अस्य** = और गंगा के प्रवाह से इसकी, **बन्धमप्यकारयत्** > **बन्धम्** + **अपि** + **अकारयत्** = बाँध भी बनवाया, **सुदृढ़म** = अत्यन्त मजबूत]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– गंगा के पूर्व की ओर पुराणों में प्रसिद्ध महाराज पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर, आजकल झूँसी नाम से प्रसिद्ध है। इसका गौरव आज भी विद्वानों और महात्माओं के निवास से अखण्डित है (अर्थात कम नहीं हुआ है)।

इतिहास में प्रसिद्ध, नीतिकुशल अकबर नामक मुगल शासक ने दिल्ली से बहुत दूर पूर्व दिशा में स्थित कड़ा और जौनपुर नामक धन-धान्यसम्पन्न राज्यों की देखभाल कठिन जानकर, उन दोनों (राज्यों) के बीच प्रयाग में गंगा और यमुना से घिरा हुआ एक दृढ़ (मजबूत) किला बनवाया और गंगा के प्रवाह (धारा) से उसकी रक्षा के लिए एक विशाल बाँध का भी निर्माण कराया, जो आज भी नगर(प्रयाग) और गंगा के बीच में सीमा के सदृश स्थित है। इसी (अकबर) ने अपने 'इलाही' धर्म के अनुसार प्रयाग का नाम (बदलकर) 'इलाहाबाद' कर दिया। यह किला अत्यधिक विशाल, मजबूत और सुरक्षा की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

5. भारतस्य ..... वर्द्धयति।

[**शब्दार्थ– आजादोपनामकश्चन्द्रशेखरः** > **आजाद** + **उप-नामकः** + **चन्द्रशेखरः** = 'आजाद' उपनाम वाला चन्द्रशेखर अर्थात चन्द्रशेखर आजाद, **क्रीडास्थली** = क्रीडा-भूमि, **कर्मभूमिश्च** > **कर्मभूमिः** + **च** = और कर्मभूमि, **अनेकसहस्रसंख्यैः** = हजारों; **परिवृतः** = घिरा हुआ, **विविधविद्यापारङ्गतैः** = विविध विद्याओं में पारंगत, **विद्वद्वरेण्यैः** = श्रेष्ठ विद्वानों से, **न्यायप्राप्तेरधिकारघोषणामिव** > **न्याय-प्राप्तेः** + **अधिकार-घोषणाम्** + **इव** = मानों न्याय-प्राप्ति के अधिकार की घोषणा-सा, **कुर्वन्** = करता हुआ]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– यह नगर भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमुख केंद्र था। श्री मोतीलाल नेहरू, महामना मदनमोहन मालवीय, चन्द्रशेखर आजाद तथा स्वतन्त्रता-संग्राम के अन्य सैनिकों ने इसी पवित्र भूमि पर निवास करके आंदोलन का संचालन किया था। राष्ट्रनायक पण्डित जवाहर लाल नेहरू की यह क्रीड़ा स्थली एवं कर्मभूमि है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में लगा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन यही स्थित है और हजारों की संख्या में देशी-विदेशी छात्रों से घिरा, विविध-विधाओं में निष्णात, श्रेष्ठ विद्वानों से सुशोभित, प्रयाग विश्वविद्यालय भरद्वाज (ऋषि) के प्राचीन गुरुकुल के नवीन रूप की भाँति शोभित है। इस स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक नागरिक के न्याय-प्राप्ति के अधिकार की मानो घोषणा करता हुआ उच्च न्यायालय इस नगर की प्रतिष्ठा बढ़ा रहा है।

6. एवं गङ्गा यमुना ..... शरीरबन्धः॥

[**शब्दार्थ– महिमानम् वर्णयन्** = महिमा का वर्णन करते हुए, **समुद्रपत्न्योः** = समुद्र की दोनों पत्नियों अर्थात् गंगा और यमुना के, **जलसन्निपाते** = जल के संगम पर, **पूतात्मनाम्** > **पूत** + **आत्मनाम्** = पवित्र आत्मा वाले, **अभिषेकात्** = स्नान करने से, **तत्त्वावबोधेन** > (**तत्त्व** + **अवबोधेन**) = तत्त्वज्ञान की प्राप्ति से, **भूयस्** = पुन; फिर, **तनुत्यजयाम्** = शरीर त्यागने वाले को, **शरीरबन्धः** = शरीर का बन्धन]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इस प्रकार गंगा-यमुना-सरस्वती के पवित्र संगम पर स्थित, भारतीय संस्कृति के केन्द्र (इस नगर) की महिमा का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने सत्य ही कहा था-

निश्चय ही यहाँ समुद्र की पत्नियों (अर्थात् गंगा-यमुना) के जल-संगम में स्नान करने से पवित्र आत्मा वाले मनुष्यों को शरीर त्यागने पर तत्वज्ञान के बिना भी पुनः शरीर के बन्धन में नहीं बँधना पड़ता (अर्थात् उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है)।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. महात्मनामुपदेशाभृतेन च आत्मानं पावयन्ति।

उ०– सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'प्रयागः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में महात्माओं के उपदेशों को अमृततुल्य बताया गया है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में विद्वानों और महात्माओं के उपदेशों को अमृततुल्य बताया गया है, जिसको सुनने से लोग पवित्र हो जाते हैं। आशय यह है कि श्रेष्ठजनों के उपदेश हमारे लिए जीवनदायी होते हैं। सामान्य अवस्था में भी देखा जाता है कि किसी समस्या में फँस जाने पर, जब व्यक्ति की बुद्धि स्वयं उससे निकलने का मार्ग नहीं खोज पाती तब वह व्यक्ति अपने माता-पिता, श्रेष्ठ, गुरुजनों आदि से परामर्श करता है ओर उनसे समस्या से निवृत्त होने का मार्ग पूछता है तथा उनके सुझाए गए मार्ग का अनुसरण करने पर समस्या से मुक्ति भी पाता है। महाभारत में भी जब यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न करता है कि ''मार्ग(उचित) कौन-सा है?'', तब युधिष्ठिर उत्तर देते हैं कि ''**महाजनो येन गतः स पन्था**'', अर्थात् महान् (श्रेष्ठ व्यक्ति) जिस मार्ग का अनुसरण करें, वहीं श्रेष्ठ मार्ग है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महिलाओं-श्रेष्ठजनों के उपदेश अमृततुल्य होते हैं, जीवनदायी होते हैं; क्योंकि वे हमें उचित मार्ग का निर्देश करते हैं।

2. प्रियदर्शी सम्राट अशोकः।

उ०– सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– कौशाम्बी से प्रयाग से लाए गए अशोक के शिलालेख के परिचय में सम्राट् अशोक के सन्दर्भ में यह सूक्ति वाक्य कहा गया है।

व्याख्या– सम्राट् अशोक एक धीर-वीर सम्राट् होने के साथ-साथ प्रजावत्सल भी थे। वे सदैव जन-कल्याण के विषय में सोचते थे और उसी के दृष्टिगत अपनी योजनाएँ बनाते और क्रियान्वित करते थे। इसीलिए उनको प्रियदर्शी सम्राट् कहा जाता था।

3. तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस् तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः।

उ०– सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में प्रयाग में गंगा-स्नान के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– प्रयाग में गंगा-यमुना का संगम है। इन नदियों के जल में स्नान करने से आत्मा पवित्र होती है। यद्यपि मोक्ष-प्राप्ति के लिए तत्वज्ञान का होना आवश्यक होता है तथापि प्रयाग ऐसी पवित्र भूमि है कि यहाँ बिना तत्त्वज्ञान के भी शरीर त्यागने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा जीव को जन्म-मरण के बन्धन में मुक्ति मिल जाती है। मुक्ति के लिए कहा गया है कि '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**', अर्थात् ज्ञान से ही मुक्ति होती है; जब कि प्रयाग में केवल गंगा में स्नान करने मात्र से ही मुक्ति हो जाती है।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. प्रयागस्य नाम 'प्रयागः' इति कथम् अभवत्?

उ०– ब्रह्मणः 'प्रकष्टयागकरणात्' अस्य नाम प्रयागोऽभवत्।

2. प्रयागः कस्मिन् राज्ये स्थितः अस्ति?

उ०– प्रयागः उत्तर प्रदेशस्य राज्य स्थितः अस्ति।

3. ऋषेः भरद्वाजस्य आश्रमः कुत्रास्ति?

उ०– ऋषेः भरद्वाजस्य आश्रमः प्रयागेऽस्ति।

4. मकरं गते सूर्ये माघमासे जनाः कुत्र आयान्ति?

उ०– मकरं गते सूर्ये माघमासे जनाः प्रयागम् आयान्ति।

5. रामः सीतया लक्ष्मणेन च सह कुत्र अगच्छत्?

उ०– रामः सीतया लक्ष्मणेन च सह चित्रकूटम् अगच्छत्।

6. गङ्गायमुनयोः सङ्गम कुत्रास्ति?

उ०– गङ्गायमुनयोः सङ्गम प्रयागेऽस्ति।

7. प्रयागस्य नाम 'इलाहाबाद' इति कः अकरोत्?

उ०– मुगलशासकः अकबरः स्वकीस्य 'इलाही' इति धर्मास्यानुसारेण प्रयागस्य 'इलाहाबाद' इति नाम अकरोत्।

8. प्रयागस्य दुर्गं बन्धञ्च अकारयत्?

उ०– दिल्ल्याः सुदूरे पूर्वस्यां दिशि स्थितयोः कडाजौनपुरनामकयोः राज्ययोः निरीक्षणं दुष्करं विज्ञाय अकबरनाम्नः मुगलशासकः दुर्ग बन्धञ्च अकारयत्।

9. कस्य राजधानी कौशाम्बी आसीत्?

उ०– कौशाम्बी वत्सराज्यस्य राजधानी आसीत्।

10. किं नगरं भारतस्य स्वतन्त्रतान्दोलनस्य प्रधानकेन्द्रम् आसीत्?

उ०– प्रयागनगरम् भारतस्य स्वतन्त्रान्दोलनस्य प्रधानकेन्द्रम् आसीत्।

11. प्रतिष्ठानपुरं वर्तमाने केन नाम्मा प्रसिद्धमस्ति?

उ०– प्रतिष्ठानपुरं वर्तमाने झूँसी नाम्ना प्रसिद्धमस्ति।

12. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनं कुत्र वर्तते?

उ०– हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनं प्रयागे वर्तते।

13. प्रयागः कस्य राष्ट्रनायकस्य क्रीडास्थली कर्मभूमिश्चासीत्?

उ०– प्रयागः राष्ट्रनायकस्य पण्डित जवाहरलालस्य क्रीड़ास्थली कर्मभूमिश्चासीत्।

14. चन्द्रशेखरस्य उपनाम् किम् आसीत्।

उ०– चन्द्रशेखरस्य उपनाम 'आजाद' इति आसीत्।

15. प्रियदर्शी सम्राट् अशोकः स्वशितालेखं कुत्र अकारयत्?

उ०– प्रियदर्शी सम्राट् अशोकः स्वशिलालेखं कौशाम्ब्याम् अकारयत्।

16. प्रयागे स्नानार्थिनां महान् सम्मर्दः कदा भवति।

उ०– प्रयागे स्नानार्थिनां महान् सम्मर्दः अमायां, पौर्णमास्यां, सङक्रान्तौ च भवति।

17. महाराजः श्रीहर्ष कुत्र आगत्य सर्वस्वमेव याचकेभ्यः अददात्?

उ०– महाराजः श्रीहर्षः प्रयागे आगत्य सर्वस्वमेव याचकेभ्यः अददात्।

18. वत्सराजस्य शासकः कः आसीत्?

उ०– वत्सराज्य शासकः महाराजः उदयनः आसीत्।

19. उत्तरप्रदेशस्य उच्चन्यायालयः कुत्र अस्ति?

उ०– उत्तरप्रदेशस्य उच्चन्यायालयः प्रयोग अस्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. प्रयाग उत्तरप्रदेश राज्य में स्थित है।
अनुवाद– प्रयागः उत्तरप्रदेशे राज्ये स्थितोऽस्ति।

2. यह शिक्षा और संस्कृति का प्रधानकेन्द्र है।
अनुवाद– अयं शिक्षायाः संस्कृतेश्च प्रधानकेन्द्रमस्ति।

3. पुरुषोत्तम राम यहाँ आए थे।
अनुवाद– पुरुषोत्तमः श्रीरामोऽत्रागतः।

4. यहाँ पर गंगा और यमुना का संगम है।
अनुवाद– अत्रैव गंङ्गायमुनयोः सङ्गमोऽस्ति।

5. ऋषि भारद्वाज का आश्रम प्रयाग में था।
अनुवाद– ऋषि भारद्वाजस्य आश्रमः प्रयागे आसीत।

6. राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में संलग्न हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग में स्थित है।
अनुवाद– राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचारे संलग्नं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनं प्रयागे स्थितम्।

7. आज हमारे विद्यालय की छुट्टी है।
अनुवाद– अद्य अस्माकं विद्यालये अवकाशः अस्ति।

8. हमारे विद्यालय के चारों ओर सुंदर बगीचा है।
अनुवाद– अस्माकं विद्यालयः पारितः सुन्दरः उपवनः अस्ति।

9. महाराज उदयन वीर, सुंदर और ललित कलाओं के ज्ञाता थे।
अनुवाद– महाराजः उदयनः वीरः, सुन्दरः ललितकलाभिज्ञश्चासीत् ।

10. राम पिता की आज्ञा का पालन कर वन को गए।
अनुवाद– रामः पितृस्य आज्ञाया पालनं वनम् अगच्छत्।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए-
प्रयागस्य, कौशाब्याः, यमुनाभ्याम, सीतया, जलेन, रक्षणाय, विदुषां, नागरिकाणां, सङ्गमें, पवित्रेण, नाम्ना, राज्ये

उ०–	शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
	प्रयागस्य	षष्ठी	एकवचन

कौशाम्ब्याः	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
यमुनाभ्याम्	चतुर्थी/पञ्चमी/षष्ठी	द्विवचन
सीतया	तृतीया	एकवचन
जलेन	तृतीया	एकवचन
रक्षणाय	चतुर्थी	एकवचन
विदुषां	षष्ठी	बहुवचन
नागरिकाणां	षष्ठी	बहुवचन
सङ्गमें	सप्तमी	एकवचन
पवित्रेण	तृतीया	एकवचन
नाम्ना	तृतीया	एकवचन
राज्ये	सप्तमी	एकवचन

2. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा नियम भी बताइए-

उपदेशामृतेन, प्रत्यगच्छत, योऽधुना, सितासित, सौन्दर्यानुरागम्, मासमेकमुषित्वा, अस्यामेव, इत्यकरोत्, रूपमिव।

उ०–	**सन्धि पद**	**सन्धि विच्छेद**	**नियम**	**सन्धि का नाम**
	उपदेशामृतेन	उपदेश +अमृतेन	अ + अ = आ	दीर्घ सन्धि
	प्रत्यगच्छत्	प्रति + अगच्छत्	इ + अ = य	यण सन्धि
	योऽधुना	यः + अधुना	: + अ = ो ऽ	उत्व सन्धि
	अत्रैव	अत + एव	अ + ए = ै	वृद्धि सन्धि
	सितासित	सित + आसित	अ + अ = आ	दीर्घ सन्धि
	सौन्दर्यानुरागम्	सौन्दर्य + अनुरागम्	अ + अ = आ	दीर्घ सन्धि
	मासमेकमुषित्वा	मासम् + एकम् + उषित्वा	म + ए = में, म + उ = मु	अनुस्वार सन्धि
	अस्यामेव	अस्याम् + एव	म + ए = मे	अनुस्वार सन्धि
	इत्यकरोत्	इति + अकरोत	इ + अ = य	यण सन्धि
	रूपमिव	रूपम + इव	म + इ = मि	अनुस्वार सन्धि

3. निम्नलिखित के रेखांकित पदों में नियम-निर्देशपूर्वक विभक्ति लिखिए-

(क) <u>वृक्षेभ्यः</u> फलानि पतन्ति।

उ०– रेखांकित पद वृक्षेभ्यः में पञ्चमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है, क्योंकि स्वयं से अलग करने वाले अर्थात् ध्रुव (मूल) में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे-वृक्ष से पत्ते गिरते हैं।

(ख) <u>सूर्याय</u> स्वाहा।

उ०– रेखांकित पद सूर्याय में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है, क्योंकि नमः (नमस्कार), स्वस्ति (कल्याण), स्वाहार (आहुति), स्वधा(बलि), अलं (समर्थ, पर्याप्त) वषट् (आहुति) इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

(ग) <u>अश्वेषु</u> श्वेतः श्रेष्ठः।

उ०– रेखांकित पद अश्वेषु में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है, क्योंकि जहाँ बहुतों में से किसी एक को छाँटा जाए, वहाँ जिनमें से छाँटा जाए उसमें षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं।

(घ) सः <u>मया</u> सह कदानि न गच्छन्ति।

उ०– रेखांकित पद मया में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जो बात और विभक्तियों के आधार पर नहीं बताई जा सकती, उसको बताने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। ये बातें संबंध विशेष को प्रदर्शित करने वाली होती हैं।

(ङ) माधवी <u>विद्यालयं</u> प्रति याति।

उ०– रेखांकित पद विद्यालयं में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है, क्योंकि अभितः (चारों ओर या सभी ओर), परितः (सभी ओर), समया (समीप), निकषा(समीप), हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर, तरफ) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

4. निम्नलिखित धातुओ के लोट्लकार (आज्ञासूचक) के रूप लिखिए–

उ०– **स्था लोट्लकार (आज्ञासूचक)**

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु

मध्यम पुरुष	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठेत
उत्तम पुरुष	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठ

पिब लोट्लकार (आज्ञासूचक)

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
मध्यम पुरुष	पिब	पिबतम्	पिबत
उत्तम पुरुष	पिबानि	पिबाव	पिबाम

चुर लोट्लकार (आज्ञासूचक)

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	चोरयतु, चोरयतात्	चोरयताम्	चोरयन्तु
मध्यम पुरुष	चोरय, चोरयतात्	चोरयतम्	चोरयत
उत्तम पुरुष	चोरयानि	चोरयाव	चोरयाम

पाठ्येतर सक्रियता—

छात्र स्वयं करें।

तृतीयः

पाठः

सदाचारोपदेशः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न—

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए-

1. **संगच्छध्वं ..... उपासते।**

   [**शब्दार्थ– संगच्छध्वं** = साथ-साथ चलो, **संवदध्वम्** = साथ-साथ बोलो, **सं वो मनांसि जानताम् > वो मनांसि सञ्जानताम्** = अपने मनों को मिलकर जानो, **भागं** = (अपने) कर्त्तव्य कर्म के अंशों को, **सञ्जनानां** = ज्ञानपूर्वक, **उपासते** = पूजा करते थे]

   सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सदाचारोपदेशः' नामक पाठ से उद्धृत है।

   अनुवाद– मिलकर चलो (अर्थात् मिलकर कार्य करो)। मिलकर बोलों (अर्थात् काम करने से पहले परस्पर परामर्श करो) तुम सब लोग अपने मनों को मिलकर जानों (अर्थात् आपस में विचारों की एकता स्थापित करो)। जिस प्रकार प्राचीनकाल में देवगण आपस में मिल-जुलकर तथा एक स्थान पर बैठकर (अर्थात् परस्पर परामर्शपूर्वक) अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म के अंश को करते थे(वैसे ही मिल-जुलकर तुम लोग भी करो)।

2. **कुर्वन्नेवेह..... लिप्यते नरे।**

   [**शब्दार्थ– कुर्वन्नेवेह > कुर्वन + एव् + एह** = इस संसार में कर्म करते हुए ही, **जिजीविषेच्छतं समाः > जिजीविषेत् + शतम् + समाः** = सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे, **एवं** = इस प्रकार, **नान्यथेतोऽस्ति > न + अन्यथा + इतः + अस्ति** = इससे अलग नहीं है]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   अनुवाद– (मनुष्य को) इस संसार में (शास्त्रानुकूल) त्यागपूर्वक कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस प्रकार (धर्मानुसार त्यागपूर्वक कर्म करने से) मनुष्य कर्मों में लिप्त नहीं होता। इसे छोड़ (कर्म-बन्धन से बचने का) अन्य कोई (उपाय) नहीं है।

3. **आचाराल्लभते ..... चेह च।**

   [**शब्दार्थ– आचाराल्लभते > आचारात् + लभते** = सदाचार से प्राप्त करता है, **ह्यायुः > हि + आयुः** = आयु को, **श्रियम्** = धन को, **प्रेत्य** = मृत्यु के बाद परलोक में, **चेह > च + इह** = और इस लोक में]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   अनुवाद– सदाचार से मनुष्य (लम्बी) आयु प्राप्त करता है, सदाचार से लक्ष्मी (धन) प्राप्त करता है, सदाचार से इस लोक और परलोक में कीर्ति (यश) प्राप्त करता है।

4. ये नास्तिका ..... गतायुषः।

[**शब्दार्थ– नास्तिकाः** = ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करने वाले, **निष्क्रियाः** = आलसी, **गुरुशास्त्रातिलङ्घनः** > **गुरु-शास्त्र** + **अतिलङ्घनः** = गुरु और शास्त्रों का उल्लघंन करने वाले, **गतायुषः** = कम आयु वाले]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– जो मनुष्य ईश्वर को न मानने वाले, आलसी, गुरु और शास्त्रों के वचनों का उल्लंघन करने वाले, धर्मविहीन एवं दुराचारी होते हैं, उनकी आयु कम हो जाती है और वे मरे हुए के समान होते हैं।

5. ब्राह्मे मुहूर्ते ..... कृताञ्जलिः।

[**शब्दार्थ– बुध्येत** = जागना चाहिए, **चानुचिन्तयेत्** > **च** + **अनुचिन्तयेत्** = और चिन्तन करना चाहिए, **उत्थायाचम्य** > **उत्थाय** + **आचम्य** = उठकर और आचमन करके, **कृताञ्जलिः** = हाथ जोड़कर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– (मनुष्य को) ब्राह्ममुहूर्त में (सूर्योदय के समय के एक घण्टे पूर्व) जाग जाना चाहिए। धर्म कर्त्तव्य और धन(आय के साधनों) का चिन्तन करना चाहिए। (फिर शय्या से) उठकर तथा आचमन (कुल्ला) करके, हाथ जोड़कर पूर्व सन्ध्या (प्रातः सन्ध्या) के लिए बैठ जाना चाहिए।

6. अक्रोधनः ..... जीवति।

[**शब्दार्थ– अक्रोधनः** = क्रोध न करने वाला, **सत्यवादी** = सत्य बोलने वाला, **भूतानामविहिंसक** > **भूतानाम्** + **अविहिंसक** = जीवों की हिंसा न करने वाला, **अनसूयुः** = निन्दा न करने वाला, **अजिह्मः** = कुटिलता से रहित; सरलचित्त]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– क्रोध न करने वाला, सत्य बोलने वाला, जीवों की हिंसा न करने वाला, दूसरों से ईर्ष्या न करने वाला एवं कुटिलता से रहित (सरलचित्त) व्यक्ति सौ वर्ष तक जीता है (अर्थात् दीर्घायु होता है)।

7. अकीर्तिं विनयो ..... हन्त्यलक्षणम्।

[**शब्दार्थ– अकीर्तिम्** = अपयश को, **हन्त्यनर्थं** > **हन्ति** + **अनर्थम्** = अनर्थ का नाश करता है, **हन्त्यलक्षणम्** > **हन्ति** + **अलक्षणम्** = दोषों या बुरे लक्षणों का नाश करता है]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– विनम्रता अपयश को नष्ट करती है, पराक्रम (पुरुषार्थ) अनर्थ (आपत्ति) को नष्ट करता है। क्षमाशीलता सदा क्रोध को नष्ट करती है और सदाचरण (समस्त) अशुभों को नष्ट कर देता है।

8. अभिवादनशीलस्य ..... यशो बलम्।

[**शब्दार्थ– अभिवादनशीलस्य** = अभिवादन करने की आदत वाले का, **वृद्धोपसेविनः** > **वृद्ध** + **उपसेविनः** = वृद्धों की सेवा करने वाले का, **वर्द्धन्ते** = बढ़ते हैं]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– (अपने बड़ों को) प्रणाम करने वाले तथा नित्य बड़े-बूढ़ों की सेवा करने वाले की आयु, विद्या, यश और बल-इन चारों की (उत्तरोत्तर) वृद्धि होती है।

9. वृत्तं यत्नेन ..... हतो हतः।

[**शब्दार्थ– वृत्तं** = आचरण या चरित्र, **वित्तमायाति** > **वित्तम** + **आयाति** = धन आता है, **याति** = चला जाता है, **अक्षीणः** = हानि न होना, **वित्ततः** = धन से, **वृत्ततस्तु** > **वृत्ततः** + **तु** = किन्तु चरित्र से, **हतोहतः** > **हतः**+ **हतः** = मरे हुए के समान]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– चरित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, (क्योंकि) धन तो आता-जाता रहता है। धन नष्ट होने से व्यक्ति की कोई (विशेष) हानि नहीं होती, किन्तु चरित्र नष्ट होने से व्यक्ति मरे हुए के समान हो जाता है।

विशेष– अंग्रेजी की सूक्ति से तुलनीय-If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, if character is lost everything is lost.

10. सत्येन रक्ष्यते ..... वृत्तेन रक्ष्यते।

[**शब्दार्थ– रक्ष्यते** = रक्षा की जाती है, **योगेन** = (निरन्तर) प्रयोग से, **मृजया** = स्वच्छता; सफाई से, **वृत्तेन** = चरित्र से]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद- सत्य से धर्म की रक्षा होती है, प्रयोग (निरन्तर अभ्यास) से विद्या की रक्षा होती है, स्वच्छता से रूप की रक्षा होती है, (और) चरित्र से कुल की रक्षा होती है।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

1. **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**

   सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सदाचारोपदेश' नामक पाठ से अवतरित है।

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में पारस्परिक एकता का भाव विकसित करने पर बल दिया गया है।

   व्याख्या– इस संसार में प्राप्ति अथवा उपलब्धि की दृष्टि से सभी फल ईश्वराधीन हैं। इसलिए व्यक्ति को मन, वचन और कर्म से एक-दूसरे का साथ देना चाहिए, क्योंकि संसार के सभी प्राणी उसी एक परमात्मा के अंश है। अत: हमें एक-दूसरे के हित में सहभागी होते हुए, एक-दूसरे के साथ मधुर वाणी का प्रयोग करते हुए और एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए, पारस्परिक एकता की भावना का विकास करना चाहिए। किसी से ईर्ष्या-द्वेष का भाव रखना अथवा स्वार्थवश केवल अपने ही हित का चिन्तन करते रहना हमारी अज्ञानता का ही परिचायक है।

2. **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   अनुवाद– प्रस्तुत सूक्ति में निष्काम भाव से कार्य करने की प्रेरणा दी गई है।

   व्याख्या– इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। बिना कर्म किए, आलसी जीवन जीना व्यर्थ है, किन्तु कर्म भी अनासक्त भाव से करना चाहिए। उसमें फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। फल की आसक्ति के बिना कर्म करने वाला मनुष्य निश्चय ही दीर्घायुष्य को प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति को सांसारिक मोह-माया के झूठे छल-प्रपंच अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते।

3. **आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सदाचार के सुपरिणाम बताए गए है।

   व्याख्या– सदाचार से व्यक्ति दीर्घ आयु प्राप्त करता है (क्योंकि बुरी आदतों से ही व्यक्ति का स्वास्थ्य नष्ट होता है)। सदाचारी का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तो उसकी आयु बढ़ना स्वाभाविक है। सदाचार से व्यक्ति धनार्जन करता है, क्योंकि सदाचारी का हर व्यक्ति विश्वास कर सकता है। इसलिए वह धनोपार्जन का जो भी साधन अपनाता है, उसमें उसे सभी का सहयोग मिलता है। फलत: धनार्जन में सुविधा होती है। इसके साथ ही अच्छे आचार-विचार के कारण वह व्यसनों में भी धन नहीं फूँकता। सदाचारी की सर्वत्र प्रशंसा होने से उसे इस लोक में तो यश मिलता ही है और सदाचार के कारण पुण्यसंचय होने से उसे परलोक में भी शाश्वत शांति प्राप्त होती है।

   विशेष– सदाचरण से इहलोक और परलोक दोनों सँवरते हैं, इसलिए सभी को सदाचारी बनाना चाहिए। आचारहीन व्यक्ति को तो वेद भी पवित्र नहीं करते- '**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**'

4. **आचारात् कीर्तिमाप्नोति।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सदाचार के सुपरिणाम बताए गए हैं।

   व्याख्या– सदाचार मनुष्य का एक महत्वपूर्ण गुण है। इससे उसे अनेक लाभ होते हैं। सदाचारी मनुष्य सभी के साथ अच्छा व्यवहार करता है। फलस्वरूप उसे सभी का आशीर्वाद प्राप्त होता है, जिससे उसे दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। सदाचार से मनुष्य धन भी प्राप्त करता है, क्योंकि सदाचार के कारण समाज में उसका सम्मान होता है तथा अन्य व्यक्ति उसके कथन पर विश्वास करते हैं। वह इस संसार में भी यश पाता है तथा मरकर परलोक में भी कीर्ति प्राप्त करता है। कीर्ति की सभी लोग कामना करते हैं। अपयश के पात्र का सर्वत्र मरण ही होता है और कीर्ति सम्पन्न मनुष्य सदा जीवित रहता है। कहा भी गया है— ''**कीर्तियस्य स जीवति।**'' अत: प्रत्येक व्यक्ति को सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।

5. **अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   अनुवाद– जो लोग धर्मविहीन और दुराचारी होते हैं, उनकी आयुष्य कम हो जाती है। वस्तुत: धर्म ही मनुष्य को पाप करने से रोकता है। जिस व्यक्ति के मन से धर्म का भय निकल जाता है, वह किसी भी प्रकार का अनाचरण करने से नहीं हिचकता। सबसे पहले उसकी प्रवृत्ति दुर्व्यसनों में होती है, जिससे वह स्वयं को नष्ट कर लेता है और दूसरों को कष्ट देने से उनके

अभिशाप से तेजोहीन हो जाता है। इस प्रकार अन्ततः बल, बुद्धि और तेज से हीन होकर वह नष्ट हो जाता है। अतः दीर्घायुष्य प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को धर्मज्ञ और सदाचारी होना चाहिए। कहा भी गया है– **''आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।''**

6. अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कहा गया है कि क्रोधरहित, सत्यवादी, अहिंसक, निन्दा न करने वाला तथा सरल प्रकृति का व्यक्ति दीर्घायु होता है।

व्याख्या– क्रोध मनुष्य का परम शत्रु है। क्रोधी व्यक्ति न केवल दूसरों का मन दुखाता है; अपितु वह अपनी भी हानि करता है। क्रोधी व्यक्ति समाज में आदर और प्रेम से वंचित हो जाता हैं। उसके स्वभाव के कारण अपने भी पराए हो जाते हैं। क्रोध स्वास्थ्य की भी हानि करता है। सत्य और अहिंसा महान् गुण हैं। सत्य का पालन मन, वचन और कर्म से करना चाहिए। सत्य बात को गोपनीय रखना भी असत्य बोलने के समान ही है। अहिंसा परम धर्म है। इसका पालन भी मन, वचन और कर्म से करना चाहिए। नीच प्रकृति वाले व्यक्ति दूसरे की निन्दा करते हैं, वे उसके गुणों में भी दोष ढूँढ़ते हैं। पर निन्दा उनके हृदय को सुख देती है; किन्तु सज्जन इससे दूर ही रहता है। निन्दा करने वाले का कहीं भी आदर नहीं होता। सरल स्वभाव स्वयं में एक महान् गुण है। व्यक्ति अपनी सज्जनता से दूसरों को भी अपना बना लेता है। समाज में उसका सम्मान होता है। वास्तव में क्रोधहीन, सत्यभाषी, हिंसा न करने वाला, किसी की निंदा न करने वाला तथा सज्जन व्यक्ति सौ वर्ष तक जीता है। इन गुणों के कारण ही उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

7. अकीर्तिं विनयो हन्ति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में विनय अर्थात् विनम्रता के लाभ बताए गए हैं।

व्याख्या– विनय या विनम्रता मनुष्य का आभूषण है। विनम्रता से व्यक्ति को यश मिलता है। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं और यदि कभी किसी कारणवश उसे कुछ अपयश मिला भी तो वह समाप्त हो जाता है। लोग उसे भूल जाते हैं या क्षमा कर देते हैं। विनय का सम्बन्ध वाणी और कर्म दोनों से होता है। अतः व्यवहार एवं वाणी दोनों में ही विनयभाव होना चाहिए। भारतीय साहित्य में भी विनय का बहुत महत्व बताया गया है। यदि कोई विद्वान तो है, किन्तु विनयी नहीं हैं तो उसकी विद्या शोभायुक्त नहीं होती। कहा भी गया है कि **''विद्या विनयेन शोभते।''**

8. हन्त्यनर्थं पराक्रमः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि पराक्रम से ही अनर्थों की समाप्ति होती है।

व्याख्या– समाज में किसी के भी साथ अनर्थ की संभावनाएँ सदैव बनी रहती हैं। इसका कारण स्वजनित हो सकता है, पर-जनित हो सकता है अथवा प्राकृतिक भी। इतना निश्चित है कि इस अनर्थ को टालने के लिए पराक्रम की आवश्यकता होती है। पराक्रम से ही मनुष्य अपने ऊपर आने वाली बड़ी से बड़ी विपत्ति को भी नष्ट कर देता है।

9. हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि क्षमा भाव से ही क्रोध की समाप्ति होती है।

व्याख्या– क्षमा सदैव मनुष्य के क्रोध को नष्ट कर देती है। क्षमा का भाव मन में उत्पन्न होते ही व्यक्ति का अहंकार समाप्त होने लगता है। इससे उसके मन में दोषी व्यक्ति के प्रति दया एवं सहानुभूति का भाव विकसित हो जाता है। परिणामस्वरूप उसका क्रोध समाप्त हो जाता है और क्रोध से उत्पन्न होने वाले अनेकानेक कष्टों से भी उसे मुक्ति मिल जाती है।

10. चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– यहाँ अभिवादनशीलता और बड़े-बूढ़ों की सेवा को सर्वांगीण उन्नति का साधन बताया गया है।

व्याख्या– बड़ों का आदर सत्कार करने और नित्य प्रति सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं; क्योंकि इन गुणों से युक्त व्यक्ति की सर्वत्र प्रशंसा होती है, जिससे वह मरकर भी जीवित रहता है। गुरुजनों की कृपा होने पर वह विद्या में निपुण हो जाता है और विपत्ति में ऐसे व्यक्ति की सभी सहायता करते हैं। अपने से बड़ों का आदर करना विनम्रता का द्योतक है। वस्तुतः हम महानता के समीप तभी होते हैं जब हम विनम्र होते हैं। विनम्रता बड़ों के प्रति कर्त्तव्य है, बराबर वालों के प्रति विनयसूचक है और छोटों के प्रति कुलीनता की द्योतक है।

11. सत्येन रक्ष्यते धर्मो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में सत्य को धर्म का रक्षक बताया गया है।

व्याख्या– प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अनेकानेक पृष्ठ सत्य की महत्ता सिद्ध करते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि–

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।।

अर्थात् सत्य बोलने वाले व्यक्ति के हृदय में ही ईश्वर का निवास होता है। सत्य की इतनी अधिक महत्ता है, इसीलिए पुराणों, उपनिषदों में भी **'सत्यं वद धर्मं चर'**, **'सत्यमेव जयते'** आदि कहकर सत्य की महत्ता प्रतिपादित की गई है। महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण जीवन ही सत्य के आग्रह पर अवलम्बित था और सत्य के बल पर ही वे देश को स्वतंत्र कराने में भी सफल हुए। महाभारत में एक स्थल पर युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **''धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्''** अर्थात् धर्म का तत्व गुफा में निहित है, यानि बहुत गूढ़ है। इसे जानना किसी भी सामान्य नागरिक के वश में नहीं। ऐसी स्थिति में किसी सामान्य व्यक्ति से धर्म की रक्षा की अपेक्षा ही कैसे की जा सकती? इसीलिए कहा गया कि **'सत्येन रक्ष्यते धर्मो'**, अर्थात् सत्य से धर्म की रक्षा होती है। आशय यह है कि यदि व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में सत्य का आचरण करता है, सत्य बोलता है, तो वह निश्चित ही धर्मानुसार आचरण करता है। इसलिए व्यक्ति को हर परिस्थिति में सत्य का अवलम्ब लेना चाहिए, कभी भी स्वयं को सत्य से अलग नहीं करना चाहिए।

12. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– हमें दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसी विषय में प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है।

व्याख्या– व्यक्ति को अपने जैसा ही दूसरों को भी समझना चाहिए। जो कार्य हमारे लिए हानिकारक हैं, वे दूसरों के लिए भी हानिकारक ही होंगे। ऐसा समझकर हम ऐसे काम दूसरों के लिए न कर, जो हम स्वयं अपने लिए दूसरों से नहीं चाहते। इस प्रकार के आचरण से व्यक्ति सभी का प्रिय होकर प्रशंसा का पात्र बनता है और संसार में बहुत उन्नति करके यशस्वी और सुखी बनता है। कहा भी गया है कि– **''आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।''**

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए-

1. अस्माकं जीवनं कीदृशं भवेत्?

उ०– अस्माकं जीवनं मधुमत् भवेत् ।

2. अकीर्तिं कः हन्ति?

उ०– अकीर्तिं विनयो हन्ति।

3. मनुष्य आचारात् किं किं लभते?

उ०– मनुष्य आचारात् आयुः श्रियम्, कीर्तिं, बलं च लभते।

4. नरः ब्रह्मे मुहूर्त उत्थाय किं कुर्यात्?

उ०– नरः ब्रह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्मम् अनुचिन्तयेत् ।

5. धर्मः केन रक्ष्यते?

उ०– धर्मः सत्येन रक्ष्यते।

6. कुलं केन रक्ष्यते।

उ०– कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।

7. यत्नेन किं संरक्षेत?

उ०– यत्नेन वृत्तं संरक्षेत्।

8. रूपं केन रक्ष्यते?

उ०– रूपं मृजयेन रक्ष्यते।

9. सदाचारस्य किं महत्त्वम् ?

उ०– मनुष्यः सदाचारात् आयुः, श्रियम् , कीर्तिं च लभते इति सदाचारस्य महत्त्वम् अस्ति।

10. अहं वाचा कीदृशं वदामि?

उ०– अहं वाचा मधुमत् वदामि।

11. धर्मस्य कः सारः अस्ति?

उ०– ''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'' इति धर्मस्य सारः।

12. अभिवादनशीलस्य कानि वर्द्धन्ते।

उ०– अभिवादनशीलस्य आयुर्विद्यायशोबलमिति चत्वारि वर्द्धन्ते।

13. के जनाः गतायषुः भवन्ति?

उ०– नास्तिकाः, निष्क्रियाः, गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः, अधर्मज्ञाः, दुराचाराश्च गतायुषः भवन्ति।

14. कः शतं वर्षाणि जीवति?

उ०– अक्रोधनः, सत्यवादी, अहिंसकः, अनसूयुः, सरलचित्तश्च शतायुः भवति (शतं वर्षाणि जीवति)।

15. वृत्तनाशेन का हानिः?

उ०– वृत्तनाशेन मनुष्यः मृतकतुल्यो भवति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. सत्य के द्वारा धर्म की रक्षा करनी चाहिए।
अनुवाद– सत्येन धर्मस्य रक्षेत्।

2. चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।
अनुवाद–चरित्रस्य यत्नपूर्वकं रक्षेत्।

3. हमें ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिए।
अनुवाद–वयं ब्रह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठयाम्।

4. सदाचार से यश प्राप्त होता हैं।
अनुवाद– सदाचारत् यशः प्राप्नोति।

5. प्रतिदिन प्रातःकाल भ्रमण करना चाहिए।
अनुवाद– नित्यं प्रातःकाले भ्रमणं कुर्यात् ।

6. अपने प्रतिकूल व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।
अनुवाद– स्वयं प्रतिकूले व्यवहारे अन्यस्य सह न कुर्यात्।

7. सहनशीलता से क्रोध का नाश होता है।
अनुवाद– सहनशीले क्रोधस्य हन्ति।

8. व्यायाम हमारी रोगों से रक्षा करता है।
अनुवाद– व्यायामः अस्माकं रोगेण रक्षति।

9. विनम्रता अपयश का विनाश करती है।
अनुवाद–विनयः अकीर्तिम् हन्ति।

10. धर्म का सार सुनकर मन में धारण करो।
अनुवाद–धर्मस्य सारं श्रुत्वा हृदये धार्यं कुरु।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते हुए सन्धि का नाम भी बताइए–
आचाराल्लभते, धर्मार्थौ, ह्यायुः, चाप्यवधार्यताम्, वित्तमायाति, वृद्धेपसेविनः, कुर्वन्नेवेह।

उ०– सन्धि शब्द	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
आचारालभते	आचारात् + लभते	लत्व सन्धि
धर्मार्थौ	धर्म + अर्थौ	दीर्घ सन्धि
ह्यायुः	हि + आयुः	यण सन्धि
चाप्यवधार्यताम्	च + अपि + अवधार्यताम्	दीर्घ, यण सन्धि
वित्तमायाति	वित्तम् + आयाति	अनुस्वार सन्धि
वृद्धोपसेविनः	वृद्ध + उपसेविनः	गुण सन्धि
कुर्वन्नेवेह	कुर्वन् + न + एव + इह	गुण सन्धि

2. रेखांकित पदों में नियम निर्देशपूर्वक विभक्ति स्पष्ट कीजिए-

(क) <u>आश्रमम्</u> अभितः वनम् अस्ति।

उ०– रेखांकित पद आश्रमम में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि अभितः (चारों ओर या सभी ओर), परितः (सभी ओर), समया (समीप), निकषा(समीप), हा(शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर, तरफ) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

(ख) शिक्षक <u>कक्षाम्</u> प्रति गच्छति।

उ०– रेखांकित पद कक्षाम् में भी द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि अभितः (चारों ओर या सभी ओर), परितः (सभी ओर),

समया (समीप), निकषा (समीप), हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर, तरफ) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

(ग) वृक्षात् पतितं पत्रम् आनय।

उ०– रेखांकित पद वृक्षात् में पञ्चमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। क्योंकि स्वयं से अलग करने वाले अर्थात् ध्रुव (मूल) में पञ्चमी विभक्ति होती है।

(घ) भिक्षुकः नेत्रेण: काणः अस्ति।

उ०– रेखांकित पद नेत्रेण में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जिस अंग में विकार होने से शरीर विकृत दिखाई दे, उस विकारयुक्त अंग में तृतीया विभक्ति होती है।

(ङ) रामेण सह मोहन गच्छति।

उ०– रेखांकित पद रामेण में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि सह के योग में अप्रधान (अर्थात् जो प्रधान क्रिया के कर्ता का साथ देता है) में तृतीया विभक्ति होती है।

3. जिस प्रकार 'प्रतिकूलानि' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग है। 'प्रति' उपसर्ग से बनने वाले कुछ शब्द लिखिए।

उ०– 'प्रति' उपसर्ग से बनने वाले शब्द हैं–

प्रतिवाद, प्रतिकार, प्रतिशोध, प्रतिकूल, प्रतिदिन, प्रतिफल, प्रतिलोभ, प्रतिध्वनि, प्रत्युपकार आदि।

4. 'सर्व' तथा 'यत' के पुल्लिंग शब्द-रूप लिखिए।

सर्व (सब) पुल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

यत (जो) पुल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्/यस्माद्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

चतुर्थः पाठः हिमालयः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए

1. भारतदेशस्य ..... तिष्ठति।

[**शब्दार्थ– नाम्नाभिधीयते > नाम्ना + अभिधीयते** = नाम से पुकारा जाता है, **उन्नतानि** = ऊँची, **आच्छादितानि** = ढकी हुई, **हिमगिरिरित्यपि > हिमगिरिः + इति + अपि** = हिमगिरि भी, **प्रभृतीनि** = इत्यादि, **उन्नततमानि** = सबसे ऊँचे, **अधित्यकायां** = ऊपर की समतल भूमि पर, **त्रिविष्टप-नयपाल-भूतानः-देशाः** = तिब्बत, नेपाल और भूटान देश, **प्रान्तरे** = अन्तर्वर्त्तीभूभाग में]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'हिमालयः' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– भारत देश की अत्यन्त विस्तृत उत्तर दिशा में विद्यमान् पर्वत को लोग 'पर्वतराज हिमालय' के नाम से पुकारते हैं। इसकी बहुत ऊँची चोटियाँ संसार के सारे पर्वतों को जीतती हैं; इसी कारण लोग इसे पर्वतों का राजा कहते हैं। इसकी ऊँची चोटियाँ सदा बर्फ से ढकी रहती हैं, इसीलिए यह 'हिमालय' (हिम + आलय = वर्फ का घर) या 'हिमगिरि' (हिम + गिरि = बर्फ का पहाड़) के नाम से भी सुप्रसिद्ध है। इसके 'एवरेस्ट', 'गौरीशंकर' जैसे शिखर संसार में सबसे ऊँचे हैं। इसके ऊपरी समतल भाग में (पठार पर) तिब्बत, नेपाल, भूटान पूर्ण सत्तासम्पन्न देश हैं, (और) कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, असम, सिक्किम, मणिपुर जैसे भारतीय प्रदेश हैं। उत्तर भारत का पर्वतीय भाग (गढ़वाल, कुमाऊँ आदि) भी हिमालय के ही अन्तर्वर्ती भू-भाग में (श्रेणियों के मध्य) स्थित है।

2. अयं ..... कुर्वन्ति।

[**शब्दार्थ– उत्तरसीम्नि** = उत्तर सीमा पर, **प्रहरीव > प्रहरी + इव** = पहरेदार के समान, **सततं** = सदा, **समुद्गम्य** = निकलकर, **स्वकीयैः** = अपने, **तीर्थोदकैः > तीर्थ + उदकैः** = तीर्थों के जल से; **अर्थात् पवित्र जल से, पुनन्ति** = पवित्र करती है, **शस्यश्यामलाम्** = अन्न से हरी-भरी]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– यह पर्वतराज (अर्थात् पर्वतों का राजा) भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर स्थित प्रहरी के सदृश शत्रुओं से निरन्तर उसकी रक्षा करता है। हिमालय से ही गङ्गा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र नामक महानदियाँ (तथा) शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), यमुना, सरयू, गण्डकी (गण्डक), नारायणी, कौशिकी (कौसी) जैसी नदियाँ भारत की समस्त उत्तर भूमि को अपने पवित्र जल से न केवल पवित्र करती हैं, अपितु इसे धनधान्य से सम्पन्न(हरा-भरा) भी करती हैं।

3. अस्योपत्यकासु ..... प्रवर्तयति।

[**शब्दार्थ– अस्योपत्यकासु > अस्य + उपत्यकासु** = इसकी घाटियों (तलहटी) में, **वनराजयः** = वन-समूह, **वनस्पतयस्तरवश्च > वनस्पतयः + तरवः + च** = वनस्पतियाँ और वृक्ष, **आमयेभ्यो** = रोगों से, **तरवश्च** = और वृक्ष, **आसन्द्यादिगृहोपकरणनिर्माणार्थम् > आसन्दी + आदि + गृह + उपकरण-निर्माण + अर्थम्** = कुर्सी आदि घरेलू उपकरणों के निर्माण के लिए, **वर्षर्तौ > वर्षा + ऋतौ** = वर्षा ऋतु में, **अवरुध्य** = रोककर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इसकी तलहटी में विशाल वनसमूह सुशोभित हैं, जहाँ अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, वनस्पतियाँ और वृक्ष हैं। ये जड़ी-बूटियाँ लोगों की रोगों से रक्षा करती हैं और वृक्ष कुर्सी आदि घरेलु सामान बनाने में प्रयुक्त होते हैं। हिमालय वर्षा ऋतु में दक्षिणी समुद्र से उठने वाले बादलों को रोककर उन्हें बरसने के लिए प्रेरित करता है।

4. अस्योपत्यकायां ..... अभिधीयते।

[**शब्दार्थ– स्वकीयाभिः** = अपनी, **सुषमाभिः** = सुन्दरता से, **संज्ञया** = नाम से, **अभिहितो भवति** = पुकारा जाता है, **पूर्वस्यां** = और उससे पूर्व (दिशा) में, **ग्रीष्मर्तौ > ग्रीष्म + ऋतौ** = ग्रीष्म ऋतु में, **बलादिव > बलात् + इव** = बलपूर्वक-सा, **एभ्योऽपि > एभ्यः + अपि** = इनके भी, **भागेऽवस्थितः > भागे + अवस्थितः** = भाग में स्थित, **कामरूपतया** = इच्छानुसार रूप धारण करने के कारण, **कामरूप** = असम का एक जिला, जहाँ कामाख्या देवी का मन्दिर है,]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इसकी तलहटी (घाटी) में स्थित कश्मीर प्रदेश अपनी शोभा के कारण संसार में 'पृथ्वी के स्वर्ग' के नाम से पुकारा जाता है और उससे पूर्व दिशा में स्थित 'किन्नर देश' प्राचीन साहित्य में 'देवभूमि' (देवताओं का निवास-स्थान) नाम से प्रसिद्ध था। आज भी 'कुलू घाटी' के नाम से प्रसिद्ध यह प्रदेश अपनी सुन्दरता से किसका मन नहीं हरता है। शिमला, देहरादून, मसूरी, नैनीताल जैसे नगर ग्रीष्म ऋतु में देश के धनी लोगों को घूमने के लिए बलपूर्वक अपनी ओर खींचते हैं (अर्थात् देश के धनवान् लोग इसके सौन्दर्य पर आकर्षित होकर ही यहाँ घूमने के लिए आते हैं)। इनसे और भी पूर्व में स्थित सर्वाधिक सुन्दर प्रदेश अपने इच्छानुसार रूप धारण करने के कारण 'कामरूप' नाम से पुकारा जाता है।

विशेष– असम का 'कामरूप' जिला प्राचीनकाल से ही अपने जादू-टोने के लिए प्रसिद्ध रहा है। लोगों का विश्वास था कि वहाँ के तन्त्र-मन्त्र विशेषज्ञ किसी भी व्यक्ति को किसी भी रूप (भेड़, बकरी आदि) में बदल सकते थे। इसी कारण इसका नाम 'कामरूप' (काम इच्छानुसार रूप रूप धारण कर सकने वाला)।

5. अस्यैव कन्दरासु ..... पर्वतराजः इति।

[**शब्दार्थ– अस्यैव > अस्य + एव** = इसकी ही, **कन्दरासु** = गुफाओं में, **तपस्यन्तः** = तप करते हुए, **सिद्धिमत्वं** = सिद्धिमत्ता को, **विलोक्यैव > विलोक्य + एव** = देखकर ही, **उपह्वरे** = गुफा में; एकांत स्थान में; अकेलेपन में, **गिरीणां** = पर्वतों की, **धिया** = बुद्धि से, **विप्रोऽजायत > विप्रः + अजायत** = ब्राह्मण हुआ था, **प्रदातुः** = प्रदान करने वाले, **पर्वतराजोऽयं >**

पर्वतराजः + **अयम्** = यह पर्वतराज, **सर्वौषधिभिः** > **सर्व** + **ओषधिभिः** = सभी औषधियों से, **सर्वसिद्धिप्रदातृतया** = समस्त सिद्धियों को प्रदान करने के कारण, **सुतराम्** = अत्यन्त, **समादृतः** = सम्मानित]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इसकी गुफाओं में तप करते हुए अनेक ऋषियों और मुनियों ने परमसिद्धि प्राप्त की। इसकी सिद्धि देने की क्षमता को देखकर ही 'पर्वतों की गुफा में और नदियों के संगम पर ब्राह्मणों (ब्रह्मप्राप्ति के इच्छुक साधकों) ने बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त किया' ऐसा कहते हुए वैदिक ऋषियों ने इसके महत्व को स्वीकार किया पुराणों में सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले शिव का स्थान इसी पर्वत के कैलाश शिखर पर माना गया है। इसी के प्रदेशों में बदरीनाथ, केदारनाथ, पशुपतिनाथ, हरिद्वार, ऋषिकेश, वैष्णव देवी, ज्वाला देवी आदि तीर्थस्थल हैं।

इसलिए यह पर्वतराज हिमालय रक्षक, पालक, समस्त औषधियों का संरक्षक तथा सभी सिद्धियों का प्रदाता होने से भारतवासियों मे 'पर्वतराज' (पर्वतों का राजा) के नाम से अति आदर को प्राप्त है।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **प्रहरीव शत्रुभ्यः सततं रक्षति।**

   सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'हिमालयः' नामक पाठ से अवतरित है।

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में हिमालय की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

   व्याख्या– शत्रुओं से अपनी रक्षा के लिए लोग पहरेदारों की नियुक्ति करते हैं। इसी प्रकार देश की सीमाओं की रक्षा के लिए वहाँ पर सैनिकों को नियुक्त किया जाता है। जिस प्रकार से सैनिक अपने देश की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हिमालय पर्वत की हिमाच्छादित चोटियाँ भी उत्तर दिशा से आने वाले शत्रुओं के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर हमारे देश की पहरेदार सैनिकों की भाँति ही शत्रुओं से सदैव रक्षा करती रहती हैं।

2. **औषधयः जनान् आमयेभ्यो रक्षन्ति।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   प्रसंग– इस सूक्ति में हिमालय पर उगने वाली औषधियों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

   व्याख्या– हिमालय पर्वत पर स्थित वनों में अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं, इनमें बहुत-सी जड़ी-बूटियाँ सम्मिलित हैं। ये जड़ी-बूटियाँ लोगों को अनेक प्रकार के रोगों से बचाती हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य की दृष्टि से हिमालय का भारतीय जन-जीवन में महत्वपूर्ण स्थान हैं।

3. **उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनां धिया विप्रोऽजायत।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्।

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में हिमालय पर्वत की गुफाओं और इससे निःसृत नदियों के संगम की श्रेष्ठता को प्रदर्शित किया गया है।

   व्याख्या– पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर ब्राह्मणों ने ज्ञान प्राप्त किया। हिमालय की गुफाओं में ही सिद्धि प्राप्त करने के इच्छुक साधकों, ऋषियों, मुनियों ने दीर्घकालीन साधना की और वांछित सिद्धि प्राप्त की। मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक, शान्ति की कामना करने वाले और जीवन से विरक्त व्यक्ति हिमालय की शरण में ही जाया करते थे। सभी सिद्धियों के प्रदाता और स्वयं सर्वश्रेष्ठ साधक भगवान् शंकर का निवास भी इसी पर्वत के कैलास नामक शिखर पर माना जाता है। इस पर्वत की गुफाओं जैसी विशेषता, इससे निःसृत नदियों के संगमों-तटों को भी है। इन्हीं पर ऋषिकेश, हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर, प्रयाग, काशी, गंगासागर आदि तीर्थस्थल स्थित है, जहाँ पर अनेक साधकों ने साधना की और मनोवांछित सिद्धि प्राप्त की। आज भी सिद्धि प्राप्ति के इच्छुक जन मनोवांछित प्राप्ति के लिए इन्हीं स्थलों पर आया करते हैं।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **हिमालये के देशाः स्थिताः?**

उ०– हिमालये त्रिविष्टप नयपाल भूतानदेशाः स्थिताः।

2. **भारतस्य उत्तरस्यां दिशि स्थितो गिरिः केन नाम्नाधिभीयते जनैः?**

उ०– भारतदेशस्य उत्तरस्यां दिशि स्थितो गिरिः हिमालयः इति नाम्नाधिभीयते जनैः।

3. **सर्वोच्चपर्वतशिखरस्य किं नाम?**

उ०– सर्वोच्चपर्वतशिखरस्य नाम 'एवरेस्ट' इति अस्ति।

4. भारतवर्षस्य शत्रुभ्यः कः रक्षति?

उ०– हिमालयः भारतवर्षस्य उत्तरस्यां दिशि स्थितः प्रहरीव एनं शत्रुभ्यः रक्षति।

5. हिमालयस्य कानि नगराणि जनान् ग्रीष्मर्तौ भ्रमणाय आकर्षन्ति?

उ०– हिमालयस्य शिमला–देहरादून–मसूरी–नैनीताल– प्रभृतीनि नगराणि जनान् ग्रीष्मर्तौ भ्रमणाय आकर्षन्ति।

6. हिमालये के प्रदेशाः सन्ति?

उ०– हिमालये कश्मीरहिमाचल प्रदेशासम–सिक्किम–मणिपुर प्रभृतयः भारतीयाः प्रदेशाः सन्ति।

7. हिमालयस्य प्रदेशेषु कानि तीर्थस्थानानि सन्ति?

उ०– हिमालयस्य प्रदेशेषु बदरीनाथ–केदारनाथ–पशुपतिनाथ–हरिद्वार–ऋषिकेश–वैष्णवदेवी– ज्वाला देवी– प्रभृतीनि तीर्थस्थानानि सन्ति।

8. हिमालयः कथं मेघमालाः वर्षणाय प्रवर्तयति?

उ०– हिमालयः स्वकीयैः उन्नतैः शिखरैः मेघमालाः अवरुध्य वर्षणाय ता प्रवर्तयति (प्रेरयति)।

9. कश्मीरो देशः कस्योपत्यकायां विद्यमानः अस्ति?

उ०– कश्मीरो देशः हिमालयस्योपत्यकायां विद्यामनः अस्ति।

10. कः देशः 'भू-स्वर्गः' इति संज्ञया अभिहितो भवति?

उ०– कश्मीरदेशः 'भू स्वर्गः' इति संज्ञया अभिहितो भवति।

11. हिमालयस्य उपत्यकायां के प्रदेशाः सन्ति?

उ०– हिमालयस्य उपत्यकायां कश्मीरप्रदेशः, किन्नरप्रदेशः, कुलूघाटी च इति प्रदेशाः सन्ति।

12. वैदिकाः ऋषयः कस्य महत्त्वं स्वीकृतवन्तः?

उ०– वैदिकाः ऋषयः हिमालयस्य महत्त्वं स्वीकृतवन्तः।

13. कस्य उपत्यकासु सुदीर्घाः वनराजयो विराजन्ते?

उ०– हिमालयस्य उपत्यकासु सुदीर्घाः वनराजयो विराजन्ते।

14. पुराणेश शिवस्य स्थानं कुत्र स्वीकृतमस्ति?

उ०– पुराणेषु शिवस्य स्थानं हिमालयपर्वतस्य कैलासशिखरे स्वीकृतमस्ति।

15. कस्य शिखराणि सदैव हिमैः आच्छादितानि सन्ति?

उ०– हिमालयस्य उच्चशिखराणि हिमैः आच्छादितानि सन्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. हिमालय पर्वत भारत के उत्तर दिशा में स्थित है।
अनुवाद– हिमालयः पर्वतः भारतस्य उत्तर दिशे स्थितोऽस्ति।

2. हिमालय के ऊँचे शिखर सदैव बर्फ से ढके रहते हैं।
अनुवाद– हिमालयस्योन्नतानि शिखराणि सर्वदा: हिमैः आच्छादितानि तिष्ठन्ति।

3. हिमालय से गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ निकलती है।
अनुवाद– हिमालयात् गङ्गा यमुना–ब्रह्मपुत्रप्रभृतयः नद्यः सरन्ति।

4. हिमालय भारतवर्ष की रक्षा करता है।
अनुवाद– हिमालयः भारतवर्ष रक्षति।

5. कश्मीर की शोभा पर्यटकों का मन मोह लेती है।
अनुवाद– कश्मीरप्रदेशस्य सुषमा पर्यटकानां मनो हरति।

6. एवरेस्ट विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर हैं।
अनुवाद– एवरेस्टः जगतस्य उन्नततमानि पर्वत शिखराणि अस्ति।

7. क्या तुम आज विद्यालय नहीं जाओगे।
अनुवाद– किं त्वं अद्य विद्यालयः न गमिष्यसि।

8. वृक्ष से पीले पत्ते पृथ्वी पर गिरते हैं।
अनुवाद– वृक्षात् पीतानि पर्णानि धरायां पतन्ति।

9. रमेश पिता के साथ विद्यालय जाता है।
अनुवाद– रमेशः पित्रा सह विद्यालय गच्छति।

10. किसान सायंकाल खेतों से घर आते हैं।

अनुवाद– कृषका सांयकाले क्षेत्रात् गृहं आगच्छन्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते हुए प्रयुक्त सन्धि का नाम बताइए-

हिमालयः, प्रहरीव, महोच्चानि, तीथोंदकैः, समादृतः, तरवश्च, तेभ्योऽपि, नाम्नाभिधीयते, हिमालयस्यैव, अस्योपत्यकासु, हिमगिरिरिति।

हिमालयः	हिम + आलयः	दीर्घ सन्धि
प्रहरीव	प्रहरी + इव	दीर्घ सन्धि
महोच्चानि	महा + उच्चानि	गुण सन्धि
तीथोंदकैः	तीर्थ + उदकैः	गुण सन्धि
समादृतः	सम + आदृतः	दीर्घ सन्धि
तरवश्च	तरवः + च	सत्व सन्धि
तेभ्योऽपि	तेभ्यः + अपि	उत्व सन्धि
नाम्नाभिधीयते	नाम्ना + अभिधीयते	दीर्घ सन्धि
हिमालयस्यैव	हिमालयस्य + एव	वृद्धि सन्धि
अस्योपत्यकासु	अस्य + उपत्यकासु	गुण सन्धि
हिमगिरिरिति	हिमगिरिः + इति	विसर्ग सन्धि

2. निम्नलिखित शब्दों में प्रयुक्त प्रत्यय अलग करके लिखिए-

आगत्य, प्रष्टुम्, गच्छन्, दत्वा, स्नात्वा, उषित्वा

प्रत्यय	**धातु**	**प्रत्यय**
आगत्य	आ गम्	ल्यप्
प्रष्टुम्	प्रच्छ्	तुमुन
गच्छन्	गम्	शतृ
दत्वा	दा	क्त्वा
स्नात्वा	स्ना	क्त्वा
उषित्वा	उष् (बस्)	क्त्वा

3. निम्नलिखित शब्दों के संस्कृत में दो-दो पर्यायवाची शब्द लिखिए-

हिमालय, गंगा, यमुना, शिव

शब्द	**पयार्यवाची शब्द**
हिमालय	पर्वतराज, हिमगिरि।
गंगा	देवनदी, जाहवी।
यमुना	कृष्णा, कालिंदी।
शिव	शम्भू, पशुपति।

4. निम्नलिखित शब्दों में विभक्ति एवं वचन स्पष्ट कीजिए।

उत्तरस्यां, उपत्यकासु, भारतीयान्, शिखराणि, हिमैः, समुद्रेभ्यः, वर्षणाय्, जनेषु, अस्य, नाम्ना, भूभागे, संज्ञया।

शब्द रूप	**विभक्ति**	**वचन**
उत्तरस्यां	सप्तमी	एकवचन
उपत्यकासु	सप्तमी	बहुवचन
भारतीयान्	द्वितीया	बहुवचन
शिखराणि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
हिमैः	तृतीया	बहुवचन
समुद्रेभ्यः	चतुर्थी/पञ्चमी	बहुवचन
वर्षणाय्	चतुर्थी	एकवचन

जनेषु	सप्तमी	बहुवचन
अस्य	षष्ठी	एकवचन
नाम्ना	तृतीया	एकवचन
भूभागे	सप्तमी	एकवचन
संज्ञया	तृतीया	एकवचन

5. सूत्र-येनाङ्गविकारः तथा सूत्र- सहयुक्ते प्रधाने की पहचान बताते हुए इनके दो-दो उदाहरण दीजिए।

उ०– सूत्र-येनाङ्गविकार– जिस अंग में विकार होने से शरीर विकृत दिखाई दे, उसे विकारयुक्त अंग में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण– 1. देवदत्तः **नेत्रेण काणः** अस्ति। 2. सुधीरः **कट्** या **कुब्जः** आसीत्।

सूत्र–सहयुक्तेप्रधाने– सह के योग में अप्रधान (अर्थात् जो प्रधान क्रिया के कर्ता का साथ देता है) में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण– 1. सः **बालिकाभिः** सह कुन्दुकं क्रीडति। 2. माता **पुत्रेण** साकं श्वः आगमिष्यति।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करे।

पञ्चमः

पाठः

गीतामृतम्

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. तं तथा ..... मधुसूदनः।

[**शब्दार्थ– कृपयाविष्टम्** > **कृपया** + **आविष्टम्** = करुणा से पूर्ण, **अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्** > **अश्रुपूर्ण** + **आकुल** + **ईक्षणम्** = आँसुओं से भरे हुए नेत्रों वाले (अर्जुन), **विषीदन्तम्** = दुःखी होते हुए, **मधुसूदनः** = श्रीकृष्ण]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'गीतामृतम्' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– भगवान कृष्ण ने उस प्रकार से दयनीय, आँसुओं से परिपूर्ण व्याकुल नेत्रों वाले, (और) दुःखी होते हुए उस (अर्जुन) से यह वाक्य कहा।

2. क्लैब्यं ..... परन्तप।

[**शब्दार्थ– क्लैब्यं** = कायरता को, **मा स्म गमः** = मत प्राप्त हो, **पार्थ** = अर्जुन, **नैतत्त्वय्युपपद्यते** > **न** + **एतत्** + **त्वयि** + **उपपद्यते** = यह तेरे योग्य नहीं है, **क्षुद्रम** = तुच्छ, **हृदय-दौर्बल्यम्** = हृदय की दुर्बलता को, **त्यक्त्वोत्तिष्ठ** > **त्यक्त्वा** + **उत्तिष्ठ** = त्यागकर उठ खड़ा हुआ हो, **परन्तप** = शत्रुओं को ताप पहुँचाने वाले (हे अर्जुन!)]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हे पृथापुत्र (अर्जुन)! कायरता को मत प्राप्त हो (अर्थात् कायर मत बन)। यह (कायरता की) बात करना तेरे योग्य नहीं है। हे शत्रुसन्तापकारी! तू हृदय की (इस) तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर (युद्ध के लिए) उठ खड़ा हो।

3. देहिनोऽस्मिन् ..... मुह्यति।

[**शब्दार्थ– देहिनोऽस्मिन्** > **देहिनः** + **अस्मिन्** = जीवात्मा को इस शरीर में, **जरा** = वृद्धावस्था, **देहान्तरप्राप्ति** = अन्य शरीर की प्राप्ति, **धीरः** = धैर्यशील, **तत्र** = उस विषय में, **न मुह्यति** = मोह नहीं करता]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– जैसे जीवात्मा को इस शरीर में कुमारावस्था, यौवन तथा बुढ़ापा प्राप्त होता है, वैसे ही दूसरा शरीर भी प्राप्त होता है। इसमें बुद्धिमान व्यक्ति मोहग्रस्त नहीं होता। आशय यह है कि जैसे व्यक्ति को कौमार्य, यौवन और बुढ़ापे से किसी प्रकार का शोक नहीं होता; क्योंकि वह यह जानता है कि ये तो शरीर के धर्म हैं, जो होंगे ही। इसी प्रकार उसे यह भी समझ लेना चाहिए कि दूसरा शरीर धारण करना अर्थात् पुनर्जन्म होना भी शरीर का ही धर्म है। इससे जीवात्मा नहीं बदलता, अतः शोक का कोई कारण नहीं।

4. वासांसि ..... नवानि देही।

[**शब्दार्थ– वासांसि** = वस्त्रों को, **जीर्णानि** = फटे-पुराने, **विहाय** = छोड़कर, **नरोऽपराणि** > **नरः** + **अपराणि** = मनुष्य दूसरे,

जीर्णान्यन्यानि > जीर्णानि + अन्यानि = पुराने दूसरे, **संयाति** = चला जाता है या प्राप्त करता है, **देहि** = जीवात्मा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण (धारण) करता है वैसे (ही) जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता (ग्रहण करता) है (तब संसार कहता है कि किसी का जन्म हुआ है या मृत्यु हुई है)।

5. **नैनं छिन्दन्ति ..... मारुतः।**

[**शब्दार्थ– नैनं > न + एनम्** = न तो इसे (जीवात्मा) को, **छिन्दन्ति** = काट सकते हैं, **पावकः** = अग्नि, **न चैनम् > न + च + एनम्** = और न ही इसे, **क्लेदयन्त्यापः > क्लेदयन्ति + आपः** = जल गीला कर सकता है, **मारुतः** = हवा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गीला कर सकते और (इसको) वायु नहीं सुखा सकती (अर्थात् किसी भी भौतिक पदार्थ से यह नष्ट नहीं किया जा सकता)।

6. **जातस्य हि ..... शोचितुमर्हसि।**

[**शब्दार्थ– जातस्य** = पैदा होने वाली की, **हि** = क्योंकि, **ध्रुवः** = निश्चित, **तस्मादपरिहार्येऽर्थे > तस्मात + अपरिहार्ये + अर्थे** = इस कारण अनिवार्य विषय में, **न शोचितुमर्हसि > न + शोचितुम् + अर्हसि** = शोक करने योग्य नहीं है]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है, इसलिए तुम्हें ऐसे विषय में शोक नहीं करना चाहिए; जिसका कोई उपाय न हो (अर्थात् जन्म-मृत्यु के इस क्रम को कोई नहीं बदल सकता। तब फिर इसके विषय में शोक करने से क्या लाभ?)।

7. **यदृच्छया ..... युद्धमीदृशम्।**

[**शब्दार्थ– यदृच्छया** = स्वतः, अपने आप, **चोपपन्नं > च + उपपन्नम्** = और प्राप्त हुए, **स्वर्गद्वारमपावृत्तम् > स्वर्गद्वारम् + अपावृतम्** = खुले हुए स्वर्गद्वार को, **सुखिनः** = भाग्यवान्, **युद्धमीदृशम् > युद्धम + ईदृशम्** = ऐसे युद्ध को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हे अर्जुन! अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार-रूप ऐसे युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय (ही) पाते हैं (अर्थात् तू भाग्यशाली है कि तुझे यह युद्ध लड़ने का अवसर प्राप्त हो रहा है; क्योंकि धर्मयुद्ध क्षत्रिय को सीधे स्वर्ग प्राप्त कराता है)।

8. **हतो वा ..... कृतनिश्चयः।**

[**शब्दार्थ– हतोवा > हतः + वा** = मरकर या, **प्राप्स्यसि** = तू प्राप्त करेगा, **जित्वा** = जीतकर, **भोक्ष्यसे** = तू भोगेगा, **महीम्** = पृथ्वी को, **तस्मादुत्तिष्ठ > तस्मात् + उत्तिष्ठ** = इसलिए उठो, **कौन्तेय** = हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन)!, **कृतनिश्चयः** = निश्चय करके]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– या तो तू (युद्ध में) मरकर स्वर्ग को प्रापत होगा या (युद्ध) जीतकर पृथ्वी का भोग करेगा। (इस प्रकार तेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं।) इसलिए तू युद्ध (करने) का निश्चय करके उठ खड़ा हो।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'गीतामृतम्' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– महाभारत के युद्ध में मोह एवं शोकग्रस्त अर्जुन को शरीर को नश्वरता तथा आत्मा की अमरता के विषय में बताते हुए श्रीकृष्ण उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं।

व्याख्या– ज्ञानीजन इस संसार में जीवित व्यक्ति या मरे हुए व्यक्ति के लिए शोक नहीं करते; क्योंकि ज्ञानी वही है, जिसे तत्त्वदृष्टि प्राप्त हो चुकी हो और तत्त्व यह है कि इस संसार में जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा अवश्य और जो मर चुका है, वह पुनर्जन्म अवश्य ग्रहण करेगा; क्योंकि आत्मा अमर है और शरीर नश्वर। इसलिए यह अविनाशी आत्मा पुराने शरीररूपी वस्त्रों को उतारकर नये धारण करती रहती है। इसमें शोक करने की बात ही क्या है? अंग्रेजी की प्रसिद्ध उक्ति– **"Body in mortal and soul is immortal."** भी यही अर्थ-बोध कराती है।

2. **नायं हन्ति न हन्यते।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी माना गया है। यह न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है। यही बात श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को समझाई गई है।

व्याख्या– जीवात्मा शाश्वत, अमर और शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा का अंश है। इसलिए वह साक्षी-रूप से ही शरीर में रहकर जीव द्वारा किए जाने वाले कर्मों को देखता है। स्वयं वह कोई कर्म नहीं करता, इसलिए कर्मबन्धन में बँधता भी नहीं। वह स्वयं कुछ नहीं करता; वह न किसी को मारता है और न स्वयं मारा जाता है। केवल अज्ञानवश ही जीव को वह काम करता हुआ लगता है। जो इस अज्ञान को दूर करके आत्मा के सत्य स्वरूप को जान लेते हैं, वे कर्मबन्धन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

3. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आत्मा अमर, अविनाशी, अच्छेद्य, अदाह्य एवं अशोष्य है। इसीलिए मोहग्रस्त अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं-

व्याख्या– इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं और न अग्नि जला ही सकती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आत्मा अमर, अविनाशी, अछेद्य, अदाह्य एवं अशोष्य है। इस पर शास्त्रों, अग्नि, वायु एवं जल का कोई प्रभाव नहीं होता। इनका प्रभाव ऐहिक जगत् की वस्तुओं पर पड़ता है; क्योंकि ऐहिक जगत् की सभी वस्तुएँ नाशवान् होती हैं। लेकिन आत्मा अमर है। इसीलिए तीक्ष्ण शस्त्र भी उसे नहीं काट सकते, आग भी उसे नहीं जला सकती, जल उसे गीला नहीं कर सकता और तीव्र वायु भी उसे सूखा नहीं सकती। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में अन्यत्र भी आत्मा को अछेद्य और अदाह्य बताया गया है– **''अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।''**

4. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह ध्रुव सत्य समझाया है कि जन्म और मृत्यु का चक्र शाश्वत है; अर्थात् जो उत्पन्न होता है, वह मरता भी है और जो मरता है, वह उत्पन्न भी होता है।

व्याख्या– आत्मा अमर है और शरीर नाशवान् ; इसलिए आत्मा पुराने जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़कर नये शरीर को धारण कर लेती है। यह क्रम निरन्तर ही चलता रहता है; अतः यह निश्चित है कि जो पैदा हुआ है, वह एक-न-एक दिन मरेगा अवश्य और जो मर गया है, वह दूसरा जन्म भी अवश्य धारण करेगा। तब फिर इस विषय में चिन्ता क्या करना? अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति को जन्म-मरण के विषय में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि इस धर्मयुद्ध में अधर्म का पक्ष लेकर खड़े हुए योद्धाओं को यदि तुम नहीं मारोगे तो क्या वे कभी मरेंगे नहीं। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, शाश्वत और सतत गतिशील चक्र है। अन्यत्र भी कहा गया है– **''परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते?''**

5. तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः।

सन्दर्भ– पूर्ववत् ।

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रीकृष्ण अर्जुन को धर्मयुद्ध के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, जो धर्म की रक्षा के युद्ध करते हुए मारे जाते हैं, उन्हें मरकर निश्चित रूप से स्वर्ग प्राप्त होता है। अतः इस धर्म-युद्ध में या तो तुम मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगे या युद्ध में विजयी होकर पृथ्वी का भोग करोगे। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में तुम्हें लाभ है। इसलिए तुम युद्ध करने का निश्चय करके उठ खड़े होओ।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. विषादमापन्नमर्जुनं श्रीकृष्णः किं उपादिशत्?

उ०– विषादमापन्नमर्जुनं श्रीकृष्णः उपादिशत्-यत् पण्डिता गवासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति अतएव युद्धाय कृतनिश्चयः त्वमुत्तिष्ठः।

2. धीरः कुत्र न मुह्यति?

उ०– ''अस्मिन् देहे यथा कौमारं, यौवनं, जरा भवति तथैव देहान्तरप्राप्तिः भवति'', अस्मिन् विषये धीरः न मुह्यति।

3. श्रीकृष्णः क्षत्रियेभ्यः किं कर्त्तण्यं निर्दिष्टवान्?

उ०– श्रीकृष्णः क्षत्रियेभ्यः कर्त्तव्यं निर्दिष्टवान् यत् क्षत्रियाः फलासक्ति त्यक्त्वा कर्त्तव्यमिति मन्यमानः युद्धं कुर्युः।

4. पावकः कं न दहति?

उ०– पावकः आत्मानं न दहति।

5. सुखिनः क्षत्रियाः किं लभन्ते?

उ०– सुखिनः क्षत्रियाः अपावृतं स्वर्गद्वारमिव युद्धं लभन्ते।

6. कः न हन्ति न च हन्यते?

उ०– आत्मा न हन्ति न च हन्यते।

7. पण्डितः कः?

उ०– यः गतासूनगतासूंश्च न अनुशोचति सः पण्डितः।

8. शस्त्राणि कं न छिन्दन्ति?

उ०– आत्मानं न शस्त्राणि छिन्दन्ति।

9. 'गीतामृतम्' पाठस्य शिक्षा का?

उ०– मनुष्य जातस्य हि मृत्यु: मृतस्य च जन्म ध्रुवमिति मत्वा, आत्मनश्च अमरत्वं ज्ञात्वा फला सक्ति च त्यक्त्वा स्वकर्तव्यं कुर्यात्।

10. आत्मा: अमर: इति कस्योपदेश: अस्ति?

उ०– आत्मा: अमर: इति गीतायां श्रीकृष्णस्य उपदेश: अस्ति।

11. पण्डिता: कान् न अनुशोचन्ति?

उ०– पण्डिता: गतासूनगतासूंश्च न अनुशोचन्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर उठो।
अनुवाद– हृदयस्य क्षुद्रम् दौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ।

2. ''हे अर्जुन! कायरता तुम्हारे लिए उचित नहीं।''
अनुवाद– भो अर्जुन! का त्वांय न उचितम्।

3. शस्त्र आत्मा को काट नहीं सकते हैं।
अनुवाद– शस्त्राणिआत्मानं न छिन्दन्ति।

4. मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है।
अनुवाद– मानव: जीर्णानि वसांसि त्यक्त्वा नवानि वसांसि धार्यं करोति।

5. हे अर्जुन! युद्ध के लिए निश्चिय करो।
अनुवाद– भो अर्जुन! युद्धाय निश्चय: करोति।

6. जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है।
अनुवाद– जातस्य मृत्यु: निश्चितम् अस्ति।

7. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म का उपदेश दिया।
अनुवाद– श्रीकृष्ण: अर्जुनस्य कर्मस्य उपदेशति।

8. भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर थे।
अनुवाद– भगवान् श्रीकृष्ण: योगेश्वर: आसीत्।

9. कृष्ण के चारों ओर गोप-बालक नाचते हैं।
अनुवाद– कृष्ण: परित: गोप-बालका: नृत्यन्ति।

10. कायर लोग युद्ध भूमि में प्रवेश नहीं करते।
अनुवाद– कापुरुषा: संग्रामे प्रवेशं न कुर्वन्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए-

देहिन: एनम्, तम्, युद्धाय, शरीराणि, क्षत्रिया:, जातस्य, तस्मात्, वासांहि

उ०–

शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
देहिन:	षष्ठी	एकवचन
एनम्	द्वितीया	एकवचन
तम्	द्वितीया	एकवचन
युद्धाय	चतुर्थी	एकवचन
शरीराणि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
क्षत्रिया:	प्रथमा	बहुवचन
जातस्य	षष्ठी	एकवचन
तस्मात्	पञ्चमी	एकवचन
वासांसि	द्वितीया	बहुवचन

2. निम्नलिखित क्रिया-पदों में धातु, पुरुष, वचन एवं लकार स्पष्ट कीजिए।

वेत्ति, उत्तिष्ठ हन्यते, लभन्ते, छिन्दन्ति, दहति, प्राप्स्यसि, हन्ति, गृहणाति, मुह्यति, विजानीतः।

उ०–	क्रिया-पद	धातु	लकार	पुरुष	वचन
	वेत्ति	विद्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	उत्तिष्ठ	उत् + स्था	लोट् लकार	मध्यम	एकवचन
	हन्यते	हन	लृट लकार	प्रथम	एकवचन
	लभन्ते	लभ्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	छिन्दन्ति	छिन्द्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	दहति	दह	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	प्राप्स्यसि	प्र + आप्	लृट लकार	मध्यम	एकवचन
	हन्ति	हन्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	गृहणाति	ग्रह	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	मुह्यति	मुह्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	विजानीतः	वि + ज्ञा	लट् लकार	प्रथम	द्विवचन

3. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते हुए सन्धि का नामोल्लेख कीजिए–

कृपयाविष्टम् , नैतत, नरोऽपराणि, वाक्य मुवाच, त्यक्त्वोतिष्ठ, क्लेदयन्त्यापः, चोपपन्नम्, नायम्, नैतत्त्वय्युपपद्यते, अन्वशोचस्त्वम्, नानुशोचन्ति।

उ०–	सन्धि पद	सन्धि-विच्छेद	सन्धि का नाम
	कृपयाविष्टम्	कृपया + आविष्टम्	दीर्घ सन्धि
	नैतत	न + एतत्	वृद्धि सन्धि
	नरोऽपराणि	नरः + अपराणि	उत्व सन्धि
	वाक्य मुवाच	वाक्यम + उवाच	अनुस्वार सन्धि
	त्यक्त्वोत्तिष्ठ	त्यक्त्वा + उत्तिष्ठ	गुण सन्धि
	क्लेदयन्त्यापः	क्लेदयन्ति + आपः	यण सन्धि
	चोपपन्नम्	च + उपपन्नम्	गुण सन्धि
	नायम्	न + अयम्	दीर्घ सन्धि
	नैतत्त्वय्युपपद्यते	न + एतत + त्वयि + उपपद्यते	वृद्धि, यण सन्धि
	अन्वशोचस्त्वम्	अन्तशोचः + त्वम्	विसर्ग सन्धि
	नानुशोचन्ति	न + अनुशोचन्ति	दीर्घ सन्धि

4. रेखांकित पदों में नियम-निर्देशपूर्वक विभक्ति स्पष्ट कीजिए–

(क) सुमित्रा <u>लक्ष्मणस्य</u> माता अस्ति।

उ०– रेखांकित पद लक्ष्मणस्य में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। क्योंकि जो बात और विभक्तियों के आधार पर नहीं बताई जा सकती, उसको बताने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। वे बातें सम्बन्ध विशेष को प्रदर्शित करने वाली होती हैं।

(ख) <u>नदीषु</u> गङ्गा पवित्रतमा अस्ति।

उ०– रेखांकित पद नदीषु में सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जहाँ बहुतों में से किसी एक को छाँटा जाए, वहाँ जिससे में छाँटा जाए, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

(ग) राजा <u>ब्राह्मणेभ्यः</u> धनं ददाति।

उ०– रेखांकित पद ब्रह्मणेभ्य: में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि नमः (नमस्कार), स्वस्ति (कल्याण), स्वाहा (आहुति), स्वधा (बलि), अलं (समर्थ, पर्याप्त), बषट् (आहुति) इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

(घ) <u>हरिणा</u> सह राधा नृत्यति।

उ०– रेखांकित पद हरिणा में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि सह के योग में अप्रधान (अर्थात जो प्रधान क्रिया के कर्ता का साथ देता है) में तृतीय विभक्ति होती है।

(ङ) <u>नदीं</u> समया पशवः अस्ति।

उ०– रेखांकित पद नदीं में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि अभितः (चारों या सभी ओर), परितः (सभी ओर),

समया (समीप), निकषा (समीप), हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर, तरफ) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती हैं।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

षष्ठः

पाठः

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ..... बान्धवः।**

[शब्दार्थ– कस्मिंश्चित् अधिष्ठाने = किसी स्थान पर, **मित्रत्वमापन्नाः > मित्रत्वम् + आपन्नाः** = मित्रता को प्राप्त हुए (मित्रभाव से), **मतिरजायत > मतिः + अजायत** = विचार उत्पन्न हुआ, **विद्योपार्जनम् > विद्या + उपार्जनम्** = विद्या का संग्रह, **अथान्यस्मिन् दिवसे > अथ + अन्यस्मिन् दिवसे** = इसके बाद किसी दिन, **विद्योपार्जनार्थम् > विद्या + उपार्जन + अर्थम्** = विद्या प्राप्त करने के लिए, **द्वादशाब्दानि** = बारह वर्ष तक, **विद्याकुशलास्ते > विद्याकुशलाः + ते** = वे विद्या में कुशल, **तदुपाध्यायस्य > तत् + उपाध्यायस्य** = तो गुरु जी की, **अनुज्ञाम्** = आज्ञा को, **मन्त्रयित्वा** = सलाह करके, **तथैवानुष्ठीयताम् > तथा + एव + अनुष्ठीयताम्** = वैसा ही किया जाए, **इत्युक्त्वा > इति + उक्त्वा** = ऐसा कहकर, **उपाध्यायस्यानुज्ञाम् > उपाध्यायस्य + अनुज्ञाम्** = आचार्य की आज्ञा, **एतस्मिन्नन्तरे > एवस्मिन् + अनन्तरे** = इसी बीच, **पत्तने** = नगर में, **महाजनः** = वणिक; व्यापारी, **ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन > ततः + चतुर्णाम् + मध्यात् + एकेन** = इसके बाद चारों में से एक ने, **पुस्तकम्उद्घाट्य** = पुस्तक खोलकर, **महाजनमेलापकेन सह** = वणिकों की भीड़ के साथ, **रासभः** = गधा, **व्यसने** = विपत्ति में, **यस्तिष्ठति > यः + तिष्ठति** = जो टिकता है]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– किसी स्थान पर चार ब्राह्मण आपस में मित्रतापूर्वक रहते थे। बाल्यकाल में उन्होंने विचार किया कि 'परदेश चलकर विद्यार्जन करे।' तक अगले दिन आपस में निश्चय कर वे विद्याध्ययन के लिए कन्नौज पहुँचे। वहाँ पाठशाला में पढ़ने लगे। इस प्रकार बारह वर्ष तक मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर वे विद्या में निपुण हो गए। तब उन चारों ने मिलकर आपस में कहा, 'अब हम लोग विद्या में पारंगत हो गये हैं, इसलिए गुरु जी से आज्ञा लेकर अपने देश को चलें।' इस प्रकार परामर्श कर वे 'ऐसा ही करें' यह कहकर गुरु जी से आज्ञा प्राप्त कर तथा पुस्तकें लेकर किसी मार्ग पर जब कुछ दूर चले तो दो रास्ते मिले। तब वहाँ एक बोला, 'किस मार्ग से चला जाए?' उसी समय उस नगर में किसी वणिक (व्यापारी) का पुत्र मर गया था। उसका दाह-संस्कार करने के लिए महाजन (लोगों की भीड़ अथवा व्यापारी लोग) जा रहे थे। तब चारों में से एक ने पुस्तक खोलकर देखकर कहा, 'महाजन (बहुत अधिक लोग अथवा वणिक) जिस मार्ग से जाएँ, वही उपयुक्त मार्ग है।' तो हम लोग (इन) वणिकों (बहुत अधिक लोगों) के मार्ग से चलें। इसके बाद जब वे पण्डित वणिकों अथवा भीड़ के साथ श्मशान भूमि पहुँचे तो वहाँ कोई गधा दिखाई पड़ा। तब दूसरे ने पुस्तक खोलकर देखा कि, ''उत्सव (खुशी) में, आपत्ति में, अकाल पड़ने पर, शत्रु से संकट प्राप्त होने पर, राजद्वार (न्यायालय) में, श्मशाम में जो साथ दे, वही बन्धु (सच्चा सम्बन्धी) है।''

2. **तदहो ..... धर्मस्तावत्।**

[शब्दार्थ– अयमस्मदीयः > अयम् + अस्मदीयः = यह हमारा, **ग्रीवायां** = गले (में), **उष्ट्रः** = ऊँट, **त्वरिता** = तेज, **तन्नूनमेष > तत् + नूनम् + एषः** = तो निश्चित ही यह]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– 'तो अहो, हमें यह (हमारा) सम्बन्धी मिला है।' तब कोई उसके गले लगने लगा तथा कोई पैर धोने लगा। फिर जैसे ही उन पण्डितों ने दिशाओं की ओर (इधर-उधर) देखा वैसे ही कोई ऊँट दिखाई पड़ा। वे बोले, ''यह क्या है?'' तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर कहा, ''धर्म की चाल तेज होती है। निश्चय ही यह धर्म है।''

3. **चतुर्थेनोक्तम् ..... पलायिताः।**

[शब्दार्थ– योज्यताम् = जोड़ देना चाहिए, **बद्धः** = बाँध दिया, **रजकस्याग्रे > रजकस्य + अग्रे** = धोबी के सामने, **पलायिताः** = भाग खड़े हुए]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– चौथा बोला, 'प्रियजन को धर्म से जोड़ देना चाहिए। तो अपने इस सम्बन्धी को धर्म से जोड़ दो।' तब उन्होंने गधे को ऊँट की गर्दन से बाँध दिया। इस पर किसी ने यह बात उस (गधे) के स्वामी धोबी से कह दी। यह सुनकर जब वह धोबी उन मूर्ख पण्डितों को पीटने के लिए आया तो वे भाग खड़े हुए।

4. ततो यावदग्रे ..... शिरश्छेदोविहितः।

[**शब्दार्थ– स्तोकम्** = थोड़ा, **काचिन्नदि** > **काचित्** + **नदी** = कोई नदी, **समासादिता** = मिली, **पलाशपत्रमेकमायातं** > **पलाशपत्रम्** + **एकम्** + **आयातम्** = ढाक के एक पत्ते को आता हुआ, **पण्डितेनेकैनोक्तम्** > **पण्डितेन** + **एकेन** + **उक्तम्** = एक पण्डित ने कहा, **तदस्मांस्तारयिष्यति** > **तत्** + **अस्मान्** + **तारयिष्यति** = वह हमें तारेगा, **यावत्तस्योपरि** > **यावत्** + **तस्य** + **उपरि** = जैसे ही उसके ऊपर, **पतितस्तावन्नद्या** > **पतितः** + **तावत्** + **नद्या** = कूदा; वैसे ही नदी के द्वारा, **केशान्तम्** = बालों के गुच्छे को, **दुस्सहः** = असह्य, **शिरश्छेदोविहितः** > **शिरः** + **छेदः** + **विहितः** = सिर काट लिया]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– तदुपरान्त ज्यों ही वे आगे कुछ दूर चले, त्यों ही कोई नदी मिली। उसके जल में ढाक के एक पत्ते को आता देखकर एक पण्डित बोला, 'जो पत्ता आएगा वह हमें पार करेगा।' यह कहकर वह जैसे ही उस पर कूदा, वैसे ही नदी में बह चला। उसे इस प्रकार बहता देख दूसरे पण्डित ने उसके बालों के गुच्छे को पकड़कर कहा—

सर्वनाश (की स्थिति) उत्पन्न होने पर बुद्धिमान लोग आधे को त्याग देते हैं (और अवशिष्ट) आधे से ही अपना काम चलाते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण का विनाश असहनीय होता है। ऐसा कहकर उसका सिर काट लिया।

5. उथ तैश्च ..... स्वदेशं गताः।

[**शब्दार्थ– तैश्च** > **तैः** + **च** = और वे, **आसादितः** = पहुँचे, **घृतखण्डसंयुक्ताः** = घी और खांड से युक्त, **सूत्रिकाः** = सेवइयाँ, **दीर्घसूत्री** = आलसी; लम्बे सूत्रवाला, **मण्डकाः** = माँड; मालपुआ; रोटी, **चिरायुषम्** = लम्बी आयु वाला, **वटिकाभोजनम** = दही-बड़े का भोजन, **छिद्रेष्वनर्था** > **छिद्रेषु** + **अन्यथाः** = छिद्रों(दोषों) में विपत्तियाँ, **क्षुत्क्षामकण्ठाः** = भूख से दुबला कण्ठ लिए, **लोकैरुपहास्यमानाः** > **लौकैः** + **उपहास्यमानाः** = लोगों के द्वारा हँसी का पात्र बनते हुए]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– तब उसके बाद चलकर वे किसी गाँव में पहुँचे और ग्रामीणों के निमन्त्रण पर उनके साथ अलग-अलग घरों में ले जाए गए। वहाँ एक को दही और खाँड से युक्त सेवइयाँ भोजन में दी गई। तब उस पण्डित ने सोचकर कहा, 'लम्बे सूत्र (सूत या रेशे) वाला नष्ट हो जाता है' यह कहकर वह भोजन छोड़कर चला गया। दूसरे को मालपुए दिए गए। उसने भी कहा, 'बहुत विस्तार वाली वस्तु दीर्घायु की कारण नहीं होती' (अर्थात् आयु कम करती है)। वह भी भोजन छोड़कर चला गया। तीसरे को भोजन में बड़ियाँ दी गई। उस पण्डित ने भी कहा, 'छेदों में बहुत-से अनर्थ होते हैं।' इस प्रकार वे तीनों ही पण्डित भूख से दुर्बल कण्ठ लिए लोगों की हँसी (मजाक) के पात्र बनकर अपने स्थान को गए।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. महाजनो येन गतः स पन्थाः।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– जब चारों ब्राह्मणकुमार एक दोराहे पर पहुँचते हैं, तब वे विचार करते हैं कि हमें किस मार्ग से जाना चाहिए; तभी उनमें से एक कहता है-

व्याख्या– इसका सीधा-सादा अर्थ है कि 'महापुरुष या श्रेष्ठजन जिस मार्ग से गए हैं, वही सच्चा, अनुगमनीय मार्ग है। वस्तुतः साधारण जनता कई बार धर्म और अधर्म, उचित और अनुचित के बीच विद्यमान सूक्ष्म अन्तर को नहीं समझ पाती। इसलिए उसे यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि किस मार्ग (या आचरण) को अपनाया जाए। ऐसे अवसरों पर सत्पुरुषों ने क्या आचरण किया, यह ज्ञातकर तदनुसार आचरण करना चाहिए। इसलिए विभिन्न शास्त्रों, पुराणों, धर्मग्रन्थों एवं महापुरुषों के जीवनचरितों में सत्पुरुषों के आचारण के विषय में अनेक कथाओं एवं उनके जीवन में घटी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। जनसामान्य को इन्हीं को अपने व्यवहार का आधार बनाना चाहिए।

विशेष– वह सूक्ति मूलतः 'महाभारत' में उस स्थान पर आई है, जहाँ यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है 'कः पन्थाः?' (अर्थात् मार्ग कौन-सा है?) युधिष्ठिर उत्तर देते हुए कहते हैं—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सः पन्थाः॥ (वनपर्व, 313/117)

(तर्क की कहीं स्थिति नहीं है (अर्थात् केवल तर्क-वितर्क से मनुष्य सत्य तक नहीं पहुँच सकता)। श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं।

ऋषि (अनेक हैं), एक नहीं कि जिसका मत प्रमाण माना जाए। धर्म का तत्व गुहा में निहित है (अर्थात् धर्म अत्यन्त गूढ़ है)। अत: जिस मार्ग का महापुरुष अनुगमन करते रहे हैं, वही मार्ग है।

इसी कारण 'मानस' में वशिष्ठ जी भरत से कहते हैं—

समुझब कहब करब तुम जोई। धर्म-सार जग होइ है सोई।।

(हे भरत! तुम जो कुछ सोचोगे, कहोगे या करोगे, संसार में वही धर्म का सार माना जाएगा अर्थात् संसार उसी को प्रमाण मानकर आचरण करेगा।)

अत: महापुरुष, मन, वचन और कर्म से जैसा आचरण करते हैं, वही संसार के लोगों के लिए प्रमाण हो जाता है। पर मूर्ख पण्डित 'महाजन' के इस मूलार्थ तक न पहुँचकर 'व्यापारी' या 'भीड़' जैसे स्थूल अर्थ में अटककर रह गए और उनका अनुगमन करते हुए श्मशान भूमि जैसे अशुचि, अमांगलिक स्थान पर जा पहुँचे।

2. राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में मित्र के लक्षण बताए गए हैं। यह सूक्ति उस समय एक ब्राह्मण द्वारा कही गई थी जब चारों ब्राह्मण महाजनों का अनुसरण करते हुए श्मशाम पर पहुँच जाते हैं और वहाँ उन्हें एक गधा दिखाई दे जाता है।

व्याख्या– गधे के दिखाई दे जाने पर एक ब्राह्मणकुमार कहता है-उत्सव में, कष्ट के समय, अकाल में, शत्रु के द्वारा संकट में, राजद्वार(न्यायालय) में और श्मशान में जो साथ देता है वही बन्धु अर्थात् वास्तविक सम्बन्धी होता है। उपर्युक्त सूक्ति का आशय यह है कि वही मित्र है जो अनेकानेक विपरीत परिस्थितियों में भी साथ देता है। संसार में सच्चा मित्र दुर्लभ होता है। सच्चा मित्र वहीं है जो अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही स्थितियों में अपने मित्र के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खडा रहता है और प्रतिकूल परिस्थितियों के निवारणार्थ सदैव प्रयत्नशील रहता है। लेकिन इन चारों ब्राह्मणों ने इस सूक्ति का शाब्दिक अर्थ ग्रहण किया और श्मशान में घूम रहे गधे को ही अपना मित्र मान बैठे और उसका आदर-सत्कार करने लगे।

3. धर्मस्य त्वरिता गतिः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– श्मशान में पहुँचे ब्राह्मणकुमारों को एक ऊँट दिखाई देता है। वे अपने शास्त्रज्ञान के अनुसार उसे धर्म मान बैठते हैं। इस सूक्ति में धर्म के स्वरूप को बताया गया है।

व्याख्या– धर्म की गति तीव्र होती है। आशय यह है कि मनुष्य के मन में धर्मभाव बहुत देर नहीं टिकता, इसलिए जब भी मन में धर्मभाव का उदय हो, मनुष्य को उसे तत्काल कर डालना चाहिए। इसी प्रकार जब भी धर्म करने का कोई अवसर मिले तो बिना विलम्ब उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए, जिससे पुण्य का संचय हो सके, अन्यथा बुरे और अधार्मिक कार्यों की ओर तो मनुष्य की प्रवृत्ति सामान्यत: रहती ही है, पर धर्म की ओर प्रवृत्ति मुश्किल से होती है; अत: अवसर उपस्थित होने पर धर्म द्वारा पुण्य सम्पादन में देरी नहीं करनी चाहिए। पर मूर्ख पण्डितों ने 'धर्म' की तीव्रगति' के इस सूक्ष्म अर्थ तक न पहुँचकर उसके स्थूलार्थ (वाच्यार्थ) को ग्रहण किया और यह समझा कि जो तेज चाल से चले, वही धर्म है। इसलिए 'तेज चलता हुआ ऊँट' धर्म है।

4. इष्टं धर्मेण योजयेत्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– ब्राह्मणकुमार अपने प्रियजन के विषय में व्यक्ति के कर्त्तव्य को स्पष्ट करते हैं और तदनुसार गधे को ऊँट की गर्दन से बाँध देते हैं।

व्याख्या– जो भी अपना प्रिय हो, उसे धर्म से जोड़ना चाहिए अर्थात् अपने प्रियजन को धर्म-मार्ग पर आरूढ़ कराना चाहिए। सच्चे मित्र का लक्षण भी इस प्रकार बताया गया है— **'पापान्निवारयति योजयते हिताय।'** वह अपने मित्र को पापकर्मों से हटाकर (विरत करके) उसे हितकारी शुभ कर्मों में लगाता है अर्थात् उसे सत्यपरमर्श देकर उसको शुभ और हितकर कार्यों में प्रवृत्त करता है। इसी प्रकार हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने प्रियजन को धर्म में (उचित कार्यों में) लगाकर उसका सच्चा हित करे। पर मूर्ख पण्डितों ने 'इष्ट' (प्रियजन) और 'धर्म' (शुभ कर्म) दोनों का स्थूल अर्थ लेकर और 'योजयेत्' (जोड़ना चाहिए) का लक्ष्यार्थ न समझकर उसका वाच्यार्थ ग्रहण करते हुए गधे को ऊँट की गर्दन से बाँध दिया। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को केवल शास्त्रों का अध्ययन ही नहीं करना चाहिए, अपितु व्यावहारिक ज्ञान भी रखना चाहिए।

5. आगमिष्यति यत पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– धोबी से जान बचाकर ब्रह्मणकुमार नदी किनारे पहुँचते हैं। अब नदी को कैसे पार करें, यही समस्या उनके सामने आती है। तभी एक पत्ता पानी में बहता हुआ आता है। उनके शास्त्रज्ञान के अनुसार वही उनकी समस्या के समाधान का साधन है। इसी विषय में यहाँ बताया गया है।

व्याख्या– इस सूक्ति का शब्दार्थ है कि 'जो पत्ता आएगा, वह हमें पार करेगा।' यहाँ 'पत्ता' शब्द को लक्षणा से 'तुच्छ या साधारण वस्तु' के अर्थ में ग्रहण करना चाहिए। आशय यह है कि विपत्ति में पड़े हुए मनुष्य को किसी बड़े सहारे की आशा में बैठे नहीं रहना चाहिए, वरन् समय पर यदि कोई साधारण या तुच्छ-सी दिखाई पड़ने वाली सहायता भी उपलब्ध हो तो उसकी उपेक्षा न करके उसी का सदुपयोग कर लेना चाहिए। कई बार बड़ी-बड़ी चीजों की अपेक्षा छोटी वस्तुएँ या बड़े आदमियों की अपेक्षा छोटे आदमी अधिक सहायक सिद्ध होते हैं, जिनसे मनुष्य को विपत्ति के पार जाने में बड़ी सहायता मिलती है। हिन्दी में इसी की समकक्ष कहावत है **'डूबते को तिनके का सहारा'** अर्थात् विपत्तिग्रस्त व्यक्ति को थोड़ा सहारा भी बहुत होता है। पर मूर्ख पण्डित ने 'पत्रम्' का वाच्यार्थ 'पत्ता' ग्रहणकर उसका सहारा लेकर पार होना चाहा। फलत: वह नदी में बह गया और डूबकर मर गया।

6. सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं व्यजति पण्डितः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– सर्वस्व नाश होते देखकर व्यक्ति को क्या करना चाहिए। अपने एक साथी को जल में बहता देखकर एक ब्राह्मणकुमार इसी पर अपना मत व्यक्त करता हुआ यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– यदि सर्वस्व नष्ट होने की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि आधा ही बचा ले और शेष आधे का मोह छोड़ दे; क्योंकि सारा बचाने के चक्कर में मनुष्य कभी-कभी सभी कुछ गँवा बैठता है। इसीलिए लालच को छोड़कर व्यक्ति नष्ट होते सर्वस्व में जो कुछ भी बचा सके, वही बचा ले। उदाहरण के लिए, यदि किसी के मकान या दुकान में आग लग जाए और वह सारा बचाने का मोह करे तो संभव है कि सब कुछ नष्ट होने के साथ-साथ वह भी जल मरे। इसलिए उसे चाहिए कि आसानी से जो कुछ बचाया जा सके, उसी को बचा ले; क्योंकि कुछ भी न बचने से कुछ बचना तो अच्छा ही है। फिर उस बचे हुए से ही उसे अपना काम चलाना चाहिए, किन्तु मूर्ख ब्राह्मणकुमार इस सूक्ति का शाब्दिक अर्थ लगाकर अपने ही मित्र को मार डालते हैं। अन्यत्र भी कहा गया है– **'सब धन जाता जानिए, आधा दीजै बाँटि'**।

7. अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुस्सहः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अपने एक साथी को नदी में बहता हुआ देखकर एक ब्राह्मणकुमार यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– व्यक्ति को सम्पूर्ण की प्राप्त्याशा में प्राप्त हुई आधी वस्तु का त्याग नहीं करना चाहिए, वरन् आधी का सदुपयोग करते हुए संपूर्ण की प्राप्ति का प्रयत्न करते रहना चाहिए; क्योंकि परिस्थितिवश यदि सम्पूर्ण की प्राप्ति नहीं होती तो कम-से-कम आधी वस्तु तो पास में रह ही जाती है। उसका परित्याग कर देने पर तो कुछ भी नहीं बचता और तब वस्तु की पूर्ण अभावग्रस्तता अत्यन्त दु:खदायी होती है। इसलिए सम्पूर्ण नष्ट होती वस्तु के जितने भी भाग को बचाया जा सके, बचा लेना चाहिए। सम्पूर्ण को बचाने के प्रयास में बचाये जा सकने वाले भाग को नष्ट नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण का विनाश असहनीय होता है। किसी ने अन्यत्र कहा भी है– **'आधी छोड़ सारी को धावै, आधी मिलै न सारी पावै',** किन्तु मूर्ख ब्राह्मणकुमार इस सूक्ति का शाब्दिक अर्थ लगाकर अपने ही मित्र का सिर काट लेते हैं। तात्पर्य यह है कि अल्प ज्ञान के कारण ही उन मूर्ख ब्राह्मणकुमारों ने अपने मित्र को ही मृत्यु-द्वार तक पहुँचा दिया। कहा भी गया है– **'अल्पविद्या भयंकरी।'**

8. दीर्घसूत्री विनश्यति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अपने भोजन में सेवइयाँ देखकर पहला ब्राह्मणकुमार यह सूक्ति कहता है और इसका अनुचित अर्थ लगातार भोजन को ग्रहण नहीं करता।

व्याख्या– इस सूक्ति का अर्थ है कि आलसी व्यक्ति नष्ट हो जाता है। आशय यह है कि जो व्यक्ति शीघ्र करने योग्य कार्य को करने में बहुत विलंब करता है अथवा कार्य करते हुए बहुत लंबे समय तक उसे खींचता जाता है, उसका कार्य नष्ट हो जाता है अथवा कार्य के पूर्ण हो जाने पर उसका कोई महत्व नहीं रह जाता; क्योंकि तब तक उसका उपयुक्त समय बीत चुका होता है। इससे अपूरणीय क्षति पहुँच सकती है या वह कभी सर्वस्व-नाश की स्थिति तक भी पहुँच सकता है। उस मूर्ख पण्डित ने 'दीर्घसूत्री' का 'आलसी व्यक्ति' अर्थ न लेकर शब्दार्थ 'लम्बे सूत या रेशे वाली वस्तु को ग्रहण करने वाला' लिया, जिससे उसे परोसे हुए भोजन को छोड़ कर भूखे रहना पड़ा। आलस्य के विषय में भर्तृहरि ने अन्यत्र लिखा है– **'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः'**।

9. अतिविस्तारविस्तीर्णा तद्भवेन्न चिरायुषम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अपने भोजन में मालपुए को देखकर दूसरा ब्राह्मणकुमार इस सूक्ति का अनुचित अर्थ समझकर भोजन से उठ खड़ा होता है।

व्याख्या– इसका शब्दार्थ है 'अति विस्तार वाली वस्तु दीर्घायु का कारण नहीं होती' अर्थात् आयु को कम करती है। इस सूक्ति का भाव यह है कि अति स्थूल शरीर का होना आयु के लिए हानिकारक है; क्योंकि मेद (या चर्बी) बहुत बढ़ जाने से अनेक

रोग उत्पन्न होकर व्यक्ति की आयु को क्षीण कर देते हैं, परन्तु उस मूर्ख पण्डित ने इसे वाच्यार्थ में ग्रहण करके मालपुए को लम्बा-चौड़ा देखकर उसे आयु घटाने वाला मानकर त्याग दिया।

10. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– तीसरा ब्राह्मणकुमार अपने भोजन में छिद्रयुक्त बड़ियाँ देखकर इस सूक्ति को कहता है और इसका वाच्यार्थ ग्रहणकर बिना भोजन किये ही वापस आ जाता है।

व्याख्या– इस सूक्ति का वाच्यार्थ है 'छेदों में बहुत-से अनर्थ रहते है।' 'छिद्र' का अर्थ 'दोष' है। व्यक्ति में यदि एक दोष भी पैदा हो जाए तो उसके कारण उसके कारण उसमें बाद में अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और वे समय के साथ बढ़ती जाती है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्त जुआ खेलने लगे तो जीतने पर वह दुर्व्यसनों में फँस सकता है और हारने पर चोरी-डकैती पर उतर सकता है या फिर अपना दु:ख भूलने के लिए मद्यपान शुरु कर सकता है। यह तो एक दोष का दुष्परिणाम है, फिर यदि उसमें अनेक दोष उत्पन्न हो जाएँ तो व्यक्ति के सर्वनाश में सन्देह ही क्या रह जाएगा? इसीलिए कहा गया है कि 'छिद्रों(दोषों) में अनेक अनर्थ रहते हैं', परन्तु मूर्ख पण्डित ने छिद्र का वाच्यार्थ 'छेद' ही लेकर उसका मूल अभिप्राय न समझा और बड़ियों में छेद देखकर उन्हें छोड़कर भूखा ही चला गया।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. चत्वारो ब्राह्मणा: विद्योपार्जनार्थं कुत्र गता:?

उ०– चत्वारो ब्राह्मणा: विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जमगच्छन्।

2. चत्वारो ब्राह्मण: किमर्थं देशान्तरं गता:?

उ०– चत्वारो ब्राह्मणा: विद्याध्ययनार्थं देशान्तर गता:।

3. धर्मेणं कं योजयेत्?

उ०– धर्मेणं इष्टं योजयेत्।

4. इष्टं केन योजयेत्?

उ०– इष्टं धर्मेण योजयेत् ।

5. मूर्ख पण्डितै: रासभ: कुत्र बद्ध:?

उ०– मूर्खपण्डितै: रासभ: उष्ट्रग्रीवायां बद्ध:।

6. बहून् मार्गान् समायातान दृष्टवा ते किमकुर्वन्?

उ०– बहून् मार्गान् समायातान् दृष्टवा महाजनपथेन अगच्छन्।

7. ब्राह्मणै: रासभ: उष्ट्रग्रीवायां कथं बद्ध।

उ०– ब्राह्मणै: रासभ: बन्धुरिति मन्यमानै: (मत्वा) 'इष्टं धर्मेण योजयेत् ' अनुसारेण उष्ट्रग्रीवायां बद्ध:।

8. पण्डित: वटिका भोजनं किमर्थम् अत्यजत् ?

उ०– 'छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति' इति सोचयित्वा पण्डित: वटिका भोजनम् अत्यजत् ।

9. भोजने मण्डकान् प्राप्य पण्डितेन किम उक्तम्?

उ०– भोजने मण्डकान् प्राप्य पण्डितेनोक्तम् -'अति विस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम् ' इति।

10. सर्वनाशे समुत्पन्ने पण्डित: क: त्यजति?

उ०– सर्वनाशे समुत्पन्ने पण्डित: अर्धं त्यजति।

11. श्मशाने ते ब्राह्मणा: कम् अपश्यन्?

उ०– श्मशाने ते ब्राह्मणा: रासभम् अपश्यन्।

12. द्वयो मार्गयो: समागतयो: ब्राह्मणा: केन मार्गेण अगच्छत्?

उ०– द्वयो मार्गयो: समागतयो: ब्राह्मणा: महाजनमार्गेण अगच्छत्।

13. ग्रामीण: एकस्मै ब्रह्माणाय भोजने किम् अददात्?

उ०– ग्रामीण: एकस्मै ब्रह्मणाय भोजने सूत्रिका: अददात्।

14. ते त्रयोऽपि पण्डिता: कथं स्वदेशं गता:?

उ०– ते त्रयोऽपि पण्डिता: क्षुत्क्षामकण्ठा: लोकैरुपहास्यमाना: स्वदेशं गता:।

15. अस्मात् पाठात् यूयं का शिक्षां प्राप्तनुथ?

उ०– लोकव्यवहारानभिक्षा: मनुष्या: शास्त्राण्यधीत्यापि मूर्खा: भवन्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए-

1. **चार ब्राह्मण विद्याध्ययन के लिए काव्यकुब्ज गए।**
   अनुवाद– चत्वारो ब्राह्मणा: विद्याध्ययनाय कान्यकुब्जं गता:।
2. **वहाँ पर उन्होंने शास्त्र पढ़े।**
   अनुवाद– तत्र ते शस्त्राणि अधीतवन्त:।
3. **उनका ज्ञान जीवनोपयोगी नहीं था।**
   अनुवाद– तेषां ज्ञान जीवनोपयोगी नासीत्।
4. **वे लोक व्यवहार में निपुण नहीं थे।**
   अनुवाद– ते लोकव्यवहारे निपुणा: न आसन्।
5. **शिक्षा जीवन के लिए ही होती है।**
   अनुवाद– शिक्षा जीवनार्थयैव भवति।
6. **मैं तुम्हारे साथ प्रयाग नहीं जाऊँगी।**
   अनुवाद– अहं त्वया सह प्रयागं न गमिष्यामि।
7. **जानवर सायंकाल जंगल से घर आ गए।**
   अनुवाद– पशवा: सायंकाले अरण्यात् गृहं आगच्छन् ।
8. **हरिश्चन्द्र ने अपने धर्म का पालन किया।**
   अनुवाद– हरिश्चन्द्र: स्वधर्मपालनम् अकरोत् ।
9. **व्यासपुत्र शुकदेव को नमस्कार है।**
   अनुवाद– व्यासपुत्रशुकदेवाय नम:।
10. **छात्र को विनयशील होना चाहिए।**
    अनुवाद– छात्र: विनयशील: भवेत् ।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न—

1. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम भी बताइए–**
   तत्रैक:, इत्युक्त्वा, विद्योपार्जनम्, त्रयोऽपि, तदुपाध्यायस्य, लौकेरूपाहास्यमाना:, तेनाप्युक्तम्, तथैव

उ०–	सन्धि पद	सन्धि विच्छेद	सन्धि का नाम
	तत्रैक:	तत्र + एक:	वृद्धि सन्धि
	इत्युक्त्वा	इति + उक्त्वा	यण सन्धि
	विद्योपार्जनम्	विद्या + उपार्जनम्	गुण सन्धि
	त्रयोऽपि	त्रय: + अपि	उत्व सन्धि
	तदुपाध्यायस्य	तत् + उपाध्यायस्य	व्यंजन सन्धि
	तन्नूनमेष:	तत् + नूनम् + एष:	परसवर्ण; अनुस्वार सन्धि
	लोकैरुपहास्यमाना:	लोकै: + उपहारस्यमाना:	विसर्ग सन्धि
	तेनाप्युक्तम्	तेन +अपि + उक्त्म्	दीर्घ, यण सन्धि
	तथैव	तथा + एव	वृद्धि सन्धि

2. **निम्नलिखित क्रिया पदों में धातु, पुरुष, वचन एवं लकार स्पष्ट कीजिए–**
   त्यजीत, वसन्ति, भवन्ति, भवेत्, गच्छाम्, तायिष्यति, अगमिष्यतिआ, पठन्ति, योजयेत्, नश्यति

उ०–	क्रिया पद	धातु	लकार	पुरुष	वचन
	त्यजति	त्यज	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	वसन्ति	वस	लट् लकार	प्रथम	बहुवचन
	भवन्ति	भू	लट् लकार	प्रथम	बहुवचन
	भवेत्	भू	विधिलिङ्ग लकार	प्रथम	एकवचन

गच्छाम्	गम्	लोट् लकार	उत्तम	बहुवचन
तारयिष्यति	तृ	लृट लकार	प्रथम	एकवचन
आगमिष्यति	आ + गम्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
पठन्ति	पठ्	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
योजयेत्	योज	विधिलिङ्ग लकार	प्रथम	एकवचन
नश्यति	नश	लट् लकार	प्रथम	एकवचन

3. निम्नलिखित शब्दों में प्रत्यय अलग करके लिखिए–

मन्त्रयित्वा, गृहीत्वा, नीत्वा, पठित्वा, कृत्वा, गत्वा, लब्ध्वा

उ०–	**शब्द**		**प्रत्यय**
	मन्त्रयित्वा	–	क्त्वा
	गृहीत्वा	–	क्त्वा
	नीत्वा	–	क्त्वा
	पठित्वा	–	क्त्वा
	कृत्वा	–	क्त्वा
	गत्वा	–	क्त्वा
	लब्ध्वा	–	क्त्वा

4. निम्नलिखित शब्दों का विग्रह करके समाज का नाम बताइए–

उ०–	**समस्त पद**	**समास विग्रह**	**समास का नाम**
	वाटिकाभोजनम्	वाटिकाया: भोजनम्	तत्पुरुष समास
	उष्ट्रग्रीवायाम्	उष्ट्रस्य ग्रीवायाम्	तत्पुरुष समास
	पलाशपत्रम्	पलाशस्य पत्रम्	तत्पुरुष समास
	विद्योपार्जनम्	विद्याया: उपार्जनम्	तत्पुरुष समास
	वणिक्पुत्र:	वणिकस्य पुत्र:	तत्पुरुष समास
	विद्याकुशला:	विद्यो कुशला:	तत्पुरुष समास

पाठ्येत्तर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

सप्तम: पाठ: लोभ: पापस्य कारणम्

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. एको ..... पश्यति।

[**शब्दार्थ– वृद्धव्याघ्र:** = बूढ़ा बाघ, **स्नात:** = स्नान करके, **कुशहस्त:** = हाथ में कुशा लिए हुए, **सरस्तीरे** > **सर:** + **तीरे** = सरोवर के किनारे, **ब्रूते** = कह रहा था, **पान्था:** = हे पथिकों, **लोभाकृष्टेन** > **लोभ** + **आकृष्टेन** = लोभ से आकृष्ट (पथिक) द्वारा, **पान्थेनालोचितम्** > **पान्थेन** + **आलोचितम्** = पथिक ने सोचा, **भाग्येनैतत्** > **भाग्येन** + **एतत्** = भाग्य से बह, **संशयमनारुह्य** > **संशयम्** + **अनारुह्य** = संदेह पर चढ़े बिना (सन्देह किए बिना), **पुनरारुह्य** > **पुन:** + **आरुह्य** = फिर चढ़कर; फिर प्राप्त करके]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'लोभ पापस्य कारणम्' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– एक बूढ़ा बाघ स्नान करके, कुश हाथ में लेकर, तालाब के किनारे कह रहा था, 'अरे, अरे पथिकों! यह सोने का कंगन लो।' तब लोभ से खिंचकर किसी राहगीर ने सोचा, 'भाग्य से ही ऐसा सम्भव होता है (ऐसा सुअवसर हाथ आता है), किन्तु इस (जैसे) सन्देहास्पद विषय में प्रवृत्त होना ठीक नहीं (अर्थात् जहाँ संकट की आशंका हो, ऐसे कार्य से विरत होना ही

अच्छा), फिर भी (कहा गया है कि)— संशय (सन्देह) का आश्रय लिए बिना व्यक्ति कल्याण (हित) को प्राप्त नहीं करता, पर सन्देह का आश्रय लेने पर यदि जीवित बच जाता है तो (भलाई) देखता है (प्राप्त करता है)।

2. **सः आह ..... दुर्निवारः।**

[**शब्दार्थ– प्रसार्य** = फैलाकर, **मारात्मके त्वयि** = हिंसा करने वाले तुझ पर, **प्रागेव > प्राक् + एव** = पहले ही, **यौवनदशायाम् अतीव** = यौवन में बहुत अधिक, **दुर्वृत्त** = दुराचारी, **दाराश्च > दाराः + च** = और स्त्री, **धार्मिकेणाहमादिष्टः > धार्मिकेण + अहम् + आदिष्टः** = धार्मिक ने मुझे आदेश दिया, **तदुपदेशादिदानीमहं > तद् + उपदेशात् + इदानीम् + अहम्** = उसके उपदेश से अब मैं, **गलितनखदन्तः** = गिरे हुए नाखून और दाँतों वाला, **विश्वासभूमिः** = विश्वासपात्र, **चैतावान् > च + एतावान** = और (मैं) इतना, **लोकप्रवादः** = लोकनिन्दा, **दुर्निवारः** = नहीं हट सकती]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– वह (पथिक) बोला- ''तेरा कंगन: कहाँ है?'' बाघ ने हाथ फैलाकर दिखाया। पथिक बोला, ''तुझ हिंसक (जीवधाती) पर कैसे विश्वास करूँ? बाघ बोला- ''सुन रे पथिक! पहले ही युवावस्था में मैं बड़ा पापी (दुराचारी) था। अनेक गायों और मनुष्यों को मारने से मेरे पुत्र और पत्नी मर गए और मैं वंशहीन हो गया। तब किसी धर्मात्मा ने मुझे उपदेश दिया- ''आप कुछ दान, धर्म आदि कीजिए।'' उस उपदेश से नहाने वाला, दान देने वाला, बूढ़ा, टूटे नाखून और दाँतों वाला मैं भला विश्वास योग्य क्यों नहीं हूँ? मैं तो इतना लोभरहित हो गया हूँ कि अपने हाथ से स्वर्णकंकण (सोने का कंगन) को भी जिस किसी को (किसी को भी) देना चाहता हूँ, तो भी बाघ मनुष्य को खाता है, यह लोकनिन्दा दूर करना कठिन है'' (अर्थात् लोगों के मन में बाघ के हिंसक होने की धारणा इतने गहरे तक बैठी है कि उसका निराकरण सम्भव नहीं, चाहे मैं कितना ही धर्मात्मा क्यों न हो जाऊँ)।

3. **मया च ..... पण्डितः।**

[**शब्दार्थ– अधीतानि** = पढ़े हैं, **मरुस्थल्याम्** = रेगिस्तान में, **क्षुधार्ते** = भूख से व्याकुल अर्थात् भूखे व्यक्ति को, **पाण्डुनन्दनः** = पाण्डव (यहाँ युधिष्ठिर), **लोष्ठवत्** = मिट्टी के ढेले के समान]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– और मैंने धर्मशास्त्र भी पढ़े हैं— हे युधिष्ठिर! मरुभूमि (रेगिस्तान) में जैसे वर्षा और जैसे भूखे को दिया भोजन सफल होता है, वैसे ही दरिद्र को दिया दान भी सफल होता है।

जो व्यक्ति दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है (समझता है), वह पण्डित (सच्चा ज्ञानी) है।

4. **त्वं चातीव ..... किमौषधैः।**

[**शब्दार्थ– मा** = मत (नहीं), **प्रयच्छेश्वरे > प्रयच्छ + ईश्वरे** = समर्थ को दो, **व्याधितस्य** = रोग की, **नीरुजस्य** = निरोगी की]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– और तुम बहुत दरिद्र हो, इसलिए तुम्हें यह सोने का कंगन देने को प्रयत्नशील (सचेष्ट) हूँ; क्योंकि— हे कौन्तेय (कुन्ती पुत्र)! दरिद्रों का भरण (पालन-पोषण) करो, धनवान् को धन मत दो। औषध रोगी के लिए है, जो नीरोगी (स्वस्थ) है, उसे औषध से क्या (लाभ)? (धनवानों के पास तो धन है ही, धन की आवश्यकता उसी को है, जिसके पास धन नहीं है।)

5. **तदत्र ..... भक्षितः।**

[**शाब्दार्थ– तदत्र > तत + अत्र** = तो यहाँ (इस), **सरसि** = सरोवर में, **तदवचः प्रतीतः** = उसकी बात पर विश्वास करके, **महापङ्के** = अत्यधिक कीचड़ में, **निमग्नः** = फँसा हुआ, **पलायितुमक्षमः > पलायितुम् + अक्षमः** = भागने में असमर्थ, **अतस्त्वामहमुत्थापयामि > अतः + त्वाम् अहम् + उत्थापयामि** = इसलिए तुझे मैं निकालता हूँ, **शनैः शनैरूपगम्य > शनैः-शनैः + उपगम्य** = धीरे-धीरे पास जाकर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– तो यहाँ (इस) सरोवर में स्नान करके सोने का कंगन लो। तब जब वह उसकी बात पर विश्वास कर लालच में (पड़कर) सरोवर में स्नान करने के लिए घुसा तो गहरी कीचड़ (दलदल) में फँसकर भागने में असमर्थ हो गया। उसे कीचड़ में पड़ा (फँसा) देख बाघ बोला, 'ओहो, दलदल में फँस गए। तो तुम्हें निकालता हूँ' यह कहकर धीरे-धीरे पास पहुँचकर बाघ ने उसे खा लिया।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की व्याख्या कीजिए–

1. **लोभः पापस्य कारणम्।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'लोभः पापस्य कारणम्' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लोभ को पाप का कारण बताया गया है।

व्याख्या– पाँच मनोविकारों–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद में यह तीसरा मनोविकार है। दूसरे की किसी वस्तु को येन–केन प्रकारेण पा लेने या ले लेने की तीव्र लालसा ही लोभ कहलाती है। लोभ और लालच एक–दूसरे के पर्याय है। संसार में अधिकतर लोग लोभ–लालच के वशीभूत होकर ही पाप–कर्म में प्रवृत्त होते हैं और क्रमश: अपने विनाश का कारण स्वयं बनते हैं। यदि व्यक्ति अपने लोभ–लालच की प्रवृत्ति पर अंकुश लगा लें तो उसे पाप–कर्म करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी और उसकी प्रवृत्ति स्वयमेव पाप कर्म की ओर हट जाएगी।

2. नः संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में जीवन में जोखिम उठाने के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना चाहता है। यदि वह उन्नति करना चाहता है तो उसे स्वयं को सन्देह अर्थात् खतरे में डालना ही होगा। उन्नति के लिए यदि किसी भी काम को किया जाए तो उसकी शत–प्रतिशत सफलता कभी निश्चित नहीं होती। इस बात की संभावना भी रहती है कि उसे हानि भी उठानी पड़े। पथिक भी सोचता है कि बाघ उसे मार सकता है, लेकिन बाघ के पास गए बिना सोने का कंगन भी प्राप्त नहीं हो सकता। अत: सोने का कंगन प्राप्त करने के लिए उसे अपने प्राणों को संकट में डालना ही होगा। कहा भी गया है– **'No risk no gain.'** निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वयं को खतरे में डाले बिना मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता।

3. दरिद्रे दीयते दानं सफलं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में कहा गया है कि धनहीन व्यक्ति को दिया गया दान ही सफल होता है।

व्याख्या– दरिद्र को दिया हुआ दान ही सफल होता है; क्योंकि निर्धन को जब हम दान देते हैं तो उससे उसकी आवश्यकता पूरी होती है। हमारी दी हुई वस्तु का उपभोग करके उसकी आत्मा तृप्त होती है। उसकी तृप्त आत्मा से हमारे लिए शुभ आशीर्वचन निकलते हैं। इन्हीं आशीर्वचनों से हमारे पुण्यों में वृद्धि होती है और हमारे दान देने का उद्देश्य सफल हो जाता है। इसके विपरीत जब हम किसी समर्थ अथवा सम्पन्न व्यक्ति को दान देते हैं तो वह हमारे दिए हुए दान का दुरुपयोग करता है तथा उस दान के द्वारा वह विलासिता की वस्तुएँ प्राप्त करता है और समाज में दुराचरण फैलाता है, जिससे हमें पुण्यों के स्थान पर पापों का भागीदार बनना पड़ता है। इसीलिए तो किसी ने कहा भी है कि दान गरीब व्यक्ति को ही दिया जाना चाहिए।

4. मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में पराई स्त्री और पराए धन के प्रति आचरण को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या– इस सूक्ति का अर्थ है कि दूसरे की स्त्री को माता के समान और दूसरे के धन का मिट्टी के ढेले के समान समझना चाहिए। दूसरे की स्त्री अथवा धन पर जो कुदृष्टि रखता है, वह व्यक्ति पण्डित अर्थात् ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। आशय यह है कि जो व्यक्ति अज्ञान अथवा अहंकार के कारण दूसरे की स्त्रियों के साथ घृणास्पद आचरण का प्रदर्शन करते हैं, उन्हें अपने घर की स्त्रियों के सम्मान एवं सुरक्षा की चिन्ता नहीं होती; क्योंकि जैसा व्यवहार आप दूसरों के साथ करेंगे वैसा ही व्यवहार दूसरे भी आपके साथ करेंगे। इसी प्रकार यदि आप अन्यायपूर्ण ढंग से दूसरे के धन का हरण करते हैं तो आपका स्वयं का अर्जित धन भी दूसरे के द्वारा लिया जा सकता है। यही कारण है कि ज्ञानी व्यक्ति दूसरे की स्त्री को माता के समान और दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझते हैं।

5. आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यतिस पण्डितः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– बाघ अपने अहिंसक होने का प्रमाण देने के सन्दर्भ में महाभारत का दृष्टान्त देता हुआ यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– पण्डित (तत्ववेत्ता व ज्ञानी) वह है, जो समस्त प्राणियों को अपने समान समझता है। भाव यह है कि व्यक्ति जो व्यवहार अपने लिए औरों से चाहता है, उसे वैसा ही व्यवहार दूसरों से करना चाहिए। यहीं भारतीय संस्कृति का मूल–तत्व है। यहाँ पण्डित से तात्पर्य किसी जाति अथवा पढ़े–लिखे व्यक्ति से नहीं है। पण्डित वही है जिसमें दया, ममता, सहानुभूति एवं उदारता की भावना हो तथा जिसके अन्दर छुआछूत, भेदभाव, ऊँच–नीच आदि की भावना न हो। जो अपने–पराए का भेद रखकर व्यवहार करता है, वह मूर्ख होता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के अनुसार सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा का अंश विद्यमान होता है।

6. नीरुजस्य किमौषधैः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बाघ महाभारत का उद्धरण देते हुए लोभी पथिक से कह रहा है कि रोगी व्यक्ति को ही औषध दी जाती है, निरोगी को नहीं।

व्याख्या– रोगी के लिए औषध उपयोगी है, किन्तु निरोगी के लिए औषध का क्या प्रयोजन? अर्थात् औषध अस्वस्थ व्यक्ति का

रोग दूर करके उसे पुन: स्वस्थ बनाने के लिए होती है, जो व्यक्ति पूर्णत: स्वस्थ है, उसे औषध से क्या लेना-देना? इसी प्रकार जो दरिद्र है, अभावग्रस्त है, उसे दान की आवश्यकता है; किन्तु जो धनी है, साधन-सम्पन्न है, उसे और धन देने से क्या लाभ? दान का सच्चा उपयोग तो अभाव पीड़ित का अभाव दूर करने में है।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. लोभ: कस्य कारणम् अस्ति?

उ०– लोभ: पापस्य कारणम् अस्ति।

2. वृद्धव्याघ्र: सरस्तीरे किम अकथयत्?

उ०– वृद्ध: व्याघ्र: सरस्तीरे अकथयत्– ''भो, भो पान्था:! इदं सुवर्ण कङ्कणम् गृह्यताम् ।''

3. व्याघ्रस्य सम्बन्धे क: लोकप्रवाद: दुर्निवार:?

उ०– व्याघ्र: मानुषं खादति इति व्याघ्रस्य सम्बन्धे लोकप्रवाद: दुर्निवार:।

4. व्याघ्रस्य कथनं श्रुत्वा पथिक: किमचिन्तयत्?

उ०– पथिक: व्यचारयत् यत् भाग्येनैव एतत् सम्भवति, परमस्मिन् सन्देहास्पदे विषये प्रवृत्ति: न कुर्यात् , किन्तु संशयमकृत्वाऽपि नरं कल्याणं न पश्चति।

5. पण्डित: क:?

उ०– आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति सैव (स + एव) पण्डित:।

6. व्याघ्र यौवने कीदृश: आसीत्?

उ०– व्याघ्र यौवने अतीव दुर्वृत्त: आसीत् ।

7. दानं केभ्य: दातव्यम्?

उ०– दानं दरिद्रेभ्य: दातव्यम्।

8. पथिक: व्याघ्रस्य वचनै: कुत्र निमग्न:?

उ०– पथिक: व्याघ्रस्य वचनै: महापङ्के निमग्न:।

9. व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य किं दर्शयति?

उ०– व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य सुवर्णकङ्कणं दर्शयति।

10. पापस्य किं कारणम् अस्ति?

उ०– पापस्य कारणम् लोभ: अस्ति।.

11. औषधं कस्य पथ्यं भवति?

उ०– औषधं व्याधितस्य पथ्यं भवति।

12. पान्थं पङ्के पतितं दृष्ट् वा व्याघ्र: किम् अवदत्?

उ०– पान्थं पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्र: अवदत्– ''अहो! महापङ्के पतितोऽसि। अतस्त्वामहमुत्थापयामि।''

13. कीदृशं दानं सफलं भवति?

उ०– यत् दानं दरिद्रे दीयते तत् सफलं भवति।

14. अनेन पाठेन युष्मभ्यं का शिक्षा प्राप्यते?

उ०– अनेन पाठेन अस्मभ्यं शिक्षा प्राप्यते यत् लोभ: पापस्य कारणं भवति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न—

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. किसी स्थान पर एक बाघ रहता था।
अनुवाद– कस्मिंश्चिद् स्थाने एक: व्याघ्र: वसति स्म:।

2. पथिक को सोने का कंगन देखकर लालच आ गया।
अनुवाद- पान्थस्य स्वर्णकंङ्कण पश्य अलोभत् ।

3. लोभ पाप का कारण होता है।
अनुवाद– लोभ: पापस्य कारणं भवति।

4. पथिक सरोवर के कीचड़ में फँस गया।
अनुवाद– पान्था: सरिसस्य पङ्के निमग्न:।

5. साधु ने हमें धर्म का उपदेश दिया।
अनुवाद– साधु: वयं धर्मस्य उपदेश: ददाति।

6. **दरिद्र को दिया गया दान सफल होता है।**
   अनुवाद– दरिद्रस्य दीयते दानं सफलं भवति।
7. **हम आज पढ़ने के लिए जा रहे हैं।**
   अनुवाद– वयं अद्य अध्ययनाय गच्छाम्।
8. **विद्यालय के समीप एक तालाब है।**
   अनुवाद– विद्यालयं समया एक: वडाग: अस्ति।
9. **तुम्हें प्रतिदिन प्रात:काल भ्रमण करना चाहिए।**
   अनुवाद– यूयं नित्यं प्रात:काले भ्रमणं कुर्यात् ।
10. **सफलता के लिए हमें अति परिश्रम करना चाहिए।**
    अनुवाद– सफलताया: कृते वयम् अति परिश्रमं कुर्याम् ।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते हुए नियम-निर्देशित कीजिए–**
   पान्थोऽवदत्, चैतवान, सरस्वीरे, अतस्त्वामहमुत्थपयामि, तस्यौषधं, तथापि, धर्मादिकम्, प्रागेव, भाग्येनैतत्, लोभाकृष्ट:

उ०–	सन्धि पद	सन्धि विच्छेद	नियम	सन्धि का नाम
	पान्थोऽवदत्	पान्थ: + अवदत्	: + अ = ोऽ	उत्व सन्धि
	चैतवान	च + एतवान	अ + ए = ै	वृद्धि सन्धि
	सरस्तीरे	सर: + तीरे	: + त = स्	सत्व सन्धि
	अतस्त्वामहमुत्थपयामि	अत: + त्वाम् + अहम् + उत्थापयामि:	: + त = स्, म + अ = म्	सत्व, अनुस्वार सन्धि
	तस्यौषधं	तस्य + औषधम	अ + औ = औ	वृद्धि सन्धि
	तथापि	तथा + अपि	आ + अ = आ	दीर्घ सन्धि
	धर्मादिकम्	धर्म + आदिकम्	अ + अ = आ	दीर्घ सन्धि
	प्रागेव	प्राक् + एव	क + ए = ग	जशत्व सन्धि
	भाग्येनैतत्	भाग्येन + एतत्	अ + ए = ै	वृद्धि सन्धि
	लोभाकृष्ट:	लोभ + आकृष्ट	अ + आ = आ	दीर्घ सन्धि

2. **निम्नलिखित शब्दरूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए-**
   सन्देहे, भाग्येन, तव, लोभात्, भुतेषु, नीरुजस्य, शस्त्राणि, त्वयि, व्याघ्र:, उपदेशात्, पङ्के, धार्मिकेण

उ०–	शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
	सन्देहे	सप्तमी	एकवचन
	भाग्येन	तृतीया	एकवचन
	तव	षष्ठी	एकवचन
	लोभात्	पञ्चमी	एकवचन
	भुतेषु	सप्तमी	बहुवचन
	नीरुजस्य	षष्ठी	एकवचन
	शास्त्राणि	प्रथमा/द्वितीया	एकवचन
	त्वयि	सप्तमी	एकवचन
	व्याघ्र:	प्रथमा	एकवचन
	उपदेशात्	पञ्चमी	एकवचन
	पङ्के	सप्तमी	एकवचन
	धार्मिकेण	तृतीया	एकवचन

3. **निम्नलिखित धातु-रूपों के लकार, पुरुष एवं वचन स्पष्ट कीजिए-**
   अकथयत्, उत्थापयामि, अधीतानि, चरतु, अपश्यत्, तिष्ठति, अवदत्, इच्छामि, ब्रूते, गृह्यताम्, गृहाण

उ०–	धातु-रूप	लकार	पुरुष	वचन
	अकथयत्	लङ् लकार	प्रथम	एकवचन

उत्थापयामि	लट् लकार	उत्तम	एकवचन
अधीतानि	लोट् लकार	उत्तम	एकवचन
चरतु	लोट् लकार	प्रथम	एकवचन
अपश्यत्	लङ् लकार	प्रथम	एकवचन
तिष्ठति	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
अवदत्	लङ् लकार	प्रथम	एकवचन
इच्छामि	लट् लकार	उत्तम	एकवचन
ब्रूते	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
गृह्यताम्	लोट् लकार	प्रथम	द्विवचन
गृहाण	लोट् लकार	मध्यम	एकवचन

4. रेखांकित पदों में प्रयुक्त विभक्ति तथा उससे संबंधित नियम का उल्लेख कीजिए-

(क) ग्रामं निकषा नदी वहति।

उ०– पद ग्रामं में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई हैं क्योंकि अभितः (चारों ओर या सभी ओर), परितः (सभी ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर तरफ), शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

(ख) सुधीरः कट्या कुब्जः अस्ति।

उ०– रेखांकित पद कट्या में तृतीय विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जिस अंग में विकार होने से शरीर विकृत दिखाई दे, उस विकारयुक्त अंग में तृतीय विभक्ति होती है।

(ग) विद्यालयं अभयतः राजमार्गम् अस्ति।

उ०– रेखांकित पद विद्यालयं में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि अभितः (चारों ओर या सभी ओर), परितः (सभी ओर), समया (समीप), निकषा (समीप) हा (शोक के लिए प्रयुक्त शब्द), प्रति (ओर तरफ), शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

(घ) मृगाः मृगैः सङ्कमनुब्रजन्ति।

उ०– रेखांकित पद मृगैः में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि साकं, सार्धं, समं शब्दों के योग में तृतीय विभक्ति होती है।

(ङ) कृष्णस्य पिता वसुदेव।

उ०– रेखांकित पद कृष्णस्य में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है क्योंकि जो बातें संबंध विशेष को प्रदर्शित करने वाली होती है, वहाँ षष्ठी विभक्ति होती है।

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

अष्टमः पाठः

विश्ववन्द्याः कवयः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. कवीन्दुं ..... कोविदाः।

[**शब्दार्थ– कवीन्दुम्** > **कवि** + **इन्दुम्** = कविरूपी चन्द्रमा को, **नौमि** = नमस्कार करता हूँ, **चन्द्रिकामिव** > **चन्द्रिकाम्** + **इव** = चाँदनी के समान, **चिन्वन्ति** = चुनते हैं, **कोविदाः** = विद्वान लोग]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'विश्ववन्द्याः कवयः' नामक पाठ के 'वाल्मीकिः' शीर्षक से उद्धृत है।

अनुवाद– मैं कवियों में चन्द्रमा के सदृश वाल्मीकि को नमस्कार करता हूँ, जिनकी रामायण की कथा का विद्वान् लोग उसी प्रकार रसपान करते हैं, जैसे चकोर चाँदनी का (रसपान) करते हैं।

2. वाल्मीकिकविसिंहस्य ..... परं पदम्।

[**शब्दार्थ– वाल्मीकिकविसिंहस्य** = वाल्मीकि-कवि रूपी सिंह की, **कवितावनचारिणः** = कविता रूपी वन में विचरण करने वाले, **शृण्वन्** = सुनते हुए, **याति** = प्राप्त होता है, **परं पदम्** = मोक्ष को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– कवितारूपी वन में विचरण करने वाले कवि वाल्मीकिरूपी सिंह की रामकथारूपी गर्जन (घोष) को सुनकर कौन (ऐसा व्यक्ति है, जो) मोक्ष प्राप्त नहीं करता (अर्थात् रामकथा सुनकर सभी लोग मोक्ष के अधिकारी बन जाते हैं)।

3. **कूजन्तं ..... वाल्मीकिकोकिलम्।**

[**शब्दार्थ– कूजन्तं** = कूजते (बोलते) हुए, **रामरामेति > राम-राम + इति** = राम-राम इस (शब्द) का, **आरुह्य** = चढ़कर, **कविताशाखां** = कविता रूपी शाखा पर, **वाल्मीकिकोकिलम्** = वाल्मीकि रूपी कोयल की]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– कवितारूपी शाखा (डाली) पर चढ़कर मधुर-मधुर अक्षरों में (मधुर ध्वनि से) 'राम-राम' शब्द का कूजन करते हुए वाल्मीकिरूपी कोकिल (नर कोयल) की मैं वन्दना करता हूँ।

विशेष– आशय यह है कि महर्षि वाल्मीकि-रचित 'रामायण' कोकिल स्वर के समान मधुर है, जिसमें 'श्रीराम' के नाम स्मरणपूर्वक उनके सुन्दर चरित्र का गायन किया गया है (कोकिल जिस प्रकार वृक्ष की शाखा पर बैठकर पंचम स्वर में बोलता है, वैसे ही वाल्मीकि जी ने कवितारूपी शाखा पर बैठकर कूजन किया)।

4. **श्रवणाञ्जलिपुटपेयं ..... वन्दे।**

[**शब्दार्थ– श्रवणाञ्जलिपुटपेयं > श्रवण + अञ्जली-पुट-पेयम्** = कानरूपी अंजली के पुट से पीने योग्य, **विरचितवान्** = रचा, **भारताख्यममृतं > भारत + आख्यम् + अमृतम्** = महाभारत नामक अमृत, **तमहमरागमकृष्णं > तम् + अहम् + अरागम् + आकृष्णम्** = उन रागरहित और पापरहित को मैं]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'विश्ववन्द्या: कवय:' नामक पाठ के 'व्यास:' शीर्षक से उद्धृत है।

अनुवाद– मैं उन कृष्णद्वैपायन (व्यासदेव) की वन्दना करता हूँ, जो राग (द्वेष) और पाप से रहित हैं तथा जिन्होंने कानरूपी अञ्जलि द्वारा पाए जाने योग्य महाभारत नामक अमृत की सृष्टि की है। (आशय यह है कि जिस प्रकार प्यासा आदमी अंजलि से पानी पीकर पूर्ण तृप्त हो जाता है, उसी प्रकार निष्पाप व्यास जी द्वारा रचित महाभारत भी ऐसा अमृतमय है कि उसे कानों से मन भरकर सुनने से हृदय परम तृप्ति का अनुभव करता है)।

विशेष– कवि ने 'अकृष्णं कृष्णद्वैपायनं' में 'जो कृष्ण (काला या कल्मषयुक्त) नहीं है, फिर भी 'कृष्ण' नामधारी है, में विरोधाभास का चमत्कार प्रदर्शित किया है।

5. **नमः सर्वविदे ..... भारतम्।**

[**शब्दार्थ – सर्वविदे** = सब कुछ जानने वाले (सर्वज्ञ) को, **कविवेधसे** = कविरूपी ब्रह्म को, **सरस्वत्या** = वाणी द्वारा, सरस्वती नदी से (विद्या से; ज्ञान से), **वर्षमिव > वर्षम् + इव** = भारतवर्ष के समान, **भारतम्** = महाभारत को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– मैं उन सर्वज्ञ कवि ब्रह्मा श्री व्यास जी को नमन करता हूँ, जिन्होंने अपनी वाणी से पुण्यतम 'महाभारत' की रचना उसी प्रकार की है, जिस प्रकार ब्रह्मा ने सरस्वती नदी द्वारा भारत को पुण्यभूमि बना दिया है। (भाव यह है कि ब्रह्माजी ने जिस प्रकार पुण्यतोया सरस्वती की सृष्टि द्वारा भारत देश को पुण्यभूमि बना दिया, उसी प्रकार व्यास जी ने भी अपनी वाणी के बल पर महाभारत काव्य को पुण्यमय बना दिया)।

विशेष– महर्षि वेदव्यास जी ने 'महाभारत' में धर्म के सच्चे स्वरूप का उद्घाटन किया है, जिसे पढ़कर लोग धर्माचरण करना सीखें और पुण्यसंजय द्वारा मोक्ष प्राप्त करें।

6. **नमोऽस्तु ..... प्रदीपः।**

[**शब्दार्थ– फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र > फुल्ल + अरविन्द > आयत्-पत्र-नेत्र** = खिले हुए कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाले, **ज्ञानमयः** = ज्ञान से परिपूर्ण]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– खिले हुए कमल की चौड़ी पंखुड़ियों के सदृश (विशाल) नेत्र वाले विराट् बुद्धि वाले हे व्यासदेव! आपको नमस्कार है, जिन आपने 'महाभारत' रूपी तेल से पूर्ण ज्ञानमय दीपक जलाया है। (आशय यह है कि दीपक जिस प्रकार अंधकार को दूर करके मनुष्य को रास्ता दिखाता है, दीपक में भरा तेल ही उस दीपक द्वारा प्रकाश देता है, उसी प्रकार महाभारत में ज्ञानरूपी तेल है, जो लोगों का हमेशा मार्गदर्शन करता रहेगा। उसी प्रकार बुद्धि वाले श्री व्यासदेव ने 'महाभारत' के रूप में सदा तेल से भरे रहने वाले ऐसे दीपक को जलाया है, जो मनुष्यों के अज्ञानान्धकार को दूर कर उन्हें निरन्तर ज्ञानरूपी प्रकाश देता रहेगा)।

विशेष– 'महाभारत' एक ऐसे विशाल महासागर के समान है, जिसमें विश्व का सारा ज्ञान भर दिया गया है, इसीलिए इसके विषय में कहा गया है कि **'यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'** (जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है), अर्थात् संसार में जो कुछ भी जानने योग्य है, वह सब इसमें है। यह दावा विश्व के किसी भी अन्य ग्रन्थ के लिए नहीं किया जा सकता।

7. **पुरा कवीनां ..... बभूव।**

[**शब्दार्थ– पुरा** = प्राचीनकाल में, **गणनाप्रसङ्गे** = गणना के प्रसंग में, **कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः > कनिष्ठिका +**

अधिष्ठित-कालिदासः = कनिष्ठिका, छोटी उँगली पर विराजमान हैं कालिदास जहाँ ऐसी, **अद्यापि > अद्य + अपि** = आज तक भी, **अनामिका** = अनामिका (नामक उँगली), **सार्थवती** = सार्थक, **बभूव** = हुआ]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'विश्ववन्द्याः कवयः' नामक पाठ के 'कालिदासः' शीर्षक से उद्धुत है।

अनुवाद– (कभी) प्राचीनकाल में कवियों की (श्रेष्ठता की) गणना के अवसर पर (सबसे पहले) कनिष्ठिका पर कालिदास का नाम गिना गया। आज तक उनके जोड़ के दूसरे कवि के अभाव के कारण (कनिष्ठिका से अगली अँगुली का नाम) अनामिका (बिना नाम वाली) पड़ना सार्थक हुआ अर्थात् आज भी कालिदास के समान दूसरा कवि नहीं है।

विशेष– कनिष्ठिका से अगली अँगूली का नाम 'अनामिका' तो प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। कवि की सूझ इसमें है कि उसने कालिदास की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए कवियों की गणना के प्रसंग में इस अँगुली का नाम 'अनामिका' पड़ने की कल्पना की। यह हेतुत्प्रेक्षा का चमत्कार है।

8. कालिदासगिरां ..... मादृशाः।

[**शब्दार्थ– कालिदासगिराम्** = कालिदास की वाणी (या कविता) को, **सारम** = तत्त्व को, **विदुर्नान्ये > विदुः + न + अन्ये** = अन्य नहीं जानते हैं, **मादृशाः** = मेरे जैसे]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– कालिदास की वाणी के सार (अर्थात् मर्म) को या तो स्वयं कालिदास जानते हैं या (भगवती) सरस्वती या चतुर्मुख (चार मुख वाले) ब्रह्मा। मुझ जैसे अन्य (अल्पज्ञ) नहीं जानते।

विशेष– कालिदास इतनी अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न कवि थे कि उनकी सरल-सी दिखाई पड़ने वाली कविता भी इतने गूढ़ और नित्य जीवन अर्थों की व्यंजना करती है कि उसके मर्म को (अर्थात् कवि के मन्तव्य को) स्वयं कालिदास अथवा सरस्वती या ब्रह्मा ही समझ सकते हैं। वह अन्य किसी के सामर्थ्य की बात नहीं।

9. निर्गतासु ..... जायते।

[**शब्दार्थ– निर्गतासु** = निकलने पर, उच्चरित होने पर, **सूक्तिषु** = सुन्दर वचनों को, **प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु > प्रीतिः + मधुर-सान्द्रासु** = आनन्द; मधुर और सघन, **मञ्जरीष्विव > मञ्जरीषु + इव** = आम्रमंजरियों के सदृश]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– नई निकली हुई (निर्गताः) मधुर (मकरन्द से पूरित) और सान्द्र (घनी सुगन्ध वाली) आम्रमंजरियों के सदृश कालिदास की मधुर (कर्णप्रिय) और सान्द्र (सरल) सूक्तियाँ उच्चारणमात्र से (निर्गतासु) किसे आनन्दित नहीं करतीं। जिस प्रकार सुगन्धित मंजरियाँ; मधुर मकरन्द से पूरित होकर निकलते ही सर्वत्र सुगन्धि फैला देती हैं, वैसे ही कालिदास की मधुर सूक्तियों के उच्चारणमात्र से ही जनसामान्य आनन्दित हो उठता है।

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. शृंण्वन् राम-कथा-नादं को न याति परं पदम्।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'विश्ववन्द्याः कवयः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– रामायण की मोक्षदायिनी शक्ति का गुणगान करते हुए उसके रचयिता की वन्दना की गई है।

व्याख्या– जिस प्रकार पशुओं में सिंह सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार कवियों में वाल्मीकि श्रेष्ठ हैं। कवि वाल्मीकिरूपी सिंह की राम-कथारूपी गर्जना को सुनकर कौन होगा, जो परम पद (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर लेगा? तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि जी द्वारा रचित 'रामायण' की राम-कथा मोक्षदायिनी है।

2. चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महर्षि वेदव्यास ने भारत के समान ही पुण्यशाली जिस महाभारत ग्रन्थ की रचना की, प्रस्तुत सूक्ति में उस भारतदेश और महाभारत ग्रन्थ की प्रशंसा की है।

व्याख्या– भगवान् ब्रह्मा ने पृथ्वी पर सरस्वती नामक पुण्य नदी से युक्त भारतवर्ष की रचना की। हमारा यह भारतवर्ष इतना पुण्यशाली और पवित्र है कि यहाँ देवता भी निवास करने को लालायित रहते हैं। ब्रह्म के समान ही कवि व्यास ने अपनी पुण्यशालिनी वाणी से भारतदेश के समान महान् पुण्यशाली ग्रन्थ महाभारत की रचना की। जिस प्रकार भारत आदिकाल से विश्वगुरु के रूप में सम्पूर्ण संसार को अपने ज्ञान से आलोकित करता रहा है, उसी प्रकार महाभारत भी अपने ज्ञान से सम्पूर्ण संसार का मार्ग दर्शन करता आ रहा है। धन्य है वे महर्षि व्यास, धन्य है उनकी वाणी और धन्य है उसकी अनुपम रचना महाभारत।

3. प्रज्वलितो ज्ञानमयः प्रदीपः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महाभारत को ज्ञानमय दीपक कहकर महाकवि व्यास को नमस्कार किया गया है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति का आशय यह है कि दीपक जिस प्रकार अन्धकार को दूर करके मनुष्य को रास्ता दिखाता है, उसी प्रकार महाभारत में भी ज्ञानरूपी तेल है, जो लोगों का सदैव मार्गदर्शन करता रहेगा। जिस प्रकार दीपक से भरा हुआ तेल ही उस दीपक के माध्यम से प्रकाश देता है, उसी प्रकार श्री व्यास ने भी महाभारत के रूप में सदा तेल से भरे रहने वाले ऐसे दीपक को जलाया है, जो मनुष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करके उन्हें निरन्तर ज्ञानरूपी प्रकाश देता रहेगा। महाभारत को पाँचवाँ वेद भी माना जाता है। यह एक ऐसे विशाल महासागर के समान है, जिसमें विश्व का समस्त ज्ञान निहित है। इसीलिए महाभारत के विषय में कहा गया है—

''**यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्**'' अर्थात् जो इसमें है वह कहीं नहीं है। इसीलिए उस श्लोक, जिसमें यह सूक्ति निहित है, में उचित ही कहा गया है कि हे व्यासदेव! आपने पूर्ण ज्ञानमय दीपक जलाया है।

4. पुरा कवीनां गणनाप्रसंङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठतकालिदासः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अग्रगण्य कवि हैं। इस तथ्य को काव्य-शैली में प्रस्तुत करते हुए कहा गया है—

व्याख्या– महाकवि कालिदास रस-व्यंजना, वैदर्भी रीति, हृदयहारी, प्रकृति चित्रण, उपमा, अलंकार के मंजुल प्रयोगों तथा रसराज श्रृंगार की उद्भावनाओं से रसिकजन के मनःसागर को आनन्दातिरेक की उत्तला तरंगों से आप्लावित करने के कारण कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका श्रृंगार रसप्रधान नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् ' देश-विदेशों में इनकी महत्ता प्रतिष्ठापित कर चुका है। रूस, जापान आदि देशों में इसका सफल मंचन हो चुका है। विदेशी विद्वान जितना कालिदास को जानते हैं, उतना अन्य संस्कृत कवियों को नहीं। इसका श्रेय कालिदास की काव्यकला को ही प्राप्त है। कवियों की गणना करते समय पहले ही कालिदास कनिष्ठिका उँगली पर आ गए थे; अर्थात् उनका महाकवियों में प्रथम स्थान था। आज भी उनके समान अन्य कोई कवि नहीं है। अतएव अनामिका नामक उँगली मनो सार्थक हो गई है। कनिष्ठिका (छोटी) उँगली के पास की उँगली को अनामिका कहते हैं। अनामिका का अर्थ है— जिसका कोई नाम नहीं। आज भी अनामिका पर कालिदास के समान किसी कवि का नाम न होने से वह सार्थक है; अर्थात् उसका 'अनामिका' नाम ठीक ही है। भाव यह है कि कालिदास पहले भी अद्वितीय थे और आज भी अद्वितीय हैं।

पाठ पर आधारित प्रश्न—

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. वाल्मीकिः कवीन्दुः कथं कथ्यते?

उ०– यतः तत्प्रणीतां रमायणीं कथां चन्द्रिकामिव पिबन्ति कोविदचकोराः।

2. वाल्मीकिः कः आसीत्।

उ०– वाल्मीकिः रामायणग्रन्थस्य रचयिता महाकविः आसीत्।

3. कथं वाल्मीकिमुनिः कोकिलेनोपमितः?

उ०– यथा कोकिलः मधुरं कूजति, तथैव वाल्मीकिः रामरामेति मधुरं चुकूजे।

4. महाभारतस्य रचयिताः क?

उ०– व्यासः कविः महाभारतस्य रचयिता अस्ति।

5. कालिदासस्य सूक्तीनां का विशेषता अस्ति?

उ०– कालिदासस्य सूक्तयः मधुराः सान्द्राश्च अस्ति।

6. ज्ञानमयः प्रदीपः केन प्रज्वलितः?

उ०– वेदव्यासः महाभारतनामकः ज्ञानमयः प्रदीपः प्रज्वालितः।

7. कः कविः कवीन्दुः इति कथितः।

उ०– वाल्मीकिः कविः कवीन्दुः इति कथितः।

8. कोविदाः काम् कथां चित्वन्ति?

उ०– कोविदाः रामायणीं कथां चकोरा इव चन्द्रिकामिव चित्वन्ति।

9. व्यासस्य पूर्णं नाम किम् आसीत्?

उ०– व्यासस्य पूर्णं नाम 'कृष्णद्वैपायनः' आसीत् ।

10. कवीनां गणनाप्रसङ्गे कालिदासः कुत्राधिष्ठितः आसीत्?

उ०– कवीनां गणनाप्रसङ्गे कालिदासः कनिष्ठिकाम् अधिष्ठित् आसीत्।

11. विश्ववन्द्याः कवयः के के सन्ति?

उ०– वाल्मीकिः व्यासः कालिदासश्च विश्ववन्द्याः मुख्याः कवयः अस्ति।

12. संस्कृतस्य साहित्यस्य आदिकविः कः आसीत्?

उ०– संस्कृतस्य साहित्यस्य आदिकविः वाल्मीकिः आसीत् ।

13. अनामिका कथं सार्थवती बभूव?

उ०– कालिदासस्य समान: क: अपि कवि न अस्ति, अत: अनामिका सार्थवती बभूव।

14. भारततैलपूर्ण: ज्ञानमय: प्रदीप: केन प्रज्वलित:?

उ०– भारततैलपूर्ण: ज्ञानमय: प्रदीप: वेदव्यासेन प्रज्वालित:।

15. वेदव्यासेन भारतं कथं पुण्ययुक्तमकरोत्?

उ०– वेदव्यास: निजसरस्वत्या भारतं पुण्ययुक्तमकरोत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. आदिकवि वाल्मीकि को नमस्कार है।
अनुवाद– आदिकवि वाल्मीकाय नम:।

2. रामकथा को सुनकर कौन मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है?
अनुवाद– रामकथास्य श्रुत्वा क: मोक्षाय प्राप्य: न करोति?

3. मैं कवि वेदव्यास को नमस्कार करता हूँ।
अनुवाद– अहम् कवि वेदव्यासाय नम: करोमि।

4. कवियों ने कालिदास श्रेष्ठ है।
अनुवाद– कवीनां कालिदास: श्रेष्ठ:।

5. महाभारत की रचना वेदव्यास ने की।
अनुवाद– महाभारतस्य रचयिता वेदव्यास: आसीत्।

6. गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस् लिखी।
अनुवाद– गोस्वामी तुलसीदास: श्रीरामचरितमानस् अलिखत्।

7. तुम शीघ्र विद्यालय जाओ।
अनुवाद– त्वं शीघ्र विद्यालयं गच्छ।

8. पिता पुत्रों को मिठाई देता है।
अनुवाद– पिता पुत्रेभ्य: मिष्टान्नं ददाति।

9. शिव पार्वती के साथ कैलाश गए।
अनुवाद– शिव: पार्वत्या सह कैलाशम् अगच्छत्।

10. योग स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है।
अनुवाद– योग: स्वस्थजीवनाय आवश्यक: अस्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्दों का सन्धि-विच्छेद करके सन्धि का नाम लिखिए–

कवीन्दुम, मञ्जरीष्विव, अद्यापि, नमोऽस्तु, रामेति, मधुराक्षम्, भारताख्यममृतम्, कनिष्ठिकाधिष्ठित:, चन्द्रिकामिव, फुल्लारविन्द:, श्रवणाञ्जलि:

उ०– सन्धि पद	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
कवीन्दुम	कवि + इन्दुम्	दीर्घ सन्धि
मञ्जरीष्विव	मञ्जरीषु + इव	यण सन्धि
अद्यापि	अद्य + अपि	दीर्घ सन्धि
नमोऽस्तु	नम: + अस्तु	उत्व सन्धि
रामेति	राम + इति	वृद्धि सन्धि
मधुराक्षरम्	मधुर + अक्षरम्	दीर्घ सन्धि
भारताख्यममृतम्	भारत + आख्यम् + अमृतम्	दीर्घ, अनुस्वार सन्धि
कनिष्ठिकाधिष्ठित:	कनिष्ठिका + अधिष्ठित:	दीर्घ सन्धि
चन्द्रिकामिव	चन्द्रिकाम् + इव	अनुस्वार सन्धि
फुल्लारविन्द:	फुल्ल + अरविन्द:	दीर्घ सन्धि
श्रवणाञ्जलि:	श्रवण + अञ्जलि:	दीर्घ सन्धि

2. निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए–

सर्वविदे, व्यासाय, यस्य, वाल्मीकिं, सूक्तिषु, कूजन्तम्, कवेः, कोविदाः, येन, त्वया, वनचारिणः, सरस्वत्याः

उ०–	शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
	सर्वविदे	चतुर्थी	एकवचन
	व्यासाय	चतुर्थी	एकवचन
	यस्य	षष्ठी	एकवचन
	वाल्मीकिं	द्वितीया	एकवचन
	सूक्तिषु	सप्तमी	बहुवचन
	कूजन्तम्	द्वितीया	एकवचन
	कवेः	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
	कोविदाः	प्रथमा	बहुवचन
	येन	तृतीया	एकवचन
	त्वया	तृतीया	एकवचन
	वनचारिणः	पञ्चमी/षष्ठी द्वितीया	बहुवचन
	सरस्वत्याः	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन

3. निम्नलिखित धातु रूपों के लकार, पुरुष तथा वचन बताइए–

कूजन्तं, याति, नौमि, नमः, चिवन्ति, विदुः, जायते, वन्दे

उ०–	धातु-रूप	लकार	पुरूष	वचन
	कूजन्तं	लोट् लकार	मध्यम	द्विवचन
	याति	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	नौमि	लट् लकार	उत्तम	एकवचन
	नमः	लोट् लकार	मध्यम	एकवचन
	चिन्वन्ति	लट् लकार	प्रथम	बहुवचन
	विदुः	लट् लकार	प्रथम	बहुवचन
	जायते	लट् लकार	प्रथम	एकवचन
	वन्दे	लट् लकार	उत्तम	एकवचन

4. निम्नलिखित समस्तपदों का विग्रह करके समास का नाम लिखिए–

भारतवैलपूर्णः, गणनाप्रसंङ्गे, कविवेधसे, कालिदासगिरां, कथानादम्

उ०–	समस्त पद	समास-विग्रह	समास का नाम
	भारतवैलपूर्णः	भारत एव तैलपूर्णः	कर्मधारय समास
	गणनाप्रसङ्गे	गणनायाः प्रसङ्गे	तत्पुरुष समास
	कविवेधसे	कवि एव वेधसे	कर्मधारय समास
	कालिदासगिरां	कालिदासस्य गिराम्	तत्पुरुष समास
	कथानादम्	कथायाः नादम्	तत्पुरुष समास

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

नवमः

पाठः चतुरश्चौरः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. आसीत् काञ्ची ..... विचक्षणाः॥

[**शब्दार्थ– आसीत्** = थी; था, **तत्रैकदा > तत्र** + **एकदा** = वहाँ एक बार, **कस्यापि > कस्य** + **अपि** = किसी का,

चोरयन्तश्चत्वारश्चौराः > चोरयन्तः + चत्वारः + चौराः = चुराते हुए चार चोर, **सन्धिद्वारि** = सेंध के द्वार पर, **प्रशास्तृपुरुषैः** = राजपुरुषों या सिपाहियों द्वारा, **घातकपुरुषान्** = जल्लादों को, **आदिष्टवान्** = आदेश दिया, **विमर्द** = दमन करना, **बुधा** = विद्वानों ने, **दण्डनीति-विचक्षणाः** = दण्डनीति में, कुशल]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'चतुरश्चौरः' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– काँची नाम की (एक) राजधानी थी। वहाँ सुप्रताप नाम का राजा था। वहाँ एक दिन किसी धनिक का धन चुराते हुए चोरों को सेंध के द्वार पर सिपाहियों ने जंजीर से बाँधकर राजा को सौंप दिया और राजा ने जल्लादों को आदेश दिया– ''अरे! जल्लादों! इन्हें ले जाकर मार दो।'' क्योंकि–

दण्डनीति में कुशल विद्वान् राजा का कर्त्तव्य सज्जनों को बढ़ाना (पालना) तथा दुष्टों को दण्ड देना बताते हैं।

2. ततो राजाज्ञया ..... नरः।।

[**शब्दार्थ– त्रयश्चौराः > त्रयः + चौराः** = तीन चोरों को, **शूलम् आरोप्य हताः** = सूली पर चढ़ाकर मार दिए गए, **प्रत्यासन्नेऽपि > प्रत्यासन्ने + अपि** = समीप होने पर भी, **विधीयते** = मारा जाता हुआ, **भूभुजा** = राजा के द्वारा, **प्रत्यायति** = लौट आता है, **प्रतीकारपरः** = उपाय करने में लगा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– तब राजा की आज्ञा से तीन चोर सूली पर चढ़ाकर मार दिये गये। चौथे ने सोचा–

मृत्यु निकट होने पर भी (मनुष्य को अपनी) रक्षा का उपाय करना चाहिए। उपाय के सफल होने पर रक्षा हो जाती है (और)निष्फल (व्यर्थ) होने पर मृत्यु से अधिक (बुरा तो) और कुछ (होने वाला) नहीं। रोग से पीड़ित होने या राजा द्वारा मरवाये जाने पर भी मनुष्य यदि (अपने बचाव के) उपाय में तत्पर हो, तो यम के द्वार से (मृत्यु के मुख से) भी लौट आता है।

3. चौरोऽवदत् ..... मया दातव्या?

[**शब्दार्थ– राजसन्निधानं** = राजा के पास, **यतोऽहमेकां > यतः + अहम् + एकाम्** = क्योंकि मैं एक, **मर्त्यलोके** = पृथ्वी पर; संसार में, **पापपुरुषाधम > पाप-पुरुष + अधम** = पापी पुरुषों में नीच, **तवाधमस्य > तव + अधमस्य** = तुझ अधम नीच की, **पूजायितव्या** = सम्मानित होगी, **कर्तुमिच्छथ > कर्तुम् + इच्छथ** = करना चाहते हो, **ज्ञातुमिच्छति > ज्ञातुम् + इच्छति** = जानना चाहता है, **गृह्णातु** = ग्रहण करे, **दातव्या** = देने योग्य]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– चोर बोला– ''अरे वधिकों! तीन चोर तो तुम लोगों ने राजा की आज्ञा से मार ही दिये, किन्तु मुझे राजा के पास ले जाकर मारना; क्योंकि मैं एक महती (बड़ी महत्त्वपूर्ण) विद्या जातना हूँ। मेरे मरने पर वह विद्या लुप्त हो जाएगी। राजा उस (विद्या) को लेकर (सीखकर) मुझे मार दे, जिससे वह विद्या मृत्युलोक (पृथ्वी) में तो रह जाये।

जल्लादों ने कहा– 'अरे चोर! पापी लोगों (पापियों) में नीच! तू वध-स्थान पर लाया जा चुका है। क्या तू और जीना चाहता है? तुझ (जैसे) अधम की विद्या राजा के द्वारा कैसे पूजनीय होगी?' चोर ने कहा– 'अरे! जल्लादों! क्या बोलते (बकते) हो? राजा के कार्य में विघ्न डालना चाहते हो? तुम जाकर निवेदन करो। यदि राजा उस विद्या को जानना चाहता है तो ले-ले। वह विद्या मैं तुम्हें कैसे दे दूँ?'

4. ततश्चौरस्य ..... न वपति?

[**शब्दार्थ– राजकार्यानुरोधेन > राज -कार्य + अनुरोधेन** = राजकाज के अनुरोध से, **राज्ञे निवेदिता** = राजा से निवेदन किया, **सकौतुकं** = कौतूहल से, **सर्षपपरिमाणानि** = सरसों के बराबर, **उप्यन्ते** = बोए जाते हैं, **कन्दल्यः** = अंकुर, **रक्तिकामात्रेण** = रत्ती-मात्र से, **पलसंङ्ख्याकानि** = पल नामक परिमाण की संख्या में, **देव!** = हे देव आप!, **कस्यासत्यभाषणे > कस्य + असत्यभाषणे** = किसकी झूठ बोलने में, **शक्तिः** = सामर्थ्य, **व्यभिचरितं** = असत्य या गलत, **ततश्चौरः > ततः + चौरः** = तब चोर ने, **दाहयित्वा** = तपाकर, **परमनिगूढ़स्थाने** = अत्यन्त गुप्त स्थान में, **भूपरिष्कारम** = भूमि की सफाई, **वप्ता** = बोने वाला, **सुवर्णवपने** = सोना बोने में, **सुवर्णवपनाधिकारों नास्ति > सुवर्णः + वपन + अधिकार + नः + अस्ति** = सोना बोने का अधिकार नहीं है]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– तत्पश्चात् चोर के कहने से और राजकाज के लिहाज से उन्होंने यह बात रोजा से कही और राजा ने कौतूहलवश चोर को बुलाकर पूछा– 'रे चोर! तू कौन-सी विद्या जानता है?' चोर ने कहा– 'सरसो' के बराबर सोने के बीज बनाकर भूमि में बोए जाते हैं और एक माह में ही अंकुर और फूल आ जाते हैं। वे फूल सोना ही होते हैं। रत्तीमात्र बीज से फल (नामक परिमाण) की संख्या में बीज हो जाते हैं। उसे आप प्रत्यक्ष देख लें। राजा ने कहा– 'रे चोर! क्या यह सत्य है?' चोर ने कहा– 'आपके सामने झूठ बोलने की सामर्थ्य किसकी है? (अर्थात् आपके सामने झूठ बोलने को किसी में सामर्थ नहीं है।) यदि मेरा वचन असत्य हो, तो एक माह में मेरा भी अन्त हो जाएगा।' राजा ने कहा– 'हे भद्र! सोना बोओ।'

तब चोर ने सोने को तपाकर, सरसों के आकार के बीच बनाकर राजा के अन्तःपुर के क्रीड़ा-सरोवर के किनारे पर अत्यन्त गुप्त

स्थान (एकान्त स्थान) में भूमि की सफाई करके कहा– 'हे देव! खेत और बीज तैयार हैं, कोई बोनेवाला दीजिए।' राजा ने कहा– 'तुम ही क्यों नहीं बोते?' चोर ने कहा– 'महाराज! यदि सोना बोने का मेरा अधिकार होता तो इस विद्या के होते हुए मैं दु:खी क्यों होता? किन्तु चोर को सोना बोने का अधिकार नहीं है। जिसने कभी कुछ भी न चुराया हो, वह बोए। महाराज (आप) ही क्यों नहीं बोते?'

5. **राजाऽवदत् ..... चोरिताः।**

[**शब्दार्थ– चारणेभ्यो** = चारणों (भाटों) को, **तातचरणाम्** = पिता जी का, **राजोप जीविनः > राजा + उपजीविन** = राजा के सहारे जीने वाले, **अस्तेयिनः** = चोरी न करने वाले, **मोदकाः** = लड्डू]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– राजा ने कहा– ''मैंने चारणों (भाटों) को देने के लिए पिताजी का धन चुराया था।' चोर ने कहा– 'तब मन्त्रिगण बोएँ।' मन्त्रियों ने कहा– 'राजा के सहारे जीतेवाले हम लोग, फिर चोरी ने करनेवाले कैसे हो सकते हैं? चोर ने कहा– 'तो धर्माधिकारी बोए।' धर्माधिकारी ने कहा– 'मैंने बचपन में (अपनी) माता के लड्डू चुराए थे।

6. **चौरोऽवदत् ..... गतः।**

[**शब्दार्थ– तच्चौरवचनं > तत् + चोरवचनम** = चोर के उस वचन को, **हास्यरसापनीतक्रोधो > हास्य-रस + अपनीत + क्रोधः** = हास्य रस से क्रोध दूर होने पर, **प्रस्तावे** = समय-समय पर; अवसर पर, **धृतः** = रख लिया, **समुच्छिद्य** = काटकर, **वल्लभतां गतः** = प्रिय हो गया]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– चोर बोला– 'यदि तुम सब चोर हो, तो मैं अकेला ही क्यों मारे जाने योग्य हूँ?' चोर के उस वचन को सुनकर समस्त सभासद हँस पड़े। हास्य रस से (हँसी के कारण क्रोध दूर हो जाने पर) राजा ने भी हँसकर कहा– 'रे चोर! तू मारने योग्य नहीं है। हे मन्त्रियों! दुर्बुद्धि होते हुए भी यह चोर बुद्धिमान् और हास्य रस में प्रवीण है। अत: यह मेरे ही निकट रहे। समय-समय पर मुझे हँसाए और खिलाए (मेरा मनारंजन करे)।' ऐसा कहकर राजा ने उस चोर को अपने पास रख लिया। चोर से अधिक कोई अधम नहीं होता, परन्तु वह (चोर) हँसी और विद्या के कारण मृत्यु के जाल को काटकर राजा को प्रिय हो गया।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **राजधर्म बुधा प्राहुर्दण्डनीति-विचक्षणाः॥**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'चतुरश्चौरः' नामक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग– सैनिकों द्वारा पकड़कर लाए गए चोरों को मृत्युदण्ड देने का आदेश देता हुआ राजा जल्लादों को राजधर्म के विषय में यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– दण्डनीति में कुशल विद्वान राजधर्म अर्थात् राजाओं का कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं कि वास्तव में आदर्श राजा वही होता है जो सज्जनों का सभी प्रकार से पालन-पोषण करता है और उन्हें सर्वविध सरंक्षण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त वह दुष्टों और अपराधियों को कठोर-से-कठोर दण्ड देकर उनको हतोत्साहित करता है अथवा उनका समूल विनाश कर देता है। जो भी राजा इस कर्त्तव्य का निर्वाह करता है, वही अपने राजधर्म का भी उचित निर्वाह करता है।

2. **प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– मृत्युदण्ड सुनाये गये चारों चोरों में चौथे चोर को जब जल्लाद वधस्थल पर ले आये तो वह अपने प्राण बचाने का उपाय सोचता हुआ यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– इस सूक्ति का आशय यह है कि मृत्यु सिर पर भी खड़ी हो तो भी मनुष्य को निराश होकर नहीं बैठ जाना चाहिए, वरन् अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए अर्थात् कितना ही बड़ा संकट क्यों न हो, मनुष्य को निराश कदापि नहीं होना चाहिए, अपितु उसमें से बच निकलने का उपाय खोजना चाहिए। यदि उपाय सफल हो गया तो रक्षा हो जाएगी, यदि विफल हो गया तो संकट यथापूर्व बना रहता है। अत: व्यक्ति को निराशा को त्यागकर पूरी आशा के साथ अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए; क्योंकि निराशा तो साक्षात् मृत्यु है।

3. **उपाये सफले रक्षा निष्फले नाधिकं मृतेः॥**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि उपाय के सफल होने पर रक्षा हो जाती है।

व्याख्या– व्यक्ति को अत्यधिक परेशानी आने पर भी उससे हार नहीं माननी चाहिए, अपितु उससे जूझते रहना चाहिए और सफल होने के लिए सतत प्रयास करते रहना चाहिए। यदि प्रयास करते रहने पर भी असफलता ही मिलती है तो भी उसे निराश न होकर नये तरीके से,

नये जोश से प्रयास करना चाहिए। इस बात के अनेकानेक उदाहरण हमारे समक्ष हैं जिनमें कई बार असफल होने के बाद भी कार्य की सिद्धी के लिए निरन्तर प्रयासरत लोगों ने अन्ततः सफलता का ही वरण किया है। प्रस्तुत कथा भी यही शिक्षा देती है। वधस्थल पर लाये गये चार चारों में से तीन ने अपने बचाव का कोई उपाय नहीं किया और वे मृत्यु को प्राप्त हुए, लेकिन चौथे चोर ने बचाव का उपाय किया और सफल भी हुआ। प्रस्तुत सूक्ति निरन्तर कर्म में लगे रहने का भी सन्देश देती है।

4. **प्रत्यायति यमद्वारात् प्रतीकरपरो नरः॥**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि प्रयास में लगा हुआ व्यक्ति मृत्यु-मुख से भी बच जाता है।

व्याख्या– यदि व्यक्ति अपनी रक्षा में लगा रहे तो वह साक्षात् मृत्यु के मुख से भी बचकर निकल आता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति को किसी भी स्थिति में निराश न होकर, आत्मविश्वास न खोकर, संकट से उबरने का उपाय सोचते रहना चाहिए। ऐसा आत्मविश्वासी एवं दृढ़चित्त-व्यक्ति आसन्न मृत्यु (या विपत्ति) से भी बच निकलता है, किन्तु जो पहले ही निराश या हतोत्साहित हो जाता है, वह बचने की पूरी सम्भावना रहते हुए भी बच नहीं पाता। अतः मनुष्य को कष्ट-निवारण हेतु प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। प्रयत्न करने पर वह बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का भी सामना कर सकता है।

5. **न चौरादधमः कश्चित्।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है कि चोर सबसे बड़ा पापी होता है।

व्याख्या– यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की चोरी करता है तो उससे बड़ा पापी (अधम) संसार में दूसरा कोई नहीं है। वह चोरी करकर अपने अस्तेय के व्रत को तोड़ता है तथा अपना धर्म व नीयत भ्रष्ट कर लेता है। तथा दण्ड का पात्र बन जाता है।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

1. **राज्ञः सुप्रतापस्य राजधानी कः आसीत्?**

उ०– राज्ञः सुप्रतापस्य राजधानी काञ्ची आसीत्।

2. **काञ्ची कस्य राजधानी आसीत्?**

उ०– काञ्ची राज्ञः सुप्रतापस्य राजधानी आसीत्।

3. **प्रशास्तृपुरुषैः चौराः कुत्र गृहीत्वाः?**

उ०– प्रशास्तृपुरुषैः चौराः सन्धिद्वारे गृहीत्वाः।

4. **चौराः किम् अचोरयन्?**

उ०– चौराः धनिकस्य धनम् अचोरयन्।

5. **राज्ञा घातकापुरुषान् किम आदिशत्?**

उ०– राजा घातकापुरुषान् आदिशत्, 'इमान चौरान् नीत्वा मारयत्' इति।

6. **चतुर्थेन चौरेण किं चिन्तितम्?**

उ०– चतुर्थेन चौरेण रक्षोपायः चिन्तितम्।

7. **कीदृशः नरः यमद्वारात् प्रत्यायाति?**

उ०– प्रतीकारपरो नरः यमद्वारात् प्रत्यायाति।

8. **राजा सुकौतकं चौरमाहूय किमपृच्छत्?**

उ०– राजा सुकौतकं चौरमाहूय 'कां विद्यां जानासि' इति अपृच्छत।

9. **सुवर्ण तपने कस्य अधिकारः नास्ति?**

उ०– सुवर्ण तपने चौरस्य अधिकारः नास्ति।

10. **राज्ञा किं चोरितमासीत्?**

उ०– राज्ञा चारणदेभ्यो दातुं पितुः धनं चोरितामासीत।

11. **धर्माध्यक्ष किं अकथयत्?**

उ०– धर्माध्यक्ष कथयत् मया बाल्यदशायां मातुर्मोदकाश्चोरिताः।

12. **राज्ञा कस्य स्वसन्निधाने धृतः?**

उ०– राज्ञा चौराः स्वसन्निधाने धृतः।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **सुप्रताप नामक राजा था।**

अनुवाद– सुप्रतापस्य नामकःराज्ञः आसीत्।

2. **तीन चोरों को जल्लादों ने मार डाला।**
   अनुवाद– त्रयश्चौराः घातकपुरुषाः हताः।
3. **प्रतिकार करने वाला मनुष्य यम के द्वार से भी लौट आता है।**
   अनुवाद– प्रतिकारपरो नरः यमद्वारात् प्रत्यायति।
4. **मैं एक महान विद्या जानता हूँ।**
   अनुवाद– अहं एकां महतीं विद्यां जानामि।
5. **हम सब वाराणसी जाएँगे।**
   अनुवाद– वयं वाराणसीं गमिष्यमिः।
6. **वह कलम से लिखता है।**
   अनुवाद– सः कलमेन् लिखति।
7. **हिमालय भारतवर्ष की रक्षा करता है।**
   अनुवाद– हिमालयः भारतवर्षं रक्षति।
8. **चौथा चौर अपने बुद्धि बल से बच गया।**
   अनुवाद– चतुर्थश्चौरः स्वबुद्धिबलेन रक्षितः।
9. **राजा ने उन्हें मृत्युदण्ड दिया।**
   अनुवाद– राजा तेभ्यः मृत्युदण्डमद्दात्।
10. **शिक्षा जीवन के लिए ही होती है।**
    अनुवाद– शिक्षा जीवनार्थायैव भवति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्द रूपों में विभक्ति एवं वचन बताइए–**
   राज्ञे, माम्, चतुर्थेन, विद्यया, युष्माभिः, धनिकस्य, वचनैः, यूयम् ।

उ०–	**शब्द रूप**	**विभक्ति**	**वचन**
	राज्ञे	चतुर्थी	एकवचन
	माम्	द्वितीया	एकवचन
	चतुर्थेन	तृतीया	एकवचन
	विद्यया	तृतीया	एकवचन
	युष्माभिः	तृतीया	बहुवचन
	धनिकस्य	षष्ठी	एकवचन
	वचनैः	तृतीया	बहुवचन
	यूयम्	प्रथमा	बहुवचन

2. **निम्नलिखित समस्तपदों का विग्रह कीजिए तथा समास का नाम भी बताइए–**
   समस्तपद, सन्धिद्वारि, त्रयश्चौराः, शूलमारोप्य, राजकार्ये, मासामात्रैणैव, सुर्वणबीजनि, राज्ञाज्ञया, तत्रैकदा

उ०–	**समस्तपद**	**समास-विग्रह**	**समास का नाम**
	सन्धिद्वारि	सन्धिःद्वारः	तत्पुरुष समास
	त्रयश्चौराः	त्रयः चौराः	कर्मधारय समास
	शूलमारोप्य	शूलं आरोप्य	तत्पुरुष समास
	राजकार्ये	राज्ञःकार्ये	तत्पुरुष समास
	मासामात्रैणैव	मासमात्रैव एव	तत्पुरुष समास
	सुर्वणबीजनि	सुवर्षस्य बीजानि	तत्पुरुष समास
	राज्ञाज्ञया	राज्ञः आज्ञाया	तत्पुरुष समास
	तत्रैकदा	तत्रएकदा	अव्ययीभाव समास

3. **निम्नलिखित धातु-रूपों में प्रयुक्त प्रत्यय लिखिए–**
   धातु-रूप, आदिष्टवान, मारणीयम्, दाहायित्वा, पूजायितव्या, ज्ञातव्या

उ०–	धातु-रूप	प्रत्यय	धातु
	आदिष्टवान	क्तवतु	आ + दिश्
	मारणीयम्	अनीयर्	मृ
	दाहायित्वा	कत्वा	दाह्
	पूजायितव्या	तव्यत्	पूजयित
	ज्ञातव्या	तव्यत्	ज्ञा

4. निम्नलिखित का सन्धि विच्छेद कीजिए–

शूलमारोप्य, सुवर्णान्येव, राजकार्यानुरोधेन, मृत्युपाशं, ममैव, मासमात्रैणैव, यतोऽहम्, त्रयश्चौराः, मासान्ते, राजाज्ञया, रक्षोपायः

उ०–	सन्धि शब्द	सन्धि विच्छेद	सन्धि नाम
	शूलमारोप्य	शूलम् + आरोप्य	अनुस्वार सन्धि
	सुवर्णान्येव	सुवर्ण + अन्य + इव	दीर्घ, वृद्धि सन्धि
	राजकार्यानुरोधेन	राजकार्य + अनुरोधेन	दीर्घ सन्धि
	मृत्युपाशं	मृत्यु + पाशं	प्रकृतिभावं सन्धि
	ममैव	मम + एव	वृद्धि सन्धि
	मासमात्रैणैव	मासमात्रैण + एव	वृद्धि सन्धि
	यतोऽहम्	यतः + अहम्	उत्व सन्धि
	त्रयश्चौराः	त्रयः + चौराः	सत्व सन्धि
	मासान्ते	मासां + ते	परसवर्ण सन्धि
	राजाज्ञया	राज्ञा + आज्ञया	दीर्घ सन्धि
	रक्षोपायः	रक्षा + उपायः	वृद्धि सन्धि

5. निम्नलिखित धातु-रूपों में मूलधातु एवं पुरुष, वचन स्पष्ट कीजिए–

गृहणातु, तिष्ठतु, मारयत, अवदत्, अपृच्छत्, भविष्यति, वपसि, जानासि, विधीयते, इच्छासि

उ०–	धातु रूप	मूल धातु	पुरुष	वचन
	गृहणातु	ग्रह्	प्रथम	एकवचन
	तिष्ठतु	स्था	प्रथम	एकवचन
	मारयत	मृ	मध्यम	बहुवचन
	अवदत्	वद्	प्रथम	एकवचन
	अपृच्छत्	प्रच्छ	प्रथम	एकवचन
	भविष्यति	भू	प्रथम	एकवचन
	वपसि	वप्	प्रथम	एकवचन
	जानासि	ज्ञा्	मध्यम	एकवचन
	विधीयते	वि + धा	प्रथम	एकवचन
	इच्छासि	इष्	मध्यम	एकवचन

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।

दशमः

पाठः

सुभाषचन्द्रः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न–

निम्नलिखित पद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. सप्तनवत्युत्तराष्टादशशततमेऽब्दे .....स्वीकृतवान्।

[शब्दार्थ– सप्तनवत्युत्तराष्टादशशततमेऽब्दे > सप्त + नवति + उत्तर + अष्टादश- शत-तमे + अब्दे = सन् 1897 ई० में,

जनवरीमासस्य = जनवरी महीने की, **त्रयोविंशतितिथौ** = तेईस तारीख को, **अलञ्चकार** = अलंकृत किया, **राजकीय-प्राड्विवाकः** = सरकारी वकील, **भृत्यत्वम्** = नौकरी]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषचन्द्रः' पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– सन् अठारह सौ सत्तानबे के जनवरी महीने की तेईस तारीख (अर्थात् 23 जनवरी, व 1897 ई०) को श्री सुभाष ने अपने जन्म से बंगाल को अलंकृत किया। इनके पिता जानकीनाथ वसु सरकारी वकील थे। सुभाष बाल्यकाल से ही बुद्धिमान्, धैर्यशाली, साहसी और प्रतिभासम्पन्न थे। इन्होंने कलकत्ता नगर में शिक्षा प्राप्त करके सम्मानित आई०सी०एस० की परीक्षा उत्तीर्ण करके भी विदेशी शासन की नौकरी स्वीकार नहीं की।

2. आङ्ग्लशासकानां ..... सम्पादिता।

[**शब्दार्थ– भीताः** = डरे हुए, **अक्षिपन्** = डाला, **सप्तत्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे > सप्तत्रिंशत + उत्तर + एकोनविंशति + शत-तमे** = सन् 1937 ई०, **वृतः** = वरण किए गए; चुने गए, **पञ्चाशद्वृषभयुक्ते** = पचास बैलों से युक्त]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– अंग्रेज शासकों का भारत पर अधिकार नहीं है, वे विदेशी यहाँ क्यों शासन करते हैं? इस चिन्ता से ग्रस्त हो इन्होंने अपने प्रयत्न से भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए बहुत-से भारतीयों को अपने पक्ष में कर लिया। इस प्रकार इनके उग्र विचारों से भयभीत अंग्रेज शासकों ने इन्हें बार-बार जेल में डाला, परन्तु इस वीर ने स्वतन्त्रता के अपने प्रयास को नहीं छोड़ा।

1937 ई० में त्रिपुरा के कांग्रेस-अधिवेशन में इन्हें सर्वसम्मति से सभापति चुना गया और नागरिकों ने इनके सम्मान में पचास बैलों से युक्त रथ में इनकी शोभायात्रा निकाली।

3. अहिंसामात्रेण ..... बहिर्गतः।

[**शब्दार्थ– क्रान्तिपक्षमङ्गीकृतवान् > क्रान्ति-पक्षम + अङ्गीकृतवान** = क्रान्ति के पक्ष को स्वीकार किया, **अस्योग्रक्रान्तेः** = इनकी उग्र क्रान्ति से, **पुनरिमं > पुनः + इमम** = इन्हें; फिर, **व्यदीर्यत** = टुकड़े-टुकड़े हो गया; फट गया, **कमायमानः** = चाहते हुए, **संस्मृत्य** = स्मरण करके]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– ''केवल अहिंसा से स्वतन्त्रता-प्राप्ति का प्रयास कल्पनामात्र है''— ऐसा निश्चय करके इन्होंने क्रान्ति के पक्ष को स्वीकार किया। इनकी उग्र क्रान्ति से डरकर अंग्रेज शासकों ने इन्हें फिर कलकत्ता (कोलकात्ता) नगर की जेल में डाल दिया। इस कष्टकर (अर्थात् दुःखद) वृत्तान्त को सुनकर सुभाष से प्रेम करनेवाले भारतीयों का हृदय फट (टुकड़े-टुकड़े हो) गया। एक बार रात में कारागार-निरीक्षकों के सो जाने पर यह वीर सहसा उठकर— ''दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए''— इस नीति का अनुसरण कर अपनी इष्टसिद्धि को चाहते हुए सिद्धिदात्री जगदम्बा का स्मरण करके कारगार से बाहर निकल गया।

4. प्रातः सुभाषमनवलोक्य ..... देशं गतः।

[**शब्दार्थ– भृशमन्विष्यापि > भृशम् + अन्विष्य + अपि** = बहुत खोज करके भी, **वेषपरिवर्तनं विधाय** = वेश बदलकर, **वाणिजो गेहे > वणिजः + गेहे** = व्यापारी या बनिये के घर में, **अवधानपूर्वकं** = सावधानी से]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– प्रातःकाल सुभाष को न देखकर सभी कारगार-निरीक्षक आश्चर्यचकित हो गए, बहुत खोज करने पर भी वे उनको नहीं पा सके। कारगार से बाहर आकर सुभाष वेश बदलकर पेशावर नगर चले गए। वहाँ उत्तमचन्द्र नाम के वणिक् (बनिये या व्यापारी) के घर कुछ समय तक रहे। तत्पश्चात् अंग्रेज शासकों के सावधानी से निरीक्षक करने पर भी (बचकर) 'जियाउद्दीन' नाम से 'जर्मन' देश चले गए। वहाँ के हिटलर नाम के शासक से मैत्री करके वायुयान से जापान देश गए।

5. मलयदेशे ..... इत्यासीत्।

[**शब्दार्थ– अस्यास्मिन् > अस्य + अस्मिन्** = इनके इस, हिन्दुयवनादिसर्वसम्प्रदाया **वलम्बिनः > हिन्दु-यवन + आदि-सर्व-सम्प्रदाय + अवलम्बिनः** = हिन्दु-मुसलमान आदि सब सम्प्रदायों को मानने वाले, **राष्ट्रानुरागिणः > राष्ट्र + अनुरागिणः** = राष्ट्रप्रेमी, **अभिवादनपदम्** = अभिवादन; नमस्कार का शब्द, **उद्घोषश्च** = उद्घोषः + च = और नारा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– मलय (मलाया) देश में अपने संगठन के कौशल से इन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' नामक सेना का गठन किया। इनके इस गठन में हिन्दू-मुसलमान आदि समस्त सम्प्रदायों को माननेवाले (तथा) राष्ट्र से प्रेम करने वाले वीरवर सम्मिलित थे। इस गठन के अभिवादन का शब्द 'जयहिन्द' और नारा 'दिल्ली चलो' था।

6. यूयं मह्यं ..... सुभाषचरणयोरर्पितानि।

[**शब्दार्थ– रक्तमर्पयत > रक्तम् + अर्पयत** = खून दो, **त्वरितम् > त्वरितम् + एव** = शीघ्र ही; तुरन्त ही, **अवतीर्णः** = उतर

गया, **तस्मिन्नेव > तस्मिन् + एव** = उसी समय, **सर्वणसूत्राण्यपि > सुवर्णसूत्राणि + अपि** = सुवर्णसूत्र (मंगलसूत्र) भी, **सुभाषचरणयोरर्पितानि > सुभाष-चरणयोः + अर्पितानि** = सुभाष के चरणों में अर्पित कर दिए]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– जिसने भी सुभाष के मुख से– ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें स्वतन्त्रता दूँगा''– ऐसे रोमांचकारी शब्द सुने, वह तुरन्त ही (शीघ्र ही) उनके साथ स्वतन्त्रता-संग्राम में सैनिक के रूप में उतर गया। उसी समय ब्रह्मा (बर्मा; म्यामांर) देश की नारियों ने अपने आभूषणें के साथ सौभाग्यसूचक सुवर्णसूत्र (मंगलसूत्र) भी सुभाष के चरणों में अर्पित कर दिए।

7. **दिल्ली चलत ..... सुनिश्चितम्।**

[**शब्दार्थ– नातिदूरे > न + अतिदूरे** = अधिक दूर नहीं है, **प्रस्थिताः** = प्रस्थान किया, **बन्दीकृताः** = बन्दी बना लिए गए, **सप्तचत्वारिंशदुत्तरैकोनविंशातिशततेमेऽब्दे > सप्तचत्वारिंशत् + उत्तर + एकोनविंशति-शत-तम** = 1947 ई० को, **अगस्तमासस्य पञ्चदशतिथौ** = अगस्त महीने की पन्द्रह तारीख को; 15 अगस्त को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– सुभाष के– ''दिल्ली चलो, दिल्ली बहुत दूर नहीं है''– इन उत्साहपूर्ण वचनों से सैनिकों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच दुर्भाग्यवश जापान देश की पराजय के कारण सुभाष के सारे सैनिक अंग्रेज शासकों के द्वारा बन्दी बना लिए गए।

इस वीर श्रेष्ठ की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की कामना सन् 1947 ई० में 15 अगस्त को पूर्ण हुई। आज हमारे बीच विद्यमान न होने पर भी सुभाष– ''जिसकी कीर्ति है, वह जीवित है''– इस कथन के अनुसार सदैव अमर हैं; ऐसा सुनिश्चित है।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **अहिंसामात्रेण स्वातन्त्र्यप्राप्तेः प्रयासः कल्पनामात्रमेव।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषचन्द्रः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि मात्र अहिंसा से ही स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।

व्याख्या– भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में मुख्य रूप से दो विचारधाराओं के लोग संलग्न थे। इनमें से एक विचारधारा के लोग गाँधी जी के नेतृत्व में मात्र अहिंसा से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे थे। दूसरी विचारधारा के लोग सुभाषचन्द्र बोस के समर्थक थे, जो कि मात्र अहिंसा के बल पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयास को कल्पना ही मानते थे। ये लोग सशस्त्र क्रान्ति को उचित समझते थे। इनका मानना था कि दुष्ट को दुष्टता से ही जीता जा सकता है। राम यदि रावण के विरुद्ध धनुष न उठाते, कृष्ण यदि अर्जुन को कौरवों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित न करते तो आज समग्र भारत में राक्षसत्व और अधर्मी जन ही शासन कर रहे होते। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सुभाषचन्द्र बोस की सशस्त्र क्रान्ति का विचार कुछ अंशों में उचित ही था।

2. **शठे शाठ्यं समाचरेत्।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अंग्रेजों की सुरक्षा-व्यवस्था को झुठलाते हुए सुभाष जेल से भाग निकले। इसी विषय में यह सूक्ति कही गयी है।

व्याख्या– दुष्ट आदमी के साथ सज्जनता का व्यवहार करना मूर्खता है; क्योंकि नीच व्यक्ति अपनी नीचता कदापि नहीं छोड़ता। उसके प्रति सज्जनता दिखाने से वह उसका दुरुपयोग कर और अधिक हानि पहुँचाता है। इसीलिए कहा गया है कि 'पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्' अर्थात् साँपों को दूध पिलाने से उनका विष ही बढ़ता है। इसीलिए दुष्ट को उसी के हथियार अर्थात् दुष्टता से ही दबाया जा सकता है। इस कारण विषस्य विषमौषधम्' (विष की औषध विष ही है) तथा 'काँटे से काँटा निकलता है' जैसी उक्तियाँ प्रचलित हुईं। अतः दुष्ट को किसी दुष्ट चाल से ही परास्त या विफल मनोरथ किया जा सकता है, सज्जनता से नहीं। इसी का आचरण करते हुए सुभाष; दुष्ट अंग्रेजों को धोखा देकर जेल से भाग गये। दुष्ट मनुष्य के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रसिद्ध उक्ति है–

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जनहूँ के संग।
तुलसी चन्दन बिटप बसि, विष नहिं तजत भुजंग॥

3. **यूयं मह्यं रक्तमर्ययत्, अहं युष्मभ्यं स्वतंत्रता दास्यामि।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य ''तुम लोग मूझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।'' श्री सुभाष चन्द्र बोस का कथन है।

व्याख्या– सुभाषचन्द्र बोस स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए संघर्ष को आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि बिना युद्ध के अंग्रेजों को भारत से नहीं भगाया जा सकता। इसीलिए वे लोगों को युद्ध के लिए अर्थात् सशस्त्र क्रान्ति के लिए प्रेरित किया करते थे और कहा करते थे कि तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। उनके कहने का आशय यह था कि जब तक देशवासी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करके अपने प्राणों का बलिदान नहीं कर देते, तब तक उनकी आने वाली पीढ़ियाँ स्वतन्त्रता का मुख नहीं देख सकतीं। अर्थात् यदि वे चाहती हैं कि उनके वंशज स्वतन्त्र राष्ट्र की मुक्त वायु में साँस लें, तो उन्हें अपने प्राणों को, सर्वस्व को होम करना ही पड़ेगा। सुभाष के ऐसे ही वाक्यों से प्रेरित होकर

अनेक लोग स्वातन्त्र्य-यज्ञ में आहुति स्वरूप अपना बलिदान देने को कूद पड़े।

4. दिल्ली नातिदूरे वर्तते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में सुभाषचन्द्र आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को दिल्ली पर अधिकार करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं–

व्याख्या– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारतीयों को स्वतन्त्रता का अमर सन्देश दिया। बचपन से ही सुभाष के हृदय में देशभक्ति की भावना एवं क्रान्तिकारी विचार अपना स्थान बना चुके थे। अहिंसात्मक आन्दोलनों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति कल्पनामात्र है—अपने इस दृढ़ विचार से प्रेरित होकर उन्होंने क्रान्ति का मार्ग स्वीकार किया।

वे अंग्रेज सरकार की आँखों में धूल झोंककर जापान चले गए। वहाँ उन्होंने राष्ट्रभक्त हिन्दू एवं मुसलमानों को संगठित किया। उन्होंने 'आजाद हिन्द सेना' का गठन करके भारत-भूमि को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए युद्ध का बिगुल बजा दिया। उन्होंने कहा– ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।'' इन वचनों को सुनकर अनेक देशभक्त सेना में भर्ती हो गए। उन्होंने सैनिकों को प्रोत्साहित करते हुए कहा– ''दिल्ली चलो, दिल्ली दूर नहीं है।'' अर्थात् हम शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार कर लेंगे। इन उत्साहभरे वचनों को सुनकर सैनिक दिल्ली की ओर चल दिए। वस्तुत: आज की स्वतन्त्रता सुभाष जैसे राष्ट्रभक्तों के बलिदान का ही परिणाम है।

5. कीर्तिर्यस्य स जीवति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि सुभाष जैसे देशभक्त अपने यश के लिए अमर हो जाते हैं।

व्याख्या– जिसकी कीर्ति (मरणोपरान्त यश) रहती है वह (सदा) जीवित रहता है। मानव-शरीर नाशवान् है। संसार में कोई अमर होकर नहीं आया। एक-न-एक दिन सभी को मरना है और सभी का भौतिक शरीर नष्ट होना है, किन्तु जो लोग अपने समाज, देश या जाति की या मानवमात्र की महती सेवा कर जाते हैं, अपने जीवन स्वार्थ की बजाय परोपकार में बिताते हैं, उनका यश मरने के बाद भी बना रहता है। लोग उन्हें निरन्तर याद करते हैं, उनके प्रति भाँति-भाँति से श्रद्धाजंलि अर्पित करते हैं। इस प्रकार वे पुण्यशील महापुरुष भौतिक शरीर से हमारे बीच न रहने पर भी अपने यशरूपी शरीर से सदा जीवित रहते हैं। बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं, विजेताओं के नाम इतिहास के पृष्ठों मात्र पर रह जाते हैं, लोग उन्हें पूर्णत: भूल जाते हैं। ऐसे लोग अपनी मृत्यु के साथ ही सदा के लिए मिट जाते हैं पर महापुरुष सदा मानवमात्र के मनों में निवास करके अमर हो जाते हैं। सुभाषचन्द्र ऐसे ही महामानव है।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. सुभाषस्य जन्म कुत्र अभवत्?

उ०– सुभाषस्य जन्म बङ्गप्रान्ते अभवत्।

2. सुभाषस्य पितु: नाम किम् आसीत्?

उ०– सुभाषस्य पितु: नाम जानकीनाथ वसु: आसीत्।

3. तस्य पितु: क: आसीत्?

उ०– तस्य पितु: राजकीय-प्राड्विताक: आसीत्।

4. सुभाषचन्द्र: कस्यां नगर्यां शिक्षां प्राप्तवान्?

उ०– सुभाषचन्द्र: कालिकातानगर्यां शिक्षां प्राप्तवान्।

5. सुभाषचन्द्रस्योग्रक्रान्ते: भीता: आङ्ग्लशासका: किमकुर्वन्?

उ०– सुभाषचन्द्रस्या अग्रक्रान्ते: भीता: आङ्ग्लशासका: इमं कारागारे अक्षिपन्।

6. सुभाष: कां नीतिमनुसरन् कारगारात् बहिर्गत:?

उ०– सुभाष: 'शठे शाठयं समाचरेत्' इति नीतिमनुसरन् कारागारात् बहिर्गत:।

7. सुभाष: कारागारात् निर्गत्य कुत्र गत:?

उ०– कारागारात् बहिरागत्य सुभाषचन्द्र: पुरुषपुरनगरमगच्छत्।

8. सुभाष: केन नाम्ना जर्मनदेशं गत:?

उ०– सुभाष: 'जियाउद्दीन' इति नाम्ना जर्मनदेशं गत:।

9. सुभाष: कां सेनां सङ्घटितवान्?

उ०– सुभाष: मलयदेशे 'आजाद हिन्द फौज' इत्याख्यां सेनां सङ्घटितवान्।

10. सुभाषस्य सङ्गटनस्य अभिवादनपदम् उद्घोष: च किं आसीत्?

उ०– सुभाषस्य सङ्गटनस्य अभिवादनपदम् उद्घोष: 'जयहिन्द' इत्यासीत।

11. सुभाषचन्द्रः मलयदेशे कां सेना सङ्घटितवान?

उ०– सुभाषचन्द्रः मलयदेशे 'आजाद हिन्द फौज' इत्याख्यां सेनां सङ्घटितवान।

12. सुभाषचन्द्रस्यः रोमाञ्चकराः शब्दाः के आसन्?

उ०– 'यूयं मह्यं रक्तमर्पयत, अहं युष्मभ्यं स्वतन्त्रतां दास्यामि' इति सुभाषचन्द्रस्य रोमाञ्चकराः शब्दाः आसन्।

13. सुभाषः कदा काङग्रेस्य सभापतिः वृतः?

उ०– सुभाषः सप्तत्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे वर्षे काङ्ग्रेसस्य सभापतिः वृत्तः।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. श्री सुभाषचन्द्र कई बार कारगार गये।
अनुवाद– श्री सुभाषचन्द्रः अनेकदा कारागारमगच्छत्।

2. सुभाषचन्द्र बचपन से ही साहसी थे।
अनुवाद– सुभाषचन्द्रः बाल्यादेव साहसी आसीत्।

3. दिल्ली दूर नहीं है।
अनुवाद– नास्ति दिल्ली दूरम्।

4. अहिंसा परम धर्म है।
अनुवाद– अहिंसा परमो धर्मः।

5. दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए।
अनुवाद– दुष्टेन सह दुष्टस्य व्यवहारं कुर्यात्।

6. तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूगाँ।
अनुवाद– यूयं मह्यं रक्तमर्पयत, अहं पुष्मभ्यं स्वतन्त्रतां दास्यामि।

7. सुभाषचन्द्र बोस का जन्म बंगाल में हुआ था।
अनुवाद– सुभाषचन्द्रः बोसस्य जन्मः बंङग प्रान्ते अभवत्।

8. हम कल बाजार जाएँगे।
अनुवाद– वयं श्वः आपणं गमिष्यामः।

9. तुम राम के घर जाते हो।
अनुवाद– त्वं रामस्य गृहं गच्छसि।

10. हम दोनों गेंद से खेलेंगे।
अनुवाद– आवां कन्दुकेन क्रीडष्यावः।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द रूपों में विभक्ति एवं वचन बताइए–

स्वजन्मना, भारते, रात्रौ, कौशलेन, वायुयानेन, नारीभिः, निरीक्षणे, मुखात्, वणिजः, वृत्तान्तम्, चरणयोः

उ०–	शब्द रूप	विभक्ति	वचन
	स्वजन्मना	तृतीया	एकवचन
	भारते	सप्तमी	एकवचन
	रात्रौ	सप्तमी	एकवचन
	कौशलेन	तृतीया	एकवचन
	वायुयानेन	तृतीया	एकवचन
	नारीभिः	तृतीया	बहुवचन
	निरीक्षणे	सप्तमी	एकवचन
	मुखात्	पञ्चमी	एकवचन
	वणिजः	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
	वृत्तान्तम्	द्वितीया	एकवचन
	चरणयोः	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन

2. निम्नलिखित शब्दों में धातु और प्रत्यय अलग करकर लिखिए–

श्रुत्वा, प्राप्य, भीताः, उत्तीर्य, समुत्थाय, उक्तवा

उ०–	**शब्द रूप**	**प्रत्यय**	**धातु**
	श्रुत्वा	क्त्वा	श्र
	प्राप्य	ल्यप्	प्र + आप्
	भीताः	क्त	भी
	उत्तीर्य	ल्यप्	उत् + तृ
	समुत्थाय	ल्यप्	सम् + स्था
	उक्तवा	क्त्वा	वद्

3. निम्नलिखित विग्रह के आधार पर समस्तपद बनाइए और समास का नाम लिखिए–

कारागारस्य निरीक्षकाः, सुभाषे अनुरक्ताः, प्रतिभया, आङ्ग्लाश्च सम्पन्नः, आङ्ग्लाश्च ते शासकाः

उ०–	**समास-विग्रह**	**समस्तपद**	**समास का नाम**
	कारागारस्य निरीक्षकाः	कारागारनिरीक्षकाः	तत्पुरुष समास
	सुभाषे अनुरक्ताः	सुभाषानुरक्ताः	तत्पुरुष समास
	प्रतिभया सम्पन्नः	प्रतिभासम्पन्नः	तत्पुरुष समास
	आङ्ग्लाश्च ते शासकाः	आङ्ग्लशासकाः	तत्पुरुष समास

4. निम्नलिखित पदों में धातु, लकार, वचन व पुरुष बताइए–

अक्षिपन्, अत्यजत्, कुर्वन्ति, चलत, दास्यामि, अकरोत्

उ०–	**धातुरूप**	**धातु**	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
	अक्षिपन्	क्षिप्	लङ्	प्रथम	एकवचन
	अत्यजत्	त्यज्	लङ्	प्रथम	एकवचन
	कुर्वन्ति	कृ	लट्	प्रथम	एकवचन
	चलत	चल्	लोट्	मध्यम	बहुवचन
	दास्यामि	दा	लृट्	उत्तम	एकवचन
	अकरोत्	कृ	लङ्	प्रथम	एकवचन

5. निम्नलिखित सन्धि-विच्छेदों से सन्धि पद बनाइए तथा सन्धि का नाम लिखिए–

इति + उक्तवा, कीर्ति + यस्य, अत्र + एव, परः + अयम्, सूत्राणि + अपि, बाल्यात् + एव, राष्ट्र + अनुरागिणः, पतितः + अपि, अस्य + उग्रक्रान्तेः, वीर + अयम्

उ०–	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि-पद**	**सन्धि का नाम**
	इति + उक्तवा	इत्युक्तवा	यण् सन्धि
	कीर्ति + यस्य	कीर्तियस्य	रुत्व सन्धि
	अत्र + एव	अत्रैव	वृद्धि सन्धि
	परः + अयम्	परोऽयम्	उत्व सन्धि
	सूत्राणि + अपि	सूत्राण्यपि	यण् सन्धि
	बाल्यात् + एव	बाल्यादेव	जश्त्व सन्धि
	राष्ट्र + अनुरागिणः	राष्ट्रानुरागिणः	दीर्घ सन्धि
	पतितः + अपि	पतितोऽपि	उत्व सन्धि
	अस्य + उग्रक्रान्तेः	अस्योग्रक्रान्तेः	गुण सन्धि
	वीर + अयम्	वरोऽयम्	उत्व सन्धि

पाठ्येतर सक्रियता–

छात्र स्वयं करें।